

यजुर्वेदभाषाभाष्य

अर्थात्

परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमह-
यानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित
संस्कृतभाष्य का ।

भाषानुवाद

(१) भाग

वैदिकयन्त्रालय अजमेर

संस्कृत, १९६२ विक्रमाब्द



प्रथमावृत्तिः
२०००

{ दोनों भागों
का मूल्य रु.
द्वान्वय ॥ }



अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर
 स्मं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुयोधाय च ॥
 ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदानुर्थरं
 भाष्यं काम्यमथो क्रियामपयजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥
 चतुरूपद्वैतैरवनिःसहितैर्बिक्रमसरे
 शुभे पाँये मासे सितदलभविद्व्योन्मिततिथौ ॥
 गुरीयारे प्रातः प्रातिपदमतीष्टं सुषिदुषां
 प्रमाणैर्निर्यक्तं ज्ञापयनिःकृतादिभिरपि ॥ २ ॥
 विद्वानि देव सयितर्दुःखितालि परां सुव । यद्भूतं तद्गु
 भासुव ॥ १ ॥ प० ३० । ३ ।

भाषार्थः-मम यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥ जो निर्गुण गुण-
 पुत्र में देव मुकृत विद्वान् । प्रकृतकाल जगदीश्वरदि करि प्रणामतिदि ध्यान ॥ १ ॥
 ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय । पर उपकार विचारिकदि दीप्य सुयोध
 निधाय ॥ २ ॥ ज्ञानपथ आश्रय्य आदि पुनि निधेदु निरुक्ति निरुक्ति । यजुर्वेद जो क्रिया
 रर यमों तादि विचारि ॥ ३ ॥ एक सद्यः लघुनात अधिक विक्रमसर श्योतीस ।
 योय शुद्ध मेरनि तिथी दिन मधीय चागीया ॥ ४ ॥ बिक्रम के संयत् १९३४ योय
 मुदि १३ सुवकार के दिन यजुर्वेद के भाष्य यनामे का आरम्भ किया जाता है ॥
 (विद्वानि) इस भाष्य का मध्ये भूमिका में कर दिया है । रंदर ने ऋग्वेद में गुण
 और गुणों के विज्ञान के प्रकाशद्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन प्रगुणों को
 योयों में जिन २ प्रकार यथायोग्य उपकार देने के लिये क्रिया करनी चाहिये
 तथा उस क्रिया के जो २ रूप या माध्यम हैं सो २ यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं
 क्योंकि जब तक क्रिया करने का एक ज्ञान न हो जब तक उस ज्ञान में दोष सुख
 कर्मा नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश किये

की निवृत्ति अधर्म में अव्यवृत्ति तथा भ्रम और पुनरायं का संयोग करना है। जो कर्मकाण्ड है वो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकाण्ड है वो क्रिया का फल देने वाला होता है और जीव देना नहीं है कि जो मान मान्य वायु इन्द्रिय और शरीर में, आकाश विना एक स्थान पर भी रह सके क्योंकि जीव अदृश्य एकदेशवर्ती अंतर है इसलिये जो ईश्वर ने प्रकृतिक कर्मों में सब पदार्थों के गुणगुणी का हाग और यजुर्वेद के मंत्रों में सब क्रिया करने प्रसिद्ध की है क्योंकि (मृक्) और (पृत्) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिन में समुपय लोग ईश्वर में एक पृथिवी पर्यंत पदार्थों के हाग में धार्मिक विद्याओं का संग सब दिव्यक्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि भोग विद्या भोग गुण या विद्या का दाग प्रयायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का अर्थ करते इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है। और भी इन शब्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रकृत कर दिया है यही देव लेना आदिये क्योंकि उक्त भूमिका चारों नेद की एक ही है ॥ इस यजुर्वेद में सब आधीस अध्याय हैं उन एक २ अध्याय में कितने २ मन्त्र हैं सो कोष्ठ बना के सब लिख दिया है और चालीसों अध्याय के सब मिथ के २६७ उनीसौ पद्यहर मन्त्र हैं ॥

अध्यायः	मंत्रः	श्लो०	श्लो०	श्लो०	श्लो०	श्लो०	श्लो०
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	६४	३२	१६
३	३३	१३	५	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	२४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२५
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	४४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

परमेष्ठी प्रजापतिर्ह्यपि । सविता देवता । इयं त्वेत्वारुण्य भागं-
स्वराड्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । सर्वस्य प्राज्ञाद्युष्णिक्

हे हमके प्रथम अर्थाय के प्रथम मंत्र में उत्तम २ कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना करनी अथवा चाहिये इस बात का प्रकाश किया है ॥

इये त्र्योज्जै तथा घ्रापधं स्य देयो धः साविता प्रार्थयतु श्रेष्ठत-
मः कर्मणु आ प्यापधमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा
अग्रक्षमा मा वस्तेन ईशतु मापशंसो भुवा अस्मिन् गोपती
स्यात् पृथ्वीर्जमानस्य पशून्पाहि ॥ १ ॥

पदाध्यायमाया:-हे मनुष्य लोगो ! जो (साविता) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला संपूर्ण पेश्वर्षयुक्त (देवः) सब सुखों के देने और सब विधा के प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है। सो (धः) तुम हम और अपने मित्रों के जो (घ्रापधः) सब क्रियाओं के सिद्ध कराने हारे स्पर्श गुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रिया (स्य) हैं उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक प-
शादि कर्मों के लिये (प्रार्थयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। दृग खोग (इये) मंत्र आदि उत्तम उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (ऊर्जै) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (भागं) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (स्या) उक्त गुणवाले और (रवा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देनेहारे आपका सब प्रकार से आशय करते हैं। हे मित्र लोगो तुम भी ऐसे होकर (आप्यापधम) उत्पत्ति को प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदीश्वर! हम लोगों के (इन्द्राय) परम पेश्वर्षय की प्राप्ति के लिये (प्रजावतीः) जिनके बहुत संतान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अग्रक्षमाः) जिन में राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे (अघ्न्याः) जो २ गौ आदि पशु वा उत्पत्ति करने योग्य हैं जो कमी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रिया वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव (प्रार्थयतु) नियत कीजिये। हे जगदीश्वर आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो। तथा आप इस (वजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ घोड़े और हाथी आदि तथा क्षत्री और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्णतः कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्मिक (गोपती) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (पृथ्वीः) बहुतसे उक्त पदार्थ (भुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात्) दों। इमं मंत्र की व्याख्या आशय आशय में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत भाष्य में लिख

रनेवाले कभी नहीं । इस मंत्रमें (कामधुत्तः) इन पक्षों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ ३ ॥

सा विश्वायुरित्त्वस्य ऋषिः स पय । विष्णुर्देवता । अनुष्टुप्
छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

जो पूर्वोक्त मंत्रमें तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मंत्रमें क्रमसे प्रका-
शित किये हैं ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः । इन्द्रस्त एवा
भाग्यं सोमेना तनन्ति विष्णो हव्यधरक्ष ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर आप ! जिस वाणीका धारणा करते हैं
(सा) यह (विश्वायुः) पूर्ण आयुकी देनेवाली (सा) यह जिससे कि (वि-
श्वकर्मा) संपूर्ण क्रियाकांड सिद्ध होता है और (सा) यह (विश्वधायाः) स-
ब जगत् को विद्या और गुणों से धारणा करनेवाली है । पूर्व मंत्र में जो प्रश्न है उस
के उत्तरमें यही तीन प्रकारकी वाणी ग्रहण करनेयोग्य है इसीसे मैं (इन्द्रस्व)
परमेश्वरका (भागम्) सेवा करने योग्य यज्ञकी (सोमेन) विद्यासे सिद्ध किये
रस अथवा भाग्यसे (भातन्ति) अपने हृदयमें दृढ़ करता हूँ तथा हे परमेश्वर !
(हव्यम्) पूर्वोक्तयज्ञसंबन्धि देनेजनेयोग्य द्रव्य वा विज्ञानकी (रक्षक) निरन्तर
रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—तीन प्रकारकी वाणी होती है अर्थात् प्रथम यह जो कि ब्रह्मचर्य में
विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होनेके लिये संवन की जाती है । दूसरी यह जो गृहाभ्रम
में अनेक क्रिया वा उद्योगोंसे सुखोंकी देनेवाली विस्तारसे प्रकट की जाती है ।
और तीसरी यह जो इस संसारमें सब मनुष्यों के शरीर और आत्माके सुखकी दृ-
ष्टि वा ईश्वर आदि पदार्थोंके विज्ञानकी देनेवाली ध्यानस्थ और भ्रम्यास/आभ्रम
में विद्वानोंसे उपदेश की जाती है इन प्रकारकी वाणीके बिना किसीकी सब सुख
नहीं हो सकते । क्योंकि इसीसे पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना
और उपासना करना योग्य है । ईश्वरकी यह आज्ञा है कि जो नियम से क्रिया हुआ
यज्ञ संसारमें रक्षाका हेतु और मेमस्वरयभावसे प्रार्थनाको प्राप्त हुआ ईश्वर विद्वानों
की सर्वथा रक्षा करता है वही सबका भरण दे पद्वतु जो क्रिया में कुशल धार्मिक
तपकारी मनुष्य हैं वेही ईश्वर और धर्मको जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासा-
ने से इस लोक और परलोकके सुखको प्राप्त होते हैं ३ ४ ५

अने प्रमाणानुसार अदि. स पय । सप्रदेशना । साक्षात्प्रमाण तादः ।
 अथवा सारः ।

एक वाक्यका एक पदा है इस विषयका उपदेश भगने प्रथमे किया है ।

अग्नें प्रतपते अगं चरिष्यामि तच्छक्रेणं तन्मे राक्षताम् । इदं
 मन्त्रमन्तान्मन्त्रमन्त्रेभि ॥ ५ ॥

पद्यार्थः-दे (प्रतपते) सत्य भाषण भादि धर्मों के पालन करने और (अग्ने)
 सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर में (अनुतात्) जो ईश्वरसे बलम (सत्यम्) वे-
 दविद्या, प्रत्यक्ष भादि प्रमाण, सुष्टिकम् विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा
 की शुद्धि भादि प्रकारोंमें जो निम्नम, सर्वहित, तथा अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश क-
 रानेहारों में सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (प्रतम्) सत्य बोलना
 सत्य मानना और सत्य करना है उक्तका (उपोमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से प्र-
 दण करने या जानने और उक्तकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं (मे) मेरे (तत्)
 उस सत्य प्रतको भाप (राक्षताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अ-
 दम्) मैं उक्त, सत्य प्रतके नियम करने का (शक्यम्) समर्थ होऊँ और मैं (इदम्)
 इसी प्रत्यक्ष सत्य प्रतके आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूँगा ॥ ५ ॥

भावार्थः-परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से संपन करने योग्य धर्म का उप-
 देश किया है जो कि श्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और स-
 यका हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षमुखका
 हेतु है वही सबको आचरण करने योग्य है और उससे बिरह जो कि अधर्म क-
 दाता है वह किसी को प्रदण करने योग्य धर्म नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र
 उसीका त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये कि हे परम-
 श्वर ! हम लोग वेशों में भाप के प्रकाशित किये सत्य धर्मका ही प्रदण करें तथा हे
 परमात्मन् ! भाप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य
 धर्म का पालन करके अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें ।
 जैसे सत्य प्रतके पालने से भाप प्रतपति हैं वैसेही हम लोग भी भाप की कृपा और
 अपने पुण्यार्थ से यथाशक्ति सत्य प्रतके पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इ-
 स्से अपने सरकर्म के द्वारा सब सुखोंको प्राप्त होकर स-
 वाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों की
 मन्त्रकी व्याख्यामें कहा २

रथ और दूसरा झूठका अर्थात् जो पुरुष पाया। मन और शरीर से सत्यका आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूठका आचरण करनेवाले हैं वे अमर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५ ॥

कस्त्येशस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता आर्षींपत्तिश्छन्दः ।

पंचमः स्वरः ।

किस ने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो भगवें मंत्र में उपदेश किया है ॥

कस्त्यां युनक्ति स त्यां युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा पुः
नक्ति । कर्मणे वां वेपाय वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—(कः) कौन (त्याम्) तुम्हका अच्छी २ क्रियाओं के सेवन करने के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) सो जगदीश्वर (त्वा) तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् या विद्यार्थी होनेको (युनक्ति) आज्ञा देता है (कस्मै) यह किस २ प्रयोजनके लिये (त्वा) मुझ और तुम्हको (युनक्ति) युक्त करता है (तस्मै) पूर्वोक्त सत्य व्रतके आचरणरूप यहके लिये (त्वा) धर्मके प्रचार करने में उद्योगीको (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) ब्रह्मा ईश्वर (कर्मणे) उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये (वाम्) कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है (वेपाय) शुभ गुणों और विद्याओं में व्याप्तिके लिये (वाम्) विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगोंको उपदेश करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में ब्रह्म और उत्तरसे ईश्वर जीवोंके लिये उपदेश करता है जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वरही पुरुषार्थ और अच्छी २ क्रियाओं के करने की तुम्हारे लिये वेदके द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्भाविरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्व व्यापक जगदीश्वर । फिर वह पूछे कि यह हमको किस २ प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है । उस का उत्तर देवे कि मुझ और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्यविद्या और धर्म के प्रचार के लिये मैं और आप दोनों को कौन २ काम करने के लिये यह ईश्वर उपदेश करता है । इसका परस्पर उत्तर देवे कि यश करने के लिये । फिर वह कौन २ पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है । इसका उत्तर देवे कि सत्य विद्याओं की

प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये । मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये
 प्रथमतः एक तो अत्यंत पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्ती राज्यल-
 क्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़के उनका प्र-
 चार करना चाहिये । किसी मनुष्य को पुरुषार्थको छोड़ के बालस्य में कभी नहीं
 रटना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एष । यज्ञो देवता । प्राजापत्या जगती उन्द्रः ।
 निषादः स्ररः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का
 निषेध करे इस बात का उपदेश बगल मन्त्र में किया है ॥

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयो निष्टं रक्षः निष्टं अरां-
 तयः । उर्वृन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

पदार्थः—सुभ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्ष.) दुष्ट गुण और दुष्ट
 स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम) निश्चय करके निर्मूल करके तथा (अरांतयः) जी
 राति भयोत् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु है उनका (प्रत्युष्टाः)
 प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) या दुष्ट स्वभाव दुष्ट गुण विद्या विरोधी स्वार्थी मनुष्य और
 (निष्टम) (अरांतयः) ऊँच युक्त होके विद्या का प्रदण वा दान से रहित दुष्ट प्रा-
 णियों को (निष्टताः) निरंतर सेतापयुक्त करे । इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्)
 सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उद्य) अपार सुख को (अन्वेमि)
 प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इंद्रवर आशा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़कर
 विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि बर्गों के व्यवहारों से
 अलग करना चाहिये तथा उन को पशु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य
 आदि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नानाप्रकार के सुखों से युक्त करना
 चाहिये ॥ ७ ॥

धूरिसीत्यस्य ऋषिः स एष । अग्निदेवता । अतिजगती उन्द्रः । निषादः स्ररः ॥

सभके धारण करने वाले इंद्रवर और पदार्थ विद्या की सिद्धि हेतु भौतिक
 अग्नि का उपदेश बगल मन्त्र में किया है ॥

धूरंसि धुर्वं धूर्वन्तं धूर्वतं योऽस्मान्धूर्वन्ति तं धूर्धं यं धुवं धूर्वां-
 मः । देवानामसि वह्नितमं सरिनतमं पथितमं जुष्टं तमं दे० नं-
 मम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! भाप (भूः) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करने वाले (मसि) हैं इस कारण हम लोग इष्ट बुद्धि से (देवानाम्) विद्वानों की विद्यामोक्ष और सुखमें (बह्निमम्) यथायोग्य पहुंचाने (सस्मितमम्) भातिशय करके शुद्ध करने (पमितमम्) सब विद्या और गानन्द से संसार को पूर्ण करने (जुष्टमम्) धार्मिक भक्त जनों को संघा करने योग्य और (देवहूतमम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य भाप को नित्य उपासना करते हैं (यः) जो कोई छड़ी छली कपटी पापी कामक्रोधादियुक्त मनुष्य (अस्मान्) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करने वाले हम लोगों को (भूर्वति) दुःख देता है और (यम्) जिस पापी जन को (वयम्) हम लोग (भूर्वामः) दुःख देते हैं (तम्) उस को भाप (भूर्व) शिष्टा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी भाप सदैव (भूर्व) ताड़ना कीजिये ॥ हे शिल्प विद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि (भूः) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला (मसि) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (बह्निमम्) सुख पहुंचाने (सस्मितमम्) शुद्धि होने का हेतु (पमितमम्) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (जुष्टमम्) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (देवहूतमम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है उस को (वयम्) हम लोग (भूर्वामः) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो (अस्मान्) हम लोगों को (भूर्वति) पीड़ा करता है (तम्) उस (भूर्वन्तम्) पीड़ा करने वाले अग्नि को (भूर्व) यानादिकों में युक्त कर तथा हे धीर पुरुष ! तू (यः) जो दुष्ट द्राघु (अस्मान्) हम लोगों को (भूर्वति) दुःख देता है (तम्) उस को (भूर्व) नष्ट कर । तथा जो कोई चोर भादि है उस का भी (भूर्व) नाश कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उनके किये हुए पापों के अनुकूल ढंड देकर दुःख युक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देके उनकी रक्षा करता है वही सब सुखों की प्राप्ति आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देनेवाला विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं । तथा वह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिष्टाविद्याओं की क्रियाओं का सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी भादि पदार्थों में भवने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से धेष्ट है ॥ क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई मार्गेय भादि उत्तम शस्त्रास्त्र

विद्या से शक्तियों का प्रकाश होता है इसमें यह भी विद्या की शक्तियों से होम और विनाश आदि के विनाश करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥

अनुत्तमसौम्यस्य ऋषिः स एव । विशुद्धयता । निष्कृष्ट प्रियुष् छन्दः । धैरतः स्वरः ॥
 मय यजमान और मौनिक अग्नि के काम का उपदेश समझे मन्त्र में किया है ॥

अनुत्तममग्नि दधिधानं दृष्टुं हंस्य माह्वामा ते पृजपतिर्होषित् ।

विष्णुं श्रवा क्रमतामुरु याम्नायापंहन्तु रक्षो वष्टन्तुं पञ्च ॥ ९ ॥

पदार्थः-दे अग्निम् मनुष्य तुम जो अग्नि से यदा हुआ (अनुत्तम) कुटिलता रहित (दधिधानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (हंस्य) यज्ञात्मी किन्तु किसी समय में (मा ह्वाः) उसका त्याग मत करो तथा यह (ते) तुम्हारा (यजपतिः) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को न छोड़े । इस प्रकार तुम लोग (पंच) एक-ता ऊपर को घेरा होना दूसरा नीचे को तीसरा घेरा से अपने भद्रों को संकोचना चौथा उनका कैयाना पांचमा खलना फिरना भादि इन पांच प्रकार के कामों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उस को अग्नि में (वष्टन्ताम्) हवन करो (श्वा) यह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उसको (विष्णुः) जो व्यापनशील मूर्त्य है यह (भवदत्तम्) (रक्षः) दुर्गंधादि दोषों का नाश करता हुआ (उद्यवाताय) अत्यन्त वायु की शुद्धि या सुख की वृद्धि के लिये (क्रमताम्) चढ़ा देता है ॥ ६ ॥

माथार्थः-जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़ कर शिक्षा देने वाले के शिष्य होके विद्वान् ज्ञान और प्रिया से मौनिक अग्नि की विद्या को जान कर उस का अनुष्ठान करते हैं तभी शिष्यविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य और दुःखों से छुटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आशा ही है, जिस का पालन करना सब को उचित है ॥ ९ ॥

देवस्य श्रेयस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । सुरिगृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
 उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है हम विषय का उपदेश
 भगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्मातृभ्यां पूष्यो हस्ताभ्याम् ।

अग्नये जुष्टं दृष्ट्वाऽग्नीषोमाभ्यां जुष्टं इगृह्णामि ॥ १० ॥

पदार्थः-मैं (सवितुः) मय जगत के उत्पन्न कर्ता सकल ऐश्वर्य के दाता तथा (देवस्य) संसार का प्रकाश करने वाले और सब सुखदायक परमेश्वर के (प्रसवे)

सय जगद् व्याप्त सयका माक्षी भयका मित्र सय सुराँका यद्वानेहारा उषामाके योग्य और सयं शक्तिमान् जानकर सयका उपकार विविध विद्याकी वृद्धि धर्ममें प्रवृत्ति अधर्ममें निवृत्ति क्रियाकुशलताकी सिद्धि और यज्ञक्रियाके अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो इस मंत्रमें महोत्तरं भ्रांतिमें (भूमिबिम्बेयम्) यद् पद् (यथा प्रकथन) इस धातुका दर्शन अर्थमें माना है यद् धातुके अर्थसेही विद्वद् होने पर के अशुद्ध है ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य प्रहापिः स एव । अन्नविहारी देवते । खराद्
त्रिष्टुप्छन्दः । धैयतः खरः ॥

अग्निमें जिस द्रव्यका होम किया जाता है यद् मेघमंढलकां प्राप्त होके किस प्रकारका होकर क्या गुण करता है इस बातका उपदेश इन्द्रवरने अगले मंत्रमें किया है।

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्थः प्रसन्न उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवि-
त्रेण सूर्यस्य रुदिमभिः । देवीरापो अग्नेगुवो अग्नेपुवोऽग्रं इमम-
था यज्ञज्ञयताग्रं यज्ञपतिं सुधातुं यज्ञपतिं देवगुर्भम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो! तुम जैसे (सवितुः) परमेश्वरके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अच्छिद्रेण) निर्दोष और (पवित्रेण) पवित्र करने का हेतु जो (सूर्यस्य) सूर्यकी (रुदिमभिः) किरणों हैं उन से (वैष्णव्यौ) यज्ञसंबंधी प्राण और अपानकी गति (पवित्रे) पदार्थोंके भी पवित्र करने में हेतु (स्थः) हों और जैसे उक्त सूर्यकी किरणों से (अग्नेगुवः) आगे समुद्र या अन्तरिक्षमें चलें (अग्नेपुवः) प्रथम पृथिवी में रहनेवाली सोम औषधिके सेवन करने तथा (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (आपः) जल पवित्र हों वैसे (नयत) पवित्र पदार्थोंका होम अग्निमें करो वैसेही मैं भी (अथ) आजके दिन (इमम्) इस (यज्ञम्) पूर्वोक्त क्रिया संबंधी यज्ञको प्राप्त करके (अग्ने) जो प्रथम (सुधातुम्) अष्टमन आदि इन्द्रिय और सूर्यज आदि धनवाला (यज्ञपतिम्) यज्ञका नियमसे पालक तथा (देवगुर्भम्) विद्वान् और अष्टगुणोंको प्राप्त होने या उनको प्राप्त कराने (यज्ञपतिम्) यज्ञकी इच्छा करनेवाला मनुष्य है उसको (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें लुप्तोपमालंकार है—जो पदार्थ संयोगसे विकारको प्राप्त होते हैं वे अग्निके निमित्तसे अति सूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायुके बीच रहा करते हैं । कल शब्द भी होजाते हैं परन्तु जैसी यज्ञके अनुष्ठानसे वायु और वृष्टि जल-

की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसे दूसरे उपायसे कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानोंको चाहिये कि होमक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा शिल्प-विद्यासे अच्छी अच्छी सवारी यत्नाके अनेक प्रकारके साथ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्धि करके औरोंकी भी कामना सिद्धि करें जो जल इन पृथिवीमें अन्तरिक्षको चढ़कर वहाँमें लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थोंको प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मंत्रमें रहनेवाले हैं वे दूसरे कहते हैं वैसे शतपथ ब्राह्मण में मेघका वृत्र तथा सूर्यका इन्द्र नामसे वर्णन करके मुख्यरूप कथाके प्रकाशसे मेघविद्या दिखलाई है ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रनूर्यं युष्मिन्द्रंमघृणीध्वं वृत्रनूर्यं प्रो-
यमः स्वरः । अग्रये स्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता । विराड्गोपत्री छन्दः ।
पद्भजः स्वरः । देव्याय कर्मण्य इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । सुरिगु-
ण्यिक् छन्दः । ऋगभः स्वरः ॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं या इन्द्र और वृत्रका युद्ध कैसे होता है सो अगले मंत्र में कहा गया है ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रनूर्यं युष्मिन्द्रंमघृणीध्वं वृत्रनूर्यं प्रो-
क्षिताः स्य । अग्रये त्या जुष्टमोक्षाग्नीषोमाभ्यां त्या जुष्ट-
मोक्षांमि । देव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्योऽशुद्धाः प-
राजघ्नुरिदं वृस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—पह (इन्द्रः) सूर्यलोका (वृत्रनूर्यं) मेघके पथ के लिये (युष्माः)
पृथोक जलों को (अघृणीत) स्वीकार करता है जैसे जल (इन्द्रम्) वायुको (अ-
घृणीष्यम्) स्वीकार करते हैं वैसेही (युष्म) हे मनुष्यो तुम लोग उन, जल कोप-
धी रसों को युद्ध करने के लिये (वृत्रनूर्यं) मेघके क्षीप्रवेगमें (प्रोक्षिताः) सं-
सारी पदार्थों के भीचनेवाले जलों को (अघृणीष्यम्) स्वीकार करो और जैसे वे ज-
ल युद्ध (स्य) होते हैं वैसे तुम भी युद्ध हो । इसलिये मैं यज्ञका अनुष्ठान करने
वाला (देव्याय) सबको युद्ध करनेवाले (कर्मणे) उत्सेपण—उछालना । अघृ-
ण-नीचे फेंकना । आहुंघन-सिमेटना । प्रसारण-हैलाना । गमन-चलना आदि
पांच प्रकार के कर्म हैं उनके और (देवयज्यायै) विद्वान् वा धेष्ट गुणों की दिव्य
क्रिया के लिये । तथा (अग्रये) भौतिक अग्नि से सुख के लिये (जुष्टम्) अच्छी
क्रियाओं से संवत्न करने योग्य (त्या) उस यज्ञको (प्रोक्षामि) करता हूँ तथा ।
(अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोमसे वर्षाके निमित्त (जुष्टम्) प्रति देनेवाला और

प्रीति से सेवने योग्य (त्वा) उक्त यज्ञको (प्रोक्षामि) मेघमंडल में पहुंचाता हूँ। इस प्रकार यज्ञसे शुद्ध किये हुये जल (शुन्धध्वम्) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं (यत्) जिस कारण यज्ञकी शुद्धिसे (वः) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष (पराजघ्नुः) निवृत्त हों (तत्) उन जलोंकी शुद्धिको मैं (शुन्धामि) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूँ। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है। हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो! (यत्) जिस कारण (इन्द्रः) सूर्यलोक (वृत्रतूर्यं) मेघके यधके निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जल और (इन्द्रम्) पवन को (मृश्यात) स्त्रीकार करता है तथा जिस कारण सूर्यने (वृत्रतूर्यं) मेघकी शीघ्रता के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जलोंको (प्रोक्षिताः) पदार्थ सींचनेवाले (स्थ) किये हैं इससे (यूयम्) तुम (त्वा) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके (नयत) सिद्धि को प्राप्त करो इस प्रकार हम सब लोग (देव्याय) श्रेष्ठ काम वा (देवयज्यायं) विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओंके तथा (भग्नये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीति करानेवाले यज्ञको (प्रोक्षामि) सेवन करें तथा (अग्नीषोमाश्रयाम्) अग्नि और सोमसे प्रकाशित होनेवाले (त्वा) उक्त यज्ञको (प्रोक्षामि) मेघमंडल में पहुंचाये हे मनुष्यो! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को (शुन्धध्वम्) शुद्ध करो (यत्) और जिससे (वः) तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं वे सदा (पराजघ्नुः) निवृत्त होते रहें। वैसेही मैं वेदका प्रकाश करनेवाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार की (शुन्धामि) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ ॥ १३ ॥

भाषार्थः—परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य को इस लिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश करके उनके रस और जलको छिन्न भिन्न कर दें जिससे वे वायुमंडलमें जाकर फिर वहां से पृथिवीपर आके सबको सुख और शुद्धि करनेवाले हों। इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगंधित पदार्थों के होम से वायु और धृष्टि जलकी शुद्धिद्वारा श्रेष्ठ सुखदान के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये जिससे इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उसमें शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें इसी प्रयोजनके लिये मैं ईश्वर तुम सबको उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूँ कि हे मनुष्यो! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कामोंको नित्य किया करो तथा उक्त रीतिसे वायु अग्नि और जल के गुणों को शिद्व क्रिया में युक्त कर के अनेक यान आदि यंत्र कला कला कर अपने से सदैव सुपयुक्त हो ॥ १३ ॥

शर्मास्यस्य पूर्वोक्तं ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराट्, जगती छन्दः । निपाद्, स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किम् प्रकार का है और किम् प्रकार से करना चाहिये

इन विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

शर्मास्यस्यभूतधे रक्षोऽस्यभूता अरांतपोऽदित्यास्त्यगमि प्रति
त्वादेतिषेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावांसि पृथुयुध्नः प्रति
त्वादित्यास्त्यगमेषु ॥ १४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम्हारा घर (शर्म) सुख देने वाला (असि) हो उस घर से (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी (अयूताम्) भन्ग करो और (अरातयः) वान आदि घर्मरहित शत्रु (अयूताः) दूर हों उक्त गृह (अदित्या) पृथिवी की (त्वद्) त्वचा के तुल्य (असि) हों (अदिति) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को (प्रतिषेत्तु) सप मनुष्य जाने और प्राप्त हों तथा जो (वानस्पत्यः) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (पृथुयुध्नः) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा (प्राया) जल का ग्रहण करनेवाला (अद्रिः) मेघ (असि) है उस औरै इस विद्या को (अदितिः) जगदीश्वर तुम्हारे लिये (येत्तु) दृष्टा करके जानाये । विद्वान् पुरुष भी (अदित्याः) पृथिवी की (त्वद्) त्वचा के समान (त्वा) उक्त घर की रचना को (प्रतिषेत्तु) जानें ॥ १४ ॥

भाष्यार्थः—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अयकाश में सप ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बनाके उस में सुखपूर्वक वास करो । तथा उस में रहनेवाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोगों को निवृत्त करो फिर उन में सप पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान करके नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करने चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धिद्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निघृज्जगती छन्दः । निपाद्, स्वरः ।

हविष्कृदिति याजुषी पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किम् प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनन्देवधीतये त्या गृह्णामि गृह्णामा-
वासि वानस्पत्यः स इदन्देवेष्वो हविः शंसीष्य सुशामि शमी-
प्य । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १४ ॥

पदार्थ—मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये (पृहद्रायाति) षडे २ पत्थर (अति) है और (यान्मयः) काष्ठ के मूल अदि पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान् या दिव्य गुणों के लिये उस यज्ञ को (देववांते) अंष्ट्र गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् या विविध भोगों की प्राप्ति के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे विद्वान् मनुष्य तुम (देवेभ्यः) विद्वानों के सुख के लिये (सुशानि) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करनेवाले (हविः) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (शर्मोष्य)(श-मोष्य) अत्यन्त शुद्ध करो। जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते या पढ़ते हैं उन्हीं को यह (हविष्कृत) हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करनेवाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध बाणी है सो प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उस का फल जान के शुद्ध और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब यह गुग्गुलि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करनेवाला उत्तम मनुष्य है ऐसा बारंबार कह कर सत्कार करें ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसीत्य ऋषिः स एव । वायुदेवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
 देवो यः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । त्वराड्, गायत्री छन्दः ।
 पङ्कजः स्वरः ॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है।
 कुक्कुटोमि मधुजिह्व इषमूर्जमावदु त्वया उप५ संघात५ संघा-
 तं जेषम वर्पवृद्धममि प्रति त्वा वर्पवृद्धं वेत्तु परांपूतं रक्षः परा-
 पूता अरांतवोऽपंहतं रक्षो वागुर्वी विधिंनक्तु देवो वः सविता
 हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णातवच्छिद्रेण पाणिनां ॥ १६ ॥

पदार्थः—जिस मारण यह यज्ञ (मधुजिह्वः) जिस में मधुर गुणयुक्त बाणी हो। तथा (कुक्कुटः) चौर वा शत्रुओं का विनाश करने वाला (असि) है और (इषम) अन्न आदि पदार्थ वा (ऊर्जम) मिठा आदि घल और उत्तम से उत्तम रस को देता है इसो से उस का अनुष्ठान सदा करना चाहिये। हे विद्वान् लोगो तुम उक्त गुणों को देने

वाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसका अनुष्ठान और हम लोगों के प्रति उस के गुणों का (आद्य) उपदेश करो जिस से (यजम्) हम लोग (त्वया) तुम्हारे साथ (संघातम्, संघातम्) जिनमें उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को बर्तार आ (जेष्य) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जानने वाले (असि) हैं इसी से सब मनुष्य (पर्यवृद्धम्) शत्रु और अस्त्रविद्या को बर्पा को बढ़ाने वाले (त्वः) आप तथा (पर्यवृद्धम्) वृष्टि के बढ़ाने वाले उक्त यज्ञ को (प्रतिवेत्तु) जानें इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को (परापूतम्) पवित्रता आदि गुणों को छोड़ने वाले (रक्षः) दुष्ट मनुष्य तथा (परापूतः) शुद्धि को छोड़ने वाले और (अरातयः) दान आदि धर्म से रहित शत्रु जन तथा (रक्षः) डाकुओं का जैसे (अपहतम्) नाश हो सके वैसे प्रयत्न सदा करना चाहिये जैसे यह (हिरण्यपाणिः) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो (वायु) पवन है । यह (अच्छिद्रेण) एक रस (पाणिना) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को (प्रतिगृभ्णानु) ग्रहण करता है (हिरण्यपाणिः) या जैसे किरण है हाथ जिस के यह (हिरण्यपाणिः) किरण व्यवहार से (सविता) वृष्टि या प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (देवः) प्रकाशमय सूर्यलोक (य) उन पदार्थों को (विविनक्तु) अलग २ अर्थात् परमाणुरूप करता है जैसे ही परमेश्वर या विद्वान् पुरुष (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) अपने उपदेश रूप व्यवहार से सब विद्याओं को (विविनक्तु) प्रकाश करें वैसे ही एषा कर के ज्ञान के माय (यः) तुम को अत्यन्त आनन्द करने के लिये (प्रतिगृभ्णानु) ग्रहण करने दे ॥ १६ ॥

भा.वार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ वा अनुष्ठान संग्राम में शत्रुओं का पराजय जस्टे २ गुणों का ज्ञान विद्वानों को सेवा दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोगों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने हाथ से उन्नत भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य और उनका धारण करने वाला वायु है ऐसा ज्ञान और श्वर को उपासना तथा विद्वानों का सममान करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब गुणों को उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करने का हिये ॥१६॥

धृष्टिरस्यपांसुने अग्निमामाद् जहि निष्कृत्वाद्दं संधा देव ॥

अप अग्निशब्द से कितन कितन का ग्रहण किया जाता है इम से क्या क्या

पास्यं होगा है इम विषय का उपदेश आगे मन्त्र में किया है ॥

धृष्टिरस्यपांसुने अग्निमामाद् जहि निष्कृत्वाद्दं संधा देव-

यजं बह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृष्ट्व ब्रह्मयनिं तथा क्षत्रवनिं सजात-
वन्पुपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धृष्टिः) प्रकृत अर्थात् अत्यन्त निर्भय (असि) हैं इस कारण (निष्कव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप कराने वाले (अग्निम्) भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिजुली रूप अग्नि को आप (सेध) सिद्ध कीजिये इस प्रकार हम लोगों के भंगल अर्थात् उत्तम २ सुख होने के लिये शाखों की शिक्षा कर के दुःखों को (अपजहि) दूर कीजिये और आनन्द को (आवह) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर आप (ध्रुवम्) निश्चल सुख देने वाले (असि) हैं इस से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यों को (दृष्ट्व) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये । हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इस से मैं (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मयनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख या दुःख व्यवहार के देने वाले (त्वा) आप को (उपदधामि) हृदय में स्थापन करता हूँ । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । तथा हे विद्वान् यजमान जिस कारण यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (धृष्टिः) अति तीक्ष्ण (असि) है तथा निष्कृष्ट पदार्थों को छोड़ कर उत्तम पदार्थों से (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (आ वह) प्राप्त करता है इस से तुम (निष्कव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को (आवह) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शाखों की उत्तम २ शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश (सेध) करो तथा उस के अनुष्ठान में जो दोष हों उन को (अपजहि) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सूर्यरूप से (ध्रुवम्) निश्चल (असि) है इसी कारण यह आकर्षण शक्ति से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उस में रहने वाले प्राणियों को (दृष्ट्व) दृष्ट करता है इसी से मैं उस (ब्रह्मयनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्रिय वा जौषमात्र के सुखदुःख को अलग २ कराने वाले भौतिक अग्नि को (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये हवन करने की वेदों वा विमान आदि यानों में (उपदधामि) स्थापन करता हूँ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में सूर्य के बालकार हैं और सूर्यशक्तिनाम् ईश्वरने यह भौतिक अग्नि

जान अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने वाला बनाया है इस कारण भस्म रूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है जिन में कि मनुष्य कच्चे २ पदार्थों को पाता कर पाते हैं तथा जिन कर के सब प्राणियों को खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है और जिस कर के मनुष्यलोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं वह कृत्वात् अग्नि कहाता है और जिस से दिव्य गुणों को प्राप्त करनेवाला विद्युत् यन्त्र है तथा जिस से पृथिवी का धारण धीरे आकारण करनेवाला सूर्य बना है और जिसे वेदविद्याके जाननेवाले ब्राह्मण या धनुर्वेदके जाननेवाले क्षत्रिय या सब प्राणोंमात्र संयन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्तमान परमेश्वर है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो प्रियाओं को सिरिके लिये भौतिक अग्नि है यह भी यथायोग्य कार्योंद्वारा सेवा करने के योग्य है ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स पयः । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः ।
 ध्रुवमः स्वरः । धर्ममसांति मण्यस्यार्च्या त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । वि-
 भ्याम्य इत्युत्तरस्याचं पंक्तिछन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अग्निशब्द से अगले मंत्रमें फिर दोनों अर्थों का प्रकाश किया है।

अग्ने ब्रह्मं गृभ्णीष्व ध्रुवमस्यन्तारिक्षन्दह ब्रह्मवनि तथा क्ष-
 त्रवनि सजातवन्पुपं दधामि भ्रातृवपस्य वधापं । धर्ममसि दिव-
 न्दृष्टं ब्रह्मवनि तथा क्षत्रवनि सजातवन्पुपं दधामि भ्रातृवपस्य व-
 धापं । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चित्तस्थोर्ध्वचितो भृग्णा-
 मद्भिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर! आप (ध्रुवम्) सबके धारण करनेवाले (अग्नि) हैं इससे मेरी (ब्रह्म) वेदमंत्रोंसे की हुई स्तुतिकी (गृभ्णीष्व) ग्रहण कीजिये तथा (अन्तरिक्षम्) आत्मामें स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको (दृष्टं) बड़ाइये मैं (भ्रातृव्य-स्य) शत्रुओंके (वधापं) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) ,सब मनुष्योंके सुखके निमित्त वेदके शास्त्रशास्त्रद्वारा विभाग करनेवाले ब्राह्मण तथा (क्षत्रवनि) राजधर्म के प्रकाश करने हारे (सजातवनि) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्त्तिमान् पदार्थ हैं इन प्राणियोंके लिये अलग अलग प्रकाश करनेवाले (त्वा) आपकी (उपदधामि) ,हृदयके बीचमें धारण करता हूँ हे सब के धारण करनेवाले परमेश्वर जो आप (धर्मम्) लोकोंके धारण करनेवाले हैं इससे रूपा करके हम लोगों में (दिवम्) अत्युत्तम ज्ञानको (दृष्टं) बड़ाइये और मैं

(भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (यथाय) विनाश के लिये (ब्रह्मयनि) (क्षत्रयनि) (स-
जातयनि) उक्त वेद राज्य या परस्पर समान विद्या या राज्यादि व्यवहारों को यथा-
योग्य विभाग करनेवाले (त्वा) आपको (उपदधामि) चारोंपार अपने हृदय में धारण
करता हूँ तथा मैं (त्वा) आपको सर्वव्यापक जानकर (विद्याम्यः) सब (आशाम्यः)
दिशाओं से सुख होनेके निमित्त चारोंपार (उपदधामि) अपने मन में धारण करता हूँ
हे मनुष्यो तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर (चितः) विज्ञानी तथा
(ऊर्ध्वचितः) उत्तम ज्ञानवाले पुरुषों को प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरते तथा
(भृगूणाम्) जिनके विद्या आदि गुणोंको प्राप्त होते हैं ऐसे (अंगिरसाम्) प्राणों के
(तपसा) प्रभावसे (तप्यध्वम्) तपो और तथाओ यह इस मंत्रका प्रथम अर्थ हुआ।
अब दूसरा भी कहते हैं हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष जिस (अग्ने) भौतिक अग्नि से
(धरणम्) सबका धारण करनेवाला तेज (ब्रह्म) वेद और (अन्तरिक्षम्) आकाशमें
रहनेवाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त कियेजाते हैं (त्वा) उसको तुम होम या शिल्प-
विद्याकी सिद्धिके लिये (गृभ्णोष्य) ग्रहण करो (वंह) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से
वढ़ाओ और मैं भी (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओंके (यथाय) विनाशके लिये (त्वा) उस
(ब्रह्मयनि) (क्षत्रयनि) (सजातयनि) संसारी मूर्त्तमान् पदार्थोंके प्रकाश करने
या राजगुणों के दृष्टांतरूप से प्रकाश करानेवाले भौतिक अग्निको शिल्पविद्या आदि
व्यवहारों में (उपदधामि) स्थापन करता हूँ ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे
अनेक सुखों को धारण करता है इसी प्रकार सब लोगों का (धर्मम्) धारण करनेवा-
ला वायु (असि) है तथा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य्य लोकको (वंह) दृढ करता है
हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (भ्रातृव्यस्य) अपने शत्रुओं के (यथाय) विनाश के लिये
(ब्रह्मयनि) (क्षत्रयनि) (सजातयनि) वेद राज्य या परस्पर समान उत्तम २ शिल्प-
विद्याओं को यथायोग्य कार्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्निको (उपदधामि)
स्थापन करता हूँ वैसे तुम भी उत्तम २ क्रियाओंमें युक्त करके विद्याके चलसे (वंह)
उस को वढ़ाओ। हे विद्या चाहनेवाले पुरुष ! जो पवन पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकोंको
धारण कर रहा है वैसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्याको सिद्धिके लिये
यथायोग्य कार्यों में लगाकर उनकी विद्यासे (वंह) वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने
शत्रुओंके विनाशके लिये (ब्रह्मयनि) (क्षत्रयनि) (सजातयनि) अग्निके उक्त गुणों
के समान वायुको शिल्पविद्या आदि व्यवहारोंमें (उपदधामि) संयुक्त करते हैं वैसेही
तुम भी अपने अनेक दुःखोंके विनाशके लिये उसको यथायोग्य कार्यों में संयुक्त करो
हे मनुष्यो जैसे मैं वायुविद्याका जाननेवाला (त्वा) उस अग्नि या वायुको (विद्याम्यः) सब

(अशास्त्र्यः) दिशाओंमें सुग होनेके लिये यथायोग्य शिल्पज्योतारों में (उपद्रवामि) धारण करना ह' जैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या या होम करने के लिये (चिः) (ऊर्ध्वचिः) पदार्थों के भरे हुए पात्र या मयारियोंमें स्थापन किये हुए कलायन्त्रोंको (भृगूणाम्) जिनमें पदार्थों को पकाते हैं उन अंगारोंके (तपसा) तापमें (तप्यन्त्यम्) उक्त पदार्थों को तपानो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—इम मन्त्र में श्लेशालङ्कार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो तुम विद्वानों को उन्नति तथा भूषण का नाश या सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य पढ़ने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि या सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञ सिद्धि या विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन को सिद्ध करके दुःखों को दूर करके शत्रुओं को जीतो ॥ १८ ॥

शर्मोशीत्यस्य ऋषिः स एष । अग्निदेवता निवृद्द्राक्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्यरः ।
इसके अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इस के अंग अगले
मंत्र में उपदेश किये हैं ॥

शर्मोऽस्यर्षभूत् रक्षोऽर्षभूता अरातपोदित्वास्तवर्गसि प्रति त्वा-
दितिर्षेत्तु । धिपणांसि पर्यती प्रति त्वादित्वास्तवर्ग्येत्तु दिवस्कं-
म्भनीरंसि धिपणांसि पार्श्वेपी प्रति त्वा पर्यती षेत्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो यज्ञ (शर्म) सुख का देने वाला (असि) है और (अदितिः) नाश रहित है तथा जिस से (रक्षः) दुःख और दुष्ट स्वभाव युक्त मनुष्य (अर्षभूतम्) विनाश को प्राप्त तथा (अरातयः) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष (अर्षभूताः) नष्ट (असि) होते हैं और जो (अदित्या) अन्तरिक्ष या पृथिवी के (त्वक्) त्वचा के समान (असि) है (त्वा) उसे (वेत्तु) जानो और जिस विद्या रूप उक्त यज्ञ से (पर्यती) बहुत ज्ञान वाली (दिवः) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों की (स्कम्भनीः) रोकनेवाली तथा (पार्श्वेपी) भेद की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य (धिपणा) वेद वाणी (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) शरीर के तुल्य विस्तारको प्राप्त होता है (त्वा) उसे (प्रतिवेत्तु) यथायत् जानो और जिस सत्संगतिरूप यज्ञसे (पर्यती) उत्तमर प्रह्व ज्ञान प्राप्त करनेवाली (धिपणा) की अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि प्राप्त होती है (त्वा) उसे भी (प्रतिवेत्तु) जानो ॥ १९ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को अग्ने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके

उनसे यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा युद्धि के बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मनसे सिद्ध किया हुआ सूर्यके प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥ ११ ॥

धान्यमर्सात्यस्य ऋषिः स ऐष । सविता देवता । विराड् प्राज्ञो प्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजनके लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो आगे मंत्रमें प्रकाश किया है ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायं त्वोदानायं त्वा ह्यानायं
वा । दीर्घामनुप्रसितिमार्गुपेधान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः
प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुपे त्वा महीनां पयोसि ॥२०॥

पदार्थः—जो (धान्यम्) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करने तथा चावल आदि अन्न या (पयः) जल (असि) हं वह (देवान्) विद्वान् वा जीय तथा इन्द्रियों को (धिनुहि) वृत्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये वा (त्वा) उसे (उदानाय) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (त्वा) उसे (व्यानाय) सब शुभ गुण शुभ कर्म वा पिघा के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा (दीर्घाम्) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (आयुपे) पूर्ण आयु के भोगने के लिये (धाम्) धारण करता हूँ जैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य धारण करो जैसे हम विद्वान् लोगों को (हिरण्यपाणिः) जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करने द्वारा (सविता) सब ऐश्वर्य का दाता ईश्वर (अच्छिद्रेण) अपनी व्याप्ति या उत्तम व्यवहार से (महीनाम्) पाणियों के प्रत्यक्ष ज्ञान को (प्रत्यनुगृभ्णातु) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है जैसे ही हम भी उस ईश्वर को (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे (हिरण्यपाणिः) पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (सविता) सूर्य को (महीनाम्) लोकलोकान्तरीकी पृथिवियों में नेत्रव्यवहार के लिये (अच्छिद्रेण) निरन्तर तीव्रप्रकार से (पयः) जल को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करके अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है जैसे ही हम लोग भी उसे (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) व्यवहार से (महीनाम्) पृथिवी के (चक्षुपे) पदार्थों को दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जो यज्ञ से शुद्ध किये हुये अन्न जल आदि पदार्थ हैं वे सब को शुद्धि बल पराक्रम और हृद् दीर्घ आयु के बढ़ाने

के लिये समर्प्य होने हैं इस में सब मनुष्यों को यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयों अर्थात् चारों वेद की वाणी है उस के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुण्य-पार्य करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करना चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर वा सूर्य लोक संसार आत्मा और वेदों में सब ज्ञान तथा मूर्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये संपूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर कराके नित्य प्रकाशित करना चाहिये और उन से हम को पृथिवी का चक्रवर्ति राज्य आदि अनेक उत्तम २ सुखों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥ २० ॥

देवस्य त्वेत्यस्यसिं स पृथ । यज्ञो देवता सर्वस्य । आद्री संवपामोत्यन्तस्य गायत्री
छन्दः । षट्जः स्वरः । मन्यस्य विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

जिन ओपधियों से अन्न बनता है वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्यं त्या सवितुः प्रंसुवेऽश्विनोर्वाहृभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
संवपामि संमाप ओपधीभिः संमोपघयो रसेन सथे रेवतीज्ज-
गतीभिः पृच्यन्ता संमधुंमतीर्मधुंमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य के देनेवाले (देवस्य) पर-
मेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में वा सूर्य्य लोक के प्रकाश में
(अश्विनोः) सूर्य्य और भूमि के तेज की (वाहृभ्याम्) दृढ़ता से (पूष्णः) पुष्टि क-
रने वाले वायु के (हस्ताभ्याम्) प्राण और अपान से (त्या) पूर्वक तीन प्रकार
के यज्ञ का (संवपामि) विस्तार करता हूँ वैसे ही तुम भी उस को विस्तार से सिद्ध
करो। अथवा जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसारमें वा सूर्य्यके प्रकाशमें (ओपधीभिः)
यवादि ओपधियों से (आपः) जल और (ओपघयः) ओपधी (रसेन) आनन्दका-
रक रस में तथा (जगतीभिः) उत्तम ओपधियों से (रेवत्यः) उत्तम जल और जैसे
(मधुमतीभिः) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओपधियों से (मधुमतीः) अत्यन्त उत्तम रस-
रूप जल ये सब मिलकर वृद्धियुक्त होते हैं वैसे हम सब लोगों को भी ओपधियों से
जल और ओपधि उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओपधियों से उत्तम रसयुक्त जल
तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओपधियों से प्रशंसनीय रसरूप जल इन सबों को पचा-

योग्य परस्पर (संपृच्यन्ताम्) युक्ति से वैद्यक या शिष्य को शास्त्ररति से मेल करना चाहिये ॥ २१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में तुतीपमालद्वारा है। विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए वा सूर्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को सर्ष मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल करके उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये जैसे जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुप्रदायक होती हैं। और जैसे ईश्वर कारण से कार्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे हम लोगों को भी यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से या होम शिष्य कार्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षा जल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

जनयत्यैत्येत्यस्यर्षिपूर्योक्तः। प्रथतामितिपर्यन्तस्य यज्ञो देवता। स्वराद्भिष्टुप् छन्दः।

धैयतः स्वरः। अन्त्यस्याग्निस्वितारौ देवते। गायत्री छन्दः। पद्भजःस्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

जनपत्यै त्वा सं पौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घृमो-
सि विद्वायुंरुद्रप्रथा वरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे
त्वचं मा हिंसीहेवस्त्वां सच्चिता अप्यतु सर्षिष्टेऽधिनाके ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (जनयत्यै) सर्ष सुख उत्पन्न करने वाली राज्यलक्ष्मी के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (संयौमि) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़ कर युक्त करता हूँ वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये। जो हम लोगों का (इदम्) यह संस्कार किया हुआ हवि (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (इदम्) यह विस्तार को प्राप्त हो कर (अग्नापोमयोः) अग्नि और सोम के बीच पहुँच कर (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो (विद्वायुः) पूर्ण आयु और (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (धर्मः) यज्ञ (असि) है उस को जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूँ वैसे (त्वा) उसको हे पुरुषो तुम भी (वरु प्रथस्व) विस्तृत करो इस प्रकार विस्तार करने वाले (ते) तुम्हारे लिये

ग्लानिरहित श्रद्धायान् (प्रजा) संतान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक
अग्नि को (एकताय) (द्विताय) (त्रिताय) उक्त गुणयुक्त तथा सत्य सुख के लिये वायु
तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा अग्नि कर्म और हविष के होने के लिये (संयौमि) नि-
श्चल करता हूँ ॥ २३ ॥

भाषार्थः—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य
को यज्ञ सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना या चलायमान होना कभी न चा-
हिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे २ कामों से ही उत्तम २ संतान शारीरिक
वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यार्षिः स एव । घोषियुतौ देवते । स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये सो अगले
मंत्र में उपदेश किया है ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आर्ददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य वाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः
शततेजा वायुरसि त्रिगतेजा द्विपतो यधः ॥ २४ ॥

पदार्थः—मैं (सवितुः) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (देवस्य) सब आनन्द के देने-
वाले परमेश्वरकों (प्रसवे) प्रेरणामें (अश्विनोः) सूर्य चन्द्र और अप्सर्व्युओं के बल
और शीर्ष्यसे तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक वायुके (हस्ताभ्याम्) जो कि ग्रहण और त्याग
हेतु उदान और अपान हैं उनसे (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य सुखों की प्राप्तिके लिये
(अध्वरकृतम्) यज्ञसे सुखकारक कर्मको (आर्ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ और
मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो (इन्द्रस्य) सूर्यका (सहस्रभृष्टिः) जिसमें अनेक प्रकार के
पदार्थोंके पचाने का सामर्थ्य वा (शततेजाः) अनेक प्रकारका तेज तथा (दक्षिणः) प्राप्त
करनेवाला (वाहुः) किरणसमूह (असि) है और जिस (इन्द्रस्य) सूर्य वा मेघ-
मंडल का (त्रिगतेजाः) तीक्ष्ण तेजवाला (वायुः) हेतु (असि) है उस से हमको अनेक
प्रकार के सुख तथा (द्विपतो) शत्रुओं का (यधः) नाश करना चाहिये ॥ २४ ॥

ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्योंको अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ
भौतिक अग्निके संयोगसे ऊपरको अच्छे २ पदार्थ छोड़े हैं वह सूर्यको
स्थिर होता है तथा पवन उमरने धारण करता है और वह सबके उपकार
हजारों सुखोंको प्राप्त करके दुःखों का विनाश करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

पृथिवी यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड् प्राज्ञो प्रिष्टुप्
छन्दः । धियतः स्वरः ॥

किर ठक यज्ञ कहा जाके क्या करनेवाला होता है इस विषयका
उपदेश अगले मंत्रमें किया है ।

पृथिवि देवयजुन्वोपध्यास्ते मूलम्मा हिंश्रिसिपं व्रजङ्गच्छ
शोष्ठानं पर्यंतु ते यौर्वधान देव सवितः परमस्पां पृथिव्याश्च ज्ञाते-
न पाशैर्युष्मन्हेष्टि पं चं वृषं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (देव) सूर्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (सवितः) राज्य और
परवर्ष्यके देने वाले परमेश्वर (ते) आप की कृपा से मैं (देव यजनि) विद्वानों को
यज्ञ करने की जगह (ते) यह जो (पृथिवी) भूमि है उस का (मूलम्) धृष्टिकरने
वाले मूल को (मा हिंश्रिसिपम्) नाश न करूँ और मैं (पृथिव्याम्) अनेक प्रकार
नुपदायक भूमि में (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ यह (व्रजम्) जल धृष्टि
कारक मेघ को (गच्छ) प्राप्त हो यहाँ जाकर (गोष्ठानम्) सूर्यकी किरणों के गुणों से
(पर्यंतु) बर्षाता है और (यौः) सूर्यके प्रकाश (वरंतु) बर्षाता है । हे योरपुष्यो !
आप (अस्याम्) इस पृथिवी में (यः) जो कोई अधर्मात्मा डाँकू (अस्मान्) सप के
उपकार करने वाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च)
और (यम्) जिस दुष्ट शत्रु से (ययम्) धार्मिक शत्रु हम लोग (द्विष्मः) विरोध करें
(तम्) उस दुष्ट (परम्) शत्रु को (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धनों से (यधान) बाँधो
और उस को (अतः) इस बंधन से कमी (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २५ ॥

भाष्यार्थः— ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य
तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियाँ इन का नाश कमी न करना
चाहिये जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघ मंडल को जाकर शुद्धि
के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है इस से यह यज्ञ किसी पुरुष को
कमी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवीपर अनेक बन्ध-
नोंसे बाँधे और उनसे कमी न छोड़ें जिससे कि वे दुष्ट कर्मोंसे निवृत्त हों और सब म-
नुष्योंको चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या द्वेषसे अलग होकर एक दूसरेकी सप प्रकार सुखकी
उन्नति के लिये सदा यज्ञ करें ॥ २५ ॥

अपारकमित्यस्य सर्गस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । पूर्वाह्नस्वराड्,
प्राज्ञोपंकिरछन्दः । उत्तराह्नं भुक्तिप्राज्ञोपंकिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर इस यज्ञसे क्या २ कार्य सिद्ध होता है इस विषयका उपदेश मगले
मंत्रमें किया है ।

अपारहं पृथिव्यै देवर्षजनाद्यध्यासं ब्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते
धौर्विधान देव सवितः परमस्पां पृथिव्याऽशनेन पाशैर्गोऽस्मान्
द्वेष्टि यं च ध्रुवं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अरुं दो दिव्यं मा वंते
द्रुप्तस्ते यां मा स्कन् ब्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते धौर्विधान देव
सवितः परमस्पां पृथिव्याऽशनेन पाशैर्गोऽस्मान् द्वेष्टि यं च ध्रुवं
द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (देव) सर्वानन्द के देने वाले जगदीश्वर (सवितः) सब प्राणि-
यों में अन्तर्यामी सत्यप्रकाश करने वाले आप की रूपा से हम लोग परस्पर उपदेश
कर कि जैसे यह सत्य का प्रकाश करने वाला सूर्य्य लोक और पृथिवी में अनेक वन-
न के हेतु फिरणों से खँच कर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बाँधता है वैसे तुम भी
दुष्टों को बाँध कर अच्छे २ गुणोंका प्रकाश करो और जैसे मैं (पृथिव्यै) पृथिवी में
(देवर्षजनात्) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे २ पदार्थ या उत्तम २ विद्वानों की
संगति को प्राप्त होते हैं उस से (अरुम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रु जनको (अपवध्यासम्)
मारता हूँ वैसे ही तुम लोग भी उस को मारो तथा जैसे मैं (ब्रजम्) उत्तम २ गुण ज-
तानेवाले सज्जनों के सङ्ग को प्राप्त होता हूँ वैसे तुम भी उस को (गच्छ) प्राप्त हो
जैसे मैं (गोष्ठानम्) पठन पाठन व्यवहार की यताने वाली मेघ की गर्जना के समतु-
ल्य घेदवाणी को अच्छे २ शब्दरूपी वृद्धों से वर्षाता हूँ वैसे तुम भी (वर्षतु) वर्षाओ
जैसे मेरी विद्या की (धीः) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे (ते) तुम्हारी भी विद्या
सुशोभित हो जैसे मैं (यः) जो मूर्ख (असान्) विद्या का प्रचार करने वाले हम
लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (यः) और (यम्) जिस विद्याविरोधि जन को
(यम्) विद्वान् हम लोग (द्विष्मः) दुष्ट समझते हैं (तम्) उस (परम्) विद्या
के शत्रु को (असाम्) इस सब पदार्थों की धारण करने और (पृथिव्याम्) वि-
विध गुण देने वाली पृथिवी में (शनेन) बहुत से (पाशैः) बन्धनों से निज बाँधता
हूँ कभी उस से उने को नहीं त्यागता वैसे दे वार लागो ! तुम भी उन को (यथान्)
बाँधो कभी उस को (मतः) उस बन्धन से (मा मौक्) मत छोड़ो और जो दुष्ट उन
हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उस को उस बन्धन से
दोरे मनुष्य न छोड़े हम प्रकार सब लोग उस को उपदेश करने रहें कि हूँ (मारता)

दुष्ट पुत्र (शत्रुः) प्रजाग उर्वरि को (मानः) मम प्राप्त हो तथा (ते) तेरा (शत्रुः) धन्य है। वायु विद्याकी मम (धाम्) अन्व को (मारुत्) मम प्राप्त है । हे श्रेष्ठों के माँ मानने वाले मनुष्यो जैसे मैं (धाम्) विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ माँ को प्राप्त होता हूँ जैसे तुम भी (गच्छ) उस को प्राप्त हो जैसे यह (धोः) मूर्ख का प्रमाण (मोहान्) पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचना है जैसे ही ईश्वर का विद्वान् पुत्र तुम्हारी कामनाओं को (वसंतु) वरानें अर्थात् प्राप्त में पूरी करें । जैसे यह (देवः) व्यवहार का हेतु (रथिनः) मुख्य सौर (भस्वाम्) इम शत्रु होने योग्य (पृथिव्याम्) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (शतेन) अनेक (पार्श्वः) बन्धन के हेतु किरणों से मानसों के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है जैसे तुम भी दुष्टों को बांधो और (य) जो न्यायविरोधी (भस्वाम्) न्यायाधीश हम लोगों से (छिद्य) कोप करना है (च) और (यम्) अन्यायकारी जन पर (वयम्) संपूर्ण दिन न्याय करने वाले हम लोग (छिप्य) कोप करते हैं (तम्) उस (परम्) शत्रु को (भस्वाम्) इम (पृथिव्याम्) उक्त गुण वाली पृथिवी में (शतेन) अनेक (पार्श्वः) मम दाम दण्ड और श्रेष्ठ आदि उद्योगों से बांधता हूँ और जैसे मैं उस को दण्ड से बांध कर कभी नहीं छोड़ता जैसे ही तुम भी (वधान) बांधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो । कभी उस को (मा मीक) मत छोड़ो ॥ २६ ॥

भावार्थ — इम मन्त्र में तुमोगमान्द्वारा है । ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले काव्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की दानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने को लिये उन का बन्धन करना चाहिये परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल संपादन करने का किया तथा बलायन्त्रों से अनेक यान बना कर सब को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

गायत्रे गेत्वस्य श्रुतिः स एव । यज्ञो देवता । प्राज्ञान्निष्ठुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किस से करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ।

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि — चासि

शिवा चासि स्योना चासि सुपदा चास्यूजैस्वती चासि पर्यस्वती च ॥ २७ ॥

पदार्थः—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (सुष्मा) यह पृथिवी शोभायमान (असि) होता है (च) तथा जिस से सुखकारक गुण (च) अथवा मनुष्यों के साथ यह (शिवा) मङ्गल क्षी देनेवाली (असि) होती है (च) तथा जिस करके उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी (स्योना) सुख उत्पन्न करनेवाली (असि) होती है (च) और जिस से उत्तम २ सुख करने वाले और चलने के साथ यह (सुपदा) सुख से स्थिति करने योग्य (असि) होता है तथा जिन मत्तम यव आदि अन्न के साथ यह (ऊर्जस्वती) अन्नवाली (असि) होता है (च) और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फलों करके यह पृथिवी (पर्यस्वती) प्रशंसा करने योग्य रसवाली (असि) होती है (त्वा) उस यज्ञ को मैं उस यज्ञ विद्याका जाननेवाला मनुष्य (गायत्री) गायत्री (छन्दसा) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है उस से (परिगृह्णामि) सब प्रकार से सिद्ध करता हूँ और मैं (त्रैण्डुमेन) त्रिण्डुम् (छन्दसा) जो कि स्वतंत्रतारूप से आनन्द का देने वाला है उस से (त्वा) पदार्थसमूह को (परिगृह्णामि) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूँ तथा मैं (जागतेन) जगती जो कि (छन्दसा) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है उस से (त्वा) उस भौतिक अग्नि को (परिगृह्णामि) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ ॥ २७ ॥

भाषार्थः—वेदका प्रकाश करनेवाला ईश्वर हम लोगोंके प्रति कहता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगोंको वेदमंत्रके बिना पदों और उनके अर्थोंके बिना जाने यज्ञका अनुष्ठान या सुखरूप फलको प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी मद्य जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इसमें यह तीन प्रकारके यज्ञकी सिद्धि यत्पूर्वक संपादन करके सदा सुलहोमें रहना चाहिये और जो इन पृथिवीमें वायुजल तथा ओषधियोंको दूषित करनेवाले दुर्गन्ध अथगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहिये ॥ २७ ॥

पुरा ऋत्स्येत्यस्य अग्निः स एव । यज्ञो देवता । विराट् मन्त्रो पंक्ति-
च्छन्दः । पंगमः स्वरः ॥

वे शेष केने निवारण करने और वही मनुष्योंको फिर क्या करता चाहिये
इस विषयका ऊपरके अगले मंत्रमें किया है ।

पुरा ऋत्स्यविश्वो विरचितस्तदायं पृथिवीं उषदानुम् ।

यामैरंघ्रं चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरांसां अनुदिश्यं यजन्ते ।
प्रोक्षणीरासां दधस्त्रिपुतां धृष्टोसि ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (यिरप्शान्) महाशय महागुणवान् जनईश्वर ! अपने (याम्) जिन (स्वधामिः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और (जीवदानुम्) प्राणियों को जीव देने वाले पदार्थ तथा (पृथिव्याम्) पृथ्वी प्रजायुक्त पृथिवी को (उदादाय) ऊपर उठाकर (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इत कारण उस पृथिवी को (धीरासः) धीर बुद्धिवाले पुरुष प्राप्त होकर आप के अनुकूल चलकर यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं जैसे (चन्द्रमसि) आनन्द में वर्त्तमान होकर (धीरास) बुद्धिमान् पुरुष (याम्) जिस (जीवदानुम्) जीवों को हितकारक (पृथिव्याम्) पृथिवी के आश्रित होकर सेना और शत्रुओं को (उदादाय) कम से लेकर (यिरप्शः) जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाय दिखाने योग्य और (धूरस्य) शत्रुओं के अङ्ग विदीर्ण करने वाले संप्राप्त के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (पुरा) पहिले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से (प्रोक्षणीः) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उन को सम्पादन करते हैं वैसे ही हे (यिरप्शान्) महाशयस्वर्ग की इच्छा करने वाले पुरुष तू भी उस को प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करनेवाली उत्तम २ क्रियाओं का सम्पादन कर जैसे (त्रिपतः) शत्रुओं का (धध.) नाश (असि) हो वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्त्तमान रह ॥ २८ ॥

भाषार्थः—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवी पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक, चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी, एक दूसरे के समीप तारालोक और सय के बीच में अनेक स्वर्गलोक तथा इन सय में नानाप्रकार की प्रजा रचकर स्थापन की है वहाँ परमेश्वर सय मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं । जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि बिना युद्ध और बल के शत्रु जन फर्मा नहीं डरने । तथा बिहान् लोग बिधा न्याय और विनय के बिना यथापत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सय को जितेन्द्रिय हो कर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सय के सुख के लिये उत्तम २ प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य क्रयिः स एष । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे भूरिप्राणतो उन्दः ।

निपादः स्वः ॥ उत्तरार्द्धे त्रिपुप् उन्दः । धवतः स्वः ॥

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो निष्टा अरा-
तयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मा-
जिम् । प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो निष्टा अ-
रातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै स-
म्माजिम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—मैं जिस अति विस्तृत शत्रुओं के नाश करने वाले संग्राम से (प्रत्युष्टं रक्षः) विजयकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिस में सत्य विरोधी अच्छी प्रकार दाहदण्ड को प्राप्त होते हैं वा (निष्टं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (निष्टा अरातयः) विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) वेग आदि गुणवाले संग्राम को (वाजेध्यायै) जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उस के लिये युद्ध के साधनों को (सम्माजिम्) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूँ और मैं जिस (सपत्नक्षित्) शत्रु का नाश करनेवाले और (अनिशिता) अति विस्तार-युक्त सेना से (प्रत्युष्टं रक्षः) परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा (प्रत्युष्टा अरातयः) उक्त अपगुण वाले अनेक मनुष्य (निष्टं रक्षः) जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा (निष्टा अरातयः) औरों को सब प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को (वाजेध्यायै) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (सम्माजिम्) अच्छी प्रकार उत्तम २ शिक्षाओं से शुद्ध करता हूँ और जो कि (अनिशिता) बड़ा क्रियाओं से सिद्ध होने योग्य वा (सपत्नक्षित्) दोषों वा शत्रुओं के विनाश करने हारे यज्ञ वा युद्ध को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (सम्माजिम्) शुद्धता से सिद्ध करता हूँ ॥ २९ ॥

भावार्थः—इन्धर राजा देता है कि तब मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्रकार और दुष्ट शत्रुओं को निवृत्ति के लिये तब पुण्यकार्य करना चाहिये तथा सर्वश्रेष्ठ शिक्षा शत्रु अन्न और सपुण्ययुक्त उत्तम सेना से धर्मों की रक्षा दुष्टों का विनाश करना चाहिये जिस प्रकार अरुजि भादि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध गुणप्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स पथ । यज्ञो देवता स्वराद्भिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
 फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देने वाला होता है
 सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

अदित्यैरास्नांसि विष्णोर्विष्णोस्त्वृज्जे त्वा दंभेन त्वा चक्षुषा धंपश्या-
 मि । अग्नेर्जिह्वांसि सुहृद्वेभ्यो धासे धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (अदित्यै) पृथिवी के (रास्ना) रस आदि
 पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (असि) हैं (विष्णोः) (असि) व्यापक (वेष्णः) पृ-
 थिवी आदि सप्त पदार्थों में प्रवर्तमान भों (असि) हैं तथा (अग्नेः) भौतिक अग्नि के
 (जिह्वा) जीभरूप (असि) हैं वा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (धासे धाम्ने) जिन
 में कि वे विद्वान् गुरुरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम
 और जन्म हैं उन धमों को प्राप्ति के तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मंत्र २ का आ-
 शय प्रकाशित होने के लिये (रुद्रः) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य हैं इस प्र-
 कार के (त्वा) आपको मैं (अदम्भेन) प्रेम सुपयुक्त (चक्षुषा) विज्ञान से (ऊर्ज्जे)
 पराक्रम (अदित्यै) पृथिवी तथा (देवेभ्यः) श्रेष्ठगुणों वा (धासे धाम्ने) स्थान नाम
 और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ के आशय
 जानने के लिये (अदम्भ्यामि) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूँ आपकी कृपा करके मुझ
 को विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (भव) दृजिये यह इस मंत्र का प्रथम चर्प हुआ ।
 यह दूसरा कहते हैं जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) अन्तर्हित के (रास्ना) रास्यन्वी
 रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (असि) है (विष्णोः) यज्ञसम्बन्धी कार्यों का
 (वेष्णः) व्यापक (असि) है (अग्नेः) भौतिक अग्नि का (जिह्वा) जिह्वारूप (असि) है
 (देवेभ्यः) तथा दिव्य गुण (धासे धाम्ने) जोर्त्सि स्थान और जन्म इन की प्राप्ति वा
 (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ का आशय जानने के लिये (रुद्रः) अच्छी प्रकार
 प्रशंसा करने योग्य (असि) होता है इस कारण त्वा उस यज्ञ को मैं (अदम्भेन) सु-
 पयुक्त (चक्षुषा) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (अदम्भ्यामि) देखता हूँ तथा
 (त्वा) उसे (अदित्यै) पृथिवी आदि पदार्थ (देवेभ्यः) उत्तम २ गुण (धासे धाम्ने)
 स्थान २ तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मंत्र २ में हित होने के लिये (अदम्भ्यामि)
 क्रिया की श्रद्धालता से देखता हूँ ॥ ३० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—सद मनुष्यों को जन्मे यह जगदीश्वर व-
 स्तु २ में स्थित तथा वेद के मन्त्र २ में प्रतिपादित और सेवा करने योग्य है ऐसे ही
 यह यज्ञ वेद के प्रति मंत्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानों ने रोचिन किया

हुआ सत्र प्राणियों के लिये पदार्थ पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुँचाने के योग्य होता है ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वेत्यस्य अग्निः स एव । यज्ञो वैयता सर्वस्य । पूर्वार्धे जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः । तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ कौ से पवित्र होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

सवितुस्तथा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य इक्षि-
भिः सवितुर्षः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य इक्षि-
भिः । तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियन्देवाना
मनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

पदार्थः—जो यज्ञ (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) तथा पवित्र (सूर्यस्य) प्रकाशमय सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ मिल के सब पदार्थों को शुद्ध करता है (तथा) उक्त यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं (उत्पुनामि) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूँ इसी प्रकार (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) शुद्धिकारक (सूर्यस्य) जो कि ऐश्वर्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के (रश्मिभिः) अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं उन से (वा) तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । हे ब्रह्मन् ! जिस कारण आप (तेजोसि) स्वयम् प्रकाशवान् (शुक्रमसि) शुद्ध (अमृतमसि) नाशरहित (धामासि) सब पदार्थों का आधार (नामासि) ध्वना करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अनाधृष्टम्) तथा किसी की भयता में न आने के योग्य वा (देवयजनमसि) विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं इस से मैं (तथा) आप का ही आश्रय करता हूँ । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ । जिस कारण यह यज्ञ (तेजोसि) प्रकाश और (शुक्रमसि) शुद्धि का हेतु (अमृतमसि) मोक्ष सुखका देने तथा (धामासि) सब भक्त आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा (नामासि) जलका हेतु (देवानाम्) श्रेष्ठ गुणों की (प्रियम्) प्रीति कराने तथा (अनाधृष्टम्) किसी को परहेज करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यंत उत्कृष्ट और (देवयजनम्) विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन करने वाला (असि) है इस कारण इस यज्ञ से मैं (सवितुः) जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (प-
... शुद्ध यज्ञ वा (सूर्यस्य) ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के गुण
... के उत्पन्न करने वाले सूर्य की (रश्मिभिः) विज्ञानादि प्रकाश वा

विष्णु की (२) मूल शक्ति का प्रसार करने की (उद्देश्य) ध्येय बताया है । यह
 दृष्टान्त सर्व सुख ॥ ३१ ॥

अर्थ :- इस अर्थ में सर्व सुख है - जन्मोत्तर मृत विद्य. के प्राप्ति जानना है
 कि जो बुद्ध शक्तियों के द्वारा बुद्ध सुख मृत है यह सुखोंको विष्णु के साथ रहकर
 अपने विचार मृत सुखों मृत सुखोंको ध्येय बताया है तथा यह उनके द्वारा सब
 सुखोंको सुखोंकी विष्णु केनेत्याय मृत जन्म मृतको सुखकारक प्रत्यक्षता का हे-
 तु यह है व मृत सुखोंको सुखोंको उनके उनके मोक्षन बन्धने शरीरको पुष्टि पुष्टि
 और सब धर्म मृत सुखोंको सुखोंको सर्व सुखों को सुख देता है ॥३१॥

इसमें सब धर्मों में सुखोंको मृत कर्म के अनुष्ठान दीप और शत्रुओं को
 निर्दोष पदविद्या के फलको जानने, अज्ञान प्रसार पुनरायं करने, विद्या के विस्तार
 करने, धर्म के अनुष्ठान प्रकाशान्ते, धर्म के अनुष्ठान में निर्भरता से स्थित होने, सब
 के साथ मित्रता से वर्गों, पेशों, से सब विद्याओं का प्रदान करने और कराने को
 शक्ति तथा योग्यता के लिये प्रयत्न करने को अज्ञान दो है जो यह सब सुखोंको
 अनुष्ठान करने के योग्य है ॥

यह प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥



अथ द्वितीयाध्यायारम्भः

सौं विश्वानि देव सपितृदृष्टिनामि परां सुव । पट्टं तदुभा-
सुं ॥ १ ॥ प० ३० । ३ ।

संभवेत्तत् सर्वनाथेऽप्यये विचयेदानो द्वितीयेऽप्यये प्रानिनी सुभापोला-
संभवेत्तत् सर्वनाथेऽप्यये विचयेदानो द्वितीयेऽप्यये प्रानिनी सुभापोला-
संभवेत्तत् सर्वनाथेऽप्यये विचयेदानो द्वितीयेऽप्यये प्रानिनी सुभापोला-

एष्योऽस्तौयम्यगमेष्टो प्रजापतिप्रदं विः । यज्ञो देवता । निवृत्तं किञ्चनः । पश्यनः स्वरः
अथ दूसरे अध्याय में परमेश्वर में उन विद्याओं का निदि करने के लिये विशेष
विद्याओं का प्रकार दिया है कि जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित
की हैं उन में से वेदि आदि पद्यों के बनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं
के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मात्र में यज्ञ लिख करने के लिये सापन
अर्थात् उन को लिख के निमित्त कहे हैं ॥

कृष्योऽस्पाखरेष्टोऽनगं स्या जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि पृष्टिं
स्या जुष्टां प्रोक्षामि पृष्टिरसि सुग्भ्यस्तथा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (आखरेष्टः) वेदी की रचना से सुदे हुए स्या-
न में स्थिर होकर (कृष्यः) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्म रूप और पवन के
गुणों से आकर्षण को प्राप्त (असि) होता है इस से मैं (अग्नये) भौतिक अग्नि के यो-
च में हवन करने के लिये (जुष्टम्) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (स्या) उस यज्ञ
अर्थात् होमकी समाप्ती को (प्रोक्षामि) घों आदि पद्यों से सींचकर शुद्ध करता
हूँ और जिस कारण यह वेदी अन्तरिक्ष में स्थित होती है इस से मैं (पृष्टिं) होम
किये हुए पद्यों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिये (जुष्टम्) प्रीति से संपादन की
हुई (स्या) उस वेदी को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार घों आदि पद्यों से सींचता हूँ
तथा जिस कारण यह (पृष्टिः) जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पद्यों की शुद्धि कराने
वाला होता है इससे (स्या) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (जुष्टम्)
पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (सुग्भ्यः) मुवा आदि सा-
धनों से अग्नि में डालने के लिये (प्रोक्षामि) शुद्ध करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सत्र मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्निमें होम करके किया हुआ यज्ञ यज्ञ के शुद्ध जल से सब ओपधियों को पुष्ट करता है उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । स्वराड् जगताच्छन्दः । निपादः स्वराः ॥
इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करानेवाला होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ।

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुषुःऽऽपूर्णमदसं त्वा स्तृणामि
स्वाम्स्थान् देवेभ्यो भुवंपतये स्वाहा भुवंपतये स्वाहा भूतान्ना-
स्पतये स्वाहा ॥ २ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) पृथियों के (व्युन्दनम्) विविध प्रकार के ओपधों आदि पदार्थों का सोचनेवाला (असि) होता है इस से मैं उसका अनु-
ष्ठान करता हूँ और (विष्णोः) इस यज्ञ की सिद्ध करानेहारा (स्तुपः) शिवारूप (अर्णमदसम्) उलूखल (असि) है इस से मैं (त्वा) उस अन्न के टिलके दूर करने वाले पत्थर और उलूखल को (स्तृणामि) पदार्थों से ढांपता हूँ तथा वेदी (देवेभ्यः) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिये (असि) होती है इस से उस को मैं (स्वाम्स्थान्) ऐसा बनाता हूँ कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिस से संसार का पति भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरोंका पति संसारी पदा-
र्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्निसुखों का सिद्ध करानेवाला होता है इस कारण (भुवंपतये) (स्वाहा) (भुवंपतये) (स्वाहा) (भू-
तान्ना पतये) (स्वाहा) उक्त परमेश्वर को प्रसन्नता और आज्ञा पालन के लिये उस वेदी के गुणोंसे जो कि सत्य भाषण अर्थात् अपने पदार्थोंको मरे हूँ यह कहना चाश्चे-
ष्ट वाक्य आदि उत्तम वाणीयुक्त वेद है उसके मंत्रों के साथ स्वाहा शब्दका अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कामों का विधान किया जाता है इस प्रयोज-
के लिये भी वेदी को रचता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम को वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन कर के सब प्राणियों को सुख तथा परमेश्वर को प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार किया युक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जंसे मैं न्याय से सब विषय का पालन करता हूँ ऐसे ही तुम

लोगों को भी पक्षपात छोड़ कर सब प्राणियों के पालन से सुख संपादन करना चाहिये ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । आद्यस्यभुरिगार्च्ची

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ मध्यभागस्यार्च्चीपङ्क्तिश्छन्दः ।

अन्यस्यपङ्क्तिश्छन्दः । उभयत्र पञ्चमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

गन्धर्वस्त्वा विद्वावसुः परिं दधातु विश्वस्वारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिर्स्पग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्वारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिर्स्पग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौत्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुव्रेण धर्मेणा विश्वस्वारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिर्स्पग्निरिड ईडितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—विद्वान् लोगों ने जिस (गन्धर्वः) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (विश्वावसुः) विश्व को बसाने वाले (इडः) स्तुति करने योग्य (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि की (ईडितः) स्तुति (मति) की है, जो (विश्वस्य) संसार के वा विशेष कर के (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले विद्वान् के (अरिष्ट्यै) दुःख निवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को (परिदधातु) धारण करता है इस से विद्वान् उस को विद्या की सिद्धि के लिये (परिदधातु) धारण करे और विद्वानों से जो वायु (इन्द्रस्य) सूर्यका (बाहुः) बल और (दक्षिणः) बरस की प्राणिकाराने अथवा (परिधिः) शिल्प विद्या का धारण कराने वाला तथा (इडः) दाह प्रकाश आदि गुण होने से स्तुति के योग्य (ईडितः) सोजा हुआ और (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (मति) दे वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुए (यजमानस्य) शिल्प विद्या के चाहने वाले वा (विश्वस्य) सब प्राणियों के (अरिष्ट्यै) सुख के लिये (मति) होते हैं और जो प्रप्राण्ड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाव वाले (मित्रावरुणौ) प्रण और अपन वायु हैं वे (ध्रुव्रेण) निधल (धर्मेणा) अपनी धारण शक्ति से (उत्तरतः) पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उतर धर्यात् उपरान्त समय में (विश्वस्य) धराधर जगत् वा (यजमानस्य) सब से मित्र भाव में बर्तने वाले राजान पुत्र के (अरिष्ट्यै) सुख के हेतु (तथा) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (परिधत्तान्) सब प्रकार से धारण करने हैं तथा जो विद्वानों से (इडः) विद्या की प्राप्ति

रखा है वह विज्ञानों के शिष्य विद्या के हाथ संशोधनों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक काव्यों को मिश्रकरने वाला होता है ॥ ३ ॥

शीतिहोत्रमिन्द्रमग्निः स एष । अग्निदेवताः । गायत्री उन्दः ।

पद्म ज म्बर ॥

अब अग्नि शब्द से आगेले मंत्र में उन देव अर्थात् का प्रकाश किया है ॥

शीतिहोत्रमग्निः स एष । अग्निदेवताः । गायत्री उन्दः ।

मध्यम ॥ ४ ॥

पदार्थः—दे (कथे) मयज्ञ तथा हर एक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञानवाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हम लोग (मध्यम) मित्र भाव के रहने में (गृहन्तम्) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के पदाने और (पुमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले या (शी-तिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित कराने वाले (तथा) भाप को (समिधी-महि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ । हम लोग (म-ध्यम) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में हि (शीतिहोत्रम्) पदार्थों को प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती हैं और (पुमन्तम्) अत्यन्त प्रचण्ड ज्वलायुक्त (गृहन्तम्) बड़े २ काव्यों को सिद्ध कराने तथा (कथे) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (तथा) उस (अग्ने) अतिरक्त अग्नि को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकटित करें यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन या क्रियाओं से सिद्ध होनेवाले पदार्थ हैं उन सभी को ईश्वर ही ने रखकर अच्छी प्रकार धारण किये हैं मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता गुण ज्ञान और उत्तम २ क्रियाओं को अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ॥ ४ ॥

समिधीमह्यमग्निः स एष । यज्ञो देवता । निचूत्र्याहो गृहतीउन्दः ।

मध्यमः म्बरः ॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समिदसि सूर्यस्त्या पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशास्त्यै स
चितुर्बाहूस्थऽऊर्णम्रदसन्त्या स्तृणामि स्वासस्थन्देभ्य आ त्वा
वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(चित्) जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये किया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ (समित्) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (असि) होता है (त्या) उस को (सूर्यः) ऐश्वर्य का हेतु सूर्यलोक (कस्याः) सय पदार्थों की (अभिशास्त्यै) प्रकटता करने के लिये (पुरस्तात्) पहिले ही से उनकी (पातु) रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि (चितुः) सूर्यलोक के (बाहू) बल और शौर्य (स्थः) हैं जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है (त्वा) जिस (ऊर्णम्रदसम्) सुख के विघ्नों के नाश करने (स्वासस्थम्) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होने वाले यज्ञ को (वसवः) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (रुद्राः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाफ, कूर्म, वृकल, देवदत्त, धनंजय, और जीवात्मा, ये रुद्र (आदित्याः) बारह महिने (सदन्तु) प्राप्त करते हैं (त्वा) उसो (ऊर्णम्रदसम्) अत्यंत सुख बढ़ाने (स्वासस्थम्) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति या (देभ्यः) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये (आस्तृणामि) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र, और आदित्य संज्ञक पदार्थों से, जो २ काम सिद्ध हो सकते हैं सो २ सय प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं। तथा अग्नि के बीच जिन २ पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है सो २ सूर्य और वायु को प्राप्त होता है ये हो उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य औषधों आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन से जीवों को नित्य सुख होता है इस कारण सय मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ५ ॥

युताप्यसीलम्य प्रणयः स एव । विष्णुर्देवता सर्वम्यः । पट्पटि तमाक्षरपर्यन्तं
प्राप्तो विष्टुप् एन्द्रः । अग्ने नित्युत्पिष्टुप् एन्द्रः । सर्वम्य घैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या २ फल्य सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

घृताचर्षसि जुहूनाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियथ सट् आसीद् ।
 द घृताचर्षस्पृषभृत्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियथ सट् आसीद् ।
 घृताचर्षसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियथ सट् आसीद् ।
 प्रियेण धाम्ना प्रियथ सट् आसीद् ध्रुवा असदन्मृतस्य गोत्रो ता
 विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्तम् ॥६॥

पदार्थः—जो (जुहू) हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करनेवाली (स्तुप्) (घृताची) घृतयुक्त (अग्नि) होती है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार ग्रहण की क्रिया है सो (प्रियेण) सुखों से तृप्त करने वाला शोभावमान (धाम्ना) स्थान के साथ वर्तमान होके (इदम्) यह (प्रियम्) जिम में तृप्त करने वाले (सट्) उत्तम २ सुखों को प्राप्त होते हैं उन को (आसीद्) सिद्ध करती है । जो (नाम्ना) प्रसिद्धी से (उपभृत्) समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा (घृताची) जल को प्राप्त कराने वाली हस्त क्रिया (अग्नि) है (सा) यह उम में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति के हेतु (धाम्ना) स्थल से (इदम्) यह शोयर्था आदि पदार्थों का समूह (प्रियम्) जो कि आरोग्य पूर्वक सुखदायक और (सट्) दुःखों का नाश करने वाला है उस को (आसीद्) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है तथा जो (ध्रुवा) स्थिर सुखों वा (घृताची) आयु के निमित्त को देने वाली विद्या (अग्नि) होती है (सा) वह अच्छी प्रकार उत्तम काव्यों में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति उत्पन्न करने वाले स्थिरता के निमित्त से (इदम्) इस (प्रियम्) मानन्य कराने वाले जीवन वा (सट्) वस्तुओं को (आसीद्) प्राप्त करता है । जिम क्रिया करके (प्रियेण) प्रमत्तता को करने हारे (धाम्ना) हृदय में (प्रियम्) प्रमत्तता करने वाला (सट्) ज्ञान (आसीद्) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (सा) वह विज्ञानपति मय को नियम सिद्ध करनी चाहिये । हे (विष्णो) व्यापकेभ्यः त्रैमे जाः (अन्तन्य गोत्रो) गुण यज्ञ में (ध्रुवा) स्थिर वस्तु (अमरन्) हो सके जैसे हो उन को निरन्तर (पाहि) रक्षा कीजिये तथा रक्षा करके यज्ञ को (पाहि) रक्षा कीजिये (यज्ञन्तम्) यज्ञ प्राप्त करने (यज्ञपतिम्) यज्ञ को पालन करने हारे यज्ञमान को (पाहि) रक्षा करो और यज्ञ को प्रवर्धित करने वाले (माम्) मुझ (घ) भी (पाहि) प लिये ॥ ६ ॥

भाषार्थः—जो यज्ञ पूर्वक मंत्र में व हु, दट् और आदिभ्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह वस्तु और जल को गुडि के द्वारा मय स्थान और मय वस्तुओं को प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है अथ वस्तुओं को उन को

युक्ति वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर को प्रार्थना और नया अच्छों प्रकार पुकारना चाहिये ॥ १ ॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिच्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वाजजिद्वाजन्त्या सरिष्यन्तं वाजजित्थे सम्मार्जिम । प्र-

मो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूवास्तम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जिस से यह (अग्ने) अग्नि (वाजजित्) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इस से मैं (त्वा) उत्त (वाजम्) योग वाले (सरिष्यन्तम्) सब पदार्थों को अन्तर्िक्ष में पहुँचाने और (वाजजितम्) अर्थात् शुद्ध को जिताने वाले भौतिक अग्नि को (सम्मार्जिम) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ यज्ञ में युक्ति किये हुए जिस अग्नि से (देवेभ्यः) सुखकारक पूर्वोक्त यज्ञ आदि से सुख के लिये (नमः) अत्यन्त मधुर थंष्ट जल तथा (पितृभ्यः) पालने के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये (स्वधा) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं वे (सुयमे) बल या पराक्रम को देने वाले उस यज्ञ से (मे) मेरे लिये (भूवास्तम्) होयें ॥ ७ ॥

भाषार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मंत्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है । क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है । और यान वा वास्तुशस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु ही कर चलते आदि ऋतुओं से उत्तम उत्तम पदार्थों का संपादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है वैसे जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । विराट् पङ्क्तिच्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यथे संश्रिणासुमंश्रिणा विष्णो मा स्वाधं
ऋषिषुं वसुमतीमग्ने ते ह्यापामुपस्यंषुं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो
वीर्यं मरुतोवृष्ट्वींश्चुर आस्थात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—मै (देवेभ्यः) उत्तम सुप्तों को प्राप्ति के लिये जो (अस्तकर्मम्) निम्नल सुप्तगायक (आत्यम्) घृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ हैं उस को (मंत्रिणा) पदार्थ पाने वाला अग्नि में (अथ) आज (मन्त्रिणात्मम्) धारण करूँ और (तथा) उस-का मैं (माधकर्मिणम्) कर्मो उल्लंघन न करूँ । तथा हे (अग्ने) जगदीश्वर । ते आप के (वनुमनाम्) पदार्थ देने वाले (ज्ञायाम्) आश्रय को (उपस्थेयम्) प्राप्त होऊँ । जो यह (अग्ने) अग्नि (विश्वोः) के यज्ञ (स्थानम्) ठहरने का स्थान (भनि) है उस के मो (वनुमनाम्) उत्तम पदार्थ देने वाले (ज्ञायाम्) आश्रय को मैं (उपस्थेयम्) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूँ तथा जो (ऊर्ध्वः) आकाश और जो (अध्वरः) यज्ञ अग्नि में ठहरने वाला (आ) स्व प्रकार में (अस्थात्) ठहरता है उस को । (इन्द्रः) सूर्य और वायु धारण करके (धौव्यम्) कर्म मध्या पराक्रम को (अठ-पोत्) करते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थः—श्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध हो-कर बहुतसा अन्न उत्पन्न करनेवाले होने हैं उसको सिद्ध करनेके लिये मनुष्यों को बहुतसी सामग्रों जोड़नी चाहिये । उँसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ, मेरो आज्ञा कर्मो उल्लंघन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असंन्यात सुप्तों का देनेवाला मेरा आश्रय है उसको स-दा प्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिस को सूर्य अपनी किरणों से रौंच कर वायुके योगसे ऊपर मेघमंडल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहाँ से मेघद्वारा गिरा देता है और जिनमे पृथिवीपर यज्ञ, सुख उत्पन्न होता है उ-स यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ॥ ८ ॥

अग्ने धेत्विष्यप्रणयिः स एव । अग्निर्देयता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो भगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वेदोत्रं वेदेषुमवतान्तवान्यावां पृथिवी अब त्वं यावां-
पृथिवी र्विष्वक्कृहेभ्य इन्द्र आज्जवेन हविषा भूत्स्वाहा सं-
ज्वोतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर । जो (यावापृथिवी) प्रकारामय सूर्यलोक और पृ-थिवी यज्ञ को (भवताम्) रक्षा करते हैं उनकी (त्वम्) आप (वेः) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि (होत्रम्) यज्ञ और (वृत्तम्) घृत कर्म को प्राप्त होकर (या-वापृथिवी) प्रकारामय सूर्य लोक और पृथिवी की रक्षा करता है वैसे हे भगवन् । (देवेभ्यः) विद्वान्मोके लिये (विष्वक्कृत्) उनकी इच्छा मुकुल अच्छे २ काव्यों के

करनेवाले आप हम लोगों की (अथ) रक्षा कीजिये जो यह (आज्येन) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम २ पदार्थ (हविषा) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (ज्योतिषा) प्रकाशयुक्त लोकों के साथ (ज्योतिः) प्रकाशमय किरणों से (स्थिष्टकृत्) अच्छे २ वांछित कार्य सिद्ध कराने वाला (इन्द्रः) सूर्य लोक भी (धावापृथिवी) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्यकी रक्षा करने वाला (अमृत) होता है जैसे आप (ज्योतिः) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (अथ) रक्षा कीजिये इस कर्म को (स्वाहा) वेदवाणी कहती है ॥ १ ॥

भाषार्थः—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो २ अग्नि पृथिवी सूर्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूतसम्बन्धी कर्मका अनुष्ठान करना योग्य है सो २ उन के लिये वांछित सुख के देनेवाले होते हैं । अष्टम मंत्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमे मंत्रसे प्रकाशित किया है ॥ १ ॥

मयोदमित्यस्य ऋषिः स एव । इन्द्रो देवता । भुरिग्राही पक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले फल का उपदेश किया है ।

मयीदमिन्द्रं इन्द्रियं दधात्स्मान् राषीं मघवानः सघन्ताम् ।

अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहृता पृथिवी

मातोपमां पृथिवी माता ह्यतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिन्ह तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्ध करानेवाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीति पूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (राषीः) पिघा सुवर्ण वा चक्रवर्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन करे और उस की रूपा से तथा हमारे पुत्रपार्य से (मघवानः) जिन में कि बहुत धन विद्यमान राज्य आदि पदार्थ हैं जिन कारण हम लोग पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त हों जैसे धन (नः) हम विद्वान् धर्मान्ना लोगों को (सघन्ताम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करनेवाले धर्मियों की (आशिषः) कामना (सत्याः) मित्र (सन्तु) हों और ऐसे ही (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो किया है वे भी (सत्याः) मित्र (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की मित्रि से मान्य करने वाली पिघा और (पृथिवी) बहुत सुख देनेवाली भूमि है- (उग्रता) जिनकी

करता हूँ ग्रहण करके (अग्नेः) प्रज्वलित अग्नि के धींच में पकाकर (त्वा) उस
जन करने योग्य अन्न को (आस्थेन) अपने मुख से प्रारनामि भोजन करता हूँ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है मनुष्यों को अपने भात्मा को शुद्धि
लिये अनंत विद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छों
कोर नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या को सिद्धि के लिये उदर को अग्नि
दीप्त कर और मंत्रों से अच्छी प्रकार देख के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न
नित्य भोजन करना चाहिये सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये
वार्थ हैं उन से सिद्ध होते हैं यह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चा
हिए और जैसे ही औरों को यतना चाहिये जो पूर्व मंत्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त है
वा मान्य के करानेवाले पदार्थ कहे हैं उन का भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनु
को करना चाहिये । ऐसा इस मंत्र से प्रतिपादन किया है ॥ ११ ॥

पतन्त इत्यस्य ऋषिः स एष । सविता देवता । भुरिर् बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबंध प्रकाशित किया है सो अ
ले मंत्र में उपदेश किया है ॥

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमेव तेन
यज्ञस्पतित्तेन मामव ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यसुख या उत्तम गुण देने तथा (सवितः) सब ऐश्वर्य
का विधान करनेवाले जगदीश्वर वेद और विद्वान् आप के प्रकाशित किये हुए (तम्)
इस पूर्वोक्त यज्ञ को (प्राहुः) अच्छों प्रकार करते हैं कि जिस से (बृहस्पत
पदों में बड़ों जो वेदवाणी है उस के पालन करनेवाले (ब्रह्मणे) चारों वेदों के पद
से ब्रह्मा को पदों को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और भ्रष्ट अधिकार प्राप्त है
हैं इस (यज्ञम्) यज्ञसम्बन्धी धर्म से (यज्ञपतिम्) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों
सुख देनेवाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अव
रक्षा कीजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थः—ईश्वर ने सृष्टि को भाद्रि में दिव्यगुणवाले अग्नि वायु रवि और अग्नि
रा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के सा
यज्ञ के अनुष्ठान को विधिका उपदेश किया है जिस से सब की रक्षा होती है क्योंकि
। . . . और शुद्धि किया के बिना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो

सकती इत्यन्तिह एव स्व को उच्यते हे कि परस्पर प्रति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये जो ग्राह्ये मंत्र से यज्ञ का फल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मंत्र से विधान है ॥ १२ ॥

मनोज्ञतिरित्यन्य श्रुतिः; स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगतां छन्दः । निपाद्ः स्यरः

जिसमें यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

मनो जुगिजुपतामाजगम्य बृहस्पतिर्घञ्जामिमन्तनोत्परिष्टं यज्ञधे
समिमन्दधातु । विद्ध्ये देवासं इह मादयन्तामोश्मनिष्ठ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(जतिः) अपने घेग से स्व जगह जाने वाला (मनः) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुपताम्) संयन करे (बृहस्पतिः) यज्ञ २ जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उन का जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है वह (इमम्) इस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुखों के भोगरूपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (इमम्) इम (अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान प्राप्ति रूप यज्ञ है इम को (सन्दधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे । हे (विश्वेदेवासः) सकल विद्वान् लोगों ' तुम इन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण वा विस्तार करके (इह) इम संसार वा अपने मन में (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ । हे (ओश्म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) ठपका करके इस यज्ञ वा वेद विद्यादि को स्थापन कीजिये ॥ १३ ॥

माधार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुझारा मन अच्छे ही कामों में प्रवृत्त हो तथा मैं ने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उस का उक्त प्रकार से पथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो (ओश्म्) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्यन्ध है जैसे ही परमेश्वर के साथ (ओश्म्) ओंकार का सम्यन्ध है तथा अच्छे कामों के पिता किसी की प्रतिष्ठा नहीं ही सकती इस लिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़ कर धर्म कामों का ही भेवन करना योग्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविचाररूपी अन्धकार निवृत्त हो कर विचाररूपी सूर्य प्रकाशित हो, वारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके

अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा व सुख होते हैं यह इस में प्रकाशित किया है ॥१३॥

एषा ते इत्यस्य ऋषिः स एष । अग्निर्धैवता सर्वस्य । पूर्वांऽनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अमले मंत्र में प्रकाश किया है ।

एषा ते अग्ने समित्तया । धर्षस्व आप्यायस्व । वर्धिषीमहि
च वयमा च आप्यासिपीमहि । अग्ने वाजजिद्व्राजं तथा ससृवाथ
संवाज्जित्थसंमार्जिम ॥ १४ ॥

पदार्थ — हे (अग्ने) परमेश्वर (ते) आपकी जो (एषा) यह (समित्) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करनेवाली वेदविद्या है (तथा) उससे हमलोगों की जो हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (धर्षस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त कृजिये और (तथा) उस वेद विद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये इसी प्रकार हे भगवन् ! आप के गुणों को जाननेहारे हम लोगों से (च) भी प्रकाशित होकर आप (आप्यायस्व) हमारे आत्माओं में वृद्धि को प्राप्त कृजिये इसी प्रकार हम को भी बदाइये । हे भगवन् ! (अग्ने) विज्ञानस्वरूप विजय देने और (वाजजित्) सब के वेग को जीतने वाले परमेश्वर हमलोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वरूप (ससृवासम्) अर्थात् सब को जाननेवाले (तथा) आपकी (वर्धिषीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें (च) और आप कृपा करके हम को भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जाननेवाले कीजिये । और जैसे हम लोग आप की (आप्यासिपीमहि) अधिक २ स्तुति कर जैसेही आप भी हम लोगों को सब उत्तम २ गुण और सुखों से (आप्यायस्व) वृद्धि युक्त कीजिये । हम आप के आश्रय को प्राप्त हो कर तथा आप की आज्ञा के पालने से (संमार्जिम) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ॥१॥ जो (एषा) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि है (ते) उसकी (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करनेवाली लक्ष्मियों का समूह है (तथा) उससे यह अग्नि (धर्षस्व) बढ़ता और (आप्यायस्व) परिपूर्ण भी होता है । हम लोग (तथा) उस (वाजम्) वेग और (ससृवासम्) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा (वाजजितम्) संग्राम के जीताने के साधन अग्नि को विद्या को वृद्धि के लिये (वर्धिषीमहि) बढ़ाते हैं (च) और (आप्यासिपीमहि) कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेगवाले शिल्पविद्या के गुणों की

प्राप्ति से संप्राप्त को जिताने वाले हम को विजय के साथ बढ़ाता है इत्यने (एषा)
 उम अग्नि को हम (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार प्रयोग करने हैं ॥ २ ॥ १४ ॥

माधार्थः— इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। और एक २ अर्थ के दो २ क्रिया पद
 आदर के लिये जानने चाहिये जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और कि-
 या की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होने हैं ये विद्या और सुख में सश्र को ध्यानवित्त
 कर और दुष्ट शत्रुओं को जीताकर शुद्ध होके सुखी होते हैं जो आत्मस्य करनेवाले हैं
 ये ऐसे कभी नहीं होसते। और चार चक्रों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म या
 स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य भी अनेक प्रकार
 के हैं ऐसा समझना चाहिये। जो तेरहवें मन्त्र में देवविद्या कही है उस से दुष्ट को
 लिये यज्ञ का संधान तथा पुण्यार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन कि-
 या है।

अग्नीषोमयोरिति सर्वस्य अग्निः स एव। अग्नीषोमी वेधते। पूर्वार्द्धे द्वाह्नीयूहती
 छन्दः। मध्यमः स्वरः। उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी वेधते। अतिजगती छन्दः।

नियत्। स्वरः ॥

अथ उस यज्ञ से क्या २ बुर करना चाहि यहये विषय अगले मन्त्र में
 प्रकाशित किया है।

अग्नीषोमयो रुडिजतिमनुज्जैपं वाजस्य मा प्रसुवेन प्रोहामि
 अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान्द्रेष्टि यं च यं द्विष्मो वाज-
 स्येनं प्रसुवेनापोहामि। इन्द्राग्नी रुडिजतिमनुज्जैपं वाजस्य मा-
 प्रसुवेन प्रोहामि इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान्द्रेष्टि यं च यं
 द्विष्मो वाजस्येनं प्रसुवेनापोहामि ॥ १५ ॥

पदार्थः— मैं (अग्नीषोमयोः) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (उग्जिति-
 म्) दुष्ट से सहने योग्य शत्रुओं को (अनुज्जैपम्) यथा क्रम से जातूँ और (वा-
 जस्य) युद्ध के (प्रसवेन) उत्पादन से विजय करने वाले (मा) अपने आप को
 (प्रोहामि) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूँ। जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या
 से क्रिया कुशलता में युक्त किये हुए (अग्नीषोमी) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं ये
 (यं) जोकि अग्न्याय में वर्तनवाला दुष्ट मनुष्य (अस्मान्) न्याय करने वाले हम
 लोगों को (द्रेष्टि) शत्रुभाव से वर्तता है (यं च) और जिस अन्याय करने वाले से
 (यम्) न्यायाधीश हम लोग (द्विष्म) विरोध करते हैं (तम्) उस शत्रु वा रोग

को (अपनुवताम्) दूर करते हैं और मैं भी (एनम्) इस दुष्ट शत्रु को (वाजस्य) यानवेगादि गुणों से युक्त सेना य.टे संभ्रान को प्रसयेन अच्छी प्रकार प्रेरणा से (अपोहामि) दूर करता हूँ । मैं (इन्द्रास्योः) वायु और विद्युत् रूप अग्नि की (उज्जतिम्) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (अनुज्जेयम्) अनुक्रम से प्राप्त होऊँ और मैं (वाजस्य) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (प्रसयेन) ऐश्वर्य के अर्थ उत्पादन से वायु और विजुली की विद्या के जानने वाले (माम्) अपने भाग को नित्य (प्रोहामि) अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूँ और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अग्नि है वह (यः) जो मूर्ख मनुष्य (असान्) हम विद्वान् लोगों से (डेष्टि) अप्रीति से वर्सता है (च) और (यम्) जिस मूर्ख से (ययम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) अप्रीति से वर्सते हैं (तम्) उस बैर करने वाले मूढ़ को (अपनुवताम्) दूर करते हैं । तथा मैं भी (एनम्) इसे (वाजस्य) विज्ञान के (प्रसयेन) प्रकाश से (अपोहामि) अच्छी र शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूँ ॥ १५ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दुरिद्र के घिनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूढ़ मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वेति स्वस्य ऋषिः स एव । पूर्वार्धे चावापृथिवी मित्रावरुणौ च
देवताः । निचूदाचीं दंक्तिच्छन्दः । पञ्चम स्वरः । व्यन्तुषय इत्यारभ्या-

न्यपर्यान्तस्याग्निर्देवता । विराद् विष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां चावापृथिवी
मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यापताम् । व्यन्तु वयोक्तथ रिहाणा मरुतां
पूर्वतीर्गच्छ वृशा पृथिनभूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह ।
वसुष्वा अग्नेऽसि चक्षुर्मं पाहि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हम लोग (वसुभ्यः) अग्नि आदि षाठ वसुओं से (त्वा) उस यज्ञ को

तया (इन्द्रोन्मः) पृथिवी पराशर दृष्टों से (या) पूर्वोक्त यज्ञ की और (आदिप्रेम्यः)
 बाह्य महानों से (त्वा) उस निवासमह को नित्य उनम तकों से जानें और यज्ञ से
 ये (धावापृथिवी) सूर्य का प्रकाश और भूमि (संजानाशाम्) जो उन से शिल्प-
 विद्या उत्पन्न हो सके उन के विद्ध करने वाले हैं और (मित्रावरणी) जो स्वयं जीवों
 का बाहिर के प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उद्दानव यु है वे (वृष्ट्या)
 शुद्ध जल की वर्षा से (त्वा) जो संसार सूर्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उस
 की (भक्त्या) रक्षा करते हैं (ययः) जैसे पक्षी अपने २ टिकानों को रखते और
 (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं जैसे उन छन्दों से (गिहाणा) पूजन करने वाले हम लोग
 (त्वा) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (पृथिः)
 अन्तरिक्ष में स्थिर और (यथा) शोभित (भूत्यः) होकर (मयताम्) पवनों के संग
 से (दिवम्) सूर्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त होता है वह (ततः) यहाँ से (नः)
 हम लोगों के लिये (पृष्टिम्) वर्षा को (आवह) अच्छे प्रकार वर्षाता है उस वर्षा
 का जल (पृपतीः) नदियों और नदियों को प्राप्त होता है । जिस कारण यह अग्नि (च-
 क्षुणाः) नेत्रों की रक्षा करने वाला (असि) है इस से (मे) हमारे (चक्षुः) नेत्रों
 को बाहिरले भीतरले विज्ञान को (पाहि) रक्षा करता है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते
 हैं वह वा. यु के साथ मेघमंडल में जाकर सूर्य से खिंचे हुए जल को शुद्ध करता है,
 फिर वहाँ से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है वह उक्त अ. हुति
 वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फलको जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे
 जो यह अग्नि सूर्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टि व्यवहार
 की पालना होती है ये जो वायु आदि देव कहते हैं इनसे विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट
 गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये यहाँ सब का पूजन अर्थात्
 स्तुति है जो पूर्व मंत्र में कहा था उस का इस से विशेषता कर के प्रकाश किया
 है ॥ १६ ॥

यं परिधिमित्यस्य ऋ विद्वेषलः । अग्निर्वेषता । जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ॥

यं परिधिं पर्यधत्वा अग्नें देवपणिभिर्गुह्यमानः । तन्तं एतम-
 नुजोषं भराष्ट्रेषु मेत्थदंपचंतयाता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सर्वत्र व्यापक ईश्वर आप (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले वि-

छानों को स्तुतियों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होने हुए (यम्) उन गुणों के अनुकूल (जोषम्) प्रीति से सेवन के योग्य (परिधिम्) प्रभुता को (पर्य्यधत्थाः) निरन्तर धारण करते हैं (तम्) आप की उसकी (इत्) ही (एषः) मैं (अनुभरामि) अपने हृदय में धारण करता हूँ। तथा मैं (त्वत्) आप से (मा) (अपचेतयातै) कभी प्रतिफल न होऊँ और (अग्ने) हे जगदीश्वर! आप की सृष्टि में जो मैंने (प्रियम्) प्रीति बढ़ाने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीताम्) पाया है उस से भी कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिफल न होऊँ ॥ १ ॥ हे जगदीश्वर (ने) आपको सृष्टि में (एषः) यह (आग्ने) भौतिक अग्नि (देवपणिभिः) विष्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (यम्) जिस (परिधिम्) विद्यादिगुणों से धारण (जोषम्) और प्रीति करने योग्य कर्म को (पर्य्यधत्थाः) सब प्रकार से धारण करता है (तमिन्) उसी को मैं (अनुभरामि) उसके पीछे स्वीकार करता हूँ और उस से कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिफल नहीं होता हूँ तथा मैंने जो (आग्ने) इस अग्नि के समन्वय से (प्रियम्) प्रीति देने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीताम्) ग्रहण किया है उस को मैं (जोषम्) सर्वत्र प्रीति के साथ नित्य (अनुभरामि) क्रम से पाता हूँ ॥ २ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें श्लेपालङ्कार है—तथा पहिले अथय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रतिवस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उस को सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये जो मनुष्य उस की आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं। तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश वाह और वेग आदि गुण वाला मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उस से भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम २ व्यवहार सिद्ध करने चाहिये जिससे कि उत्तम २ सुख सिद्ध होयें। जो पूर्व मन्त्र से सृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उस को इस मन्त्र से व्यापकाव प्रकाश किया है ॥ १७ ॥

संज्ञयेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विरये देवा देवताः । स्वराट्त्रिभुव्य् एतद् ।
 चैवतः स्वरः ॥

यह वह कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

कर्मों में निरत होने वाले (निर्लभः) सब प्रकार से प्रकृतियों दुर्बलता और (इ-
 मम्) इस प्रकार (कालम्) सब देशों को जाने का उद्देश्य करने वाले (श्रेयाः)
 शिक्षाओं का (इत्तम्) करने वालों (संस्कारमयाः) धृष्टि पदायों के होम में छो-
 देने वाले (इत्तम्) ही मया (स्वच्छा) काले २ कालों में (यद्) प्राप्त होने और सुख
 कालों वाले किन्ना को प्राप्त हो कर (परिष्कार) प्रत्यक्ष (दर्शित) ज्ञान और कर्म-
 काल में (मादश्वम्) धार्मिकता ही जैसे ही लोगों को भी मान्यता करो। इन प्र-
 कार सब ज्ञान को कर्मकाल में उन यज्ञियों को प्रयोग करने हुए सुख लोग अपने
 विचार में उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाले किन्ना को प्राप्त होकर (वृद्धाः) यद्में और
 (प्रत्यक्षः) उत्तम कामों में स्थित होने वाले (शिव्ये) सब श्रेयाः) उत्तम २ पदा-
 र्थ (परिष्कारः) धारण करने या लोगों को धारण करने और उन को महायता से
 उन ज्ञान या कर्मकाल में यद्वा (मादश्वम्) दर्शित होओ ॥ १८ ॥

भाष्यार्थः—इत्यत्र अज्ञा वेदा हे कि जो धार्मिक पुरुषार्थों यज्ञिया के प्रकार वा
 उत्तम व्यवहार में वर्तमान हैं उन्हीं को यज्ञ २ सुख होने हैं जो पूर्व भ्रम में इत्यत्र और
 शैतिक अर्थ करते हैं उनमें ऐसे २ उपकार लेना चाहिये जो इन भ्रम में रहा है ॥१८॥
 पृताचीरुष इत्यन्य प्रकारः स एव । मत्तापावृषयेते । मुक्तिर्पक्षिच्छन्ः । पंचमःस्वरः ॥

अथ उतः यज्ञ सं यथा होता है सो बाले भ्रम में प्रकाशित किया है ।

पृताचीरुष इत्यन्य प्रकारः स एव । मत्तापावृषयेते । मुक्तिर्पक्षिच्छन्ः । पंचमःस्वरः ॥
पृताचीरुष इत्यन्य प्रकारः स एव । मत्तापावृषयेते । मुक्तिर्पक्षिच्छन्ः । पंचमःस्वरः ॥
पृताचीरुष इत्यन्य प्रकारः स एव । मत्तापावृषयेते । मुक्तिर्पक्षिच्छन्ः । पंचमःस्वरः ॥
पृताचीरुष इत्यन्य प्रकारः स एव । मत्तापावृषयेते । मुक्तिर्पक्षिच्छन्ः । पंचमःस्वरः ॥

पदार्थः—जो धार्मिक और वायु (धुर्व्या) यज्ञ के मुख्य अंग को प्राप्त कराने वाले
 (च) और (सुग्ने) सुखरूप (स्थ) हैं तथा (घृताचीरुष) जल को प्राप्त करानेवालों
 क्रियाओं को करानेवाले (स्थः) और सब जगत् को (पातम्) पालते हैं वे मुझ से
 अच्छी प्रकार उत्तम २ क्रिया कुशलता में युक्त हुए (मा) मुझे यज्ञ करने वालों को
 (सुग्ने) सुखमें (धत्तम्) स्थापन करने हैं जैसे यह (यज्ञ) जगदीश्वर (च) और
 (नमः) नम्र होना (ने) तेरे लिये (शिव्ये) कल्याण में (उपसतिष्ठस्व) समोपस्थित
 होने हैं वे जैसेही (मे) मेरे भी लिये स्थित होने हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनु-

घान करके (सुप्ते) सुखमें स्थित होता हूँ जैसे तुम भी उस में (संतिष्ठस्व) स्थित हो ॥ १९ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में तुमकोपमालंकार है ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! उसके परमाणु करने जगत् के पालन के निमित्त सुख करने क्रिया फाँड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूधे जानेवाले अग्नि वायु के गुणों से काय्यों को सिद्ध करो इस से तुमलोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझको ही वारं वारं नमस्कार करो ॥ १९ ॥

अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स पय । अग्निसरस्वत्यौ देवते । भुरिग्राहो ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैयतः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतमपाहिमाद्विद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै
प्राहि दुरघ्नन्पा अघिषक्षः पितुं कृणु सुपदायोनौ स्वाहा वाड्-
ग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अदब्धायो) निर्बिघ्न आयु देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अशीतमम्) चराचर संसारमें व्यापक यज्ञको (दुरिष्ट्यै) दुष्ट अर्थात् वेद विरुद्ध यज्ञसे (पाहि) रक्षा कीजिये (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखसे (पाहि) बचाएँ तथा (प्रसित्यै) भारी २ बन्धनों से (पाहि) अलग रखिये (दुरघ्नन्) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्तिसे (पाहि) बचाइये और (नः) हमारे लिये (अघिषम्) विष आदि दोषहित (पितुम्) अन्नादि पदार्थ (कृणु) उत्पन्न कीजिये तथा (नः) हलोगोंको (सुपदा) सुखसे स्थिरताको देने वाले घरमें (स्वाहा) (वाड्) वेदोक्त वाक्योंसे सिद्ध होने वाली उत्तम क्रियाओंमें स्थिर (कृणु) कीजिये जिससे हम लोग (यशोभगिन्यै) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मोंको सेवन करनेवालों (सरस्वत्यै) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवर्णों के लिये (स्वाहा) धन्यवाद या (संवेशपतये) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकोंमें प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करने वाले जो (अग्नये) आप हैं उनके लिये धन्यवाद और (नमः) नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् जगदीश्वर ! आपने जो यह (अदब्धायो) निर्बिघ्न आयुका निमित्त (अग्ने) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी (अशीतमम्) सर्वत्र व्यापक यज्ञको (दुरिष्ट्यै) दुष्ट यज्ञसे (पाहि) रक्षा करता है तथा (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखोंसे (पाहि) बचाता है

(प्रतिवन्दे) बहुरे दारिद्र्य के दन्धनों से (पाहि) बचाना है तथा (दुरन्तये) दुष्ट भोजन कराने-
वाली क्रियाओं से (पाहि) बचाना है और (न) हमारे (गिनुम्) अन्न आदि पदार्थ (अधियम्)
बिना आदि होय रतिग (हनु) कर देना है वन (नुपदा) सुख से स्थिति देने वाले घर अथवा
दूरसे उन्नीमें (स्वाहा) (वाद्) घेदोन याकों से निज होनेवाली क्रियाओं का हेतु है
हम लोग उन (संवेशयन्थे) पृथिव्यादि लोकों का पालनेवाले (अग्रये) भौतिक अग्नि को
प्रहण करके (स्वाहा) होम तथा उमके साथ (यभोर्भगिन्यै) (मरुत्यन्वै) उक्त गुणवाणी
घेदवाणी को प्राप्ति के लिये (स्वाहा) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ॥ २० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को जो सर्वव्यापक स्वयं प्रकार
से रक्षा करने उत्तम जन्म देने उत्तम कर्म करने और उत्तम विद्या या उत्तम भोग देने
वाला जगदीश्वर है उसी का नियम सदा करना योग्य है । तथा जो यह अपनी सृष्टि
में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्यलोक और विजुली रूप से प्रकाशित किया
है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त क्रिया हुआ स्वयं प्रकार से
रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है । जिस को कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त
घेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा स्वयं पदार्थों से अच्छी २ विद्या प्रकाशित होती है ये
स्वयं विद्वानों के स्वीकार करने योग्य तथा औरों को भी स्वीकार कराने योग्य हैं ।
इस मन्त्र में (नमः) धीर (यज्ञ) ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं ॥ २० ॥

घेदोऽसीत्यस्य धामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्द्वयता । भुरिन्नाह्वी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

सो जगदीश्वर कीसा है इस विषय का उपदेश भगले मन्त्र में किया है ।

घेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो घेदो भवस्तेन मर्षं घेदो
भूयाः । देवां गातुविदो गातुं घित्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव
यज्ञे स्वाहा चार्ते धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (देव) शुभगुणों के देने हारे जगदीश्वर (त्वम्) आप (वेदः) च-
राचर जगत् के जानने वाले (असि) हैं स्वयं
(येन) जिस विज्ञान वा वेद से
जानने वाले (अमर्ष-
मेरे लिये
(वेद) जानते हैं तथा
(घेदः) पदार्थों के
श से आप (मह्यम्)
() विज्ञान देने वाले
(गाः) विद्वानों ! जिस वेद
(गातुम्) विशेष ज्ञान
व को (इत) प्राप्त हो ।

है (मनसस्वप्ने) विज्ञान से पालन करने हारे (देव) सर्वजगत् प्रकाशक परमेश्वर आप ! (इमम्) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य (यज्ञम्) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होनेवाले यज्ञरूप संतार को (स्वाहा) क्रिया के अनुकूल (वाते) पवन के बीच (वाः) स्थित फाँजिधे हे विद्वानो ! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही को नित्य उपासना करो ॥ २१ ॥

भाषार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जिस वेद जानने वाले परमेश्वर ने वेद विद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी की वेद विद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित संपादन करना चाहिये क्योंकि वेदों के विज्ञान के बिना तथा उस में जो २ कहे हुए काम हैं उन के किये बिना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईश्वर देव है उसकी सब जगद व्यापक मान के नित्यधर्म में रहो ॥ २१ ॥

संबर्हिरेत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यज्ञ में चढ़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किस के साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

संबर्हिरेत्याथ हविषां घृतेन समादित्यैर्धसुभिः सम्मृशतिः ।
समिन्द्रो विष्पदेभिरंक्षां दिव्यं नभोगच्छतु यत्स्वाहा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (यत्) जय हवन करने योग्य द्रव्य को (हविषा) होम करने योग्य (घृतेन) घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (आवित्यैः) बारहमहीनों (वसुभिः) अग्नि आदि गार्हो नियास के स्थान और (मरुद्भिः) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को (समं काम्) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा (इन्द्रः) सूर्यलोक जो यज्ञ में छोड़ा हुआ (स्वाहा) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि (संगच्छतु) पहुँचाता है उस से (सम्) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (विष्पदेभिरः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाला (नभः) जल को (समं काम्) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ॥ २२ ॥

भाषार्थः—जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में घ.यु जल और सूर्य की किरणों के साथ मिल कर इधर उधर फैल कर वाताश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है इन से मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम साधनों से उत्तम तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २२ ॥

ब्रह्मणेनैव इति स पद । प्रजापतिः प्रजा । विष्णुर्ब्रह्मणे उक्तः । अग्निः स्वः ॥
 इति मे विम विमि पदार्थं छोड़ा जाता है जो स्वयं स्वयं में प्रकृत किया है ॥
 काश्याविमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कामैः त्वा विमुञ्चति तामैः
 त्वा विमुञ्चति । पौषागु ग्लेमां भागोऽग्नि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(कः) जीव मनुष्य या हनें यज्ञ यज्ञ का अनुष्ठानता पुरा (त्वा) उस
 पद को (विमुञ्चति) छोड़ता है यद्यपि कोई नहीं और जो कोई यज्ञ को छोड़ता है
 (त्वा) उस को (स) यज्ञ का पाठन करने द्वारा परमेश्वर मी (विमुञ्चति) छोड़
 देता है जो यज्ञ का करने वाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है (त्वा) उस
 को (कामैः) काम प्रयोजन के लिये अग्नि के दीप में (विमुञ्चति) छोड़ता है (तामैः)
 जिन में मनुष्य को हुए प्राप्त हो तथा (पौषागु) पृष्टि आदि गुणों के लिये (त्वा) उस
 पदार्थ समूह को (विमुञ्चति) छोड़ता है । जो पदार्थ स्व के उपकार के लिये यज्ञ के
 बीच में गहो पुनः किया जाता वह (रक्षताम्) बुद्ध प्राणियों का (भागः) भंड (भक्ति)
 होता है ॥ २३ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा भाङ्गा देने के योग्य व्यवहार को
 छोड़ता है वह मनुष्य गुणों से हांग हो कर और दुष्ट मनुष्यों से छोड़ा जाता हुआ सब
 प्रकार दुःखी रहता है । किन्ती ने किन्ती से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उस के
 लिये क्या होता है वह उत्तर देता है कि ईश्वर मी उस को छोड़ देता है । फिर वह
 पूछता है कि ईश्वर उस को किस लिये छोड़ देता है ? वह उत्तर देने वाला कहता है कि
 दुःख भोगने के लिये । जो ईश्वर का भाङ्गा को पाठता है वह गुणों से युक्त होने योग्य
 है और जो छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है ॥ २३ ॥

संघर्षसंश्रया श्रयिः स पद । तथा वेपता । विराद् विष्णुप् उन्वः । वैषधः स्वरः ॥
 एक यज्ञ से हम श्रेय किस किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं सो अगले मंत्र में
 प्रकाशित किया है ॥

संघर्षेसा पपसा सं तन्भिरगन्माहि मनमा सधिशिवेन । त्व-
 छांसुदध्रौ विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो पत्रिलिष्टम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हम लोग पुष्टपापी हो कर (पपसा) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित
 होते हैं उस वेद का पढ़ना वा (पपसा) जिससे पदार्थों को जानते हैं उन ज्ञान (म-
 नसा) जिससे सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तःकरण (शिवेन) सब दुःख और
 (तन्मिः) जिनमें विपुल सुख प्राप्त होते हैं । उन शरीरों के साथ (रायः) श्रेष्ठ

विद्या और धर्मवर्तिताज्य जाति धर्मों को (समगन्तहि) अच्छी प्रकार प्राप्त हो। तो (तुद्यमः) अच्छी प्रकार सुख देने और (त्यष्टा) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों को सूत्र करने वाला इन्धर तथा करके हमारे जिये (रायः) एक विद्या प्रति पदार्थों को (संपिद्यमानु) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे (तनयः) शरीर को (पत्) जितनी (मिलिष्टम्) व्यवहारों को सिद्ध करने की परिपूर्णता है उसे (मनुमाष्टु) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करें ॥ २४ ॥

भाषार्थः—गुरुओं को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पावन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति अर्थात् सब कामनाओं का सिद्धि प्राप्त करने का ध्यान करना चाहिए। तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नियम शुद्ध करना चाहिए ॥ २४ ॥

विषोऽस्य ऋषिः स एव । सर्वस्य पिप्पुर्वेदता । दिशोत्सारभय द्विष्य इत्यन्तास्य निबु-
वाचो तथाऽन्तरिक्षमित्यारभ्य द्विष्यः पर्यन्तास्माच्चो पंक्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वः ।

पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्यन्तास्य अगतीछन्दो निपादः स्वः ॥

यह यह तौनों लोक में विसृत हो कर तीन २ सुख का साधन होता है सो
अगले भेद में प्रकाशित किया है ॥

द्विवि विष्णुर्व्युक्तश्च जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो षोऽ-
स्मान्द्वेष्टि यं यं ययं द्विष्योऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्युक्तश्च त्रैष्टुभेन छ-
न्दसा ततो निर्भक्तो षोऽस्मान्द्वेष्टि यं यं ययं द्विष्यः । पृथिव्या
विष्णुर्व्युक्तश्च गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो षोऽस्मान्द्वेष्टि यं
यं ययं द्विष्योऽस्मादस्माद्वै प्रतिष्ठायां अगन्तुं स्वः संजयोतिबा-
भूम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(जागतेन) सब लोकों के लिये सुख देने वाले (छन्दसा) आह्लाद-
कारक अगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह (विष्णुः) अन्तरिक्ष में दृ-
रने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ (द्विवि) सूर्य के प्रकाश में (व्यक्तश्च) जाता है
यह फिर (ततः) वही से (निर्भक्तः) विभाग अर्थात् परमाणुरूप हो के सब जगत्
को सुप्त करता है (यः) जो विरोधी शत्रु (अस्मान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम
लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) तथा (यम्) दण्ड दे कर शिक्षा करे

योग्य जिस दुष्ट प्राणी से (ययम्) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (द्विष्मः) क्षमोक्ति करते हैं उस को उसी यज्ञ से दूर करते हैं । हम लोगों ने जो यह (विष्णुः) यह (त्रैष्टुभेन) तीन प्रकार के सुख करने और (छन्दसा) स्वतंत्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से भग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (अन्तरिक्षे) आकाश में (व्यक्रंस्त) पहुँचता है वह फिर (ततः) उस अन्तरिक्ष से (निर्भक्तः) अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सब संसार को सुख पहुँचाता है (यः) जो दुःख देनेवाला प्राणी (अस्मान्) सब के उपकार करनेवाले हम लोगों को (द्वेष्टि) दुःख देता है (च) तथा (यम्) सब को अहित करनेवाले दुष्ट को (ययम्) हम लोग सब के हित करनेवाले (द्विष्मः) पीड़ा देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं । हम लोगों से जो (विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (छन्दसा) अति आनन्द करनेवाले गायत्री छन्द से निरंतर किया जाता है (पृथिव्याम्) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में (व्यक्रंस्त) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है (ततः) उस पृथिवी से (निर्भक्तः) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है (यः) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (अस्मान्) हम लोग जो कि न्याय करनेवाले हैं उन से (द्वेष्टि) घैर करता है (च) तथा (यम्) जिस शत्रुजन से (ययम्) हम लोग न्यायाधीश (द्विष्मः) घैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं हम लोग (अस्मात्) यज्ञ से शोभा हुआ प्रत्यक्ष (अन्नात्) जो भोजन करने योग्य भक्ष है उस से (स्यः) सुखरूपी स्वर्ग को (भगम्) प्राप्त हों तथा (अस्यै) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उस के लिये (ज्योतिषा) विद्या और धर्म के प्रकारों से संयुक्त (समभूम) अच्छी प्रकार हों ॥ २५ ॥

भाष्यार्थः—जो २ मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग २ होकर सूर्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब दुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल, और पृथिवी आदि पदार्थ शिज्यविद्या सिद्धकला यंत्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य प्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुखसे विहार करते हैं । जो पदार्थ सूर्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप हो के अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा बहों से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार बार २ पुरुषार्थ से दोष दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना मुगलाना चाहिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु जल औषधि और भक्ष की शुद्धि के द्वारा आये-

ग्य बुद्धि और शरीर के पल धी गृहि सं अत्यन्त सुख को प्राप्त हो के विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये ॥ २५ ॥

स्वयंभूरित्यस्य ऋषिः स एव । ईश्वरो वैश्वानरः । उष्णिक् छन्दः । प्रथमाः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में सूर्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है ।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रुद्रिमर्षच्छ्रुंदा प्रसि वधो मे देहि । सूर्य-

स्थावृतमन्वाधर्तं ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप विद्वान् (भ्रेष्टः) अत्यन्त प्रशंसनीय और (रश्मिः) प्रकाशमान या (स्वयंभूः) अपने आप दोमंवाले (भसि) हैं तथा (वरुंदाः) विद्या देनेवाले (भसि) हैं इसी से आप (मे) मुझे (वरुंदाः) विज्ञान और प्रकाश (देहि) दीजिये मैं (सूर्यस्य) जो आप चरान्तर जगत् के आत्मा हैं उन के (भाव-तम्) निरंतर सज्जन जन जिस में वर्तमान होते हैं उस उपदेश को (भन्वावर्तं) स्वीकार कर के वर्तता हूँ ॥ २६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर और जीव का कोई माता या पिता नहीं है किन्तु यही सब का माता पिता है तथा जिस से यह के कोई विज्ञान प्रकाश की विद्या देनेवाला नहीं है । जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही को आज्ञा में वर्तमान होना चाहिये वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अधधिकार और व्यवहार विद्या का हेतु है जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्याग्निर्वैश्वानरः । पूर्वार्द्धे निचृत्पत्किञ्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । उत्तरार्द्धे गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या २ सिद्ध करमा चाहिये सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्नें गृहपते सुगृहपतिस्त्वर्षाऽग्नेहं गृहपतिना भूयासथ सु-
गृहपतिस्त्वं वर्षाऽग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थुरि णौ गार्हपत्या-
नि सन्तु शतथ हिमाः सूर्यस्थावृतमन्वाधर्तं ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर और विद्वान् (त्वम्) आप (सुगृहपतिः) ब्रह्मांड शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करने वाले (भसि) हैं उस (गृहपतिना) उक्त गुणवाले (त्वया) आप के साथ मैं (सुगृहपतिः) अपने घर का उत्तमता से पालन करने द्वारा (भूयासम्) होऊँ हे पर-

मेधर विद्वान् वा (मया) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला (गृहपतिना) धर्मान्ना और पुत्रार्थं मनुष्य हूँ उस भुता से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करनेहारे (भूयाः) इजिथे इसी प्रकार (नौ) जो हम स्त्री पुरुष घर के पति हैं सो हमारे (गार्हपत्यानि) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं वे (गल्पूरि) जैसे निरालस्यता हो वैसे सिद्ध (सन्तु) हों इस प्रकार अपने व-संगान में वसते हुए हम स्त्री या पुरुष (सूर्यस्य) आप और विद्वान् के (आवृतम्) वसंगान अर्थात् जिस में अच्छो प्रकार रात्रि या दिन होते हैं उस में (शतहिमाः) सौ वर्ष या सौ से अधिक भी वसों ॥ २७ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में स्त्रे पालंकार है हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इस सब पदार्थों का स्थिति के योग्य संसाररूपी घरका निरंतर रक्षा करने वाला जागदी-श्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करनेवाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियतासे सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ २७ ॥

अग्ने प्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एष । अग्निर्वेवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अथ जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ।

अग्नें द्रवपते व्रतमंचारिपुं तदंशकं तन्मेऽराधि । इदमहं पृषा-

स्मि स्तोऽस्मि ॥ ८२ ॥

पदार्थः—हे (द्रवपते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (अग्ने) सत्य-स्वरूप परमेश्वर ! आपने जो वृषाकारके भेरे लिये (व्रतम्) सत्यलक्षणसे प्रसिद्ध निय-मोंसे युक्त सत्याचरण व्रत को (अराधि) अच्छो प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अ-पने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊँ (अचारिपुम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छो प्रकार कर सकूँ वैसे मुझको कौ-जिथे जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है उसी को भोगता हूँ अथ भी जो मैं जैसा कर्म करनेवाला (अस्मि) हूँ वैसे कर्म के फल भोगनेवाला (अस्मि) होता हूँ ॥ २८ ॥

भाषार्थः—मनुष्य को वहाँ निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूँ वैसेही परमेश्वर का व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगता सब प्राणी अपने कर्मसे सिद्ध फलको कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥ २८ ॥

अग्नेये इत्यस्य ऋषिः स एष । अग्निर्वेवता । स्वरदाहारीमनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ संसारो अग्नि और चन्द्रमा केने गुणवाले हैं सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

अग्नये कव्ययाहनाय स्वाहा सांभाय पितृमते स्वाहा । अपह-
ता अमुरा रक्षांसि वेदिपदः ॥ २९ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि (कव्ययाहनाय) विद्वानों को दित देने
कर्मों की प्राप्ति कराने तथा (अताये) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थानसे दूसरे
स्थान को पहुँचानेवाले भौतिक अग्नि का ग्रहण करके सुखके लिये (स्वाहा) वेदवाणी
से (पितृमते) जिस में वसंत आदि ऋतु पालनके हेतु होने से पितरके संयुक्त होते हैं
(सोमाय) जिससे ऐश्वर्यों की प्राप्ति होते हैं उस सोमलताको लेके (स्वाहा) अ-
पने पदार्थों को धारण करनेवाले धर्म से युक्त विधान करके जो (वेदिपदः) इस पृ-
थिवी में रमण करनेवाले (रक्षांसि) औरों को दुःखदायी स्वार्थजन तथा (अमुराः)
दुष्ट स्वभाववाले मर्त्य हैं उनको (अपहताः) विनष्ट करदेना चाहिये ॥ २९ ॥

भाषार्थः—विद्वानों ने युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उन-
के लिये उत्तम २ कार्यों की प्राप्ति करनेवाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य क-
रना चाहिये कि जिससे संसारके उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा
दोषों की निवृत्ति होजाय ॥ २९ ॥

भेरुपाणोत्पत्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता । भुरिकुपंक्तिच्छन्दः । पंचमः स्वरः ।

उक्त असुर कौसे लक्षणोंवाले होते हैं सो अगले मंत्रमें प्रकाश किया है ।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना अमुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।

परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाल्लोकात्पणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(ये) जो दुष्ट मनुष्य (रूपाणि) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों
में विचारें हुए भावों की (प्रतिमुञ्चमानाः) दूसरे के सामने छिपाकर विपरीत भावों के
प्रकाश करनेवाले (अमुराः) धर्मको ढाँपते (सन्तः) हैं (स्वधया) पृथिवी में उहाँ
तहाँ (चरन्ति) जाते आते हैं तथा जो (परापुरः) संसार से दलदले अपने सुखकार्य
कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने (निपुरः) और दुष्ट स्वभावों की परि-
पूर्ण करने वाले (सन्तः) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते
हैं (तात्) उन दुष्टों को अग्नि जगदीश्वर (अस्मात्) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से
(प्रणुदाति) दूर करे ॥ ३० ॥

भाषार्थः—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन वचन और शरीर से सुदृढ आचरण करते हुए
अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रह-
ण कर लेते हैं ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता और नोच योनियों में जन्म देता है कि वे

जीवापं नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरां घोराय नमो वः
पितरां मन्वष्ये नमो वः पितरः पितरो नमो घो गृहान्नः पितरो
दत्त सुगो वः पितरो देप्सै तयः पितरो दासः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वान् लोगो ! (रसाय)
विज्ञान रूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो
हे (पितरः) दुःख का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानो ! (शोपाय) दुःख और
शत्रुओं की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो । हे (पि-
तरः) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान कराने वाले विद्वानो ! (जीवाय) जिस से प्राण
का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) शील
धारण विदित हो । हे (पितरः) विद्या अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने वाले वि-
द्वानों ! (स्वधायै) अन्न पृथिवी राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये (वः) तुम को
हमारा (नमः) नम्रीभाय विदित हो । हे (पितरः) पाप और आपत्काल के निवार-
क विद्वान् लोगो ! (घोराय) दुःख विनाशक दुःख समूह की निवृत्ति के लिये (वः)
तुम को हमारा (नमः) क्रोध का छोड़ना विदित हो । हे (पितरः) श्रेष्ठों के पा-
लन करने वाले विद्वानो ! (मन्यवे) दुष्टाचरण करने वाले दुष्ट जीवों में क्रोध करने के
लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) सत्कार विदित हो । हे (पितरः) ज्ञानी वि-
द्वानो ! (वः) तुम को विद्या के लिये (नमः) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा
विदित हो । हे (पितरः) प्रीति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानो ! (वः) तुम्हारे
सत्कार होने के लिये हमारा (नमः) सत्कार करना तुम को विदित हो । आप लोग
(नः) हमारे (गृहान्) घरों में नित्य आओ और आकं रहो । हे (पितरः) विद्या
देने वाले विद्वानो ! (नः) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य (दत्त) देते रहो । हे
पिता माता आदि विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वः) तुम्हारे लिये जो २ (सतः) विद्य-
मान पदार्थ हैं वे नित्य (देप्स) हमें दें । हे (पितरः) सेवा करने योग्य पितृ लोगो !
हमारे लिये (दासः) इन घटनादिको ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में अनेकवार (नमः) यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार
प्रकाश करने के लिये धरा है जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त और शिशिर ये छः
ऋतु । रस शोष जीव अन्न कठिनता और क्रोध के उत्पन्न करने वाले होते हैं जैसे
ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं । इस से
मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उक्त २ पदार्थों से स्तुति करके उन से विद्या
के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ॥ ३२ ॥

वाधत्त इत्यस्य ऋषिः स पय । पितागो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

ऊँ पितागो को पया २ करना चाहिये जो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुण्डरीकजम् । गृहेह पुण्डरीकजम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—है (पितरः) विद्यादान से रत्न करने वाले विद्वान् पुण्डरीक (पथा) जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इत संसार वा हनारे कृत में अपने शरीर और आत्मा के फल को प्र.मं होके विद्या और पुण्डरीकयुक्त मनुष्य (अतत्) हो जैसे (गर्भम्) गर्भ के समान (पुण्डरीकजम्) विद्या ग्रहण के लिये फलों को माना धारण किये हुए (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (वाधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार कोजिये ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमात्कार है—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुण्डरीक और स्त्रियों को चाहिये कि विद्यार्थी कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें । जैसे कम २ ने गर्भ के बीच देह पड़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी २ शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा पालन करने योग्य हैं वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुण्डरीकयुक्त होकर सदा सुखी हों यह अनुष्ठान सर्वत्र करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ऊँ मित्यस्यर्षिः स पय । आपो देवता । भुरिगुणिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त पितर कौन २ पदार्थों ने करने योग्य हैं जो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

ऊँ ऊँ वहन्तीरमृतं घृतं पयः कालालं परिस्नुतम् । स्वधा स्थं तर्पयत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—है पुत्रादिको ! तुम (मे) मेरे (पितृन्) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को (ऊँ-जम्) अनेक प्रकार के उत्तम २ रस (वहन्तीः) शुद्ध प्राप्त करने वाले स्वादिष्टजल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करने वाले औषधि मिष्टादि पदार्थ (पयः) दूध (घृतम्) घी (कालालम्) उत्तम २ रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्नुतम्) रस से चूते हुए पके फलों को दे के (तर्पयत) तुम करो इस प्रकार तुम उन के सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधाः) पर धन का त्याग कर के अपने धन के सेवन करने वाले (स्थं) होओ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों के पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम जो हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं जैसे कि उन्हीं ने बाल्यावस्था वा विद्या दान के समय हम और तुम वाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सम्भार

करने योग्य है जिस से हम लोगों के ध्यान में विद्या का नाश और स्वप्नता ।
दोष कर्मों न प्राप्त हों ॥ ३४ ॥

इन्द्र ने इम दूसरे अध्याय में जो २ वेदि आदि यज्ञ के माधतों का घनाना, व-
ज्र का फल गमन या माधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्म
और इन्द्रियादि पदार्थों को शुद्धि, गुणों का भोग, वेद का प्रकाश, पुण्यार्थ का संघा-
न, युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, छेप का त्याग, 'अग्नि आदि
पदार्थों' को सघारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, इन्द्र
में प्रीति, अच्छे २ गुणों का विस्तार और सब को उत्पत्ति करना, वेद शब्द के अर्थ
का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुण्यार्थ का ग्रहण, उत्तम २
पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये गये पदार्थों का सोनों लोक में जान
आना, स्वयंभू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम
दुष्टों को निवारण, और जिन जिन का सेवन करना कहा है उन २ का सेवन मनुष्यों
को प्रीति के साथ करना अवश्य है इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वि
तीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥



अथ तृतीयोध्यायः प्रारभ्यते ॥

विद्यानि देव सयितदुरितानि परांसुष । पद्भद्रं तन्न आसुष ॥ १ ॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्यांगिरस ऋषिः । अग्निर्वेद्यता । गायत्री छन्दः ।

पद्भजः स्वरः ॥

अथ तीमरे अध्याय के पहिले मंत्र में भौतिक अग्नि का क्रिस २ काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

**समिधाग्निन्दुषस्पत घृतैषोध्यतातिंधिम् । आस्मिन्ह्रुवा जुं-
होतन ॥ १ ॥**

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम (समिधा) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घों भादियों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (योधयत) उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम्) अतिथि को अर्थात् जिस के आने आने वा निवासका कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अग्नि का (दुषस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (ह्रुवा) सुगंध कस्तूरी केसर आदि, मिष्ट गुड़ शकर आदि पुष्ट घों दूध आदि रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुद्दूचों आदि ओषधों इन चार प्रकार के शाकल्प को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में पाचकलुप्तोमालंकार है जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन अन्न जल यज्ञ और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायंत्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन घों, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल को शुद्धि वा यानों को रचना नित्य करनी चाहिये ॥ १ ॥

सुसमिधायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः । अग्निर्वेद्यता । गायत्रीछन्दः । पद्भजः स्वरः ॥

किरः यह भौतिक अग्नि कैसा है क्रिस प्रकार उपयोग करना चाहिये

इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सुसमिधाप शोचिषं घृतन्नीमज्जुहोतन । अग्नये जातयेदसे ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (शोचिं) शुद्ध क्रिये हुए दोषों को निवारण करने वा (जातयेदस्ते) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन, आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (तीव्रम्) सब दोषों को निवारण करने में तीव्रण स्वभाव वाले (घृतम्) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (जुहोतान) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को इस प्रवृत्तित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वा शुद्ध क्रिये हुए पदार्थों को गेर कर दृष्ट सुधों को सिद्ध करना चाहिये ॥ २ ॥

तत्त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की निज्य वृद्धि करना चाहिये इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वां समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचापविष्टय ॥३॥

पदार्थः—हम लोग जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (पविष्टय) पदार्थों के भेद करने में अतिबलवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रकाश करता है (त्वा) उस को (समिद्धिः) काष्ठादि वा (घृतेन) घी आदि से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों की जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है यह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि साधनों से सेवन करके निरन्तर वृद्धि युक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

उपत्त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

फिर यह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

उप त्वाग्नें हविष्मतीर्घृतार्चीर्वन्तु हर्षत । जुपस्व समिधो

मम ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ कर्म करने हे मनुष्यो जो (हर्षत) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ करने वाले मेरे (समिधः) लकड़ी घी आदि पदार्थों को (जुपस्व) सेवन करता है जिस प्रकार (तम्) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ (वन्तु) प्राप्त हों वैसे तुम (हविष्मतीः) श्रेष्ठ हविष्युक्त (घृतार्चीः) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन संचित करो ॥ ४ ॥

भाषार्थः—मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों को आहुति छो-

भूमिः पृथिवींश्च भूमिः पृथिवींश्च चरिष्णा । तस्यांस्ते पृ
थिवि देवयजनि पृष्टुःस्निमंशुःदमृताःप्रायादधि ॥ ५ ॥

पदार्थः- भू (अक्षायाः) अक्षय योन्व जल के लिये (भूसा) विभु सर्वांस्ते-
शब्दों से (पृथिवी) आकाश में सूर्य के समान (चरिष्णा) अन्ते २ गुणों से (पृथि-
वी) दिग्बुध भूमि के गुण (ते) प्रकाश या (तस्याः) अक्षय अर्थात् आकाश
गुण लोका में रहने वाली (देवयजनि) देव अर्थात् विज्ञान लोग जहाँ पढ़ा करते हैं
या (पृथिवी) भूमि के (पृष्टुः) पृष्ट के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) भन्नादि (स्वः)
दिग् सर्वांस् प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक उन से अर्थात् रहने तथा (अमृताम्) यद्य आदि
स्य शक्तों की भक्षण करने वाले (अग्निम्) अग्नि के (आदधि) स्थापन क-
रता हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थः - इत अक्ष में ही उपमात्प्राप्त है । हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन
लोकों को उपकार करने का अपना ज्योति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उच्च २ गुणों
से पृथिवी के समान अपने २ लोकों में निकट रहने वाले स्वयं हुए अग्नि को कार्य की
विधि से लिये फल के साथ उपयोग करो ॥ ५ ॥

आर्याभिव्यम् संपरंशुः कद्रुः प्रथिविः । अग्निर्देवता । गायत्रोच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ अग्नि के निर्मित से पृथिवी का समण होता है इत विषय को अगले
गन्ध में प्रकाशित किया है ॥

आगद्गैः पृथिवीरक्ष्मीदसंदन् मातरंस्वुरः । पितरंश्च प्रथन्त्स्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः-- (अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालन क-
रनेवाले (स्वः) सूर्यलोक के (पुरः) आगे २ या (मातरम्) अपनी योनिरूप ज-
लों के साथ सहवत्समान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृथिवी) अंतरिक्ष अर्थात्
आकाश में (आगमीन्) चारों तरफ घूमती है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिम मे यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्तसे उत्पन्न हुए अंतरिक्ष या अपनी रक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणोंसे सब की रक्षा करनेवाले सूर्य के चारों तरफ क्षण २ घूमती है इसी से दिनरात्रि शुषल वा वृष्ण पक्ष ऋतु और अयन आदि काल विभाग काम से संभय होते हैं ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षस्य सर्पराज्ञो ऋद्रुद्रपिः । अग्निर्व्यता । गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
वह अग्नि कैसा है इस विषयका उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यंखणन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (अस्य) इस अग्नि की (प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच ऊपर जानेवाले वायु से (अपानतां) नीचे को जानेवाले वायु को उत्पन्न करती है (रोचना) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली (अन्तः) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में (चरति) चलती है वह (महिषः) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (दिवम्) सूर्य लोक को (व्यख्यत्) प्रगट करता है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जाना चाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्य के अंतःकरण में रहनेवाली जो अग्नि की कांति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण अपान अग्नि और प्रकाश आदि क्षेत्रों के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥ ७ ॥

त्रिंशद्दामेवस्य सर्पराज्ञो ऋद्रुद्रपिः । अग्निर्व्यता । गायत्री छन्दः । पङ्कजः । स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

त्रिंशद्दाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरहं युभिः ॥ ८ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि (युभिः) प्रकाश आदि गुणों से (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (त्रिंशत्) अंतरिक्ष आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीसरे (धाम) स्थान हैं उनको (विराजति) प्रकाशित करता है उस (पतङ्गाय) चलने से लाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन विद्वानों को (अहं) अच्छे प्रकार (वाक्) वाणी (धीयते) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहनेवाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश या श्रवण नित्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

अग्निस्त्वित्यस्य प्रजापतिक्रोपिः । अग्निस्सूर्यो देवते । पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ज्योतिस्त्वित्यस्य याजुषो वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि और सूर्य को से हैं इत विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्निस्त्वित्यस्य ज्योतिर्वच्योऽज्योतिर्वच्यः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्वच्योऽज्योतिर्वच्यः स्वाहा । अग्निर्वच्योऽज्योतिर्वच्यः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्वच्योऽज्योतिर्वच्यः स्वाहा । ज्योतिर्वच्योऽज्योतिर्वच्यः स्वाहा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अग्निः) परमेश्वर (स्वाहा) रात्रि कथन करने वाली वाणी को (ज्योतिः) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करने से सब मनुष्यों को लिये विद्या को देता है इसी प्रकार (अग्निः) जो प्रसिद्ध अग्नि (ज्योतिः) शिल्पविद्या साधनों को प्रकाश को देता है (सूर्यः) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (ज्योतिः) सब को आत्माओं में प्रकाश या ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि (स्वाहा) मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो बना हो योले । तथा जो (सूर्यः) अपने प्रकाश से प्रेरणा या हेतु सूर्यलोका (ज्योतिः) मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है (अग्निः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों को लिये (वच्यः) सब विद्याओं को अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है । तथा जो (ज्योतिः) विजुलीरूप से शरीर वा द्रव्याण्ड में रहने वाली अग्नि (वच्यः) विद्या और वृष्टि का हेतु है (सूर्यः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर सब मनुष्यों को लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (वच्यः) सकल विद्याओं का प्रकाश और (ज्योतिः) विजुली, सूर्य, प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) सूर्यदेव को भी (वच्यः) शरीर और आत्माओं को बल का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) प्राणवायु (वच्यः) सकल विद्या को प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और (ज्योतिः) प्रकाशरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हयन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है यही परमात्मा सब मनुष्यों का उपास्य देव और भौतिक अग्नि कार्यासिद्धि का साधन है ॥ १ ॥

भाषार्थः— स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मंत्र में द्रव्य किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने स्वामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सब जगत् को उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उन में से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्यादि का प्रकाश करते हैं ॥ १ ॥

सञ्ज्ञितस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पृथग्निः स्यात्प्रित्ताराद्धस्य सूर्यश्च देवते । पृथग्निः
 स्य गापद्युत्तराद्धस्य भुविगायत्री च छन्दः । पङ्कजः । स्वरः ॥
 भौतिक अग्नि और सूर्य के दोनों किस को सच्चा से वर्तमान है इस विषय का उपदेश
 अगले मंत्र में किया है ॥

सज्जदेवेन सवित्रा सज्जरात्रेन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वा-
 हा । सज्जदेवेन सवित्रा सज्जरूपसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्या वेतु
 स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सब जगत् को ज्ञान देने वा (सवित्रा) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर को उत्पन्न किये हुए जगत् के स (सज्जः) तुल्यवर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत विजुली युक्त (रात्र्या) अंधकाररूप रात्रि के साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हुआ (वेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होता है इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन) सब को प्रकाश करने वाले वा (सवित्रा) सब के अंतर्गामी परमेश्वर को उत्पन्न वा (इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाशसे युक्त (उपत्ता) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के स (स्वाहा) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ च होकर हवन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशांतरों में पहुंचाता है उसी से सब व्य-
 हार सिद्ध करें ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुमलोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है यह इसी की स-
 चा से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूपसे रात्रि के व्यवहारी
 को सिद्ध करता है इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के
 प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्ध करने द्वारा है इसको जानो ॥ ११ ॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्वेता । निचृद्गायत्रीछन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है ॥

उपप्रयन्तोऽध्वरं मन्त्रं षोचेमाग्नये । अरे अस्मे च शृ-
 पवते ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अध्वरम्) गियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए हम
 लोग (अस्मे) जो हम लोगों के (अरे) दूर वा (च) निकट में (शृपवते) यद्यार्थ स-
 त्यासत्य को सुननेवाले (मन्त्रं) विज्ञानरूप अंतर्गामी जगदीश्वर है इसी को लिये
 'मन्त्रम्' ज्ञान को प्राप्त करनेवाले मंत्रों को (षोचेम) नित्य उच्चारण वा विचार करें ॥ ११ ॥

अर्थः— मनुष्यों को वेदज्ञानों के साथ ईश्वर की शक्ति का एक अनुमान को करने की शक्ति मिलाने के लिए एक उपाय होकर एक उपायों की शक्ति का उपाय हुआ दर्शनान्त है इन कारण उनमें सब साक्षर अपने करने की उपाय भी न करने की शक्ति है यह मनुष्य परमात्मा की शक्ति है तब समोदर्य और जब नहीं जानना तब दुःख है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्त्ता विनयः शक्तिः । शक्तिर्विना । निवृत्त्यापनी छन्दः । पद्भ्यः स्वरः ॥

यद्ये मन्त्र में अग्नि शक्त से ईश्वर और भौतिक अग्नि प्रकाश किया है ॥

अग्निर्मूर्त्ता विनयः कृत्वापतिः पृथिव्याऽभयम् । अपाश्च रतांश्च मि जिन्वति ॥ १२ ॥

पदार्थः— (अयम्) जो यह कार्य कारण से प्रत्यक्ष (ककुत्) मय से बड़ा (मूर्त्ता) मय के ऊपर विराजमान (शक्तिः) जगदीश्वर (विनयः) प्रतापमान मूर्त्त आदि लोक और (पृथिव्याः) प्रतापमान पृथिवी आदि लोकों का (पतिः) पालन करता हुआ (अयम्) प्राणों के (रतांश्च) शक्तों के (जिन्वति) रचना को जानता है उमी को पूज्य मानो ॥ १ ॥ (अयम्) वह अग्नि (ककुत्) मय पदार्थों से बड़ा (विनयः) प्रकाशमान पदार्थों के (मूर्त्ता) ऊपर विराजमान (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों के (पतिः) पालन का हेतु होकर (अयम्) जलों के (रतांश्च) शक्तों को (जिन्वति) प्राप्त करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में श्लेषालंकार है— जो जगदीश्वर प्रकाश या अप्रकाशरूप को प्रकाश का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों को रचकर पालन कर के प्राणों में बल को धारण करता है तथा जो भौतिक अग्नि, पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर विजुलो जाठर आदि रूप से प्राण वा जलों के शक्तों को उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

उमा शक्तिर्द्राग्नी इत्यस्य भद्राजः शक्तिः । इन्द्राग्नी वेद्यते । इषराद् विष्टु-
पुच्छन्दः । धैयतः स्वरः ॥

मन्त्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है ॥

उमा शक्तिर्द्राग्नीऽआहुयध्याऽउमा राधंसः सह मादुषद्धयैः ।

उमा दाताराधिपाश्च रंशीणामुभा वाजंस्य सातये ह्ये वाम् ॥ १३ ॥

पदार्थः— मैं जो (उमा) शक्ति (दातारी) शक्ति देने के हेतु (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (वाम्) उन को (आहुयध्या) गुण जानने के लिये (ह्ये) ग्रहण करता हूँ

सज्जित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूर्वार्गस्य प्रियस्तराजस्य सूर्यं च देवते । पूर्वार्ग-
स्य गायत्र्युत्तरार्गस्य भुविगायत्री च छन्दः । षड्जः । स्वराः ॥
भौतिक अग्नि और सूर्य के दोनो दिन को सत्ता से वर्तमान है इस विषय का उपरो-
क्त अगले मंत्र में किया है ॥

सज्जदेवेन सच्चित्रा सज्ज राश्वेन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वा-
हा । सज्जदेवेन सच्चित्रा सज्जरूपसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु
स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सय जगत् को ज्ञान देने वा (स-
चित्रा) सय जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के स
(सज्जः) तुल्यवर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत विजुली
युक्त (राश्वता) अंधकाररूप रात्रि के साथ (स्वाहा) याणी को सेवन करता हुआ
(वेतु) सय पदार्थों में व्याप्त होता है इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन)
सय को प्रकाश करने वाले वा (सच्चित्रा) सय के अंतर्गामी परमेश्वर के उत्पन्न वा घ-
रण किये हुए जगत् के साथ (सज्जः) तुल्य वर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा
(इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाशसे युक्त (उषसा) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के सा-
(स्वाहा) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ व्या-
होकर हयन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशांतरों में पहुँचाता है उसी से सय व्य-
हार सिद्ध करें ॥ १० ॥

भाष्यार्थः—हे मनुष्यो ! तुमलोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है यह इसी की स-
त्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूपसे रात्रि के व्यवहार
को सिद्ध करता है इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सय मूर्तिमान् द्रव्यों का
प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्ध करने द्वारा है इसको जानो ॥ ११ ॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्वेचता । त्रिचुवगायत्रीछन्दः । षड्जः स्वराः ॥

अथ अगले मंत्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है ॥

उपप्रयन्तोऽध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च
पवते ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार ज-
लोग (अस्मे) जो हम लोगों के (आरे) दूर वा (च) निकट में (मन्त्रं)
स्वास्थ्य को सुननेवाले (अग्नये) विज्ञानस्वरूप अंतर्गामी
(अध्वरम्) ज्ञान

(भृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (अध्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र में लेकर अश्वमेध पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेषिते) प्रजा २ के प्रति (विभूयम्) व्याप्त स्वभाव वा (चित्रम्) आश्चर्यगुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (पितृन्तुः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) यही (धातुभिः) यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञक्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यज्ञिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है । उस को (इह) इस संसार में (धायि) धारण करने हैं ॥ १५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुरय करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥ १५ ॥

अस्य प्रजामित्यस्याऽवत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्क्त्याः स्यरः ॥

किर यह फीना है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अस्य प्रजानामनुशुनंथे शुकन्धुदुहेऽअन्हयः । पयः सहस्रसामृ-
पिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(अन्हयः) सब विद्याओं को व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसामृ) अमंग्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रजाम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से निय यत्तमान (युताम्) धारण में रहने वाली दीप्ति को जान कर (शुकम्) शुद्ध कार्यों को मिट्ट करने वाले (पयः) जल को (अनु, दुदुहे) अच्छे प्रकार पू ण करने हैं अर्थात् अग्नि में हवनदि करके घृष्टि से संसार को पूरण करने हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है जैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तनूप, इयस्यापसारऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चतः स्यरः ॥

अप ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इन विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

(राधसः) उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनों के भोग के (सह) साथ (मादयध्वं) आनन्द के लिये (वाम्) उन (उभा) दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूँ तथा (इषाम्) सब को इष्ट (रयीणाम्) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा (वाजस्य) अत्यन्त उत्तम अन्न के (सातये) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये (उभौ) उन दोनों (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ १३ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जान कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने २ कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इन से भिन्न मनुष्य नहीं ॥ १३ ॥

अयन्त इत्यस्य देवघातभरतावृषी । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी भगले मंत्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयन्ते योनिर्ऋत्विष्यो यतो जातोऽभरोचथाः । तज्जानन्नग्नुऽ-

आरोहाथां नो चर्द्धया र्विम ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (ते) आपकी सृष्टि में जो (ऋत्विष्यः) ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (आरोचथाः) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाशवाले लोकों के (आरोह) उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (नः) हमारे (र्विम) राज आदि धन को बढ़ाता है (तम्) उस अग्नि को (जानन्) जानने हुए आप उस से (नः) हमारे (र्विम) सब भूगोल के राज्यधादि से सिद्ध हुए धन को (चर्द्धयं) वृद्धियुक्त कीजिये ॥ १४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जो सब काल में यथायत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्यों की निधिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथायत् जानकर उनका उपयोग कर के सब कार्यों को सिद्ध करनी चाहिये ॥ १४ ॥

अयन्तिहेत्वस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुक्ति, विष्टुच्छन्दः । घैयताः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि केसा है इन विषय का उपदेश भगले मंत्र में किया है ॥

अयसिह प्रथमो धागि धातुमिहोत्ता यजिष्ठोऽअध्वरंरथीह्यः ।

यमपन्वानो भृगवो विरुहृषर्धनेषु शिश्रं शिभ्यं शिशो शिषो ॥१५॥

भाषार्थः—(यमपानः) विद्या सम्मान धर्मान् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देनेवाले

(शुक्रः) यज्ञविद्या के ज्ञानमें वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (यन्तु)
 सत्त्व प्रसार करने वाले योग्य (यत्पुणु) उपस्थाना अग्निगोत्र से लेकर अन्वयेष
 पर्यन्त धर्म शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विश्वेषिणे) प्रजा २ के प्राणि (विभूयम्) व्या-
 मन्वन्वत्वा वा (विभूयम्) अन्वय्यन्वत्वात्वे (यम्) जित् ईश्वर और अग्नि जो (वि-
 भूयन्तुः) विशेष कर के प्रकाशित करने हैं (अयम्) यज्ञ (धाम्निः) यज्ञक्रिया के
 धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञ-
 क्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यज्ञिष्ठः) उपस्थाना
 और शिल्पविद्या का हेतु है । उस को (इह) इस संसार में (धामि) धारण करने
 हैं ॥ १५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है- विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मु-
 रब करके उपान्वयेष और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा
 के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥ १५ ॥

अन्य प्रवृत्तियन्त्राऽध्वरारः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

किर यद् कर्मा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अस्य प्रस्तामनुचुर्गन्धे शुक्रान्मुदुहेऽअन्ह्यः । पयः सहस्रसामु-
 पिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(अन्ह्यः) सब विद्याओं को व्याप्त करने वाले विद्वान् लोग (अस्य)
 इस भौतिक अग्नि को (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) का-
 र्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रताम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नियत यत्मान (युताम्)
 धारण में रहने वाली शक्ति को जान कर (शुक्रम्) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करने वाले
 (पयः) जल को (अनु, दुदुहे) अच्छे प्रकार पू ण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनदि
 करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जेमें गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से
 नित्यपन जानना योग्य है जैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादि-
 पन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि
 करना चाहिये ॥ १६ ॥

तनूपाइत्यस्यापसारऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करने हैं इस विषय का उपदेश अगले
 मंत्र में किया है ।

तनूपा अग्नेऽसि तन्वम्मे पाह्यायुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि वच्यो
दा अग्नेऽसि वच्यो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्व्याऽऊनन्तन्मया ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (यत्) जिस कारण आप (तनूपाः) स

र्त्तिमान् पदार्थों के शरीरों को रक्षा करने वाले (अस्ति) हैं इस से आप (मे)
(तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (अग्ने) परमेश्वर जैसे मे

(आयुर्दाः) सव को आयु के देने वाले (अस्ति) हैं वैसे (मे) मेरे लिये (आयुः)
पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (देहि) दीजिये । हे (अग्ने) सर्व विद्यामार्ग

श्वर ! जैसे आप (वच्योः) सव मनुष्यों को विज्ञान देने वाले (अस्ति) हैं वैसे (मे)
मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक (वच्यः) पूर्ण विद्या को (देहि) दीजिये । हे (अग्ने)

सव कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर ! (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में (यत्) जि-
तना (ऊनम्) बुद्धिबल और शौर्य आदि गुण कम है (तत्) उतना अङ्ग (मे) मेरा

(आयुण) अच्छे प्रकार पूरण कीजिये ॥ १ ॥ (अग्ने) यह भौतिक अग्नि (यत्) जैसे
(तनूपाः) पदार्थों की रक्षा का हेतु (अस्ति) है वैसे जाठराग्नि रूप से (मे) मेरे

(तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा करता है (अग्ने) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि
(आयुर्दाः) सव के जीवन का हेतु (अस्ति) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (आयुः)

जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (देहि) देता है (अग्ने) यह अग्नि जैसे (वच्योः)
विज्ञानप्राप्ति का हेतु (अस्ति) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (वच्योः) विद्याप्रा-
प्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण क-
रने में हेतु भौतिक अग्नि है यह (यत्) जितना (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में

पुद्धि आदि सामर्थ्य (ऊनम्) कम है (तत्) उतना गुण (आयुण) पूरण करता
है ॥ २ ॥ १७ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में
सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों को पू-
रणता रखी है इसी से सब पदार्थ अपने २ स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार प-
रमेश्वर की मूर्ति में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के प-
रमेश्वर का मुख्य स्थापन है ॥ १७ ॥

अग्निदेवता । निचूर्माभी पट्त्रित्त्तन् ।
तन्वमः वच्यः ॥
अग्नीं भागले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है ॥

इन्धानाश्वा इगच्छे हिमां घुमन्तुधे समिधीमहि यगंस्वन्तो
 यगस्मृन्तुधे सहस्वन्तः सहस्मृन्तुधे । अग्नें सपरन्तुधम्भन्तुधमद्विधासो
 अदांश्चमम् । चित्रावसो भूमि ते पारमंशीय ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धनपाले (अग्ने) परमेश्वर ! (अध्वर्यावः)
 दम्भ सहस्वन्त और हिमादि दोपरहिन (परस्वन्त) प्रथमनाय पूर्ण अवस्थायुक्त (स-
 स्वन्तः) अत्यन्त सहन स्वभावसहित (अदांश्चमम्) मानने योग्य (सपन्तदम्भन्तुधम्)
 मनुष्यों के नाश करने (यगस्मृन्तुधे) अवस्था को पूर्ण करने (सहस्मृन्तुधे) सहन
 करने काने तथा (घुमन्तुधे) अत्यन्त प्रकाशकाले (तथा) आप का (इन्धानाः)
 पदेश और श्रवण करने हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्षतक या सौसे अधिक (हिमाः)
 मन्त्र कृतयुक्त (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाश करें या जीयें इस प्रकार करता
 हुआ मैं भी जो (ते) आप की कृपा से मय दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति)
 सुख को (अशोय) प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥ (अध्वर्यावः) दम्भ सहस्वन्त हिमादि दोपर-
 हिन (यगस्वन्त.) पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन करने वाले (तथा)
 इस (अदांश्चमम्) उपयोग करने योग्य (सपन्तदम्भन्तुधम्) आग्नेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या
 में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (यगस्मृन्तुधे) अवस्था को बढ़ाने (सहस्मृन्तुधे)
 सहन का हेतु (घुमन्तुधे) अच्छे प्रकार प्रकाश युक्त (अग्ने) कार्यों को प्राप्त करने
 वाले भौतिक अग्नि को (इन्धानाः) प्रज्वलित करते हुए हम लोग (शतम्) सौ
 वर्षपर्यन्त (हिमाः) हेमन्तकृतयुक्त (समिधीमहि) जीयें इस प्रकार करता हुआ मैं
 भी जो यह (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है (ते) उस के
 प्रकाश से दारिद्र्य आदि दु.खों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) अत्यन्त सुख को
 (अशोय) प्राप्त होऊँ ॥ १८ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ ईश्वर की उ-
 पासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दु.खों से पृथक् होकर उत्तम २ सु-
 खों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना
 किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसे अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥ १८ ॥

सन्त्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर भी परमेश्वर अग्नि कैसे है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

सन्त्वमग्ने सूर्यस्य चर्चसागथाः समृषीणां स्तुतेन । स-

स्मिप्रेण धाम्ना समहमागुंषा संवर्चसा सम्प्रजया सथ र
स्पोषेण रिमपीय ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर जो आप (सूर्यस्य) सबके अन्तर्गत प्राण वा (पौषाम्) वेद मन्त्रों के अर्थों को देखने व ले विद्वानों की जिस (संस्तुतेन) तु कराने (स्मिप्रेण) प्रसन्नता से मानने (संवर्चसा) विद्याध्ययन और प्रकाश करने (ध.म्ना) स्थान (समायुषा) उत्तम जीवन (सम्प्रजया) सन्तान वा राज्य और (स्पोषेण) उत्तम धनों के भोग पुष्टि क साथ (समगथाः) प्राप्त होते हो । उमां के साथ (अहम्) मैं भी सब सुखों को (समिपीय) प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥ जो (अग्ने) भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए स्यों के (समगथाः) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता है उस निन्द किये हुए अग्नि के साथ (अहम्) मैं व्यवहार के सब सुखों को (समिपीय) प्राप्त होऊँ ॥ ११ ॥

भा.पार्थ—इम मंत्र में स्लेपालङ्कार है—मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥
अधस्थेन्यस्य याज्ञयल्क्य ऋषिः । आपो देवता । भुविगृह्णीतुन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
अथ आले मंत्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधी आदि पदार्थों का उपदेश किया है ॥

अन्धुस्थान्धों वो भक्षीय महस्थ महोवो भक्षीगोर्जुस्थोर्जो-
पो भक्षीय रागस्पोर्पस्थ रागस्पोर्पों वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थ—जो (अन्धः) यदपान पृथ वा ओषधी आदि पदार्थ (राग) हैं (यः) उन के प्रकाश से मैं (अन्ध) पौर्य को पुष्ट कराने व ले अन्नों को (भक्षीय) ग्रहण करूँ । जो (महः) पड़े २ वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (राग) हैं (यः) उन से मैं (महः) पड़े २ क्रियाओं को गिद्धि करने करते करों का (भक्षीय) ग्रहण करूँ जो (ऊर्जम्) अन्न, दूध, गो, मिष्ट वा कण आदि इन करते पदार्थ (राग) हैं (यः) उन से मैं (ऊर्जम्) पारकमपुत्र इन का (भक्षीय) भोग करूँ और जो (रागस्पोर्पों) मन्त्रक गुणयुक्त पदार्थ (राग) हैं (यः) उन सबके सत्य भोग आदि पदार्थों के मैं (रागस्पोर्पों) उत्तम २ धनों के भोग का (भक्षीय) ग्रहण करूँ ॥ २० ॥
भा.पार्थ—मनुष्यों को जन्म के पदार्थ के गुण प्राप्त पूर्वक किया गी प्रशान्ता से प्रकाश को ग्रहण करने सब सुखों का भोग करना आदि ॥ २० ॥
अधस्थेन्यस्य याज्ञयल्क्य ऋषिः । आपो देवता । भुविगृह्णीतुन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

सर्व विद्वानों के सम्मुख के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया ॥

रथंती रमध्वमस्मिन्गानानांवाधेन गुण्डेस्मिस्तुंकेस्मिन् क्षये ।

इह्य स्त मापंगाग ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (रथंतीः) विद्या धन इन्द्रिय पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त अष्ट भोग (स्त) हैं वे (अस्मिन्) इय (योनी) जन्मस्थल (अस्मिन्गोष्ठे) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (अस्मिन्लोक) संवार वा (अस्मिन्स्थले) भ्रमण रथे हुए पशु में (रमध्वन्) रमण करें ऐसी इच्छा करने हुए तुम लोग (इह्य) इन्हीं में प्रवृत्त होओ । अर्थात् (मापंगाग) इन से दूर कभी मत जाओ ॥ २१ ॥

भाषार्थः—जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं वहाँ प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है । इस से मनुष्यों को ऐसी इच्छा करने चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नियम समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से प्रवृत्त न होयें ॥ २१ ॥

सः हितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निद्वयता । पूर्वार्जस्य भुरिगासुरो गायत्री । उपन्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्द । षड्जः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से विजुली के कर्मों को उपदेश किया है ॥

सुथं हित्तासिं विद्वस्वरूप्यूर्जा मा विंश गौपत्येन । उप त्वाग्ने द्वि-
वे दिव्ये दोषावस्तस्त्रिया ध्रुवम् । नमोभरन्त एमसि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) अपनी पुष्टि वा कर्म से जो (अग्ने) अग्नि विजुली रूप से सय पदार्थों के (संहिता) साथ (ऊर्जा) योग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त (विद्वस्वरूपा) सय पदार्थों में रूपगुणयुक्त (गौपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्तमान से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले (धग्ने) विद्युद्गुण अग्नि को (दिवेदिवे) ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन (उपमसि) समाप प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सय जगह मूर्तिमान् द्रव्यों में विजुलीरूप से परिपूर्ण सय रूपों का प्रकाश करने के लिये आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी को उपासना नियम करना चाहिये ॥ २२ ॥
राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निद्वयता । गायत्री छन्द । षड्जः स्वरः

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राजंतमध्वराणां गोपासूतस्य दीदिविम् । वर्धमानस्ये दमे ॥२१॥

पदार्थः—(नमः) अन्न से सत्कार पूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि या कर्म से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वतोषपर्यन्त पशु वा (गोपम्) इन्द्रिय वृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) अनादि सत्य स्वरूप कारण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने या (स्ये) अपने (इने) मोक्षरूप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (उरैमसि) नित्य प्राप्त होने हैं ॥ २ ॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्या साध्य वा वा (गोपाम्) पशुवादि की रक्षा करने (ऋतस्य) जल के (दीदिविम्) व्यवहार को प्रकाश करना वा (स्ये) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि व प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उस को (नमः) सत्किया से (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि और कर्म से (उरैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमसि इन छ. पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से जाननी चाहिये । परमेश्वर भादि रहित सत्कारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सत् व्यवहारों को सिद्ध करता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

स न इत्यस्य वैश्यामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । विटाङ् गायत्री छन्दः ।

पङ्क्तः रुक्वः ॥ -

अथ अगले मन्त्र से ईश्वर ही वा उपदेश किया है ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने मूपायनो भव । सचस्था नः स्वस्तये ॥२४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप हुपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र को लिये (पितेव) पिता अच्छे २ गुणों को सिपलाता है वैसे (नः) हमारे लिये (मूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये निरन्तर (सचरय) संयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमाालङ्कार है । हे सच के पालन करने वाले परमेश्वर जैसे हुपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ २ शिक्षा दे कर विद्या धर्म अच्छे २ स्तुत्याय और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों को निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ २ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥२४॥

अग्ने त्वमित्यस्य रुक्वपुर्नरिः । अग्निदेवता । मुरिबृहती छन्दः । मध्यमः रुक्वः ॥

फिर यह मंत्र है इस नियम का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नेःत्वष्ट्रोऽअन्तमऽङ्ग प्राता शिवां भेषावस्तुध्वः ।

घसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छां नक्षि घुमत्तमथ रुचिन्दाः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर । जो (त्वन्) धाव (य-
सुश्रवः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ फाँकों को देने (यत्तुः) सब प्राणी जिस में पास
करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में चलने हारे और (भक्षिः) विज्ञान प्रकाशयुक्त
(नक्षि) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्त-
मः) अन्तर्वासो या जायने के हेतु (प्राता) रक्षा करने वाले (यत्तुः) श्रेष्ठ गुण फर्म
और स्वभाव में होने (शिवाः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले (भेष) हृत्तिथे और
(उत) भी (नः) हम लोगों के लिये (घुमत्तमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रुचिम्)
विद्या चकार्यति आदि धनों को (अच्छ दाः) अच्छे प्रकार कीजिये ॥ २५ ॥

भा.वार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़ हर और हमारी
रक्षा करने वा सब जगहों के साधनों का देने वाला कोई नहीं है क्योंकि यही अपने
सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

तन्वेत्यस्य सुपनुर्क्रियः । अग्निदेवता । खराद् पृहती छन्द । मध्यम एवरः ॥

किर यह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वां शोचिष्ठ दीदियः सुस्मार्य नूनमीमहे सखिभ्यः ।

स नो वोधि श्रुधी ह्यमुकृत्पाणोऽघाग्नयः संमहमात् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदियः) स्वयं प्रकारमान धान्द
के देने वाले जगदीश्वर । हम लोग वा (नः) अग्ने (सखिभ्यः) मित्रों के (सुप.प)
सुख के लिये (तन्त्वां) धाव से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो स.प (नः) हम
को (वोधि) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो धाव (नः) हमारे (ह्यन्)
सुनने सुनाने योग्य अनुतिस्मद् यज्ञ को (श्रुधी) पूजा करके अग्ने कीजिये और (नः)
हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अघायताः) पापाचरणों से अर्थात् दूतने को पीड़ा
करने रूप पापों से (उग्य) अलग रतिये ॥ २६ ॥

भा.वार्थः—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परम-
ेश्वर की प्रार्थना करना और ऐसा ही अघरण भी करना कि जिन से प्रार्थना किया
गया परमेश्वर अघर्ष से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को अपने स्वयं से
पापों से दृष्ट्य कर देता है जैसे ही. उन मनुष्यों को भी पापों से दूर कर धर्म के करने
में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

कि जिन में हम लोग विद्या में प्रकाशित मर क्रियाओं में कुशल और प्राप्ति में विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों में युक्त हों ॥ २८ ॥

यो वेदानियम्य संघानिभिर्ऋषिः । पृथस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः म्यः ॥

किर यह ईश्वर ऐसा है हम विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो वेदान्वोऽर्चमायहा वसुधित्पुष्टिनर्जनः । स नः सिपक्तु य-

स्तुरः ॥ २९ ॥

पदार्थः— (यः) जो वेदभास्व का पालन करने (रैयान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अनीपहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने या कराने (वसुधित्) सब वस्तुओं को यथायत् जानने (पुष्टिनर्जनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के धन को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने या कराने वाला जगदीश्वर है (सः) यह (नः) हम लोगों की उत्तम २ कर्म या गुणों के साथ (सिपक्तुः) संयुक्त करे ॥ २९ ॥

भाषार्थः—जो हम संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन की पुरुषार्थ भी करना जैसे विद्या आदि धनवाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह या सुनकर कोई मनुष्य पृथक्स्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं होसता किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि रोगों को धन की वृद्धि या रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें जैसे यह धरतुओं को यथायत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थ विद्याओं को यथायत् जाने जैसे यह सब की पुष्टि को बढ़ाता है वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ाये जैसे वह अच्छे २ कायों को बनाने में शोघ्रता करता है वैसे मनुष्य भी उत्तम २ कायों को तयरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम २ गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २९ ॥

मान इत्यस्य सप्तधृतिर्वाणिर्ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । त्रिचूड्गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

किर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इड पद्मदित इत्यस्य श्रुतयन्धुर्ऋषिः । अग्निदेवता । विराड्, गायत्री छन्द ।

पड्, जः स्वरः ॥

फिर उस की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इड एह्यदितः एहिं काम्याऽएत । मयि षः कामधरणम्भवात् ॥२७

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी रूपा से (इडे) यह पृथिवी मुझ को राज्य का हें लिये (एहि) अवश्य प्राप्त हो । तथा अदिते सब सुखों को प्राप्त कराने वाली प्ररहित राजनीति (एहि) प्राप्त हो इसी प्रकार हे भगवन् ! अपनी पृथिवी और ए तोति के द्वारा (काम्याः) इष्ट २ पदार्थ (एत) प्राप्त हों तथा (मयि) मेरे बीच षः) उन पदार्थों को (कामधरणम्) स्थिरता यथायत् हो ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम २ पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उन प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिये कोई मनुष्य अच्छी या धुरी कामना के बिना क्षणभरंभी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इसलिये मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़ कर धर्मयुक्त व्यवहारों में जतनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः । बृहस्पतिदेवता । विराड्, गायत्री छन्दः । पड्, जः स्वरः

फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सोमान् स्वरणं कृणुहि प्रह्वणस्पते । कृचीयन्तं ष औशि-

जा ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (प्रह्वणस्पते) सनातन वेदशास्त्र के पाठन करने वाले जगदीश्वर भाग्य (औशिजाः) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के मुक्त उस मुदा को (कृचीयन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों में युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) शोधधियों के रसों का निशालने तथा विद्या की शक्ति करने वाला (कृणुहि) कीजिये । ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निरुक्तकार एक मुनि जो मे भी किया है सो पूरे लिये हुए संस्करण में देना देना ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में तुमोपकारकार है—पुत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो औशिजा जो अपने धर्म में उत्तम होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये विद्वान् किया जाता है । इन सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये

कि जिस से हम लोग विद्या से प्रकाशित सय क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । पृथरपतिर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
फिर यह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो रेवान्योऽर्चमीयहा वसुवित्पुष्टिर्ऋनः । स नः सिपक्तु य-
स्तुरः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अकत धनवान् (अमीयहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा फराने (वसुवित्) सय वस्तुओं को यथायत् जानने (पुष्टिर्ऋनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगद्गोश्वर है (सः) यह (नः) हम लोगों की उत्तम २ कर्म वा गुणों के साथ (सिपक्तुः) संयुक्त करे ॥ २९ ॥

भाषार्थः—जो इन संसार में धन है सो सय जगद्गोश्वर का ही है मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन को पुण्यार्थ भी करना जैसे विद्या आदि धनवाला परमेश्वर है वैसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुनकर कोई मनुष्य एगदस्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं होसका किन्तु अपने पुण्यार्थ से विद्या आदि रोगों को धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें जैसे यह वस्तुओं को यथायत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सय पदार्थ विद्याओं को यथायत् जाने जैसे यह सय की पुष्टि को पढ़ाता है वैसे मनुष्य भी सय के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर पढ़ाये जैसे यह अच्छे २ कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है वैसे मनुष्य भी उत्तम २ कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कामों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं वैसे परमेश्वर भी हम सय मनुष्यों को उत्तम पुण्यार्थ से उत्तम २ गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २९ ॥

मान इत्यस्य सतपुतिर्ऋषिः । प्रथमरपतिर्देवता । त्रिपुङ्गवो छन्दः ।
पङ्कजः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मानुः शश सोऽअरुणो भूर्तिः प्रणुद्धमर्त्यस्य । रक्षां णां ब्रह्मणः
स्पते ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर । आप की कृपा से (नः) हमारा वेदि-
घा (मा) (प्रणक्) कर्मा नष्ट मत हो और जो (अरुणः) दान आदि धर्मरहित प-
रधन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (भूर्तिः) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस है
(नः) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा उत्तम २ काम करना और बुरे २ काम छोड़ना तथा
क्रिस्ती के साथ द्रोह वा दुष्टों का संग भी न करना और धर्म बुरे २ काम छोड़ना तथा
उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥ ३० ॥

महिर्नामिष्यस्य सप्तधृतिर्वाणिर्कर्त्तव्यः । अदित्यो देवता । विराड्गायत्री
छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

किर भी उस की प्रार्थना किस क्रिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

महिं त्रीणामर्षोऽस्तु शुक्ष्मिन्नस्याग्निः । दुराधर्षुषर्हणस्य ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर । आप की कृपा से (मित्रस्य) बाहिर वा
भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा (अग्निः) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदा-
थों को धारण करने वाला सूर्यलोक और (ब्रह्मणस्य) जल (प्रीणाम्) इन तीनों के
प्रकाश से (नः) हम लोगों के (शुक्ष्म) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता
है वा (दुराधर्षम्) अति कष्ट से ग्रहण करने योग्य एव (महि) बड़े वेद विद्या की
(अयः) रक्षा (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (ब्रह्मणस्पते) (नः) इन दो पदों की धनु-
वृत्ति जाननी चाहिये । मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा भीतों की न्यायपूर्वक
रक्षा कर के यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नहि तेनामित्यस्य सप्तधृतिर्वाणिर्कर्त्तव्यः । अदित्यो देवता । निचुर्गायत्री
छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

किर यह फीमा है इन विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नहि तेनाममा पुन नाध्वंसु चारुण्यु । ईशो विपुत्रघ्नोऽसौ ॥ ३२ ॥

पदार्थः—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (नमः) उनके (अमा) गृह
(भाव्यु) मार्ग और (चारुण्यु) चोर, शत्रु, शीघ्र, व्यस्य आदिको निवारण करनेवाले

संप्राप्तो मे (जन) भो (अग्नेयः) पापकर्मों का कथन करने वाला (विपुः) शत्रु (नदि) नहीं किया होगा और (न) न उन को वदेश देने को समर्थ हो सकता उप ईश्वर ने उा घनादिद्विजनों के प्राप्त होने को मैं (इंभे) समर्थ होता हूँ ॥३२॥

भाषार्थः—जो घनादिना वा सग को उपकार करने वाले मनुष्य है उन को भय कहे गना होगा और शत्रुओं से नहीं मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते होयन्व वाऽपिः समधृतिर्ऋषिः । अदित्यो देवता । विशाङ्, गायत्री
छन्दः । षड्, जः स्वरः ॥

शादित्योका क्या २ कर्म है इम विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्षच्छन्तप-

जस्रम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—जो (अदितेः) नाशरहित कारणरूपों शक्ति को (पुत्रासः) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण सूर्यलोक पथन ओर जल आदि पुत्र हैं (ते) वे (हि) ही (मर्त्याय) मनुष्यों को मरने या (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरंतर (ज्योतिः) तेज या प्रकाश को (यच्छन्ति) देते हैं ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—जो वे कारण रूपों समर्थ पदार्थों से उत्पन्न हुए प्राण सूर्यलोक प.यु वा जल आदि पदार्थ हैं वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों को जीवन या मरने के लिये निमित्त होने हैं ॥ ३३ ॥

कदा घनेष्वस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या षड्, छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

यह इन्द्र कीसा है इम विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

कदा च न स्तरीरसि नेन्द्रं सशसि दाशुपे । उपोपेन्नु मधवन्भू-
पुऽइशु ते दानं देवस्य देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) मुख देनेवाले ईश्वर ! जो आप (स्तरोः) सुषों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुपे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्यके लिये (कदाचन) कभी (इत्) ज्ञान को (नु) शीघ्र (सशसि) प्राप्त (न) नहीं करते तो उस कालमें हे (मधवन्) विद्यादि धनवाले जगदीश्वर ! (देवस्य) कर्म फल को देने वाले (ते) आपके (दानम्) दिये हुए (इत्) ही ज्ञान को (दाशुपे) विद्यादि देने वाले के लिये (भूयः) फिर (नु) शीघ्र (उपोपृच्यते) प्राप्त (कदाचन) कभी (न) नहीं होता ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—जो जगदीश्वर कर्म के फल को देनेवाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

तत्सच्चित्तुर्धरेण्यम्भगां देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचो-

दयात् ॥ ३५ ॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तत्सच्चित्तुर्धरेण्यम्भगां देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचो-
दयात् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हम लोग (सच्चित्तुः) सब जगत् के उत्पन्न करने या (देवस्य) प्रकाश-मय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (यरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भगाः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाला (तेजः) स्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह अपनी कृपा करके (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम २ गुणकर्मस्वभाषों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने या सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यंत शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें जिस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे २ गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे २ गुण कर्म और स्वभाषों में प्रवृत्त करे इस लिये और प्रार्थना का मुख्य लिखांत यही है कि जैसी प्रार्थना करनी वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण भी करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परित इत्यस्य धामदेव ऋषिः । अग्निदेवता । निचूद्गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

परिते दूडभो राधेऽस्माँ २ ॥ अशोतु विश्वतः । येन रक्षसि
दाशुपः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (येन) जिस ज्ञान से (दाशुपः) विद्यादि दान करनेवाले विद्वानों की (विश्वतः) सब ओर से (रक्षति) रक्षा करते और जो (ते) आपका (दूडभः) दुःखसे भी नहीं नष्ट होने योग्य (राधः) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह (अस्मान्) आपकी आज्ञा को सेवक करने वाले हम लोगों को (परितः) मय प्रकार (अशोतु) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

काले काले में विद्यते ॥

भूमयः स्युः सुप्रजाः प्रजाभिः स्वाः सृष्टारो वीरः सृष्टायः
 वीरैः । नये प्रजास्ये पाहि जाः स्यं पृथुस्ये पाह्यभयं विनुस्ये पाहि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (नये) मूर्तायुक्त, मनुष्यो पर पृथा करने वाले परमेश्वर काय कृपा कर-
 के (सं) मेरी (प्रजास्यं) पृथु आदि प्रजा का (पाहि) रक्षा कीजिये वा (सं) मेरे (प-
 भयं) भी छोड़ें हाथों आदि पशुओं का (पाहि) रक्षा कीजिये हे (भयं) मनुष्य र-
 तिन जगदीश्वर ! आप (सं) मेरे (विनुस्यं) भय तो (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (शंस्य)
 मूर्ता करने योग्य ईश्वर ! आप को कृपा से मैं (भूमयः स्युः) जो प्रिय स्वरूप प्राण,
 बल का हेतु उदान तथा स्वयं स्वयं आदि व्यवहारों का हेतु ज्ञान व.सु है उन के साथ
 युक्त हा के (प्रजाभिः) अपने मनुकृत स्त्रो, पृथ, विद्या, धर्म, मित्र, भृत्य, पशु आदि
 पदार्थों के साथ (सुप्रजाः) उत्तम विद्या धर्म युक्त प्रजा सहित वा (वीरैः) शीर्य
 धर्म विद्या भद्रों के निवर्तण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (सुवीरः) उत्तम
 भूत वीर युक्त धीर (वीरैः) पुष्टि प्राप्त पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ
 (सुवीरः) उत्तम पुष्टि उत्पन्न करने वाले (स्युः) नियत होऊँ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा से पालन का आश्रय
 लेकर उत्तम २ नियमों से वा उत्तम प्रजा भूतना पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पाल-
 न करके निरन्तर सुखों को निरूप करना चाहिये ॥ ३७ ॥

भागन्मेत्यन्तासुग्निः पितः । अग्निदेवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्युः ॥

अथ अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

आगन्म सिद्धवेदसमुद्भव्यं वसुधित्तमम् । अग्नें मग्नाहृभि-
 शुम्नसुभि सह आ वच्छस्य ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (मग्नाहृ) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (वसुधित्तमम्) उ-
 पासना करने वाले हम लोगों के लिये (सुम्नसुभि) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा (सह)

उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब ओर से विस्तारयुक्त करते ही इसलिये हम लोग (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों के जानने वाले आप को (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥ १ ॥ जो यह (स-
म्राट्) प्रकाश होने वाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (अस्मभ्यम्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों के लिये (द्युन्नम्) उत्तम २ यश वा (सहः) उत्तम २ बल को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार विस्तार युक्त करता है उस (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों को सूर्य रूप से प्रकाश कर के प्राप्त कराने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों को जानने वाले अग्नि को हम लोग (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥२॥३८॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उस के अनुसार अनुष्ठान करने से कौर्त्तियश और बल का विस्तार करना चाहिये ॥ ३८ ॥

अयमग्निरित्यत्यागुर्ध्विर्ऋषिः । अग्निर्व्यता । भुरिभृहती छन्दः । मयमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजायां वसुवित्तमः । अग्नें गृहप-
त्नेऽभियुम्नमभि सह आर्यच्छस्व ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हं (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर जो ! (अयम्) यह (गृहपतिः) स्थानविशेषों के पालन हेतु (गार्हपत्यः) घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (प्रजाया वसुवित्तमः) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं सो आप जिस कारण (द्युन्नम्) सुख और प्रकाश से युक्त धन को (अभ्यायच्छस्व) अच्छा प्रकार दीजिये तथा (सहः) उत्तम बल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छा प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो (गृहपतिः) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (प्रजायाः) पुत्र मित्र स्त्री और मूल्य आदि प्रजा को (वसुवित्तमः) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा (गार्हपत्य) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (अयम्) यह (अग्ने) विजुली सूर्य वा प्रायशरूप से अग्नि है इस में यह (गृहपते) घरों का पालन करने वाला (अग्ने) अग्नि हम लोगों के लिये (अभियुन्नम्) सब ओर से उत्तम २ धन वा (सहः) उत्तम २ बलों को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त है ॥ ३९ ॥

—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना की आज्ञा में प्रवृत्त होते, प्रायः ही मित्र के लिये इस अग्नि को संयुक्त

अपमन्त्रिनः पूर्वाह्णो नृसिमान् पूर्वाह्णवर्जनः । अग्नें पूर्वाह्णाभि-
 मन्त्रयन्मि मरुत्तभा पञ्चमः ॥ ४० ॥

पदार्थः - (पूर्वाह्ण) अग्नी के पूजा करने में कवि कुमार (अग्ने) उत्तम से
 उत्तम पदार्थों के प्र.म करने वाले विद्वान् आप जो (अमम्) यह (पूर्वाह्णः) मरुत्तु-
 णों के पूजा करने में मन्त्रयन्मि (मन्त्रयन्) उत्तम = धनयुक्त (पूर्वाह्णवर्जनः) पूर्वाह्णों
 को करने वाला (मन्त्रिः) भौतिक कर्म है उससे हम लोगों के लिये (मन्त्रयुक्तम्) उ-
 त्तम = ज्ञान को प्राप्त करने वाले धन या (मन्त्रयन्) उत्तम = धर्म और भाग्य
 के धर्मों को (मन्त्रयुक्तम्) मरुत्तभा में विद्वान्मनुक. संज्ञितं ॥ ४० ॥

भाषार्थः - मनुष्यों को परमेश्वर की पूजा या अग्नें पूजा करने में भक्तिविद्या को सं-
 पादन करने, मनेक प्रकार के धन और बलों को विद्वान्मनुक. करना चाहिये ॥ ४० ॥

गृहा मंत्रयन्मनुमन्त्रिः । पान्मनुमन्त्रयन्मन्त्रिः । भार्गो पान्मन्त्रयन्मन्त्रिः ।
 पान्मन्त्रयन्मन्त्रिः ॥

अथ धर्मो मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है ॥

गृहा मा निर्वीक्ष मा पंचेष्वमूर्जं विभ्रंतु एषमि । ऊर्जं विभ्रं-
 तः सुपनाः सुमेधा गृहानैमिमनेमा मोद्मानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः - हे ब्राह्मणयाश्रम से मरुत्त विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमों तथा (ऊर्जम्)
 शीर्षादि पराक्रमों को (विभ्रतः) धारण किये धीर (गृहाः) प्रधानयाश्रम के अनन्तर
 अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करने हुए मनुष्यों ' तुम गृहस्थाश्रम को
 पचावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (मा विभ्रंतु) मत उरो तथा (मा
 पंचेष्वम्) मत वीरों तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग (गृहान्) गृहस्था-
 श्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (एषमि) निय प्राप्त होते रहें और (यः) तुम लोगों
 में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान (सुमेधाः) उत्तम ज्ञान (सुमेधाः)
 उत्तम बुद्धियुक्त (मनामा) विद्वान् से (मोद्मानः) हर्ष उत्साहयुक्त (ऊर्जम्) अनेक
 प्रकार के बलों को (विभ्रन्तु) धारण करता हुआ मैं अत्यंत सुरों को (एषमि) निरन्तर
 प्राप्त होऊँ ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम जो सेवन कर के युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव विचार्य बुद्धि और बल आदि गुणों को देख कर विवाह कर तथा शरीर आत्मा के बल को तिब्द कर और पुत्रों को उत्पन्न कर के सब साधनों से अच्छे २ व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥ ४१ ॥

धेपामित्त्वस्य शंयुर्ऋषिः । वःस्तुपतिरिद्वेषता । अनुष्टुप् छन्दः । गाधारः स्वरः ॥
फिर यह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

धेपांमृद्धयेति प्रवसन्वेपुं सौमनसो ब्रह्मः । गृहानुप ह्यगामहे ते
नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(प्रवसन्) प्रवास करता हुआ अतिथि (धेपाम्) जिन गृहस्थों का (मृद्धयेति) स्मरण करता व (येपु) जिन गृहस्थों में (वः) अधिक (सौमनसः) प्रीतिभाव है उन (गृहान्) गृहस्थों का हम अतिथि लोग (उपह्वयामहे) नित्य प्रति प्रशंसा करते हैं जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ लोग हैं (ते) वे (जानतः) जानते हुए धार्मिक (नः) हम अतिथि लोगों को (जानन्तु) यथावत् जानें ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्त्तालाप कर विद्या की उत्पत्ति करना चाहिये और जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उन की सेवा गृहस्थों के निरन्तर करनी चाहिये औरों की नहीं ॥ ४२ ॥

उपहृता इत्यस्य शंयुर्ऋषिः । वःस्तुपतिरिद्वेषता । मुरिञ्जगती छन्दः ।
निपादः स्वरः ॥

फिर उन गृहस्थाश्रम को कैसे तिब्द करने चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उपहृताऽह्म गावुऽउपहृताऽअज्ञावपः । अथोअम्रस्य कीलाहऽ
उपहृता गृहेषु नः । क्षमाप यः शार्स्य प्रपद्ये शिवधे द्रामधे शं-
तः शंयोः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(इह) इम गृहस्थाश्रम या संसार में (यः) तुम लोगों को (शास्त्र्यै)
 दृग् (न) हम लोगों को क्षे माय रक्षा को (गृहेषु) गियास करने योग्य स्थानों में
 जो (गायः) दूध देने वाली गौ आदि पशु (उपहृताः) समीप प्राप्त किये या (अ-
 जाषयः) भेड़ बकरी आदि पशु (उपहृताः) समीप प्राप्त हुए (धयो) इम के अन-
 न्तर (अन्नस्य) प्राण धारण करने वाले (कीलालः) अन्न आदि पदार्थों का समूह (उ-
 पहृताः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूँ
 सो (शंयोः) सब सुखों के साधनों से (शियम्) कल्याण या (शग्रम्) उत्तम सुखों
 को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊँ ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना यः उस की आज्ञा के पा-
 लने से गौ हार्या घोड़े आदि पशु तथा भोजन पाने योग्य स्वादु पदार्थों का संग्रह कर
 अपनी या औरों की रक्षा कर के ज्ञान धर्म विद्या और पुरुष से इस लोक या परलोक
 के सुखों को सिद्ध करना चाहिये किन्तु किसी पुरुषार्थ की आलस्य में नहीं रहना
 चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चकवर्ति राज्य आदि धनों की
 संग्रह कर उन को अच्छे प्रकार रक्षा कर के उत्तम २ सुखों को प्राप्त हों इस से अन्यथा
 मनुष्यों को वर्तना न चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्तने वालों को सुख कर्मों नहीं होता ४३
 प्रवासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । गायत्री छन्दः । पद्भुजः स्वरः ॥

गृहस्थ मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

प्रघासिनो हवामहं मरुतंश्च रिशादसः । करंभेणं सजापंसः । ४४ ।

पदार्थः—हम लोग (करंभेण) अधिष्ठात्वरूपी दुःख होने से अलग हो के (सजाप-
 सः) बराबर प्रीति के सेवन करने (रिशादसः) दीप या शत्रुओं को नष्ट करने और
 (प्रघासिनः) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुतः)
 यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कारपूर्वक नित्य प्रति बुलाते रहें ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को उचित है कि वैषक शरत्पारता और यज्ञ को सिद्ध करने
 वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा कर के उन से उत्तम २
 विद्या या शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥ ४४ ॥

यद्ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।

गायारः स्वरः ॥

किर अगले मंत्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है ॥

**यद्ग्रामे यदरण्ये यत्समाग्रां यद्विन्दिष्ये । यदेनश्चक्रमा यत्पमि-
 दन्तद्वयं यजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥**

पदार्थः—(वयम्) कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग (यत्) (ग्रामे) जो गृहस्थों से सेवित ग्राम (यत्) (अरण्ये) वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो (यत्सभायाम्) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हैं और (यत्) (इन्द्रिये) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हैं उस में स्थित होके जो (प- नः) पाप वा अधर्म (चकृम) करा वा करेंगे सो सब (अवयवजामहे) दूर करते रहें तथा जो २ उन २ उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण (च- कृम) करना योग्य है (तत्) उस २ को (यजामहे) प्राप्त होते रहें ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा के प्रचार कर के प्रजा के सुखों को उन्नति करने चाहिये ॥ ४५ ॥

मोषूण इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतो देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

ईश्वर और शूरधर के सहस्र से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उप-
देश अगले मन्त्र में किया है ॥

मो पूर्णोऽइन्द्राद्यं पृत्सु देवैरस्ति ह्रिष्मति शुष्मिन्नवगाः । मह-
द्विद्यया मीढ्वो गृन्वा ह्रिष्मन्तो मरुतो वन्दन्ते गोः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शूरधर ! आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (दे-
वैः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा
(मो) मत हनन कीजिये । हे (शुष्मिन्) पूर्ण बलयुक्त शूरधर ! (हि) निश्चय कर के
(चित्) जैसे (ते) आप को (महः) बड़ा (गोः) घेद प्रमाणयुक्त वाणों (मीढ्वः)
विद्या आदि उत्तम गुणों के सोचने वा (ह्रिष्मन्तः) उत्तम २ हवि अर्थात् पदार्थ यु-
क्त (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानों को (वन्दन्ते) गुणों का प्रकाश कर-
ती है जैसे विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश कर के
आनन्दित होते हैं जैसे जो (अथवा) यज्ञ करने वाला यज्ञमान है वह आप की सा-
क्षा से जिन (यव्या) उत्तम २ पप आदि दानों को भक्ति में दोग करना हे वे पदार्थ
सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमानकार है । जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना
कर भरते प्रकार सब शास्त्रों को समझ करके पुत्र में शत्रुओं को जोगर अथर्वी
राज्य को प्राप्त कर प्रजा का घटे प्रकार पालन करके बड़े मानन्द को भोग करते
हैं तब उत्तम राज्य होता है ॥ ४६ ॥

धक्रन्वित्यस्वागस्य ऋषिः । अतिर्देयता । पिराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
 कौन २ मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं इस विषय
 का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

धक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा संयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृ-
 त्वास्तुं प्रेतं सचाभुवः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मंगल के कराने वाली (वाचा)
 वेदघणों या अपनी पापों के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर संगी होकर (क-
 र्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अनोए कर्म को (धक्रन्) करते हैं वे (दे-
 वेभ्यः) विद्वान् या उत्तम २ गुण युक्तों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा)
 अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्णसुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़कर पुण्यार्थ ही में
 निरंतर रह के मूर्खपन को छोड़कर वेद विद्या से शुद्ध किई हुई धाणों के साथ सदा
 बतों और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें जो इस प्रकार के मनुष्य हैं
 वे ही अच्छे २ सुख युक्त मोक्ष या इस लोक के सुखों को प्राप्त हो कर आनन्दित होते हैं
 अन्य अर्थात् बालसी पुण्यमानन्द को कभी नहीं प्राप्त होते ॥ ४७ ॥

अथमृथेयस्वीर्णयाम ऋषिः । यज्ञो देयता । ब्राह्मचनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
 अथ अगले मंत्र में यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले यज्ञमान के कर्मों का
 उपदेश किया है ॥

अथभृथनिचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अथ देवैर्देवकृतमे-
 नोपासिपुमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुराणो देव रिपस्वाहि ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (अथमृथ) विद्या या धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुण) धैर्य से
 शब्दविद्या को पढ़ाने वाला विद्वान् मनुष्य जैसे मैं (निचुम्पुणः) ज्ञान को प्राप्त कराने
 या (निचेरुः) निरंतर विद्याका संग्रह करने वाला (देवैः) प्रकाश स्वरूप मन आदि
 ऋद्रियों से (देवकृतम्) किया या (मर्त्यैः) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से
 किये हुये (एतः) पापों को (अवाप्यसियम्) दूर कर शुद्ध होता हूँ जैसे तू भी
 (असि) हो हे । (देव) जगद्गुरु! आप हम लोगों को (पुराण्यः) बहुत दुःख देने
 या (रिपः) मारने योग्य शत्रु या पाप से (स्वाहि) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर
 कीजिये ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकनुष्टुभोपमात्मकार है—मनुष्यों को उचित है कि पापनी

निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर को प्रार्थना निरन्तर कर के जो मन पणो
या शरीर से पाप होते हैं उन से दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके
दुःख रूप फल को जान कर फिर दूसरो बार उस को कर्मो न करें किन्तु सब काल में
शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥ ४८ ॥
पूर्णादर्थित्यसौर्णवाम ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
यज्ञ में हवन क्रिया हुआ पदार्थ केला होता है इत विषय का उपदेश अगले
मंत्र में किया है ॥

पूर्णा दर्थि परा पत् सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽ-

इषमूर्जं शतक्रतो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—जो (दधि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली
(पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुती (परापत) होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्रा-
प्त करती या जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत)
फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जल रस को प्राप्त करती है उस से हे (शतक्रतो)
असंख्यपत कर्म या प्रज्ञा वाले जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम यज्ञ कराने और करने
वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्)
पराक्रमयुक्त वस्तुओं को (वस्नेव) दैश्यों के व्यवहारों के समान (विक्रीणावहै)
या ग्रहण करें ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है । जब मनुष्य लोग सुगन्धादि पदार्थ अ
में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि जल की शुद्ध करते हुए पृथिवी
आते हैं जिस से यष आदि ओषधी शुद्ध हो कर सुष और पराक्रम के देने वाली
ता है जैसे कोई वैश्यालोग रुपया आदि की दे ले कर अनेक प्रकारके अन्नादि पदार्थ
खरीदते चाँचते हैं वैसे सब हम लोग भो अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़ कर यष या
सुष्मा की खरीदते हैं खरीद कर फिर वृष्टि और सुष्मा के लिये अग्नि में हवन करते हैं
देहि म इत्यसौर्णवाम ऋषिः । इन्द्रो देवता । मुनिगुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में मन्व आश्रमा में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों
का उपदेश किया है ॥

देहि मे ददामि ते नि मे देहि नि ते दधे । निहारं च ह
मे निहारनिहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मित्र ! तुम (स्वहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहें वैसे (मे) मुझको यह वस्तु (देहि) दे या मैं (ते) तुझ को यह वस्तु (ददामि) देऊँ या देऊँगा तथा तू (मे) मेरा यह वस्तु (निधेहि) धारण कर मैं (ते) तुम्हारा यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूँ और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरासि) ले मैं (ते) तुझ को (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊँ (स्वहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से कहे अन्यथा ये व्यवहार निरुद्ध नहीं होते हैं ॥ ५० ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को खरना रखवाना या धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से हो करने चाहिये। जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हम को देना मैं यह नहीं देता तथा देऊँगा ऐसा कहे तो पता देना ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरा यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ जब मैं इच्छा करूँ तब तुम दे देना इसी प्रकार मैं तुम्हारा यह वस्तु रखा लेता हूँ जब तुम इच्छा करोगे तब देऊँगा या उसी समय मैं तुम्हारे पास आऊँगा या तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहिये। और ऐसे व्यवहारों को बिना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा या कार्यों की सिद्धि नहीं हाता और इन दोनों के बिना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

अक्षत्रित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पंक्तिरुच्छन् । पंचमः स्वरः ॥
उम यज्ञादिव्यवहार संन्यास होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अक्षत्रमीं मदन्तच्छत्रं प्रियाऽअधूपत । अस्तोपत स्वर्भानये ।

विप्रा नविष्टया मनी योजान्विन्द्रं ते हरीं ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी जो (ते) आप के सम्बन्धी मनुष्य (स्वर्भानयः) अपना ही दीप्ति से प्रकाश होने या (अविष्टया) औरों को प्रसन्न कराने वाले (विप्राः) विद्वान् लोग (नविष्टया) अयत्न नहीं (मतां) युद्ध से (हि) निरन्वय करके परमात्मा की (अस्तोपत) स्तुति और (अक्षत्रं) उत्तम २ यज्ञादि पदार्थों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) आनन्द को प्राप्त होने और उन्हीं के शत्रु या दुःखों को (न्यधूपत) शोष कषित करते हैं वैसे ही हम यज्ञ में (इन्द्र) हे सभापते ! (ते) आप के सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू (हरिं) अपने गुरु और पराक्रम की हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—इन मंत्र में उपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवोंन २ ज्ञान या क्रिया की वृत्ति करते रहें जैसे मनुष्य विद्वानों के समझ वः शान्ति के प-

तृतीयोऽध्यायः ॥

दने से नवीन २ बुद्धि नवीन २ क्रिया को उत्पन्न करते हैं जैसे ही सब मनुष्यों को-
उद्धान करें ॥ ५१ ॥

सुसंहशमित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वराः ॥
यह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुसंहशं त्वा घृगं मघं वन्धन्दिपीमहि । प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो
पांसि वञ्जाँ २ ॥ अनु योज्जान्विन्द्र ते हरीं ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम २ विद्यादि धनयुक्त (इन्द्र) विद्वान् यू (ययम्)
हम लोग (सुसंहशम्) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले (ते) आप की (नूनम्)
निश्चय कर के (वन्दिपीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगों से (स्तुतः) स्तुति किये
हुए आप (यशान्) इच्छा किये हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त करते हो और (ते)
अपने (हरी) बल पराक्रमों को आप (अनुप्रयोज) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त
कीजिये ॥ १ ॥ (ययम्) हम लोग (सुसंहशम्) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिताने
या (मघवन्) धन की प्राप्त कराने तथा (पूर्णवन्धुरः) सब जगत् के बन्धन के हेतु
(त्वा) उस सूर्यलोक की (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिपीमहि) स्तुति अर्थात्
इस के गुण प्रकाश करके (स्तुतः) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (यशान्)
उत्तम २ व्यवहारों की सिद्धि कराने वाले कामनाओं को (यासि) प्राप्त कराता है
(तु) जैसे (ते) इस सूर्य के (हरी) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होने हैं जैसे
आप हम लोगों को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणों को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार
प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भाषार्थ - इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—मनुष्यों को सब जगत् के
दित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और कामों की न करनी चाहिये ।
यद्यपि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करना है जैसे उपासना किया
हुआ ईश्वर भी भक्त जनों के आत्माओं में विज्ञान को उपपन्न करने से सब मनुष्यव्यवहा-
रों को प्रकाशित करता है इस में ईश्वर को छोड़ कर और किसी की उपासना करनी
नहीं करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

मनोन्विष्य वन्धुर्ऋषिः । मनोदेवता । मन्त्रिणादनिवृत्त्यायो छन्दः । पहलः स्वराः ॥
इस के भागे मन के उद्धान का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥
मनो न्वाहामहे नारायणः । सैन स्तोत्रं पिबुष्यां च मन्त्रभिः ॥ ५३ ॥
पदार्थः—हम लोग (नारायण) पुद्गलों के मन्त्र प्रशान्तकेय (स्तोत्रं) स्तु-

... (...) ... करने के लिये जन्म ... मनुष्यों के ... (...) ... के लिये ... के लिये ... (...) ... करने हैं ॥ ५३ ॥

भाष्यार्थः—मनुष्यों को मनुष्य जन्म ही ... के लिये ... के लिये ... करने हैं ... ॥ ५३ ॥

मन्वर्ग-वक्ष्यन् मनुर्मांसिः । मगो देवता । दिगाह् गापयो हन्द् । पङ्ज स्यर ॥

किं यह मन ईसा है इस विषय का उपदेश आगले मन्त्र में किया है ॥

आ नोऽप्यनु मनः पुनः क्रत्ये दक्षांग जीवसें उपोक्त्वा सृग्मि दृशे ॥५४॥

पदार्थः—(मनः) जो स्मरण करने वाला चित्त (स्योक्) निर्गम (सृग्मि) परमेश्वर सृष्टीकर्ता या प्राण की (दृशे) देखने या (क्रत्ये) उन्नत विद्या या उत्तम कामों की सृष्टि या (जीवसें) श्री पर्यं से अभिन्न जीने (वा) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये है यह (मनः) हम लोगों को (पुनः) बारम्बार जन्म २ में (आ) मर प्रकार से (पनु) प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

भाष्यार्थः—मनुष्यों को उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि या जन्म २ में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिस से मनुष्यजन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम २ धर्मों का भेदन कर सकें ॥ ५४ ॥

पुनर्न इत्यस्य मनुर्मांसिः । मगो देवता । तितृद्गायत्री हन्द् । पङ्जः स्वरः ॥

किं मन शब्द से बुद्धि का उपदेश आगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्नः पितरो मना ददांतु देव्यो जनः । जीवन् मातंथ सचे-
महि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्पादक या भक्त शिक्षा या विद्या की देकर रक्षा करने वाले पिता आदि लोग आपकी शिक्षा से यह (देव्यः) विद्वानों के बीच में उत्कृष्ट हुआ (जनः) विद्या या धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला पिछान् पुरुष (नः) हम लोगों के लिये (पुनः) इस जन्म या दूसरे जन्म में (मनः) धारणा करने वाली बुद्धि को (ददांतु) देवे जिससे (जीवन्) ज्ञानसाधन युक्त जीवन या (मातम्) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (सचेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—पितृन् माताः पिता अन्याय्यां' की शिक्षा के बिना मनुष्यों का उन सफल नहीं होता और मनुष्य भी उन शिक्षा के बिना पूर्व जीवन या कर्म के संयुक्त-रूपों को समर्थ नहीं हो सकते इस से सब काल में पितृन् माता पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के ब-लबले करें ॥ ५५ ॥

यसमिन्वस्य यन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । पद्भुजः स्वरः ॥
अथ सोम शब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥
यद्यथसोम यजे तद्य मनस्तनूषु विभ्रंतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥५६॥

पदार्थः—हे (सोम) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर (तब) आपकी (पूते) सत्यभाषण आदि धर्मों को अनुष्ठान में वर्त्तमान हो के (तनूषु) पड़े २ सुख-युक्त शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की बहङ्कारादि वृत्ति को (विभ्रतः) धारण करते हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले हो के हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त हों ॥ १ ॥ (तब) इस (सोम) सोमलता आदि ओषधियों के (पूते) सत्य २ गुण ज्ञान से संवन में (तनूषु) सुखयुक्त शरीरों में (मनः) चित्त की वृत्ति को (विभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्रराज्य आदि धन वाले होकर (ययम्) हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त हों ॥२॥५६॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के संवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥ ५६ ॥

पप त इत्यस्य यन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निबृदगुण्डुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
मन के लक्षण पहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥
पुप ते रुद्र भागः सह स्वस्वाम्बिकृष्णं तं जुषस्व स्वाहा । पुप
ते रुद्र भाग आस्वस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारी मनुष्यों को खलाने वाले पिद्वान् जो (ते) तेरा (पुपः) यह (भागः) संवन करने योग्य पदार्थ समूह है उसको तू (यन्बिकृष्णं) वेदघाणों या (स्वस्वा) उत्तम विद्या या क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) संवन कर तथा हे (रुद्र) पिद्वान् । जो (ते) तेरा (पुपः) यह (भागः) धर्म से तित्त बंश या (स्वाहा) वेदघाणों है उसका संवन कर और हे (रुद्र) पिद्वान् । जो (ते) तेरा (पुपः)

यह (आत्तुः) रोदने योग्य शस्त्र वा (पशुः) भोग्यपदार्थ है (तम्) उस को (जु-
पस्य) संवन कर ॥ १ ॥ जो (एषः) यह (रुद्र) प्राण है (ते) जिसका (एषः)
यह (भागः) भाग है जिस को (अग्निरया) वाणी वा (स्वला) विद्या क्रिया के
(सद्) साथ (जुपस्य) संवन करता वा जो (ते) जिस का (स्याद्वा) सत्य वा-
णीरूप (भागः) भाग है और जो इसके (आत्तुः) रोदने वाले पदार्थ वा (पशुः)
दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं । जिसका यह (जुपस्य) संवन करता है उसका संवन सब
मनुष्य सदा करें ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—जैसे भार्गव पूर्ण विद्यायुक्त अपनी पहिन
को साथ वेदादि शब्द विद्या को पढ़ कर आनन्द को भोगता है वैसे विद्वान् भी वि-
द्या को प्राप्त हो कर दुःखी होता है । जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्द विद्या से प्रिय आनन्द
दायक होता है वैसे उशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करने वाला होता है इन दो-
नों के बिना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो
सकता ॥ ५७ ॥

अथ रुद्रमित्यस्य यधुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराद् पंक्तिच्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में रुद्रशब्द से ईश्वर का उपदेश किया है ॥

अथ रुद्रमंदीमृष्यं देवन्त्वंस्पकम् । यथा नो वस्यसुस्करद्यथा
नः । श्रेयसुस्करद्यथा नो व्यषसायथात् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हम लोग (इत्ययकम्) तीनों काल में एक रस ज्ञानयुक्त (देवम्) देने
वा (रुद्रम्) दुष्टों को रलाने वाले जगदीश्वर की उपासना कर के सब दुःखों को
(अषादीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करे (यथा) जैसे परमेश्वर (नः) हम लोगों को
(यस्यसः) उत्तम २ वास करने वाले (अथ करत्) अच्छे प्रकार करे (यथा) जैसे
(नः) हम लोगों को (श्रेयसः) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (नः)
हम लोगों को (व्यषसायथात्) निश्चय वाले करे वैसे सुखपूर्वक निवास कराने वा
उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही को प्रार्थना करें ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—कोई भी मनुष्य ईश्वर को उपासना वा प्रार्थना के बिना सब दुःखों के
अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता । क्योंकि यही परमेश्वर सब सुख पूर्वक निवास वा उ-
त्तम २ सत्य निश्चयों को कराता है इस से जैसा उस की आज्ञा है उसका पालन वैसे
ही सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ ५८ ॥

भेजमसोत्यस्य यधुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । स्वरान् गायत्रो छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

किर यह परमेश्वर वैसा है इत विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

**भेषजमसि भेषजद्रव्येऽश्वाद्य पुरुषाय भेषजम् । मुखम्भेषाय
मेष्ट्यै ॥ ५९ ॥**

पदार्थः—हे जगदीश्वर । जो आप (भेषजम्) शरीर अन्तःकरण इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करने वाले (असि) हैं (भेषजम्) अथिद्यादि ह्यैयों को करने वाले (असि) हैं सो आप (नः) हम लोगों के (गये) गौ आदि (अश्व-
य) घोड़ा आदि (पुरुषाय) सब मनुष्य (भेषाय) मेढा और (मेष्ट्यै) भेड़ आदि को
स्त्रियों के लिये (सुखम्) उत्तम २ सुखों को अच्छी प्रकार दोजिये ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—किसी मनुष्य का परमेश्वर को उपासना के बिना शरीर आत्मा और
प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इस से उस की स्तुति प्रार्थना और
उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु
आदि के दुःखों को यज्ञ से निवृत्त कर के सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकमित्यस्य पतिष्ठ ब्रह्मिः । रुद्रो देवता । विराड् ब्रह्मा त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर यह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धना-
न्मृत्योर्मुक्षीय मामाऽमृतम् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामृतः ॥ ६० ॥**

पदार्थः—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्धयुक्त (पुष्टिवर्धनम्) शरीर आत्मा
और समाज के बल को बढ़ाने वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है उस की (य-
जामहे) निरन्तर स्तुति करें इस की रूपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा फल पक
कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग
भी (मृत्योः) प्राण वा शरीर के बियोग से (मुक्षीय) छूट जायें (अमृतात्) और
मौशरूप सुष से (मा) भ्रन्दारहित कभी न हों तथा हम लोग (सुगन्धिम्) उत्त-
म गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले (त्र्यम्बकम्) सब को
अप्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करें और इस के म-
नुष्य से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छू-
टकर अमृत के समान मिष्ट होता है । वैसे हम लोग भी (इतः) इस शरीर से (मु-
क्षीय) छूट जायें (मामृतः) मौश और अन्य जन्म के सुष और मृत्युपरम फल से (मा)
पृथक् न हों ॥ ६० ॥

भाष्यार्थः—इस मन्त्र में उक्तानुसार कि—मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद में अर्थात्तन और दुःखकर फल होने से परमात्मा से निष्कृष्ट होने कि उपायका न करने चाहिये जैसे मनुजा फल लता में लगा हुआ कर्मन का पदम कर कर्मन के अनुसार लता से हटकर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है जैसे ही हम लोग पुनं आयु की मोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होयें कर्मों मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान या परलोक को इच्छा से अलग न होयें और न कर्मों नाशिक पत्र को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें जैसे व्यवहार के सुखों के लिये मन्त्र मन्त्र कादि की इच्छा करने हैं जैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्तधर्म, और मुक्ति होने के लिये निरन्तर प्रयास करें ॥ ६० ॥

एतत्त इत्यस्य ऋषिः । मुरिगास्तारपतिः ऋचुः । पंचमः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में ऋग्मन्त्र में शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है ॥

पुनसो रुद्राघ्नसं तेन पुरो मूजध्वगोतीहि । अथ ततधन्या पिना-
कायसः कृत्तिषाम्ना अहिंषेसप्रः शिषोऽनीहि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) शत्रुओं को मारने वाले युद्ध विद्या में कुशल सेनापत्य विद्यान् ! (अथततधन्या) युद्ध के लिये विलास पूर्वक धनुको धारण करने (पिनाकायसः) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र में शत्रुओं को बल को पीस के अपनी रक्षा करने (कृत्तिषाम्नाः) चमड़े और कपड़ों के समान हट्ट पत्तों के धारण करने (शिषः) सब सुखों को देने और (परः) उत्तम सामर्थ्य वाले शूरवीर पुण्य (मूजध्वतः) मूज घास आदि युद्ध पर्यंत से दूसरे देश में शत्रुओं को (अतोहि) प्राप्त कीजिये (पतत्) जो यह (ते) आपका (अथसम्) रक्षण करना है (तेन) उस से (नः) हम लोगों की (अहिंमन्) हिंसा को छोड़ कर रक्षा करते हुए आप (अतोहि) सब प्रकार से हम लोगों का सन्तार कीजिये ॥ ६१ ॥

भाष्यार्थः—हे मनुष्यो तुम को शत्रुओं से रहित हो कर राज्य को निष्कण्टक करके सब अस्त्र शस्त्रों का संपादन कर के दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिस से दुष्ट शत्रु सुखों और सज्जन लोग दुःखों कदापि न होयें ॥ ६१ ॥

श्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । उष्णिकृच्छुः । ऋचमः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसा आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

ऽद्यागुपं जमदग्नेः रुद्रवर्षस्य ऽद्यागुपम् । परमेष्ठ्युं ऽद्यागुपं तप्तं अ-
स्तु ऽद्यागुपम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर माप (पत्) जो (वेद्ये) विद्वानों के वर्तमान में (ऽद्या-
गुपम्) प्रसन्नचित्तों के गृहस्थ पानप्रणय और मन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु
पतंगा जो (जमदग्नेः) चतु, आरि इन्द्रियों का (ऽद्यागुपम्) शुद्धि पत्र और परम
युक्त तीन गुण आयु और जो (कश्यपस्य) ईश्वर प्रसिद्धि (ऽद्यागुपम्) निष्ठाओं अर्थात्
तू तीन स्त्री परं से अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस इस शरीर काल और
समाज को आनन्द देने वाले (ऽद्यागुपम्) तीनस्त्री परं से अधिक आयु को (नः) हम
लोगों को प्राप्ति कराजिये ॥ ६२ ॥

मा.पार्थः—इस मंत्र में चतु, सय इन्द्रियों का और परमेश्वर सय रचना करने हारों
में उत्तम है ऐसा सय मनुष्यों को समझना चाहिये और (ऽद्यागुपम्) इन पद्यों की
चारपर आवृत्ति होने से तीनस्त्री परं से अधिक चारस्त्री परं पर्यन्त भी आयु का
ग्रहण किया है इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना कर के और अपना पुण्यार्थ
करना उचित है । प्रार्थना इस प्रकार करने चाहिये हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे
विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्द पूर्वक तीनस्त्री परं
पर्यन्त आयु को भोगते हैं वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त,
अहंकाररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को रहित सुख करने वाले विद्या
विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त हो कर तीनस्त्री या चारस्त्री परं पर्यन्त सुख
पूर्वक भागें ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वर्णस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिज्जगतो छन्दः ।

निर्यादः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है ॥

शिवो नामासि स्वर्णसिन्धवे पिता नमस्ते अस्तु मामां हितेसी ।
निर्वर्त्तयाम्प्रायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय राधस्पोषाय सुप्रज्ञास्त्वाय
सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर । और उपदेश करने हारे विद्वान् जो आप (स्वधितिः) अ-
विनाशी होने से यज्ञमय (असि) हैं जिस (ते) आपका (शिवः) सुख स्वरूप वि-
ज्ञान का देने वाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले
(असि) हैं (ते) आप के लिये मेरा (नमः) स्तुकार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) वि-

विदित हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिं, सीः) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आप को (अयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (नु-प्रजास्तथाय) उत्तम २ पुत्र अ.दि या चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुधाव्याप्य) उत्तम शरीर आत्मा को बल पराक्रम होने और (रायस्पोपाय) विद्या या दुर्गर्ण आदि धन की पुष्टि के लिये (वर्त्तपामि) वर्त्ताता और वर्त्तता हूँ इस प्रकार वर्त्तने से सब दुःखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय कर के अन्तर्गतिल्लप आप का आश्रय कर के सबों में वर्त्तता हूँ ॥ ६३ ॥

भा.व्यः—कोई भी मनुष्य भंगलमय सखी पालना करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के बिना संसार या परलोक के सुखों के प्राप्त होने की काम्य नहीं होता न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है उस का सर्वत्र अनादर होता है इस से सब मनुष्यों को नास्तिक युद्धि से ईश्वर की उपासना करना योग्य है ॥ ६३ ॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन, अग्नि के स्वभाव या अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के घ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर या भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मंत्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूप कथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना या इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य के किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्रो मंत्र के अर्थ का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पयनों के कार्य का वर्णन, पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की समाप्ति आवश्यक करना। मृत्यु से लेने देने आदि व्यवहार करना, पित्रान् या व्रतनुओं के स्वभाव का वर्णन चार, प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तौनमी घर अपरय आयु का संपादन करना और धर्म से अ.यु आदि पदार्थों का ग्रहण का वर्णन किया है इस से दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इन तीसरे अध्याय के अर्थ को सहजि जाननी चाहिये ॥

यह तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

फिर इस जल समा से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है इस विषय का उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

महीनाम्पयोऽसि यद्यंदा असि यद्यं मे देहि । घृत्स्यासि कु-
नीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मं देहि ॥ १ ॥

पदार्थः— जो यह (महीनाम्) पृथिवी आदि के (पयः) जल रस का निमित्त
(असि) है (यद्यंदाः) दक्षिण का देने वाला (असि) है जो (मे) मेरे लिये (यद्यं)
प्रकाश को (देहि) देता है जो (घृत्स्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करने वाले
(असि) है या (चक्षुर्दाः) नेत्र के व्ययहार का तिद्ध करने वाला (असि) है व
सूर्य्य (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्रों के व्ययहार को (देहि) देता है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जानना उचित है जिस सूर्य्य प्रकाश के बिना वरों को व
व्यक्ति या नेत्रों का व्ययहार तिद्ध कभी नहीं होता । जिसने इस सूर्य्यलोक को स्व
ही उस परमेश्वर को कोटि असेंख्यात धन्यवाद देने रहें ॥ ३ ॥

चित्पतिर्मंत्यस्य प्रजापतिर्द्विपिः । परमात्मा देवता । निच्यूद्राहो पद्विक्रन्दः ।

पद्ममः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य्य अदि सब जगत् को बनाया है वह परमात्मा हमारे लिये
क्या २ करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुना-
त्सच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पु-
वित्रपूतस्य यत्कामः पुनतच्छक्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (पवित्रपते) पवित्रता के पालन करने वाले परमेश्वर । (चित्पतिः) वि-
ज्ञान के स्वामी (वाक्पतिः) वाणी को निर्मूल के और (सविता) सब जगत् को
उत्पन्न करने वाले (देवः) दिव्यस्वरूप आप (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले (अस्शि-
द्रेण) अविनाशो विज्ञान या (सूर्य्यस्य) सूर्य्य और प्रमाण के (रश्मिभिः) प्रकाश
और गमनागमनों से (मा) मुझ और मेरे चित्त को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा)
मुझ और मेरी वाणी को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझे तथा मेरी प्रजा को (पु-
नातु) पवित्र कीजिये जिस (पवित्रपूतस्य) शुद्ध स्वानाधिक विज्ञान आदि गुणों से
पवित्र (ते) आप की कृपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामनायुक्त मैं (पुने) पवित्र
होता हूँ । जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अत्युत्तम फल के करने को
(शक्यम्) समर्थ होऊँ उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस पद के जन्म या पालन करने वाले पदोपकार ने वेदविद्या, दृष्टियों, जल, वायु और मूर्च्छा यदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकृति में हैं उसी उदात्तता तथा परिष्कार के अनुष्ठान में मनुष्यों को पूर्ण वाचना और परिष्कार को संसादन अथवा करना चाहिये ॥ ४ ॥

या वो देवाम इत्यत्र प्रजापतिर्ब्रह्मिः । निचूदार्थ्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
मनुष्यों को जिस २ प्रकार का पुण्यार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ वो देवास ईमहे ग्रामम्प्रगृह्णन्तरे । आ वो देवास आशि-
षो गृह्णियांसो हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—दे (देवामः) विद्यादि गुणों में प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो । जैसे हम लोग (वः) तुम को (प्रयति) तुम युक्त (धरते) हिंसा करने अथवा यज्ञ के अनुष्ठान में (वः) तुम्हारे (यामम्) प्रशंसनीय गुण समूह को (ईमहे) अच्छे प्रकार वाचना करने हैं । दे (देवामः) विद्वान् लोगो । जैसे हम लोग इन संसार में आप लोगों में (पशियाः) यज्ञ को निन्द करने योग्य (आशिषः) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्पर्शकार कर सकें जैसे ही हम लोगों को लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम २ विद्याओं का संपादन पर अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर के इन विद्वानों का संग और सेवा सदा करना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वाहायज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ब्रह्मिः । यज्ञो देवता । निचूदार्थ्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स्वाहां गृह्णमनंसः स्वाहोरोरुन्तारिक्षात् स्वाहा चावापृथिषी-
म्याश्स्वाहा वातादारंभे स्वाहा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (स्वहा) वेदोक्त (स्वाहा) उत्तम शिक्षा सहित (स्वाहा) विद्याओं का प्रकाश (स्वाहा) सत्य और सत्य जाँचों के कल्याण करने वाली वाणी और (स्वाहा) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम किया से (उरोः) धनुत (अन्तरिक्षात्) आकाश और (वातात्) वायु को शुद्धि कर के (चावापृथि-

वीम्याम्) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ (मनसः) विज्ञान और ठोक २ क्रि
से (यज्ञम्) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुण्यार्थ का (आरभे) नित्य आरम्भ कर
हूँ जैसे तुम लोग भी करो ॥ ६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों ने जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान क्रि
द्वारा यज्ञ है वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर के सब
सुखी करता है ॥ ६ ॥

आकृत्यै प्रयुजइत्यस्य प्रजापतिर्ब्रह्मपिः । अग्न्यवृहस्पतयो देवताः । पूर्वाधैस्य पंक्ति
न्दः । पंचमः स्वरः । आपो देवारित्युत्तरस्यार्चः । पृहतो छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस लिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश आगे
मन्त्र में किया है ।

आकृत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षा
यै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्येऽग्नये स्वाहा । आपो देवी
वृहतीर्विश्वशंभुवो धावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष वृहस्पतये ह्यि
षां विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (आकृत्यै) उत्साह (प्रयुजे) उत्तम २ धर्मयुत
क्रियाओं (अग्नये) अग्नि के प्रदीपन (स्वाहा) वेदवाणी के प्रचार (सरस्वत्यै) वि
ज्ञानयुक्त वाणी (पूष्ये) पुष्टि करने (पृहस्पतये) बड़े २ अधिपतियों के होने (अ
ये) विजुलों की विद्या के ग्रहण (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने से विद्या (मेधायै) बुद्धि
की उन्नति (मनसे) विज्ञान की वृद्धि (दीक्षायै) धर्म नियम और आचरण की रीति
(तपसे) प्रताप (अग्नये) जाठराग्नि के शोधन (स्वाहा) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी (वृ
हतीः) महागुण सहित (विश्वशंभुवः) सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले (दे
वीः) दिव्यगुण सम्पन्न (आपो) प्राण वा जल से (स्वाहा) सत्य भाषण (धावा
पृथिवी) भूमि और प्रकाश को शुद्धि के अर्थ (उरो) बहुत सुख सम्पादक (अन्तरिक्ष
अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों) को शुद्ध और जिस (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा वे
वाणी से यज्ञ सिद्ध होता है उन सबों को (ह्यिषा) सत्य और प्रेमभाष से (विधे
म) सिद्ध करें जैसे तुम भी किया करो ॥ ७ ॥

भाषार्थः—यज्ञ के अनुष्ठान से बिना उत्साह बुद्धि सत्यवाणी धर्माचरण की रीति
तप धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इन के बिना

कोई भी मनुष्य परमेश्वर को आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब के लिये सब आनन्द करने चाहिये ॥७॥

विश्वोदेवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विद्भो देवस्य नेतुर्मत्तो वुरीत सख्यम् । विद्भो राय इपुष्य-
ति धुम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) सब (मर्ताः) मनुष्य (नेतुः) सब को प्राप्त या (दे-
वस्य) सब का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (सख्यम्) मित्रता और गुण
कर्म समूह को (वुरीत) स्वीकार और (राये) धन को प्राप्ति के लिये (इपुष्य-
ति) याणों को धारण करे वह (धुम्नम्) धन को (वृणीत) स्वीकार करे वैसे हे
मनुष्य! इस सब का अनुष्ठान करके (स्वाहा) सत्क्रिया से तू भी (पुष्यसे) पृष्ट हो ॥८॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब मनुष्यों को परमेश्वर की उ-
पासना कर के परस्पर मित्रपन को सम्पादन कर युद्ध में दुष्टों को जीत के राज्यल-
क्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोरित्यस्यांगिरस ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिच्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या का सिद्धि कैसे करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मां पातु मास्य यज्ञस्यो-
द्व्यः शम्भोसि शम्भे मे यच्छ नमस्तस्तु मा मां हि धेसाः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान्! आप जो मैं (ऋक्सामयोः) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने
के पीछे (उद्व्यः) जिस में अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (अस्य) इस (य-
ज्ञस्य) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के संयन्त्रों (यम्) ये (शिल्प) मन या प्र-
सिद्ध क्रियासे सिद्ध की हुई कारागरी विद्याओं को (अरभे) आरम्भ करता हूँ
तथा जो (मा) मेरी (पातुम्) रक्षा करने हैं (ते) ये (ध्यः) हैं उनको विद्वानों
के सहाय से ग्रहण करता हूँ । हे विद्वान्! मनुष्य (ते) उस तैरे लिये (मे) मेरा
(नमः) अर्घ्याद सत्कार पूर्वकः नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा तुम (मा) मुझ
का घलापमान मत करो और (यत्) जो (शम्भे) तुम (अग्नि) हैं उस (शम्भे) तुम
को (मे) मेरे लिये (यच्छ) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्पविद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कामों को लिख करके दुखों को उन्नति करें ॥ ९ ॥

ऊर्गसोत्यस्यांगिरस ऋषिः । यज्ञो देवता । कृधोत्यन्तस्य निचृदाप्यां जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः । उच्च्यस्वेऽस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऊर्गस्याङ्गिरसपूर्णभ्रदा ऊर्ज्जं मयि धेहि । सोमस्य नीबिरसि
विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्वेन्द्रस्य योनिरसि सुसत्याः
कृपीस्कृधि । उच्छ्रपस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा प्राह्यथ हंस भास्पयज्ञ-
स्योद्वचः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) प्रकाशनीय विद्यार्थों का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य तू जो (आङ्गिरसि) अत्रि अदि पदार्थों से लिख को हुई (ऊर्गभ्रदाः) आच्छादन का प्रकाश वा (ऊर्ज्) पराक्रम तथा अन्नादि को करने वाली शिल्पविद्या (असि) है अथवा जो (ऊर्जम्) पराक्रम वा अन्नादि को धारण करती (असि) है जो (सोमस्य) उत्पन्न पदार्थ समूह का (नीवि) संवरण करने वाली (असि) है जो (विष्णो) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (यजमानस्य) शिल्पक्रिया को जानने वाली (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य युक्त मनुष्य का (योनिः) निमित्त (असि) है जो (अस्य) इस (उद्वचः) ऋचियों के प्रत्यक्ष करने वाले (यज्ञस्य) शिल्पक्रिया साध्य यज्ञ का (शर्म) सुख कराने वाली (असि) है उस को (मयि) शिल्पविद्या को जानने को इच्छा करने वाले मुझ में (मा धेहि) अच्छे प्रकार धारण कर (सुसत्याः) उत्तम २ धान्यः त्यज करने वा (कृपोः) खेतों वा रौंचने वाली क्रियाओं को (कृधि) लिख कर (ऊर्ध्वः) ऊपरस्थित होने वाला (मा) मुझको (उच्च्यस्व) उत्तम धान्य वा खेतों का सेवन कराओ और (अहसः) पाप वा दुःखों से (प्राहि) रक्षा कर जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (वनस्पते) वृक्षों की शाखा ऊँची स्थापन की जाती उस को भी (उच्च्यस्व) उपयोग में लाओ ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से साक्षात्कार और प्रचार करके मनुष्यों को समृद्धि युक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

प्राणोत्पत्तेः अङ्गिरस ऋषयः । अग्निदेवता । पूर्वस्य स्वराड् प्राङ्गणुष्टुप् छन्दः
गान्धारः स्वरः । ये देवा इत्युत्तरस्याप्युष्णिक् छन्दः । प्रायमः स्वरः ॥

अथ मनेः अर्थात् अग्नि को जान कर उस में देवा २ उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

यत्नं कृणुमाग्निर्गन्धर्माग्निर्ग्रहो वनस्पतिर्यज्ञियः । देवीन्धिष्यम्भ-
नामहे सुमृडोकामभिः प्रष्टव्यं वचोर्धां यज्ञनाहसं सुतीर्था नो अस-
दृशं ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षं क्रतवस्तेनोऽवन्तु ते नः
पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हम लोग जो (यज्ञ) ब्रह्मपदवाच्य (अग्निः) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (अ-
सत्) है जो (यज्ञः) अग्निसंज्ञक और जो (वनस्पति) वनों का पालन करनेवाला
यज्ञ (अग्नि) अग्निनामक है उस की उपासना कर या उस से उपकार लेकर (अग्नि-
ष्टये) ऋषि मन्दि के लिये जो (सुतीर्था) जिस से अत्युत्तम दुःखों से तारने वाले
वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं उस (सुमृडोकाम्) उत्तम सुख युक्त (वचोर्धाम्) विद्या
या दीप्ति को धारण करने तथा (देवोम्) दिव्यगुणसंपन्न (धियम्) बुद्धि या क्रिया
को (मनामहे) जानें (ये) जो (दक्षप्रतवः) शरीर आत्मा के बल प्रजा या कर्म से
युक्त (मनोजाताः) विज्ञान से उत्पन्न हुए (मनोयुजः) सत् असत् के ज्ञान से युक्त
(देवा) विद्वान् लोग (यशे) प्रकाशयुक्त कर्म में पर्यमान हैं या जिन से (स्वाहा)
विद्ययुक्त वाणी प्राप्त होती है (तेभ्य) उन से पूर्वोक्त प्रज्ञा की (मनामहे) याचना
करते हैं (ते) वे (नः) हम लोगों को (अवन्तु) विद्या उत्तम क्रिया तथा शिक्षा
आदिकों में प्रवेश और (नः) हम लोगों की निरन्तर (पान्तु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को जिस की अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उस को
उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिये । विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ
को सिद्ध करते हैं उस से शिल्प विद्या कारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्घ
से विद्या को प्राप्त हो के स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिये । क्योंकि बुद्धि के
बिना कोई भी मनुष्य सुख की नहीं बढ़ा सकता । इस से विद्वान् मनुष्यों को उचित
है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या की बुद्धि की शिक्षा करके
निरन्तर रक्षा करें । और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर या विद्वानों को उत्तम २
प्रियकर्मों का आचरण किया करें ॥ ११ ॥

ध्यात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । आपो देवताः । ब्राह्मचरुष्टुर् छन्दः । गान्ध. र. स्वरः ॥

इस का अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऋषोत्वग्नित्यस्याङ्गिरस ऋषयः । अग्निर्देवता । स्वराडाप्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने त्वष्टे मृ जांगृहि वृषष्टे मृ मन्दिपीमहि । रक्षाणो अप्रयु-
च्छन् प्रयुषे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(अग्ने) जो अग्नि (प्रयुषे) जगने के समय (मुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता था जिस से (वयम्) जग के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग (मुमन्दिपी-
महि) आनन्द पूर्वक सोते हैं जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित हो के (नः) प्रमादर-
हित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमाद सदितों को नष्ट करता और जो (नः)
हम लोगों के साथ (पुनः) बार २ इतनी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है उस की
युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जगने, जीने, तथा मरने का हेतु है उस
का युक्ति से सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः अग्निर्देवता । भुक्तिग्राह्या वृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जाय अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय या दूसरे जन्म में
प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होने हैं इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुन-
श्चक्षुः पुनः श्रोत्रंश्च आगन् । वृश्वात्तरोऽद्वयस्तनूपा अग्निर्नः
पातु दुग्िताद्वय्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—जिन के समकथ वा वृषा से (मे) मुझ को जो (मनः) विज्ञानात्मक-
क मन (आयुः) उमर (पुनः) फिर २ (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझ को (प्राणः)
शरीर का आधार प्राण (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होता (आत्मा) मन में व्याप-
क मन के भीतर की मन पातों को जानने वाले परमात्मा विज्ञान (आगन्) प्राप्त हो-
ना (मे) मुझ को (चक्षुः) देखने के लिये नेत्र (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होते
और (श्रोत्रम्) शब्द को ग्रहण करने वाले कान (आगन्) प्राप्त होते हैं वट (अद्व-
यः) द्विधा करने अयोग्य (तनूपाः) शरीर वा आत्मा को रक्षा करने शौच (वृश्वा-
त्तरोः) शरीर को प्राप्त होने वाले (अग्निः) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाले पर-
मेश्वर (नः) हम लोगों की (अद्वय्यात्) निन्दित (दुग्ितात्) पाप से उन्मुक्त हुए
दुःख वा दुष्ट कर्मों से (पातु) पावन करता है ॥ १५ ॥

भाषार्थः— इस मन्त्र में श्लेयालङ्कार है। जब जीव सोने या मरण आदि ब्रह्म-
हारा को प्राप्त होते हैं तब जो २ मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान हो कर वि-
जगने या जन्मान्तर में जिन कार्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं वे इन्द्रिय जि-
विषुत् अग्नि आदि के सम्यन्ध परमेश्वर की सत्ता या व्यवस्था से शरीर वाले हो कर
कार्य करने को समर्थ होते हैं। मनुष्यों को योग्य है कि जो अच्छे प्रकार सेवन किया
हुआ जाठराम्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापकर्म
कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर वारंवार मनुष्य जन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार
या दुःखों से पृथक् कर के इस लोक या परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है वह
क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निदेवता। भुरिगार्पां पंक्तिरछन्दः।
पंचमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आमतृणं दवा। त्वं यज्ञेऽधीष्वो रा-
स्वेयंत्सोमाभूपो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वंदात् ॥ १६ ॥

पदार्थः— हे (सोम) ऐश्वर्य्य को देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर! जो (त्वम्) आप (मर्त्येषु) मनुष्यों में (व्रतपाः) सत्य धर्माचरण की रक्षा (सविता) सब ज-
गत् को उत्पन्न करने (यज्ञेषु) सत्कार या उपासना आदि में (इन्द्र्यः) स्तुति के योग्य (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन के (दाता) दान करने वाले (वसु) धन को (अदात्) देते हैं सो (इयत्) प्राप्त करते हुए आप (भूयः) वारंवार अत्य-
न्त धन (आरास्य) दीजिये (आभर) सब सुखों से पोषण कीजिये ॥ १ ॥ (त्वम्) जो (अग्ने) अग्नि (मर्त्येषु) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (व्रतपाः) निय-
माचरण का पालन (देवः) प्रकाश करने (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (इन्द्र्यः) निय-
मोजने योग्य (सोम) ऐश्वर्य्य को देने (सविता) जगत् को प्रेरणा करने (देवः) प्रकाशमान अग्नि है वह (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन को (दाता) प्राप्त (इयत्) कराता हुआ (भूयः) अत्यन्त (वसु) धन को (अदात्) देता और (आ-
रास्य) धन को देने का निमित्त हो के (आभर) सब प्रकार के सुखों को धारण क-
रता है ॥ २ ॥ १६ ॥

भाषार्थः— इस मन्त्र में श्लेयालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे स-
ब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों को देने वाले जगदीश्वर ही

की उपासना की वर के पुण्यो रहें इसी प्रकार कार्यो निद्रि के लिये मति को संप्र-
युक्त कर के मय मुण्यो की प्राप्त करें ॥ १६ ॥

परा त इत्यन्य यन्म ऋषिः । अग्निदेवता । आग्निष्टिष्ठुप् छन्दः । धैरतः स्वरः ॥
इन को संयन कर के मनुष्यों को कर्मे, यत्ना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

पृथा ते शुक्र तनूरेगच्छस्तथा सम्भय भ्राजङ्गच्छ । जरासि
धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (शुक) योग्य पराक्रम वाले विद्वान् मनुष्य ! (ते) तेरा जो (वि-
ष्णवे) परमेश्वर या यज्ञ के लिये तेनें जिन को (धृता) धारण किया है (तथा)
उम से नू (जः) ज्ञानों वा वेग वाला होके (एतत्) इस (यत्) विज्ञान और ते-
ज्युक्त (सम्भय) संयन हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिये (तनूः) शरीर
(मनि) है उम से नू (भ्राजन्) प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त और (धृता) धारण
किये (मनसा) विज्ञान से पुण्यार्थ को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन कर के विज्ञान
न युक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्य पन को बढ़ाकर यज्ञ का अनुष्ठान करके
सुखी रहें ॥ १७ ॥

तस्यास्त इत्यस्य यत्स ऋषिः । वाग्बिष्टुदेवते । स्वराडापीं बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
यह वाणी और विजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तस्पास्ते सत्यसंबसः प्रसु वे तन्वो यन्त्रमंशीष्टु स्याहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्पृष्टेमसि वैश्वदेवमासि ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसंबसः) सत्येश्वर्य्य युक्त वा जगत् के निमित्त
कारण रूप (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो
(स्याहा) वाणी वा विजुली है (तस्याः) उन दोनों के सकाश से विद्या कर के युक्त
में जो (शुक्रम्) शुद्ध (असि) है (चन्द्रम्) आल्हाद कारक (असि) है (अमृ-
तम्) अमृतात्मा के व्यवहार वा परमार्थ से सुख को सिद्ध करने वाला (असि) है
और (वैश्वदेवम्) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देने वाला (असि) है (तत्)
उस (यंत्रम्) संकोचन विकासन चालन भीषण करने वाले यंत्र को (अशीय)
प्राप्त होऊँ ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर को उत्तम की हुई इस सृष्टि में विद्या से कला यंत्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का प्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १८ ॥

चिदनीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। भुरिग्रह्णी पंक्तिश्छन्दः।
पंचमः स्वरः ॥

फिर वे याणी और विजुली किस प्रकार की हैं इस विषय का उपदेश अले मंत्र में किया है।

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियासि पदि उभयतः शीर्ष्णी। सा नः सुप्राची सुप्रतीर्ष्णेधि मित्रस्त्वा पदि यंधनीतां पूषाऽध्यनस्पात्विन्द्रापाध्याक्षाय ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्य युक्त (ते) थाप के (प्र-सवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जो (चित्) विद्या व्यवहार को चिताने वाली (अग्नि) है जो (मनाः) ज्ञान साधन कराने वाली (असि) है जो (धोः) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करने वाली (असि) है (दक्षिणा) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (क्षत्रिया) राज्य के पुत्र के समान वर्ताने वाली (असि) है जो (यज्ञिया) यज्ञ को कराने योग्य (असि) है जो (उभयतःशीर्ष्णी) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण युक्त और (अदितिः) नाश रहित याणी या विजुली (असि) है वह (नः) हम लोगों के शिरो (सुप्राची) पूर्व काल और (सुप्रतीर्ष्णी) पश्चिम काल में सुख देने वाली (पदि) हो जो (पूषा) पुष्टि करने वाली (मित्रः) सब का मित्र हो कर मनुष्यपन के लिये उग याणी और विजुली को (पदि) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में (अध्यक्षाय) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य वाले परमात्मा अथवा और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये (यंधनीताम्) बन्धन युक्त करे सो भाग (अध्यनः) व्यवहार और परमार्थ को निर्दिष्ट करने वाले मार्ग के अध्य में (नः) हम लोगों को निर्गमन (पानु) रक्षा को लिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। और पूर्व मंत्र में (ते) (सत्यसवसः) (प्रसवे) इन तीन पदों को मनुष्यों में भाग्य है मनुष्यों को जो कला व्यवहार को रक्षा करके सब से उत्तम याणी या विजुली बनने का है यही मूल, अविष्यन्, अंतर्गत मान काल में सुखों को कमाने वाली है ऐसा जानना चाहिये जो कौन मनुष्य प्राप्ति से परमेश्वर या परमात्मा से उत्तम याणी में भाग्य के कारण को लिये सब कलाओं और उत्तम विद्या को अध्य करना है यही सब को रक्षा कर सब का है ॥ १९ ॥

अनुवेदनं वक्तुं शक्यः । वाग्बिद्युतो देवते । पुत्रादित्य माता जगतां छन्दः ।

निरादः स्वरः । उत्तमार्त्तानु भुरिगातुं षिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

किर ये वाणी और विजुली के लिये हैं इस विषय का उपदेश अगले

मन्त्र में किया है ॥

अनुं तथा माता मन्यतामनुं पिताऽनु भ्राता सगर्भ्याऽनु सखा
सयुध्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं धे रुद्रस्था वक्ष्यतु
स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य! जन्मे (रुद्र) परमेश्वर या ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त अरण्य

व्रतार्थ्याश्रम संवन से पूर्ण विद्या युक्त विद्वान् (तथा) तुझ को जिस वाणी या विजु-
ली तथा (सोमम्) उत्तम पदार्थ समूह अंर (स्वस्ति) तुम को (रुद्राय) परम-
ेश्वर्य की प्राप्ति के लिये (वाक्चतयनु) प्रवृत्त करे और जो (देवि) विद्या प्रकाश युक्त
वाणी और दिव्यगुणयुक्त विजुली (देवम्) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है
जैसे उस को तू (पुनः) या २ (अच्छ) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो और इस को
प्रहण करने के लिये (तथा) तुम को (माता) उत्पन्न करने वाली जननी (अनुमन्यताम्)
अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (सगर्भ्यः)
तुल्य गर्भ में दाने वाला (भ्राता) भाई और (सयुध्यः) समूह में रहने वाला (सखा)
मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवे उसको तू (पुनरेहि) अत्यन्त पुरुषार्थ कर के
वारंवार प्राप्त हो ॥ २० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाक्कलुसोपमालङ्कार है—प्रश्न—मनुष्यों को परस्पर किस
प्रकार वर्तना चाहिये ? (उत्तर) जैसे धर्मात्मा विद्वान् माता पिता भाई मित्र आदि
सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों । जैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त
व्यवहार में वर्त्तें जैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये ॥ २० ॥

वस्वित्यस्य वक्तुं शक्यः । वाग्बिद्युतो देवते । विराडार्यां पृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

किर वह वाणी या विजुली किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले

मन्त्र में किया है ॥

वस्वस्पदितिरस्पादित्पासिं रुद्रासिं चन्द्रासिं । वृहस्पतिं पृष्ठा
सुम्ने रंभ्यातु रुद्रो वसुभिराचंके ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे जो (षष्ठी) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी जित की सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई (अस्ति) है जो (इ-दितिः) प्रकाश कारक (अस्ति) है जो (रुद्रा) प्राण वायु संबन्धवाली और जित को ४४ चबालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी (अस्ति) है जो (अग्नि-त्या) सूर्यवत् सव विद्याओं की प्रकाश करने वाली जिस का गृहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी (अस्ति) है जो (चन्द्रा) आ-ह्लाद करने वाली (अस्ति) है जिसको (गृहस्पतिः) सर्वोत्तम (रुद्रः) दुष्टों को ह-लाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् (सुखे) सुख में (रम्णानु) रमण युक्त करता और जिस (षसुभिः) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा विजुली की (आचके) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिस की मैं इच्छा करता हूँ जैसे तू भी (त्वा) उस को (रम्णानु) रमणयुक्त वा इस को सिद्ध करने की इच्छा कर ॥ २१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और बचक लुप्तोपमालङ्कार है—जैसे वाणी विजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु है और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्म सेवन पूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और विजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत सुखों के करने वाली होती है ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्येत्यस्य वत्स ऋषिः । याग्विद्युर्ता देवते । ब्राह्मो पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर ये वाणी और विजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अदित्यास्तथा मूर्द्धन्नाजिघर्षिन् देधुयजने पृथिव्या इडावास्पद-
मंसि घृगवत् स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते वन्धुस्त्वे राघो मे राघो
मा ययथे रायस्पोषेण वि यौष्म तातो राघा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे (देवयजने) विद्वानों के यजन वा दात में हम (अदित्याः) अन्तरिक्ष (पृथिव्याः) भूमि और (इडायाः) वाणी को (स्वाहा) अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाली क्रिया के मध्य जो (मूर्द्धन्) सव के ऊपर वर्त्तमान (पू-तवत्) पुष्ट करने वाले घृत के तुल्य (पदम्) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदकों (अस्ति) है वा जिस को मैं (जिघर्षिं) प्रदीप्त करता हूँ जैसे (त्वा) उस को प्रदीप्त कर और जो (अस्मे) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (रमस्व) रमण करे जिसको मैं रमण करता हूँ उस को तू भी (रमस्व) रमण करा जो (अस्मे) हम लोगों का (वन्धुः) भाई है वह (ते) तेरा भी हो जो (राघः) विद्यादि धन

समूह (त्वे) तुह्य में है यह (मे) मुह्य में भी हो, जो (तोतः) जानने प्राप्त करने योग्य (रायः) विद्या धन मुह्य में है तो तुह्य में भी हो (रायः) तुह्यारी भीर हमारी समृद्धि है वे सय के मुख के लिये हों इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम हम और सय लोग (रायस्योपेण) धन की पुष्टि से कर्मी (मायिर्यान्) अलग न होयें ॥ २२ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमात्कार है—मनुष्यों को सत्य विद्या धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिक्षाविद्या से संप्रयोग की हुई विजुली आदि विद्या की सय मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और दुरा दुःख का व्यवस्था को भी तुल्य ही जान के सय ऐश्वर्य्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कर्मी न करना चाहिये कि जिस से किसी की विद्या धन वादि ऐश्वर्य्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

समवय इत्यस्य वसत इति । वाग्विद्युती वेद्यते । आस्तारपंक्तिरुच्छन्दः । पंचम. स्वरः ॥

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समंरुणे देव्या विद्या सन्दक्षिण्योर्गर्भक्षसा मा म्र आयुः प्र-
मोपीमो अहन्तर्ष श्रीरं विदेष्ट तयं देवि मुंदाशि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (दक्षिण्या) ज्ञान नाशक अज्ञान नाशक (उरुवक्षसा) बहुत प्रकट वचन वा दर्शन युक्त (देव्या) देवोप्यमान (विद्या) प्रज्ञा वा कर्म से (तव) उस (देवि) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त, वाणी वा विजुली के (सं- दृष्टि) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जीवन को (समरुणे) कथन से प्रकट करता हूँ वह (मे) मेरे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोपीः) नाश न करे उस को मैं विद्या से (मो) नष्ट न करूँ (तव) हे सय के मित्रः अन्याय से आप के (पीमम्) शूरवीर को (मासविदेष्ट) प्राप्त न होऊँ वैसे ही मैं भी पूर्वोक्त सय पर के अन्याय से मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो ॥ २३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमात्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध काम वा प्रज्ञा से वाणी वा विजुली की विद्या को ग्रहण, उत्तर को ददा और विद्यादि उपानम २ गुणों में अपने समान और वीरों को सम्यग्दान परके सदा सुगो रहें ॥ २३ ॥ एतत् इत्यस्य वसत इति । यज्ञो देवता । पूर्वस्य प्राप्ता जगता उन्द । निरादः स्वरः ॥

अन्यस्य दशाक्षरस्य वातुगो पदतिरुच्छन्दः । पञ्चम. स्वरः ॥

किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ए॒प ते॑ गा॒य॒त्रो भ्रा॒ग इति॑ मे सोमा॑य ब्रू॒तादे॒प ते॒ त्रै॒ष्टु॒भो भ्रा॒ग
इति॑ मे सोमा॑य ब्रू॒तादे॒प ते॒ जाग॑तो भ्रा॒ग इति॑ मे सोमा॑य ब्रू॒ता-
छ॒न्दोना॒माना॑ ५ सा॒म्राज्य॑ङ्ग॒च्छेति॑ मे सोमा॑य ब्रू॒तात् । आ॒स्मा-
क्रो॒ऽसि शु॒क्र॒स्ते गृ॒ह्यो वि॒चित॑स्त्वा वि चि॑न्वन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (गायत्रः) वेदस्थ गायत्री छ
युक्त मन्त्रों के समूहों से प्रतिपादन (भागः) सेवने योग्य भाग है (इति) इस प्रक
विद्वान् से पूछ जैसे वह विद्वान् (ते) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भा
है (इति) इसी प्रकार से (सोमाय) पदार्थ विद्या सम्पादन करने वाले (मे) मे
लिये (ब्रूतात्) कहे तू कौन इस यज्ञ का (त्रैष्टुभः) त्रिष्टुप्छन्द से प्रतिपादि
(भागः) भाग है (इति) इसी प्रकार विद्वान् से पूछ जैसे वह (ते) तुझ को उ
यज्ञ का (एपः) यह भाग है (इति) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान (सोमाय
उत्तम रस के सम्पादन करनेवाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात्) कहे । तू कौन इस यज्ञ क
(जागतः) जगती छन्द से कथित (भागः) अंश है (इति) इस प्रकार आप
पूछ जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एपः) यह प्रसिद्ध भाग है (इति) इ
प्रकार (सोमाय) पदार्थ विद्या को सम्पादन करने वाले (मे) मेरे लिये उत्तर (इ
तात्) कहे जैसे आप (छन्दोनामानाम्) उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में कहे हु
यज्ञ के उपदेश में (साम्राज्यम्) भले प्रकार राज्य को (गच्छ) प्राप्त हों (इति) इ
प्रकार (सोमाय) ऐश्वर्य्य युक्त (मे) मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने क
उपाय (ब्रूतात्) कहिये और जिस कारण आप (आस्माः) हम लोगों को (शुक्र
पवित्र करने वाले उपदेशक (असि) हैं वैसे मैं (ते) आप को (गृह्यः) ग्रहण कर
योग्य (विचितः) उत्तम २ धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूँ । आप मु
को मय गुणों से बढ़ाइये इस कारण मैं (त्वा) आप को वृद्धि युक्त करता हूँ । भी
तय मनुष्य (त्वा) आप वा हम यज्ञ तथा मुझ को (विचिन्वन्तु) वृद्धियुक्त करें ॥२४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पाचश्रुतुगोपमालद्वार है—मनुष्य लोग विद्वानों से पूछ क
न्य विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करा
वें । परम्पर मनुष्य करने वा कराने से मय वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और य
प्रचलित आदि मन्त्र का ग्रहण करें ॥ २४ ॥

निर्वाणिक्यत्वं च त्वं कर्तव्यः । सर्वथा देवता । पूर्वमेव विनाद् इच्छी जगती छन्द ।
 निराक स्वयः । सुप्रसन्नानुत्तमस्य निन्द्यानी मारयो छन्द । पङ्क्तः स्वरः ॥
 किं काले मंत्र में शंकर राजगता योग प्रजा के दुर्गो का उपदेश किया है ।

अभि स्यं देवथे संविभारंमोणयोः कृषिक्रतुमयीमि सत्यसंयथे
 मन्त्र धामभि प्रियं मनि कृषिम् । ऊर्ध्वा पस्यामतिर्भा अदिद्युत्-
 त्मर्षीमनि हिरेण्यपाणिरमिर्माण । सुक्रतुः कृपा स्थः प्रजाभ्यंस्था
 प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्तमंनुप्राणिहि ॥ २५ ॥

पदार्थः—मैं (यस्य) जिन सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर धार्मिक सभा-
 नि और प्रजाजन के (सर्षीमनि) उत्पन्न हुए संसार में (ऊर्ध्वा) उत्तम (अमतिः)
 स्वरूप (भाः) प्रजाधामान (अदिद्युत्तन्) प्रकाशित हुआ है जिस की (कृपा) क-
 मा (स्थः) सुख को करता है (हिरेण्यपाणिः) जिन ने मूर्खोंदि ज्योति व्यवहार
 उन्नत गुण कर्मों को युक्त किया हो (सुक्रतुः) जिन उत्तम प्रजा या कर्म युक्त ई-
 श्वर स्वभा म्यामी और प्रजाजन ने (स्वः) मूर्खों और सुख को (अभिमीत) स्थापित
 किया हो (त्वम्) उम (धोण्योः) चाचापृथिवी वा (सविभारम्) अग्नि आदि की
 त्यक्त और संप्रयोग करने तथा (कृषिक्रतुम्) सर्वज्ञ या क्रांत दर्शन (रताधाम्)
 मनीय रत्नों को धारण करने (सत्यमवम्) सत्य ऐश्वर्ययुक्त (प्रियम्) प्रीतिकारक
 मनिम्) पैदादि शास्त्र या विद्वानों के मानने योग्य (कृषिम्) वेदविद्या का उपदेश
 करने तथा (देवम्) सुख देने वाले परमेश्वर सभाभ्यक्ष और प्रजा जन का (अर्चा-
 मि) पूजन करना हं या जिन (त्वा) आप को (प्रजाभयः) उत्पन्न हुई सृष्टि से
 पूजित करना हं उम आप की सृष्टि में (प्रजाः) मनुष्य आदि (अनुप्राणन्तु) आयु
 का भोग करें (त्वम्) और आप कृपा करके (प्रजाः) प्रजा के ऊपर जीवों के अनु-
 कूल (अनुप्राणिहि) अनुग्रह कीजिये ॥ २५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने
 वाले निराकार सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धा-
 मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये उन से भिन्न और
 किसी का नहीं । विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा पुरुषों को सुख के लिये इस
 परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन को
 सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा को अनुकूल सदा वर्तते

रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर गति में भी अत्यन्त प्रेम कर ॥ २५ ॥

शुक्रं त्वेत्यस्य यत्स ब्रह्मपिः । यज्ञो देवता । भुरिन्द्राह्नी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
मनुष्यों को क्या २ साधनों करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

शुक्रं त्वां शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतेन । समे
ते गोरस्मेते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेयां पशुनां
क्रीपसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—जैसे (समे) पृथिवी के साथ वर्तमान यज्ञ में (तपसः) प्रताप या
बलि या तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (तनूः) शरीर (असि) है उस की वि
लपविद्या या सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (पशुना) विक्रय किये हुए गौ आदि प
ओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (प्रजापतेः) प्रजा के पालन हेतु सू
का (वर्णः) स्वीकार करने योग्य तेज (क्रीयसे) क्रय होता है उस (सहस्रपोषम्) ।
संख्यात पुष्टि की प्राप्त होके मैं (पुषेयम्) पुष्ट होऊँ हे विद्वान् मनुष्य । जो (ते) म
एको (गोः) पृथिवी के राज्य के सकाश से (चन्द्राणि) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त
वे (अस्मे) हम लोगों के लिये भी हों जैसे मैं (परमेण) उत्तम (शुक्रेण) शुद्ध भा
से (शुक्रम्) शुद्धि कारक यज्ञ (चन्द्रेण) सुवर्ण से (चन्द्रम्) सुवर्ण और (अ
तेन) नाश रहित विद्वान् से (अमृतम्) मोक्ष सुख को (क्रीणामि) ग्रहण करता
मैसे तू भी (त्वा) उसका ग्रहण कर ॥ २६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योःप है कि शरीर मन वानों और धन से परमेश्वर ।
उपासना आदि लक्षण युक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके अक्षर्यात अनुल पुष्टि ।
प्राप्त करें ॥ २६ ॥

मित्रो न इत्यस्य यत्स ब्रह्मपिः । विद्वान् देवता । भुरिन्द्राह्नी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के मंग कैसे वर्त
नाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रो न एहि सुमिंश्रघ्नं चन्द्रं स्योऽरुमाविंश दक्षिणमुदासुदान्तं
स्थोनः स्थोनम् । स्थान् भ्राजार्घारि वम्भारि हस्त मुहस्त कृदां-
सोमक्रपंणास्तान् चष्ममायो दधन् ॥ २७ ॥

पदान्तः—हे (इन्द्र) उन्नेम करने (सज) प्रजाग को प्राप्त होने (धोवां)
 एतः के शत्रु (अन्तरे) विनाश विनोधिओं के शत्रु (हन्) प्रमथ (रुहन्) धन्ते
 प्रजाग हन् विनाश को जानने धीं (इमानो) दुष्टों को रक्षा करने (सुमिप्रथः)
 उन्म मित्रों को घातना करने (मित्रः) मत्र को मित्र (म्योनः) सुग की (उशन्)
 दानना करने हाने समाप्यत आय (नः) हम लोगों को (एहि) अच्छे प्रकार प्राप्त
 [जिये गधा (दर्जिनम्) उत्तम अंगयुक्त (उरम्) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा
 श्योक्ताव करने योग्य (उर्नम्) कामना करने योग्य (म्योनम्) सुख को (आशिश)
 प्रवेश कीजिये हे समाप्यतो ! जो (इन्द्रम्) परमेश्वर्य युक्त प्रजा और भूल्य आदि मनु-
 ष्य (य) तुम लोगों को रक्षा करें और आप लोग भी उनको (रक्षष्यम्) रक्षा सदा
 क्रिया करो जैसे वे शत्रु लोग (तान्) उन (यः) तुम लोगों को हिंसा करने में स-
 मर्थ (मा दमन्) न हों ऐसे ही सम्यक् प्रीति से परस्पर मिलकर यतीं ॥ २७ ॥

भाषार्थः—राज्य और प्रजा पुण्यों को उन्नित है कि परस्पर प्रीति उपकार और
 धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् यत्न शत्रुओं का निवारण अविद्या वा अन्याय रूप अं-
 घकार का नाश और चक्रवर्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें ॥ २७ ॥

परिमाण इत्यप्य कस्य श्रयिः । अग्निर्दवता । पूर्वाह्नस्य साम्न्युपहृता छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥ उत्तराह्नस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । श्रयभः स्वरः ॥

सय मनुष्यों को उचित है कि सय करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ मध्य

और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा क्रिया करें इस

विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

परिमाणे दुध्वरिताद्वाध्रस्वा मा सुचरिते भज । उदायुपा स्वा-
 युपोदस्थाममृतौ २॥ अनु ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप कृपाकर के जिस कर्म से मैं (स्वायुपा) उ-
 त्तमता पूर्वक प्राण धारण करने वाले (आयुपा) जीवन से (अमृतान्) जीवन मुक्त
 और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपों आनन्दों को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार
 प्राप्त होऊँ उससे (मा) मुझ को संयुक्त करके (दुध्वरितात्) दुष्टाचरण से (उदा-
 यस्व) पृथक् करके (मा) मुझ को (सुचरिते) उत्तम २ धर्माचरण युक्त व्यवहार
 में (अनुमज) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥ २८ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने
 के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें कि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से

छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य
जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रह कर संसार या मोक्ष स्वी सुखों को
सब प्रकार से सयन करें ॥ २८ ॥

प्रतिपन्थामित्यस्य घत्स ऋषिः । अग्निदेवता । निवृत्ताप्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उस परमेश्वर को प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदे-
श अगले मंत्र में किया है ॥

प्रतिपन्थां मपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि-
द्विषो वृणाक्तिं विन्दते वसुं ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थों होकर हम लोग (येन)
जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रु सेना या दुःख देनेवाली
भोग क्रियाओं को (परिवृणाक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने
वाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) हिंसा रहित (स्वस्तिगाम्)
सुख पूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (मपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होयें ॥ २९ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उचित है कि वेपादित्याग विद्यादि धन को प्राप्ति और ध-
र्ममार्ग को प्रकाश लिये ईश्वर की प्रार्थना धर्म और धार्मिक विद्वानों को सेवा नि-
रन्तर करें ॥ २९ ॥

अदित्यास्त्वगतोत्यन्य वरव ऋषिः । वरुणी देवता । पूर्वस्यास्वराड्वागुगो विष्टुप्
छन्दः । अस्त्रादित्यन्तस्य विगडाप्यनुष्टुप् छन्दः । धैवतः म्यः ॥

अगले मंत्र में ईश्वर सूर्य और व.सु.कं गुणों का उपदेश किया है ॥

अदित्यास्त्वगतोत्यन्य वरव ऋषिः । अस्त्रादित्याः पूर्वस्याः
अन्तरिक्षममिमीत परिमाणमृषिभ्यः । आसीदृद्विदया मुख-
नानि मृगादिद्वेत्तानि वरुणस्य मृतानि ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस से माय (अदित्याः) पृथिवी के (वरु) आकाश-
दान करने वाले (अमि) दे (वृषभाः) धे छगुन युक्त माय (अदित्ये) पृथिवी और
मृष्टि के लिये (वरुः) असाध्य करने योग्य (आसीद) व्यवस्था को असाध्य करने
वा (वाम्) शत्रु आदि को (अन्तरिक्षम्) धारण करने (अमिभ्यः) असाध्य करने
(अमिभ्यः) असाध्य को (अदित्ये) करने और (वरुम्) असाध्य प्रकार
को असाध्य दूर भय के अदित्ये माय (पृथिव्याः) असाध्य के लिये

(विश्वा) सद्य (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हो इस से (तानि) ये (विश्वा) सद्य (वरुणस्य) श्रेष्ठरूप (ते) आपके (इत) ही (वृत्तानि) सत्य स्वभाव और धर्म हैं ऐसा हम लोग (अपद्महि) जानते हैं ॥ १ ॥ जो (वृषभः) अत्युत्तम (सध्राट्) अपने आप प्रकाशमान सूर्य और वायु (अदित्याः) पृथिवी आदि के (त्यक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं या (आदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) लोकों को (आसीद) स्थापन (धाम्) प्रकाश की (अस्तभूनात्) धारण (परिमाणम्) श्रेष्ठ (अन्तरिक्षम्) आकाश की (अमिमोत) रचना और (पृथिव्याः) आकाश के मध्य में (विश्वा) सद्य (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हैं (तानि) ये (विश्वा) सद्य (ते) उस (वरुणस्य) सूर्य और वायु के (इन्) ही (वृत्तानि) स्वभाव और धर्म हैं ऐसा हम लोग (अपद्महि) जानते हैं ॥ २ ॥ ३० ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार और पूर्व मंत्र से (अपद्महि) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये । जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य और वायु आदि को सद्य प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३० ॥

यनेष्वित्यस्य यत्न ऋषिः । वरुणो देवता । विराडापीं त्रिष्टुप् छन्दः । धेयतः स्वरः ॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

यनेषु वृष्टन्तरिक्षन्ततान् वाज्जमर्षत्सु पर्यं उस्त्रिधांसु । हृत्सु क्रतुं पर्ययो विश्वग्निन्दिषि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ११ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) अत्युत्तम परमेश्वर सूर्य वा प्राण वायु हैं ये (यनेषु) विरुण वा यनों में (अन्तरिक्षम्) आकाश को (यिततान) विस्तार युक्त किया वा करता (अर्षत्सु) अत्युत्तम वेगादि गुण युक्त विष्णु आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में (वाज्जम्) घेग (उक्षियासु) गौओं में (पर्यः) दूध (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुम्) प्रज्ञा या धर्म (विश्व) प्रजा में अग्निम्) अग्नि (दिषि) प्रकारों में (सूर्य) आदित्य (अद्रौ) पर्यंत वा मध्य में (सोमम्) सोमवहनों आदि भोग्यों और श्रेष्ठ रस को । (अदधात्) धारण किया करते हैं उसी श्वर की उगमना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥ ११ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है—जैसे परमेश्वर यज्ञों विद्या वा प्रकाश

और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभाव युक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन सूर्य आदि को विस्तार युक्त करता है वैसे सूर्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३२ ॥

सूर्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निदेवता । निचृदाप्यनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः । स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहान्नेरुक्षणः कनीनकम् । पद्मैतशोभिरिपिसे
भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—हे परमेश्वर ! (यत्र) जहाँ आप (पतशेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (भ्राजमानः) प्रकाशमान (विपश्चिता) मेधावी विद्वान् से (इयसे) विज्ञात होते हो या जहाँ प्राण वायु या विजुली (पतशेभिः) वेगादि गुण या (विपश्चिता) विद्वान् से (भ्राजमानः) प्रकाशित होकर (इयसे) विज्ञात होने हैं और जहाँ आप प्राण तथा विजुली (सूर्यस्य) सूर्य या विजुली और (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (अरणः) देवने के साधन (कनीनकम्) प्रकाश करने वाले (वारुः) नेत्रों को (आरोह) देवने के लिये कराते या कराती है यहाँ हम लोग भाग की उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है—मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर प्राण और विजुली के गुणों को जान उपासना या कार्य्य मित्ति करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा मित्ति करते हैं ॥ ३३ ॥

उप्राप्येतिव्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्यविद्वासी देवता । सूर्यस्य

भुक्तिगार्थी पंक्तिछन्दः । पञ्चमः स्वरः । स्वस्तोत्यन्तस्य

पादुपी जगती छन्दः । निरादः स्वरः ॥

अप सूर्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मंत्र में कहा है ।

उभ्रापेते पूर्वाही मृगेषामनन्तभू धर्यारहर्णा मृगयोर्दन्ना । स्व
हित वज्रमानस्य मृगानांगच्छनम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसा विद्या और शिल्प विद्या को प्राप्त होने को इच्छा करते हैं (स्वस्तोऽन्ती) धन्य और विद्वान् प्राणियों के देव (धनधु) धन्यगी

(संस्काराणां) शान्तिं वा यजमानः (उत्तमं) उद्योगि युक्तं चोद निवृत्तम् के हेतु (पु-
 संस्कारं) वृत्तितो संस्कारं के भक्त को ध्यान करने वाले विद्वान् (पुण्यं) सुखी और
 सन्तुष्ट को प्राप्त होने का (सुखेभ्यः) सुख करने और (यजमानस्य) धार्मिक यज-
 मान के (श्रुतान्) शान्ति को (शान्तिं) सुख से (गच्छतम्) गमन करने हैं जैसे तुम
 भी उन को सुख से संसुक्त करने का मार्ग को सिद्ध किया करो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में शान्ति और सुखशुभोपमात्कार है—जैसे सुखी और
 विद्वान् स्वर पदार्थों को ध्यान करने वाले महान् सुख और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त
 करते हैं वैसे ही शान्तिप्रिया के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये
 हुए शान्ति और जन्म संपादियों को शान्ति के मन्त्र सुख पूर्वक गमन कराते हैं ॥ ३३ ॥
 मन्त्रो मेऽस्मिन् प्रकथयस्व भुवस्पते विद्वेषान्ग्यभिधामानि । मा
 त्थां परिपरिणो विद्वन् मा तथां परिपन्थिनो विद्वन् मा त्या एकां
 अघायषो विद्वन् । श्येनो भूत्वा परापत्त यजमानस्य गृहान् गच्छ-
 त्तथां सस्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः स्वर्गः । शान्तेत्यस्य भुविसानोः पृथ्वी चन्द्रः । मध्यमः स्वर्गः । श्येनो-
 भुवनेत्यस्य विराडाचर्यनुष्टुप् चन्द्रः । शान्धारः स्वर्गः ॥

उप यान से विद्वान् को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश
 अगले मन्त्र में किया है ।

मन्त्रो मेऽस्मिन् प्रकथयस्व भुवस्पते विद्वेषान्ग्यभिधामानि । मा
 तथां परिपरिणो विद्वन् मा तथां परिपन्थिनो विद्वन् मा त्या एकां
 अघायषो विद्वन् । श्येनो भूत्वा परापत्त यजमानस्य गृहान् गच्छ-
 त्तथां सस्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हं (भुवस्पते) पृथिवी के पाटल करने वाले विद्वान् मनुष्य । तू (मे)
 मेरे (मन्त्रः) फलदाण करने वाला कण्ठु (भूमि) है सो तू (नी) मेरा और तेरा
 (संस्कारम्) संस्कार किया हुआ यान है (तत्) उस से (विध्वानि) सब (धामानि)
 स्थानों को (अभिप्रच्यषस्व) अच्छे प्रकार जा जिन से सब जगह जाते हुए (त्या)
 तुझ को जैसे (परिपरिणः) छल से रात्रि में दूर के पदार्थों को ग्रहण करने वाले
 (शूकाः) चोर (मा विद्वन्) प्राप्त न और परदेश को जानने वाले (त्या) तुझ को
 जैसे (परिपन्थिनः) मार्ग में लटने वाले डाकू (मा विद्वन्) प्राप्त न होवे जैसे पर-
 मेश्वर्य्य युक्त (त्या) तुझ को (अघायषः) पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य
 (मा विद्वन्) प्राप्त न हों वैसे कर्म सदा किया कर (श्येनः) श्येन पक्षी के समान
 योग बल युक्त (भूत्वा) होकर उन दुष्टों से (परापत्त) दूर रह और इन दुष्टों को भी
 दूर कर ऐसी किया कर के (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घर या देश
 देशान्तरों को (गच्छ) जा कि जिस से मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में पाञ्चकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को, योग्य है कि उत्तम विमान आदि यानों को रच उन में बैठ उन को यथायोग्य चला श्येन पक्षी के समान द्वीप या देश देशान्तर को जा धनों को प्राप्त करके यहाँ से आ और दुष्ट प्राणियों से बलग रह कर सब काल में स्वर्ग सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥ ३४ ॥

नमो मित्रस्येत्यस्य यत्स ऋषिः । सूर्यां देवता । निचूदार्थं जगती उन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और सूर्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमो मित्रस्य यरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृत्तसंपर्यत ।
दूरे दृशे देव जाताय कृतधे दिवस्पुत्राय सूर्याय शशिसत ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (यत्) जो (मित्रस्य) सब के सुहृत् (यरुणस्य) श्रेष्ठ (दिव.) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर का (ऋतम्) सत्यस्वरूप (तत्) उस चेतन की सेवा करते हैं । जैसे तुम भी उस का सेवन सदा (संपर्यत) किया करो और जैसे उस (महः) बड़े (दूरे दृशे) दूर स्थित पदार्थों को दिखाने (चक्षसे) सब को देखने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (कृतधे) विज्ञान स्वरूप (देवाय) दिव्यगुण युक्त (पुत्राय) पवित्र करने वाले (सूर्याय) चराचर त्मा परमेश्वर को (नमः) नमस्कार करते हैं जैसे तुम भी (शशिसत) उस की स्तुति किया करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! जो (मित्रस्य) प्रकाश (यरुणस्य) श्रेष्ठ (दिव.) प्रकाश स्वरूप सूर्यलोक का (ऋतम्) यथार्थ स्वरूप है (तत्) उस प्रकाश स्वरूप को तुम भी पिचा से (संपर्यत) सेवन किया करो । जैसे हम लोग जिस (चक्षसे) सब को दिखाने (देवजाताय) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (कृतधे) ज्ञान कराने अग्नि से (पुत्राय) पुत्र (दूरे दृशे) दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने (महः) बड़े (देवाय) दिव्यगुण वाले (सूर्याय) सूर्य के लिये प्रवृत्त हों जैसे तुम भी प्रवृत्त होवो ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और पाञ्चकलुप्तोपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को जिस की कृपा या प्रकाश से चोर डांठू आदि अपने कार्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों को प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ या सूर्य के समान कोई लोक नहीं है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

यरुणस्येत्यस्य यत्स ऋषिः । सूर्यां-देवता । विराड् प्राप्ती बृहती उन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परमेश्वरीन्तममनमस्मि परमेश्वर्य इत्तमममनमस्मि परमेश्वर्य
 इत्तमममनमस्मि परमेश्वर्य इत्तमममनमस्मि परमेश्वर्य इत्तमममनमस्मि
 इत्तमममनमस्मि ॥ ३६ ॥

परार्थः—हे जगदीश्वर 'जिन में आप (परमेश्वर्य) उत्तम जगत् के (उत्तममनम्)
 जो प्रकार प्रतिकल्प करने वाले (अस्मि) हैं जो (परमेश्वर्य) वायु के (इत्तमममन-
) साधारण्यो परार्थों के उपलब्ध करने (परमेश्वर्य) सूर्य के (इत्तमममनम्) जलों
 । गमनागमन करने वाली किया (इत्तम) हैं उन को धारण किये हुए हैं (परमेश्वर्य)
 तम (इत्तमममनम्) पदार्थों का स्थान (अस्मि) है (परमेश्वर्य) उत्तम (इत्तमममनम्)
 ल्यकारों दोषों के स्थान को (अस्मि) अच्छे प्रकार प्राप्त करने हैं इस में आप का
 तथ्य हम लोग करने हैं ॥ १ ॥ जो (परमेश्वर्य) जगत् का (उत्तममनम्) धारण क-
 ने वाला (अस्मि) है जो (परमेश्वर्य) वायु के (इत्तमममनम्) आधारों को उपलब्ध
 करने या जो (परमेश्वर्य) सूर्य के (इत्तमममनम्) जलों का गमनागमन करने वाली
 किया (इत्तम) हैं उनका धारण करने तथा जो (परमेश्वर्य) उत्तम (इत्तमममनम्)
 तम्य पदार्थों का स्थान रूप (अस्मि) है यह (परमेश्वर्य) उत्तम (इत्तमममनम्) पदा-
 र्थों के स्थान को (अस्मि) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है उस का उपयोग
 स्थों न करना चाहिये ॥ २ ॥ ३६ ॥

भाष्यार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—फोरे परमेश्वर के बिना सब जगत् के
 रचने या धारण पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और फोरे सूर्य के
 बिना भूमिआदि जगत् के प्रकाश और धारणा करने को भी समर्थ नहीं हो सकता
 इस में सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

याते धामानित्वरय गोतम इत्तमः । यज्ञो देवता । त्रिचूदापां त्रिष्टुप् छन्दः ।

धंयतः स्वरः ॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

याते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञ-
 म् । गयस्फानं प्रतरणः सुधीरोऽधीरहा प्रचरा सोमदुषानि ॥ ३७ ॥

परार्थः—हे जगदीश्वर जैसे विद्यान् लोग (या) जिन (ते) अ.प के (धामानि)
 स्थानों को (हविषा) देने लेने योग्य द्रव्यों से (यजन्ति) नत्कार पूर्वक ग्रहण करते
 हैं वैसे हमलोग भी (ता) उन (विश्वा) सभी को ग्रहण करें जैसे वह यज्ञ विद्याना

को (ते) आप का (गयस्फानः) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (प्रतरणः) दुर्कर्मों
 पार करने (सुधीरः) उत्तम धीरों का योग कराने (अवीरहा) कायर दखिन्नादु
 अवीर अर्थात् पुढपार्थ रहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (परिभूः) सार
 कार से सुख कराने वाला है जैसे वह आपकी कृपा से हम लोगों के लिये (भन्तु)
 हो या जिसको विद्वान् लोग (यजन्ति) यजन करते हैं उस (यज्ञम्) यज्ञ को ही
 लोग भी करें। हे (सोम) सोमविद्या को संपादन करने वाले विद्वान् ! जैसे हम रहे
 इस यज्ञ को करके घरों में आनन्द करें जानें इस में कर्म करें जैसे तू भी इस को
 के (दुर्य्यान्) घरों में (प्रचर) सुख का प्रचार कर जान और अनुष्ठान कर ॥३१॥

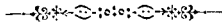
भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जैसे विद्वान् सोम
 ईश्वर में प्रीति संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसे ही सय मनुष्यों को
 करना उचित है ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का संपादन, विद्वानों का संगठन
 का अनुष्ठान, उस्ताह आदि की प्राप्ति, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन
 सत्यव्रत का धारण, अग्नि जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना,
 यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य
 बुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विप्रय का उप-
 वेश, मित्रता करना धर्म मार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर या सूर्य के गुणों का प्र-
 काश चोर आदि का निवारण ईश्वर सूर्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल बतलाना है
 इस से इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये।
 ऊषट और महीधर आदि ने इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरल ही वर्णन किया है ॥

यह चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ॥



अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

विद्धानि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराङ्घ्राद्धी पृहतीछन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेस्तनूरंसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरंसि विष्णवे त्वाऽ-
तिथेरातिथिमसि विष्णवे त्वा इथेनाथ त्वा सोमभृते विष्णवे
त्वाऽग्नये त्वा राघस्पोपदे विष्णवे त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि (अग्नेः) विजुलों प्रसिद्ध रूप अग्नि के (तनूः) शरीर के समान (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूँ जो (सोमस्य) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ समूह की (तनूः) विस्तार पूर्वक सामग्री (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) यायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूँ जो (अतिथेः) सन्यासी आदि का (आतिथ्यम्) अतिथिपन वा उन की सेवा रूप कर्म (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) विज्ञान यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ जो (श्येनाय) श्येन पक्षी के समान शीघ्र जाने के लिये (असि) है (त्वा) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता हूँ जो (विष्णवे) सब विद्या कर्म युक्त (सोमभृते) सोमों को धारण करने वाले यजमान के लिये सुख (असि) है (त्वा) उस को ग्रहण करता हूँ जो (अग्नये) अग्नि यज्ञ के लिये वायु आदि है (त्वा) उस को स्वीकार करता हूँ जो (राघस्पोपदे) घन की पुष्टि देने वा (विष्णवे) उत्तम गुण कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ है (त्वा) उस को ग्रहण करता हूँ जैसे इस सब वा संचन तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचरुद्रुतोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥ १ ॥
नेर्जनित्रमित्यस्य गीतमक्रपिः । विष्णुर्यज्ञो देवता । पूर्वस्यार्षी गायत्रीऽन्तः ।
स्वरः । गायत्रेऽनुत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥
अग्नेर्जनित्रंमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यांस्थायुरंसि पुरुरवां क्रि
गायत्रेणं त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि
जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! लोगो जैसे मैं जो (अग्नें) आग्नेय यज्ञादि की निरिहाने अग्नि के (जनित्रम्) उत्पन्न करने वाला हयि (असि) है (वृषणौ) जो पाने वाले सूर्य और वायु (स्थः) है जो (उर्वशां) पशुत सुगों के प्रान करने वाली क्रिया (असि) है जो (आयुः) जोषन (असि) है जो (पुरुरवाः) गुरुरां के उपदेश करने का निमित्त (असि) है (त्वा) उस अग्नि (गायत्रेणं) मन्थामि छन्दसा) आगन्व कारक स्वच्छन्द किया से (मन्थामि) पिरोइन करता हं (त्वा) स सोम आदि ओषधों समूह (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) पिरोइन करता हं (त्वा) और उस शत्रु दुःख समूह को (जागतेन) जागते (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) ताड़न कर के निवारण करता हं वंसे हो तुम में निरिहाने ॥ २ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचरुद्रुतोपमालङ्कार है—राय मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा संघन किये हुए यज्ञ से दूर रहे मनुष्यों के परिपोषण करें ॥ २ ॥

अपतथा इत्यस्य गीताम क्रपिः । यज्ञो देवता । गार्गीर्वनिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः । यज्ञमान और यज्ञ की तिजि करने वाले विद्वान केने हाथे चार्दिष्ये इत विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अपतथा समनसा सर्वतमावरेपसां मा यज्ञथे हिंसांमिष्टे प्र
दसां शिवां भवतमृषा नः ॥ ३ ॥

अपतमी) प्रातः मनुष्यों के भाषा करी ययन से इति (पञ्चमः स्वरः) पञ्चम (गार्गीर्वनिष्टुप्) मुख्य ज्ञान ज्ञायक मुक्त (जागतेन) वेद के वेगिज किये हुए पदमे पदमे चो विद्वान (नः) इन लोगों के नि

उपदेश करने वाले (अथान्) होने जो (यत्नम्) करने पढ़ाने का यत्न वा (यज्ञान-
निम्) निम्न प्रकृति के वाचन करने वाले यज्ञान को (माः हिंविष्टम्) न पोंडित
को दे (मद्य) मातृ (नः) हम लोगों के लिये (मित्रः) मित्र करने वाले (भव-
न्) होने ॥ ३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उचित है कि विद्या प्रकार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा स-
हाय्यता को न छोड़े क्योंकि यहाँ सर्वोत्तम कर्म है ॥ ३ ॥

अप्राप्यार्त्तान्मन्य मोक्षम ऋषिः । अग्निदेवता । अर्थात्प्रियुष् छन्दः । धैर्यतः

स्वरः । अत्र माताप्रेमण विगतिं यमुनें व्यग्रागन् ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि करने हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नायग्निद्वन्द्वानि प्रविष्टःसर्पाङ्गाभ्युग्रो अभिशस्ति पायां ।

मनः स्युतः सुगजां पलेह देवभ्यो हृष्यं सद्मप्रमुच्छन्

स्थादां ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (अग्निशान्तिपथा) सय प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (अर्थात्)
विद्युत् अग्नि को विद्या में (प्रविष्टः) प्रवेश करने करने(सर्पाङ्गाम्) घेडादि शास्त्रों के
शक्त अर्थ और स्वधर्मों का यथायत्न जनने वालों का (पुत्रः) पदा हुआ (स्युतः)
सर्वथा सुगकारों (सुगजा) विद्याओं को अच्छों प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने द्वारा (अ-
ग्निः) प्रकाशात्मा (अग्रयुच्छन्) प्रमाद रहित अध्यापक विद्वान् (चरति) जो (नः)
हम लोगों के लिये (हृ) हम संसार में (देवभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (ह-
ष्यम्) लेने देने योग्य पदार्थ वा (सद्म्) ज्ञान और (म्याहा) हयन करने योग्य
उत्तम अन्नादि को प्राप्त करना है (सः) सो आप (यज) सय विद्याओं को प्राप्त
कराइये ॥ ४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य कारण के भेद से दो प्रकार
का निश्चय अर्थात् जो कार्यरूप से सूर्यादि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सय मू-
र्त्तिमन् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर का-
र्यों में उपयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

आपतयेत्येतस्य मोक्षम ऋषिः । विद्युद्देवता । पूर्वस्यार्षुष्णिक् छन्दः । ऋषभः

स्वरः । अनाधृष्टमित्यप्रस्य भुक्तिार्थं पंक्तिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किल २ प्रयोजन के लिये परमात्मा को प्रार्थना विजुली का स्वी-

कार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनू नम्रेशाकराय शकनऽओ-
जिष्ठाय अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्ति-
पाऽअनभिशस्तेन्यमंजसा सत्यमुपगेपः स्वित्नेमा धाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसा रूप कर्मों से अलग रहने और खने वाले हैं इन से (त्वा) अ.पको (आपतये) सब प्रकार से स्वामी होने (परिपतये) सब ओर से रक्षा (शाकराय) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (शकने) शूरवीर यु-सेना (ओजिष्ठाय) जिस में सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है उस विद्या के होने और (तनूनम्रे) जिस से उत्तम शरीर होता है उस के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ आ अपनी कृपा से उस (देवानाम्) विद्वानों का (अनाधृष्टम्) जिसका अपमान कोई नहीं कर सकता (अनाधृष्यम्) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (अनभिशस्ति) किसके हिंसा करने योग्य नहीं है । (अभिशस्तेन्यम्) अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने हार (सत्यम्) अविनाशो (ओजः) तेज हे उसका ग्रहण कराके (स्वित्ते) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं उस में (मा) मुझ को (धाः) धारण करें कि जिस से (सत्यम्) सत्य व्यवहार को (उपगेपम्) जान कर करूँ ॥ १ ॥

मैं जो (अनाधृष्टम्) न हटाने (अनाधृष्यम्) न किसी से नष्ट करने (अनभिशस्ति) न हिंसा करने (अनभिशस्तेन्यम्) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य (देवानाम्) विद्वान् या पृथ्वी आदिकों के मध्य में (सत्यम्) कारणरूप नित्य (ओजः) पराक्रम स्वरूप वाली (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप यिजुली (असि) है, जो (मा) मुझे (स्वित्ते) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (धाः) धारण करता है (अज्जसा) सहजता से (ओजिष्ठाय) अन्यन्त तेजस्यों (आपतये) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (परिपतये) जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं (तनूनम्रे) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (शाकराय) शक्ति के उत्पन्न करने और (शकने) शक्ति वाली पौरसेना की प्राप्ति के लिये है (त्वा) अ.पको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ कि जिस से उन सत्य कारण रूप पदार्थों को (उपगेपम्) जान सकूँ ॥ २ ॥ ५ ॥

भाषाणः—मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के बिना सत्य सुख और यिजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के बिना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इन लिये कार्य पुण्यार्थ से निज करना चाहिये ॥ ५ ॥

ते प्रपदा इत्यस्य गौतम श्रुतिः । अग्निदेवता । विराड्, ब्राह्मो पट्कित्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह परमात्मा और विजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नें व्रतपास्त्ये व्रतपा या तव तनूरियथ सा मग्नि यो मम
तनूरपा सा त्वयि । सह नो व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान् दीक्षा-
पतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जिस लिये हे (अग्ने) (व्रतपते) जगदीश्वर ! आप या विजुली सत्य-
धर्मादि नियमों के (व्रतपाः) पालन करने वाले हैं इसलिये (त्वे) उस आप या
विजुली में मैं (व्रतपाः) पूर्वोक्त व्रतों के पालन करने वाली क्रिया वाला होता हूँ
(या) जो (इयम्) यह (तव) आप और उस की (तनूः) विस्तृत व्याप्ति है (सा)
वह (मयि) मुझ में (यो) जो (यपा) वह (मम) मेरा (तनूः) शरीर है (सा)
सो (त्वयि) आप या उस में है (व्रतानि) जो ब्रह्मचर्यादि व्रत हैं वे मुझ में हों
और जो (मे) मुझ में हैं वे (त्वयि) तुम्हारे में हैं जो आप या वह (तपस्पतिः)
जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालक निमित्त हैं सो (मे) मेरे लिये (तपः)
पूर्वोक्त तप को (अनुमन्यताम्) विज्ञापित कीजिये या करतों हैं और जो आप या
वह (दीक्षापतिः) व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो (मे) मेरे लिये (दीक्षाम्)
व्रतोपदेश को (अनुमन्यताम्) आज्ञा कीजिये या करतों हैं इसलिये भो (नो) मैं
और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ व्रत कर विद्वान् धार्मिक हों कि
जिस से दोनों की विद्यावृद्धि सदा होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—अनुष्यों को परमम प्रेम या उपकार
बुद्धि से परमात्मा या विजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान में पुनरा-
र्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ श्रुत्वस्य गौतमऋषिः । सोमो देवता । आपस्यायं वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
आप्यायेत्यन्तम्यायं जगती छन्दः । निरादः स्वरः ॥

फिर वह शंभर विजुली और विद्वान् ब्रह्म है इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है ॥

अथ श्रुंथं श्रुष्टे देव सोमाप्यापतामिन्द्रायेकचतुर्विदं । आत-
थमिन्द्रः प्यापतामास्वमिन्द्राय प्यापस्व । आप्यापतामाम्मान्ममर्षि-

नमून्वा मेधया स्तुति ते देव सोम सुत्वापार्जना । पृष्टा राघः
मेधे भगापऽज्ञानसृगयादिभ्यो नमो वापापृथिव्याभ्याम् ॥ ७ ॥

पदार्थ - हे (सोम) पदार्थ विद्या को जानने या (देव) दिव्य गुणसंपन्न जगदी-
श्वर ! पिदन् ' विद्युत् जित से (ते) आप या इन विद्युत् का सामर्थ्य (अशुर्शुः)
अथवा २ अद्भु २ जो (आप्यायताम्) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (इन्द्रः) जो
आप या विजुली (एकधर्मापदे) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इ-
न्द्राय) परमेश्वर्ययुक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) बढ़ावे या बढ़ाती है (आप्यायस्व)
वृत्तियुक्त कोजिये या करतो है । यह आप विजुली आदि पदार्थ के ठोकर २ अर्थों की
प्राप्ति को (सन्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सखीन्)
सब के मित्रों को (आप्यायस्व) बढ़ाइये या बढ़ावे जिस से (रवस्ति) सुख सदा
बढ़ता रहे (सोम) हे पदार्थ विद्या को जानने वाले ईश्वर या पिदन् ! आप की
शिक्षा या विजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्वाम्) उत्तम २ उत्पन्न करने
वाली क्रिया में कुशल होके (इमे) त्विजि को इच्छा या अक्षादि (भगाय) ऐश्वर्य्य
के लिये (पृष्टाः) जगोष्ठ सुखों को प्राप्त कराने वाले (राघः) धनसमूहों को (अ-
शीय) प्राप्त होऊँ । और (ऋतवादिभ्यः) सत्यवायो विद्वानों को यह धन देके सत्य
विद्या और (वापापृथिव्याभ्याम्) प्रकाश या भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त
होऊँ ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेयालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर को
उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा
को पुष्ट करने वाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा
शास्त्र के अनुसार सब अनिष्टों को भोगें ॥ ७ ॥

यात इत्यस्य मोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वस्य विराडापार्णो बृहती छन्दः ।

यात इति द्वितीयस्य निचृदापार्णो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह विजुली कैसी है इस विषय का उपदेश आगे मन्त्र में किया है ॥

या तेऽअग्नेऽपः श्रुपा तनूर्वापिष्टा गहरेष्टा । उग्रं वचोऽअपाव-
धीत्वेषं वचोऽअपावधीत्स्वाहा । या तेऽअग्ने रजः श्रुपा तनूर्व-
पिष्टा गहरेष्टा । उग्रं वचोऽअपावधीत्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ।

या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वापिष्टा गह्वरेष्ठा । उभं वचो अपावधी-
त्वेपं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो । तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) विजुली
रूप अग्नि का (अयः शया) सुवर्णादि में सोने (परिष्ठा) अशान्त बड़ा (गह्व-
रेष्ठा) आभ्यन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः)
वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्वेपम्) प्रदीप्त (वचः) शब्द या (स्वाहा)
उत्तमता से हृष्य किये हुए अन्न को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस
(अग्ने) विजुलीरूप अग्नि का (परिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर
में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर
(वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेपम्) प्रदीप (वचः) कथन या
(स्वाहा) उत्तम वाली को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जानके उस से कार्य
लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली
जो विजुली की व्याप्ति है उसको अच्छे प्रकार जान कर उपयुक्त कर के सब दुःखों का
नाश करे ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोदमन्नपि । अग्निर्व्यता । प्रथमस्य भुरिगर्भी गायत्री छन्दः

पङ्क्तः स्वरः । विदेदृग्निरन्त्रो नामाग्नेऽअग्निर् आर्गुना नाम्नेहि-

स्वरः । नास्तेहीत्यस्य त्रिभृद्भादो जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

अनुत्वेत्यस्य यानुत्पुष्टु छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

और कितान्त्रिये अग्नि जादि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इन

त्रियय का उपदेश काले मन्त्र में किया है ॥

तप्तायनी मेऽमि वित्तायनी मेऽस्पयतान्मा नाभितादधंयान्ना
व्यधितात् । विदेदृग्निरन्त्रो नामाग्नेऽअग्निर् आर्गुना नाम्नेहि-
ग्नोऽस्पयं पृथिव्यामसि पत्तेनाभृष्टामं गृक्षिणं तेन त्वा दधे विदे-
दृग्निरन्त्रो नामाग्नेऽअग्निर् आर्गुना नाम्नेहि योद्विगीपंस्यान्-
धिव्यामसि पत्तेनाभृष्टामं गृक्षिणं तेन त्वा दधे विदेदृग्निरन्त्रो
नामाग्नेऽअग्निर् आर्गुना नाम्नेहि पस्तृमीपंस्यान्धिव्यामसि
पत्तेनाभृष्टामं गृक्षिणं तेन त्वा दधे । अन्तुं त्वा देवर्षीतये ॥ ९ ॥

नत्सन्वा मेभया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामर्जीय । एष्टा रायः

प्रेपे भगापऽक्तुनमृगयादिभ्यो नसो गायामृथिर्वाभ्याम् ॥ ७ ॥

पदार्थ - हे (सोम) पदार्थ विद्या को जानने या (देव) दिव्य गुणसंपन्न जगदी-
श्वर । विद्वन् ' विद्युत्' जिस से (ते) आप या इस विद्युत् का सामर्थ्य (अशुरंशुः)
अथवा २ धत्त २ ओ (आप्यायताम्) रक्षा से बढ़ा जवया बढ़ाती है (इन्द्रः) जो
आप या विजुली (एकधर्तपिदे) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इ-
न्द्राय) परमेश्वर्य्युक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) बढ़ावे या बढ़ाती है (आप्यायस्व)
वृत्तियुक्त कीजिये वा करता है । यह जब विजुली आदि पदार्थ के टोक २ अर्थों की
प्राप्ति को (सन्त्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सप्तोन्)
सब के मित्रों को (आप्यायस्व) बढ़ाइये वा बढ़ावे जिस से (स्वस्ति) सुख सदा
बढ़ता रहे (सोम) हे पदार्थ विद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वन् ! आप की
शिक्षा या विजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम २ उत्पन्न करने
वाली क्रिया में कुशल होके (इपे) सिद्धि की इच्छा वा अन्नादि (भगाय) ऐश्वर्य्य
के लिये (एष्टाः) अर्घोष्ट सुप्तों को प्राप्त कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अ-
शोय) प्राप्त होऊं । और (ऋतयादिभ्य) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके साथ
विद्या और (घायामृथिर्वाभ्याम्) प्रकाश वा भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त
होऊं ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों की चाहिये कि परमेश्वर की
उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा
को पुष्ट करने वाली ओषधियाँ और अनेक प्रकार के घनों का ग्रहण करके चिकित्सा
शास्त्र के अनुसार सब आलस्यों को भोगें ॥ ७ ॥

यात इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वस्य घिराडापीं बृहती छन्दः ।

यात इति द्वितीयस्य निचृदापीं बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह विजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या तेऽग्नेऽयः शुषा तनूर्वापिंष्टा गहरेष्टा । उग्रं वचोऽअपाव-
धीत्वेषं वचोऽअपावधीत्स्वाहा । या तेऽग्ने रजः शुषा तनूर्व-
पिंष्टा गहरेष्टा । उग्रं वचोऽअपावधीत्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ।

या तेऽअग्ने हरिश्चागा तनूर्वापिष्ठा गह्वरेष्ठा । उभं वचो अपां वधी-
त्वेपं वचो अपां वधीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) विजुली
रूप अग्नि का (अयः शया) सुषणादि में सोने (वधिष्ठा) अत्यन्त बड़ा (गह्व-
रेष्ठा) आभयन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः)
वचन को (अपायधीत्) नष्ट करता और (त्वेषम्) प्रदीप (वचः) शब्द या (स्वाहा)
उत्तमता से हयन किये हुए अन्न को (अपायधीत्) दूर करता और जो (ते) इस
(अग्ने) विजुलीरूप अग्नि का (वधिष्ठा) अत्यन्त विस्तोर्ण (गह्वरेष्ठा) आभयन्तर
में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर
(वचः) क्रोधन को (अपायधीत्) नष्ट करता है (त्वेषम्) प्रदीप (वचः) क्रोधन या
(स्वाहा) उत्तम वाली को (अपायधीत्) नष्ट करता है उसको जानके उस से काव्य
लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली
जो विजुली की व्याप्ति है उसको अच्छे प्रकार जान कर उपयुक्त कर के सब दुःखों का
नाश करे ॥ ८ ॥

तत्तापनीत्यस्य गोतमश्चरि । अग्निर्व्यता । प्रथमस्य भुरिगार्थं गायत्री छन्दः

पङ्कजः स्वरः । विदेदग्निस्त्वस्य भुरिग् द्राह्मी पृहती छन्दः । मध्यमः

स्वरः । नात्रेहोत्यस्य निचूर्वाह्मी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ।

अनुन्देत्यस्य यानुष्यगुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

और क्रिसलिये अग्नि आदि से यह का अनुष्ठान करना चाहिये इस
विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तृतापनी मेऽसि वित्तापनी मेऽस्पथतान्मा नाधितादथतान्मा
व्यधितात् । विदेदग्निर्नभ्रोनामाग्नेऽअद्भिर आयुन्ता नाम्नेहि-
ग्नोऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टामं पृथिव्यं तेन त्वा दधे विदे-
दग्निर्नभ्रोनामाग्ने अद्भिर आयुन्ता नाम्नेहि योऽग्निर्वस्याम्-
थिव्यामसि यत्तेनाधृष्टामं पृथिव्यन्तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभ्रो
नामाग्नेऽअद्भिर आयुन्ता नाम्नेहि यस्मृतीवस्याम्पृथिव्यामसि
यत्तेनाधृष्टामं पृथिव्यन्तेन त्वा दधे । अन्तु त्वा देवर्षीतमे ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्या के ग्रहण करने वाले विद्वान् । जैसे मैं (यत्) जो (तत्तयनी) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला (अति) है या जो (वित्तायनी) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली विजुली (अति) है (त्वा) उसकी विद्या को जानता हूँ जैसे तू भी इस को (मे) मुझ से (एहि) प्राप्त हो । जैसे यह (यत्) जो (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (नभः) जल या प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ (मा) मुझ को (व्यथितात्) भय से (अयतात्) रक्षा करता या (नाथितात्) पेश्वर्य्य से (अघतात्) रक्षा करता है जैसे तुझ से सेवन क्रिया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा । जैसे मैं (तेन) उस साधन से जो (अग्ने) जाठर रूप (अङ्गिरः) अङ्गों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन या (नासा) प्रसिद्धि से (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नाम) प्रसिद्ध है (त्वा) उसको जानता हूँ जैसे तू भी इसको (मे) मुझ से (एहि) अच्छे प्रकार जान जैसे मैं (तेन) उस ज्ञान से (यत्) जो (अनाधृष्टम्) नहीं नष्ट होने योग्य (यज्ञियम्) यज्ञाङ्ग समूह (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसको (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (आदधे) धारण करता हूँ जैसे तू उससे इसको उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और जैसे सब मनुष्य भी उससे इसको (विदेत्) प्राप्त हों जैसे मैं (तेन) जो (द्वितीयस्याम्) दूसरी (पृथिव्याम्) भूमि में (अग्ने) (अङ्गिरः) अङ्गारों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन या (नासा) प्रसिद्धि से (नाम) प्रसिद्ध है वा (यः) जो (नभः) सुख को देता है (तेन) (त्वा) उस से उस को प्राप्त हुआ हूँ जैसे तू उस से इस को (एहि) जान और सब मनुष्य भी उससे इस को (विदेत्) प्राप्त हों जैसे मैं (तेन) पुरुषार्थ से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भगुण सहित (यज्ञियम्) यज्ञ सम्बन्धि (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूँ तथा तू उस के लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (विदेत्) धारण करें जैसे मैं (तेन) उस क्रियाकौशल से जो (अग्निः) अग्नि (आयुना) जीवन या प्रसिद्धि से (अङ्गिरः) अङ्गों का सूर्य्यरूप से पोषण करता हुआ (नाम) प्रसिद्ध है या जो (नभः) आकाश को प्रकाशित करता है (त्वा) उस को धारण करता हूँ जैसे तू उस को धारण कर वा सब लोग भी (अनुविदेत्) उस को ठीक २ जान के कार्य सिद्ध करें । जैसे मैं (तेन) इन्धनादि सामग्री से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भ सहित (यज्ञियम्) शिल्पविद्यासम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को विद्वानों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूँ जैसे तू उस से उस की प्राप्ति के लिये (अन्वोद) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से संप्रयोग करें ॥ १ ॥

अर्थः—इस मन्त्र में ज्ञानमनुभवात्कारणं—जो प्रमित्त सूर्य विजुली रूप में तीन प्रकार का अग्नि मन्त्र लोगों में प्रचलित भौतिक मानने वाला है उसको जान और ज्ञानमन्त्र मन्त्रियों को बाल्यविरिधि का संपादन करना फगताना चाहिये ॥ १ ॥

विष्णुसौम्य गोतम ऋषिः । पान्देवता । प्राङ्मुखित् उन्दः । स्वपभः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में मर विद्याओं की मुख्य विधि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है ॥

मिः शुभि सपत्नसाही द्वेषेभ्यः कल्पस्व मिः शुसि सपत्न-
साही द्वेषेभ्यः । शुन्धस्व मिः शुसि सपत्नसाही द्वेषेभ्यः शुम्भ-
स्व ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य । तू जो (सपत्नसाही) जिस से शत्रुओं को सहन करने है वह (द्वेषेभ्यः) उत्तम गुण शूरधारों के लिये (कल्पस्व) पदा और उपदेश कर के प्राप्त कर (मिही) जो दोषों को नष्ट करने या शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (अस्ति) है उसको (द्वेषेभ्यः) विद्वान् दिव्यगुण या विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये (शुन्धस्व) शुद्धता में प्रकाशित कर जो (सपत्नसाही) दोषों को हनन या (मिही) अपविद्या के नाश करने वाली वाणी (अस्ति) है उसको (द्वेषेभ्यः) धार्मिकों के लिये (शुम्भस्व) शुद्ध कर और जो (सपत्नसाही) दुष्ट स्वभाव और (सिद्धो) दुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी (अस्ति) है उसको (द्वेषेभ्यः) सुशील विद्वानों के लिये (शुम्भस्व) शोभा युक्त कर ॥ १० ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वा-
णी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुण सहित उन का स्वीकार करें ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतमऋषिः । पान्देवता । निचृद्भाङ्गी त्रिष्टुप् उन्दः ।
घैवतः स्वरः ॥

फिर यह कैसा और कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चा-
त्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादि-
त्यैरुत्तरतः पात्विदमहन्तं वार्यह्रिर्वा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो । जैसे (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान युक्त (इन्द्रघोषः) प-
रमात्मा वेद विद्या और विजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला

(विश्वकर्मा) सद्य कर्म वाला मैं (यज्ञात्) पढ़ना पढ़ाना या होम रूप यज्ञ से (इ-
दम्) आभ्यन्तर में रहने वाले (तप्तम्) तप्त जल (यहिर्था) बाहर धारण होनेवा-
ले शीतल (वाः) जल को (निःसृजामि) संपादन करता या निःक्षेप करता हूँ जैसे
आप भी कीजिये । जो (पलुभिः) अग्नि आदि पदार्थ या चीवीश वर्ष ब्रह्मचर्य किये
हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रघोषः) परमेश्वर जीय विजुली के अनेक शब्द स-
म्बन्धी वाणों है उस को (पुरस्तात्) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूँ जैसे आप भी
(पातु) रक्षा करो जो (रद्रैः) प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों
के साथ वर्त्तमान (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान कराने वाली वाणों है उस को (पश्चात्)
पश्चिम देश से रक्षा करता हूँ जैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (पितृभिः) ज्ञानी
वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (मनोजषाः) मन के समान वेग वाली वाणी है उसका
(दक्षिणतः) दक्षिणदेश से पालन करता हूँ जैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो
(आदित्यैः) बारह महानों वा अड़तालीश वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों के साथ
वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सद्य कर्मयुक्त वाणी है उस को (उत्तरतः) उत्तर देश से पा-
लन करता हूँ जैसे आप भी (पातु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाच० हैं—मनुष्यों को योग्य है कि जो पलु रुद्र आदित्य
और पितरों से सेवन किंई हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी वा जल को से-
वन विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ विजुली है उस के सेवन में निरन्तर वर्त्त ॥ ११ ॥
सिंहसौत्यस्य गोतमऋषिः । वाग्देवता । भुरिग्राही पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वह फैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा
सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा
सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा
सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा सिंहस्यै स्वाहा

पदार्थः—मैं जो (आदित्यवनिः) मासों का सेवन और (सिंहो) क्रूरत्व आदि
दोषों को नाश करने वाली (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र से संस्कार युक्त वाणी (असि)
है, जो (ब्रह्मवनिः) परमात्मा वेद और वेद के जानने वाले 'मनुष्यों के सेवन और
(सिंहो) बल से जाडघपन को दूर करने वाली (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने व्यवहार
युक्त वाणी (असि) है, जो (क्षत्रवनिः) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और
(सिंहो) चोर डाकू अन्याय को नाश करने वाली (स्वाहा) राज्य व्यवहार में कु-
शल वाणी (असि) है, जो (रायस्पोषवनिः) विद्या धन को पुष्टि का सेवन और

(सिंही) अविद्या को दूर करने वाली (स्वाहा) याणी (अति) है, जो (सुप्रजाय-
निः) उत्तम प्रजा का सौजन्य और (सिंही) राव दुष्टों का नाश और (स्वाहा) व्यव-
हार से धन को प्राप्त कराने वाली याणी (अति) है और जो (यजमानाय) विद्या-
नों के पूजन करने वाले यजमान के लिये (स्वाहा) दिव्य विद्या सम्पन्न याणी
(देवान्) विद्वान् दिव्यगुण या भोगों को (आयह) प्राप्त करता है (त्या) उसको
(भूतेभ्यः) सब प्राणियों के लिये (यज्ञात्) यज्ञ से (निःसृजामि) संपादन
करता हूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज्ञात्) (निः) (सृजामि) इन तीन
पदों को अनुवृत्ति है मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार ल-
क्षण युक्त याणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ाकर सदा आनन्द में रहें ॥ १२ ॥

ध्रुवोऽसौ स्वस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देयता । भुक्तिगार्थ्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किं यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया ॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीन्दृष्टेह ध्रुवच्छिदस्पन्तरिक्षन्द्हाच्युत क्षि-
दसि दिवंन्द्हाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यज्ञ (ध्रुवः) निश्चल (पृथिवीम्) भूमि को
बढ़ाता (अति) है उस को तुम (दृष्ट) पढ़ाओ जो (ध्रुवक्षित्) निश्चल सुख और
शास्त्रों का निवास कराने वाला (अति) है या (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले
पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (दृष्ट) पढ़ाओ जो (अच्युतक्षित्) नाश रहित
पदार्थों को निवास कराने वाला (अति) है या (दिवम्) विद्यादि प्रकाश को प्रका-
शित करता है उसको तुम (दृष्ट) पढ़ाओ जो (अग्नेः) विद्वान् आदि अग्नि या (पुरीषम्)
पशुओं को पूर्ण करने वाला यज्ञ (अति) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥ १३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से तित्त या त्रिलोकी के पदार्थों
को पुष्ट करने वाले विद्या क्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को
रखें ॥ १३ ॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः । सविता देयता । रथराष्टापी जगतीछन्दः ।

निर्यादः स्वरः ॥

यद्य अगले मन्त्र में योगी धीर ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते पिपो विप्रा विप्रस्य पृहता धिप-
श्चितः । विहोत्रादधे वपना विदेकऽन्मदी देवस्य सपितुः परि-
ष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे जो (विद्वान्नाः) देने लेने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस (बृहतः) सब से बड़े (विप्रस्य) अनन्त ज्ञान कर्म युक्त (विपश्चितः) सय विद्या सहित (सयितुः) सकल जगत् के उत्पादक (वेपथ्य) सय के प्रकाश करने वाले महेश्वर की (महो) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति रूप (स्वाहा) सय प्राणी को जान उस में (मनः) मन को (युञ्जते) युक्त करते हैं (उत) और (धियः) बुद्धियों को भी (युञ्जते) स्थिर करते हैं जैसे (ययुनयित्) उत्तम कर्मों को जानने वाला (एकः) सहाय रहित में उसको जान उस में अपना मन और बुद्धिको (विदधे) सदा निश्चल विधान कर रखता हूँ ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है— मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के संग से विद्या को पा सुजो हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४ ॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ब्रह्मपि । विष्णुर्देयता । भुरिगायीं गायत्रो छन्दः ।

पङ्कजः स्वरः ॥

फिर यह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश आगे मन्त्र में किया है ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे ब्रह्मा निदधे पदम् । समूढस्य पांसुरे
स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—(विष्णुः) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उस को (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (ब्रह्मा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशवान् प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार करने कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वहाँ सय मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सय को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उन में से ओपधि आदि पृथिवी में प्रकाश आदि सूर्य लोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है इस लिये हुय शतपथ के प्रमाण से नय शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इस में महोभर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

इरायतोऽन्वय वशिष्ठऋषिः। विष्णुर्वैवता स्वराडानीं त्रिष्टुप् छन्दः। धैषतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में इंधर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है ॥

इरायती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनवे दशस्या ।
 व्यस्कन्ना रोदसी विष्णवेने दाधर्थं पृथिवीमभितो मयूतैः
 स्वाहा ॥ १६ ॥

पदार्थः—दे (विष्णो) सर्वगर्वा जगदोन्वर जो आप जिस (इरायती) उत्तम अन्न युक्त (धेनुमती) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा या पशु युक्त (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि या वाणी (पृथिवीम्) भूमि (हि) निश्चय करके (स्वाहा) वेद वाणी या (भूतम्) उत्पन्न हुए सब जगत् को (मयूतैः) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (अमितः) सर और से (दाधर्थं) धारण और (रोदसी) प्रकाश या पृथिवी लोक का (व्यस्कन्नाः) सम्यक् तन्मन करते हो उन (मनवे) विज्ञान युक्त (दशस्या) दशन अर्थात् दातों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आप के लिये (पते) ये हम लोग सबजगत् को निवेदन करते हैं ॥१॥ जो (विष्णो) व्यापनशील प्राण जो (इरायती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) पशु सहित (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि या वाणी है उस (पृथिवीम्) भूमि (स्वाहा) या इन्द्रिय को (मयूतैः) किरणों अपने बल आदि (अमितः) सब प्रकार (दाधर्थं) धारण करता या (रोदसी) प्रकाश भूमि को (व्यस्कन्नाः) तन्मन करता है उस (दशस्या) दशन और दान्त के समान आचरण करने या (मनवे) विज्ञापन युक्त सूर्य को लिये (भूतं हि) निश्चय करके सब जगत् को करने के लिये इंधर ने दिया है ऐसा (पते) ये सब हम लोग जानते हैं ॥ २ ॥ १६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाच०—जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसेही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है ॥ १६ ॥

देवभ्रुताषित्य वशिष्ठऋषिः। विष्णुर्वैवता। स्वराड्, प्राणी त्रिष्टुप् छन्दः।
 धैषतः स्वरः ॥

किन्तु ये प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥
 देवभ्रुता देवेष्वार्घोपतम्प्राची प्रेतमध्वरङ्कल्पयन्तीऽऊर्ध्व

सुखसंगलुप्त्या विहरताम् । स्वं मोक्षमपेक्षतन्दित्री दुर्षोऽभाशुमां
निर्वीदिष्टमृत्जासा निर्वीदिष्टमग्रं रमेष्ठां अस्मिन्पृथिव्याः ॥ १७ ॥

परां - ई मरुतो' सुख सङ्गे जो (देवो) विष्णुत् या द्वियुक्तो मे (देवपत्नी)
विष्णो मे भक्तवित्पे पूरमाण ममान वायु (मोक्षाम्) परत शय परी भव जो (मयो)
मन वरमे वा (मन्मन्तो) मन्मथं पालो मन्मथ भूमि (उच्यते) इति सुख सुख (मे)
दुःखं विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)

अथर्वः - मन्मन् वे विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)
विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)

विष्णुत् या विष्णुत् या वा (मन्मन्) उच्यते मे (मन्मन्) मन्मन् वे (मन्मन्)

भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करना चाहिये ॥ १८ ॥

द्विषोवेत्यस्योतप्यो दीर्घगमा इन्द्रपिः । विष्णुर्देवता । त्रिचूदाप्यं जगतीछन्दः ।
नियतः स्वरः ॥

फिर यह जगदीश्वर कौसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

द्विषो वां विष्ण उत वां पृथिव्या म॒हो वां विष्ण उ॒रोरु॒न्त
रि॒क्षात् । उ॒मा हि ह॒स्ता यमु॒ना पृ॒णस्वा प्र॒णच्छ॒ दक्षिणा॒दोत्
सु॒व्याद्विष्णवे॒ त्वा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप सृष्टा कर के हम लोगों (द्विषः) प्रसिद्ध या विजुली रूप अग्नि से (यमुना) द्रव्य के साथ (आरुणस्व) सों से पूर्ण कीजिये और (पृथिव्याः) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (य अथवा (महः) महत्त्व अथवा धीर (उत्) भी (उरोः) बहुत (अन्तरिक्ष अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुवों को (हि) निश्चय कर के पूर्ण कीजिये (विष्णो) सय में प्रसिद्ध ईश्वर आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वामपार्श्व से सुवों को दीजिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योग विज्ञान यज्ञ के लिये जन करते हैं ॥ १९ ॥

भाष्यार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिन व्यापक परमेश्वर ने महत्त्व र भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ या उन में रहने वाले भोग्यों आदि मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुवों को धारण करना है उ की उपासना करें ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुरित्यस्योतप्यो दीर्घतना इन्द्रपिः । विष्णुर्देवता । विष्णुर्देवता । विष्णुर्देवता ।
छन्दः । धीरतः स्वरः ॥

फिर यह कौसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र तद्विष्णुस्तवते श्रीर्षुण मृगो न श्रीम कुंपुरो मिरिष्टाः । प-
शुकर्युं त्रिषु विक्रमणेप्यधिल्लिवन्ति शुभानानि विद्वां ॥ २० ॥

पदार्थः—(वश्य) जिन के (उत्पु) शान्त (त्रिषु) (त्रिविक्रमणेषु) विविध प्रकार के क्रमों में (विष्णो) सब (शुभानानि) लोक (अधिल्लिवन्ति) निवास कर रहे और (श्रीर्षुण) शान्त परमात्म से (श्रीमः) भय बरने वाले (कुंपुरः) विविध प्राणियों को बरने और (मिरिष्टाः) परत में रहने वाले (मृगः) विद के (म

समान पापियों को खोज दुःख देता हुआ (प्रस्तवते) उपदेश करता है (तत्) इस से उस को कभी न भूलना चाहिये ॥ २० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥ २० ॥

विष्णोरराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्पी
पङ्क्तिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णोःरराटमसि विष्णोः श्रुञ्जे स्थो विष्णोः स्यूरसि वि-
ष्णोःभ्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है यह (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से (रराटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णोः) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (स्युः) विस्तृत (असि) है । सब जगत् (वैष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णोः) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (मन्त्रे) जड़ चैतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर ! हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥ २१ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्ट देव है ऐसा जान कर सब कामनाओं की सिद्धि करें २१
देवस्यात्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञोदेवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पङ्क्ति-
छन्दः । पञ्चमः स्वरः । आदद् इत्युत्तरस्य भुरिगार्पी पृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सधितुः प्रसूद्वेऽश्विनोर्घाहुभ्यांभूपृष्णो हस्ताभ्या-
म् । आर्दडे नार्यसीदसहधे रक्षसां ग्रीषा अपि कृन्तामि । पृहत्-
सि पृहत्वा पृहतीमिन्द्रांषु वाचं यद् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (देवस्य) सब को प्रकाश करने धानन्द देने वा (सधितुः) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसव्ये) उत्पन्न

जिये हुए संसार में जिम यज्ञ को (धाद्रे) ग्रहण करता हं वैसे तू भी (या)
उसको ग्रहण कर जैसे मैं (नागे) यज्ञ किया या (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का प्र-
हण करता हं वैसे तू भी ग्रहण कर जैसे (अहम्) मैं (गक्षमाम्) दुष्ट स्वभाव वाले
शत्रुओं के (प्रोषाः) शिर्षों को भी (अगिष्टन्नामि) छेदन करता हं वैसे तू भी छे-
दन करे। जैसे मैं इस अनुष्ठान में (वृहद्रथाः) यज्ञार्थ पाया यज्ञ होता हं वैसे तू
भी हो और जैसे मैं (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य को प्राति के लिये (वृहताम्) यज्ञी (याचम्)
याचों का उपदेश करता हं वैसे तू भी (यद) कर ॥ २२ ॥

भाषार्थ:-इस मन्त्र में याचकलुप्तोपमाङ्कार है—जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृ-
ष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्यों में उपयोग कर सुखों में प्राप्त कर
ते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुँचना चा-
हिये ॥ २२ ॥

रक्षोहणमित्यस्तीत्यो दीर्घतमा ऋग्निः । यज्ञो देयता । आधस्याजुषी वृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । मध्यमस्य स्वराद्ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यम्मंसयन्धुरित्युत्तरस्य स्वराद्ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः । ऋपमः स्वरः ॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणं यलगहनं वैष्णवीमिदमहनं यलगमुत्किरामि यम्मे
निष्ठ्यो यममात्यो निचखानेदमहनं यलगमुत्किरामि यम्मे स-
मानो यमसमानो निचखानेदमहनं यलगमुत्किरामि यम्मे सर्व-
न्धुर्पमसंपन्धुर्निचखानेदमहनं यलगमुत्किरामि यम्मे सजातो य-
मसंजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (यलगहनम्) बलों को बिडोलने
और (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और (वैष्णवीम्) व्यापक ई-
श्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके (यम्) जिस (यलगम्) बल प्राप्त कराने वाले
यज्ञ को (उत्किरामि) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूँ
(तम्) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम्) इस को प्रकाशित कर और जैसे (मे)
मेरा (निष्ठ्यः) यज्ञ मैं कुशल (अमात्यः) मेधावी विद्वान् मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ
या (इदम्) भूगर्भ विद्या को परीक्षा के लिये स्थान को (निचखान) निःसन्देह क-
रता है वैसे (तम्) उसको तेरा भी भूय छोड़े जैसे (अहम्) भूगर्भ विद्या को जानने

वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त कराने वाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खननरूपी कर्म-को (उत्किरामि) अच्छे प्रकार संपादन करता हूँ जैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सदृश वा असदृश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचखान) खनन करता है जैसे तेरा भी खोदे, जैसे (अहम्) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) आत्मबल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढ़ने पढ़ाने रूपी कर्म को (उत्किरामि) सम्पन्न करता हूँ वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसा (मे) मेरा (सवन्धुः) तुल्य बन्धु मित्र वा (असवन्धुः) तुल्य बन्धु रहित भूमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे, जैसे (अहम्) सव का मित्र मैं (यम्) जिस (बलगम्) राज्य बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस कर्म को (उत्किरामि) संपादन करता हूँ वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (सजातः) साथ जन्म हुआ (अरुजातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (हृत्याम्) उत्तम क्रिया को (निचखान) निःसन्देह करता है जैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे । जैसे मैं इस सव कर्म को (उत्किरामि) संपादन करता हूँ वैसे तुम भी करो ॥ २३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को ईश्वर को इस सृष्टि में पिढानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

स्वराडसात्यस्यौतथ्यो दीर्यतमा ऋषिः । सूर्यपिढांसी देवते । सुरिगार्ष्य-
नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है ॥

स्वराडंसि सपत्नहा मंत्रराडंस्यमिमात्रिहा जंनराडंसि रक्षो-
हा संर्वराडंस्यमिष्टहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे पिढान् मनुष्य ! जिस कारण आप (स्वराट्) अपने भाप प्रकाश-मान (भगि) हैं इस से (सपत्नहा) शत्रुओं को मारने वाले होते हो, जिस कारण तुम (मंत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशमान हो इस से (भगिमात्रिहा) भगिमान मुक्त मनुष्यों को मारने वाले होने हो, जिस से (जनराट्) धार्मिक पिढानों में प्रकाशित है इस से (रक्षोहा) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होने हैं जिस से आप (स्वराट्) राय में प्रकाशित है इस से (भगिबहा) भगिन् अधीन् शत्रुओं को मारने वाले

होने है ॥ १ ॥ जिन कारण का सूर्य लोभ (स्वराट्) अपने आप (अग्नि) प्रजापति
 है इन से (मन्त्रः) मंत्र के अक्षरों को वादने वाला होता है जिन कारण यह
 (मन्त्राट्) यहाँ में प्रजापति (अग्नि) है इन से (अग्निमानिहा) अग्निमानसत्कार
 और आदि का जल करने वाला होता है जिन कारण यह (जन्मराट्) धार्मिक विद्वानों
 के मन में प्रजापति (अग्नि) है इन से (रक्षोहा) राक्षस का दुष्टों का हनन करने
 वाला होता है जिन से या (मन्त्राट्) सत्य में प्रजाशामान (अग्नि) है इस से (अ-
 ग्निना) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥ २४ ॥

भाषार्थ — इन मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—हे विद्वान् मनुष्य । जैसे सूर्य अपने प्र-
 काश से चौर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिया कर अन्य प्राणियों को सुखी करता
 है वैसे ही तू भी सय शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥ २४ ॥

रक्षोहण इत्यर्थात्तद्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य ब्राह्मो वृद्धतो छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । पलगहनोऽपेयुचरस्यार्थो पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यजमान रुभा आदि के अक्षर यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री
 का ग्रहण करावे इन विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणो यो पलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो यो पले-
 गहनोऽथ नवामि वैष्णवान् रक्षोहणो यो पलगहनोऽथस्तुयामि
 वैष्णवान् प्रोक्षामि यो पलगहनो उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणो-
 यो पलगहनो पर्वहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थं ॥२५॥

पदार्थः—हे समाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम (रक्षोहणः) दुष्टों का नाश
 करने वाले हो वैसे शत्रुओं के बल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (वैष्णवान्) यज्ञ
 देवता वाले (यः) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (प्रोक्षामि) इन घ-
 मंडी मनुष्यों को शुद्ध करूँ जैसे आप (रक्षोहणः) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने
 वाले है वैसे (पलगहनः) शत्रु सेना का धाह लेने वाला मैं (वैष्णवान्) यज्ञ सं-
 यन्धी (यः) तुम को सुखों से मान्य कर दुष्टों को (अवतयामि) दूर करता हूँ,
 जैसे (पलगहनः) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (र-
 क्षोहणः) शत्रुओं को मारने या (वैष्णवान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (यः)
 तुम को (अपस्तुयामि) सुख से आच्छादित करता हूँ वैसे तुम भी किया करो, जैसे
 (रक्षोहणो) राक्षसों के मारने या (पलगहनो) यज्ञों की विलोडन करने वाले (याम्)
 यज्ञपति या यज्ञ कराने वाले विद्वान् का श्रावण करते हो वैसे मैं भी (उपदधामि)

धारण करता हूँ जैसे (रक्षोहर्णी) राक्षसों के मारने (यत्नगहनी) पलों को बिलो-
डने वाले (याम्) प्रजा सभाभ्यक्ष आप (वैष्णवी) सय विद्याओं में व्यापक विद्वानों
की क्रिया या (वैष्णवम्) जो विष्णुसम्बन्धी ज्ञान है इन सय को तर्क से जानते हैं
वैसे मैं भी (पर्युहामि) तर्क से अच्छे प्रकार जानूँ और जैसे आप सय लोग (वैष्ण-
वाः) व्यापक परमेश्वर को उपासना करने वाले (स्थ) हैं वैसे मैं भी होऊँ ॥ २५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में याचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं—मनुष्यों को परमे-
श्वर की उपासना युक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा को बल को पूर्ण करके यज्ञ
से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जाँतकर सय भूमि के राज्य की पलना करने
चाहिये ॥ २५ ॥

देवस्यत्वेतस्यीतथ्यो दीर्घतमाङ्गपिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य निचूदार्पा
पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ययोसोत्युत्तरस्य निचूदार्पा
त्रिष्टुप्छन्दः । घैषतः स्वरः ॥

किस लिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है ॥

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वीहृभ्याम्पूजो हस्ताभ्याम् ।
आददे नार्थीसीदमहधे रक्षसाङ्गृयावा अपि कृन्तामि यषोऽसि
प्रषयास्मद्वेषो प्रषपारात्तीर्हिवे त्वाग्न्तरिचाय त्वा पृथिव्यै त्वा
शुन्धन्ताँह्लोकाः पितृपदनाः पितृपदनमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (सवितुः) सय जगत् के उत्पन्न करने और
(देवस्य) सय आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में
(अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य तथा (पूजोः) अति पुष्ट
वीर के (हस्ताभ्याम्) प्रबल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों की (आ-
ददे) लेता या (इदम्) इस जगत् की रक्षा कर (रक्षसाम्) दुष्टकर्म करने वाले प्रा-
णियों के (प्रोवाः) शिरों का (अपि) छेदन ही करता हूँ तथा जैसे पदार्थों
का उत्तम गुणों से मेल करता हूँ वैसे तू भी उपकार ले और (यषय) उत्तम गुणों से
पदार्थों का मेल कर जैसे मैं (द्वेषः) ईर्ष्या आदि दोष या (अरातोः) शत्रुओं को
(अरुम्) अपने से दूर कराता हूँ वैसे तू भी (यवय) दूर करा । हे विद्वान् ! जैसे
हम लोग (दिवे) ऐश्वर्यादि गुण के प्रकाश होने के लिये (त्वा) तुझ को (अन्त-
रिक्षाय) आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (पृथिव्यै)

पृथिवी के पदार्थों को पुष्टि होने के लिये (त्या) तुल्य को सेवन करते हैं वैसे तुल्य लोग भी करो । जैसे (विद्युद्दत्तम्) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (विद्युत्) है और जिम ने (विद्युद्दत्ता) जैसे ज्ञानियों में उदर पवित्र होते हैं वैसे मैं शुद्ध होऊँ तथा सब मनुष्य (मनुष्यन्ताम्) अपनी शुक्ति करें और दे स्तौ । तू भी यह सब इसी प्रकार कर ॥ २६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुल्योपमालङ्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि ठीक क्रियाक्रमपूर्वक विद्याओं का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब प्रकार से अपनी भुक्ति करें ॥ २६ ॥

उद्दिष्टमित्यस्योत्पद्यो दीर्घतमा अग्निः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी जगतो छन्दः ।
निपादः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सम्भाषित थीर अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है इस विषय का उपदेश जगते मन्त्र में किया है ॥

उद्दिष्टं स्वस्तभ्रानान्तरिक्षं पृण दृष्टं स्वपृथिव्यां सुतानस्त्वां मा-
रुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्राह्मवनिं त्या क्षत्रवनिं
रायस्योपवन्ति पर्युहामि । ब्रह्मं दृष्टं क्षत्रं दृष्टं हायुर्दृष्टं प्रजान्
दृष्टं ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमविद्वन् ! जैसे (त्या) आप को (मारुतः) वायु (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) धर्म से (मिनोतु) प्रयुक्त करे (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान भ्रम से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप द्वारा करके हम लोगों के लिये (दिवम्) विद्या गुणों के प्रकाश को (उत्तमान) अज्ञान से उघाड़ देओ तथा (अन्तरिक्षम्) सब पदार्थों के अवकाश को (पृण) परिपूर्ण कीजिये (पृथिव्याम्) भूमि पर (सुतानः) सद्दिष्टों के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (दृष्टं) बढ़ाइये (ब्राह्म) वेद विद्या को (दृष्टं) बढ़ाइये (क्षत्रम्) राज्य को बढ़ाइये (आयुः) अपरत्या को (दृष्टं) बढ़ाइये और (प्रजाम्) उत्पन्न हुई प्रजा को (दृष्टं) वृद्धियुक्त कीजिये इसी लिये मैं (ब्राह्मवनि) ब्राह्मविद्या को सेवन करने या कराने (क्षत्रवनि) राज्य को सेवन करने कराने (रायस्योपवन्ति) और धनसम्पत्ति की पुष्टि को सेवने या सेवन कराने वाले आप को (पर्युहामि) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूँ वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक कीजिये और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥ २७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकतुल्योपमालङ्कार हैं—हे मनुष्यो ! आप

लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सत्य को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ा कर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥ २७ ॥

ध्रुवासीत्यस्यैतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्या जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ध्रुवासिं ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजयां पशुभिर्भूयात् ।

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्णधामिन्द्रस्य हृदि रसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री ! जैसे तू (प्रजया) राज्य का अपने सन्तानों और (पशुभिः) हाथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित (अस्मिन्) इस (आयतने) जगत् या अपने स्थान का सबके सत्कार कराने के योग्य यज्ञमें (ध्रुवा) दृढ़ सङ्कल्प (असि) है वैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (ध्रुवः) दृढ़ सङ्कल्प है । तुम दोनों (घृतेन) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (पूर्णधाम्) परिपूर्ण करो । हे यज्ञ करने वाली स्त्री ! तू (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य की भी अपने यज्ञ से (हृदिः) (असि) है अब तू और तेरा पति यह यजमान (विश्वजनस्य) संसार का (छाया) सुख छाया करने वाला (भूयात्) हो ॥ २८ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों की पाकर दुःखों को छोड़ें उन का सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

परित्वेत्यस्यैतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरसमाध्यक्षी देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥

गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर और समाध्यक्ष से क्या २ होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परिं त्वा गिर्धणो गिरंऽइमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टां भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (गिर्धणः) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर या समाध्यक्ष (इमा) ये मेरी किई हुई (विश्वतः) समस्त (गिरः) स्तुतियें (परि) सब प्रकार से (भवन्तु) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (वृद्धायुः) वृद्धों के समान आचरण

करने वाले आप के (अनु) पश्चात् (वृद्धयः) अत्यन्त बढ़ती हुई और (जुष्टयः) प्रीति करने योग्य (जुष्टाः) प्यारी हों ॥ २९ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्माँ के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिये ॥ २९ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । ईश्वरसभाध्यक्षी देवते । आच्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य सूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर या सभाध्यक्ष ! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का नियासस्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब का आधार हैं इसी से हम लोगों को (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य का (स्यः) संयोग करने वाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्य आदि लोक या राज्य को (ध्रुवः) निश्चल करने वाले (असि) हैं ॥ ३० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—जैसे सूर्य ऐश्वर्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को भी होना चाहिये ॥ ३० ॥

विभूरसोत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । विराडाप्युष्टु छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विभूरसि प्रवाहंणो वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वाश्वोऽसि प्रचे-
तास्तुधोऽसि विश्ववेदा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर या विभून् ! जिस में आप जैसे व्यापक भाकाश और ऐश्वर्य युक्त राजा होता है वैसे (विभूः) व्यापक और ऐश्वर्ययुक्त (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये पदार्थों को योग्यस्थान में पहुँचाने वाला अग्नि है वैसे (हव्यवाहनः) हवन करने के योग्य पदार्थों को समर्पादन करने वाले (असि) हैं जैसे जीवों में प्राण है वैसे (प्रचेताः) खेत करने वाले (श्वाश्व) विद्वान् (असि) हैं जैसे स्वभावात् पवन तप में व्याप्त है वैसे (विश्ववेदाः) विश्व से ज्ञान (तुभ्यः) ज्ञान को पदाने वाले (असि) हैं इस से आप स्तुति करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को उचित है कि

ईश्वर और विद्वान् का सरकार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इन को जानें ॥ ३१ ॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्वैषता । स्वराद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उशिगंसि ऋषिरङ्घारिरसि वम्भारिरवस्पूरंसि दुषंस्वाञ्जु-
न्धूरंसि मार्जालीयः । सुम्राडंसि कृशानुः परिपद्योऽसि पवमा-
नो नभोऽसि प्रतकां मृष्टोऽसि हव्यसूदनं ऋतधामासि स्वर्ज्यो-
तिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर । जिस कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अंघारिः) छोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (ऋषिः) कान्तप्रज्ञ (असि) हैं (वम्भारिः) बन्धन के शत्रु वा तारादि तन्तुओं के विस्तार करने वाले (असि) हैं (दुषस्वान्) प्रशंसनीय से वा युक्त स्वयम् (शुन्ध्युः) शुद्ध (असि) हैं (मार्जालीयः) सब को शोधने वाले (सम्राट्) और अच्छे प्रकार प्रकाशमान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थों को अतिसूक्ष्म (पवमानः) पवित्र और (परिपद्यः) सभा में कल्याण करने वाले (असि) हैं जैसे (प्रतका) हर्षित और (नभः) दूसरे) के पदार्थ हरलेने वालों को मारने वाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और (मृष्टः) सुप्त दुःख को सहने करने और करने वाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वाले और (ऋतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं जैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ ३२ ॥
समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्वैषता । ब्राह्मी पद्वक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समृष्टोऽसि विश्वव्यंघा अज्जोऽस्पेकंपादहिरसि चुष्ण्यो घार्ग-
स्यैन्द्रमसि सदोस्पृतस्य द्वारु मा मासं तांप्तमध्वनामध्वपते प्र
मां तिर स्पस्ति मेऽस्मिन् पधि देववाने भूपात् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—जैसे परमेश्वर ! (ममुद्रः) सय प्राणियों का गमनागमन कराने हारे (वि-
श्वव्याः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिस के
एकपाद विश्व है (अहिः) या व्यापनशाल (बुध्यः) तथा अन्तरिक्ष में होने
वाला (असि) है और (वाक्) वाणीरूप (असि) है (येन्द्रम्) परमेश्वर्य का (सदः)
स्थानरूप है और (ऋतस्य) सत्य के (हारी) सुखों का (मास्ततासम्) स्तंताप कराने
वाला नहीं है (अध्यपने) हे धर्म व्यवहार के मार्गों की पालन करने हारे विद्वानो !
वैसे तुम भी स्तंताप न करो । हे ईश्वर ! (मा) मुझ को (अध्यनम्) धर्मशिल्प के
मार्ग से (प्रतिर) पार कीजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) वि-
द्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो वैसे
अनुमद कीजिये ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर या जगत् के कारण रूप जीव को
अनादित्व होने या जन्म न होने से अधिनाशीपन है । परमेश्वर की रूपा उपासना सृष्टि
की विद्या या अपने पुत्रपार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों की विद्वानों के मार्ग की
प्राप्ति और उस में सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥ ३३ ॥

मिश्रस्येयस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । स्वराद्ब्राह्मी ष्हता छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

किर विद्वान् कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मिश्रस्येयं मा चक्षुषेक्षध्वमग्नेयः सगराः सर्गरास्थ सर्गरेण ना-
म्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नेयः पिपृतमाग्नेयो गोपायतं मा
नमो वोऽस्तु मा मा हिंसिष्ट ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सगराः) अन्तरिक्ष अषकाश युक्त (अग्नेयः) अच्छे २ पदार्थों की
प्राप्त करने वाले विद्वान् लोगो तुम (मा) मुझ को (मिश्रस्य) मिश्र को दृष्टि से (इं-
क्षध्वम्) देखिये आप (सगराः) विद्योपदेश अषकाशयुक्त (स्थ) हजिये और जैसे
आप (अग्नेयः) संसृद्धित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं वैसे (सगरेण)
अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रौद्रेण) शत्रुओं को रौदन करने वाली (नाम्ना)
प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिये (अग्नेयः) जैसे ज्ञानों
लोग सय प्रकार सय को सुख देते हैं वैसे (पिपृत) सुखों से पूरण कीजिये (गोपा-
यत) और सय ओर से पालन कीजिये और कभी (मा) मुझ को (माहिंसिष्ट) नष्ट
मत कीजिये (वः) इस से आप के लिये (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥३४॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुर्खा करते हैं वैसे इन विद्वानों को जायों के करने में चतुर और विद्या युक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुर्खा करें ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसौत्यस्य मनुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्वाहो पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ ३४ ॥

ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषान्देवानां समित् त्वत्सोमत-
नूकृद्भ्यो द्वेषो भ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तामि वरुथस्वाहा । जुपा-
णो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर । आप (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूपयुक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करने वाले (समित्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तनूकृद्भ्यः) शरीरों को सम्पादन करने (द्वेषोभ्यः) और द्वेष करने वाले जीवों तथा (अन्यकृतेभ्यः) अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्मों से (यन्ता) नियम करने वाले (असि) हैं उन से (उरु) बहुत (वरुथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) घाणी (अमुः) व्यापक (आज्यस्य) विज्ञान को (जुपाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) वेदघाणी को (वेतु) जाने ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—जिस से परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है इससे ये नियम में चलते हैं ॥ ३५ ॥

अग्नेनयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्वाहो त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्निश्चवाग्नि देव वयुनानि विद्वान् ।

गुणो धृग्मुस्मज्जुहुराणमेनो भूर्धिष्ठान्ते नमःऽउक्ति विधेम ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब को अच्छे मार्ग में पहुँचाने (देव) और सब आनन्दों को देने वाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर । आप वृषा से (राये) मोक्ष रूप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म विज्ञान या प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (नय) प्राप्त कीजिये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) दुःख फल-रूपा पाप को (अस्मत्) हम लोगों से (गुयोधि) दूर कीजिये हम लोग (ते) आप

की (भूरिगुणा) अर्चना (नम उक्तिम्) नमस्काररूप याणीको (पिधेम) कहने हैं ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—शत्रोपमा—जैसे सय प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों की दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन कर के इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देना है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ॥ ३६ ॥

अयन्न इयम्यागस्त्यऋषिः । भस्मिद्वंशता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धंघतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर को उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है ॥

अयन्नो अग्निर्वरिंशस्कृणोत्वयं मृधंः पुरऽपंतु प्रभिनन्दन् । अयं
वाजाञ्जयतु वाजंसाताध्वथं शत्रूञ्जयतु जहृपाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—यह (अग्निः) परमेश्वर का उपासक जन (नः) हम प्रजास्थ जीवों की (वरिथः) निरन्तर रक्षा (कृणोतु) करे जैसे कोई योद पुरुष अपनी सेनाको लेकर संग्राम में निरन्तर दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है वैसे (अयं) यह शुद्ध करने में कुशल सेनापति (वाजसाती) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (पुरः) पहिले ही (पंतु) जा घेरें और जैसे (अयं) यह योदों को हर्ष देने वाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (प्रभिनन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजान्) संग्रामों को (जयतु) जीते (अयं) यह विजय कराने वाला सेनापति (जहृपाणः) निरन्तर प्रसन्न हो कर (स्वाहा) युद्ध के प्रबंध की श्रेष्ठ बोलियों को बोलता हुआ (जयतु) अच्छी तरह जीते ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र न ही होता जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इस से मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रबंध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा योदों की रक्षा सदा करते रहें ॥ ३७ ॥

उरुविष्णोवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुद्वंशता । भुरिगार्प्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ।

फिर ये कैसे हैं यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उरुविष्णो विश्रमस्त्रोरुक्षपाय नस्कृधि । घृतं घृतपोने पिव प्रमं
घृक्षपतिन्तिरु स्वाहा ॥ ३८ ॥

पदार्थः—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वैसे ही विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले योद पुरुष ! अपने विद्या के फल को (उरु) बहुत (वि) अच्छी तरह (क्रमरय) पहुँच

अर्थः—जैसे सत्य का पालने द्वारा विद्वान् हो वैसे (भग्न) हे विशेष ज्ञानवान् पुत्र ! जो मेरा (पुत्रः) सत्य विद्या गुणों का पालने द्वारा आचार्य्य (धर्मन्) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा होऊँ (या) जो (तव) तेरी (तन्) विद्या वादि गुणों में व्याप्त होने वाला देख है (या) यह (मयि) तेरे मित्र मुझ में भी हो (परा) यह (मयि) मेरे मित्र तुम में युक्ति हो (या) जो (मम) मेरी (तन्) विद्या को पालना है (या) यह (मयि) मेरे पढ़ाने वाले तुम में हो (इयम्) यह (मयि) तेरे शिष्य तुम में युक्ति हो (पुत्रः) हे सत्य आत्माओं के पालने द्वारा ' जैसे सत्यगुण सत्य उपदेश रहकर विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथायुक्त मित्र होकर (पुत्रानि) सत्य आचरणों का पालने पसैं । हे मित्र ' जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालने द्वारा तेरे लिये (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अभिल) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिये (अनु) जाने । जैसे तेरा (तपस्पतिः) आषण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने द्वारा आचार्य्य तेरे लिये (तप) पहिले क्रुश और पीछे सुग देने द्वारा ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा आषण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने द्वारा मेरे लिये जाने ॥ ४० ॥

अने पुत्रः सत्यगुणः कर्मिः । परिनिर्वाणः । त्रिभुवन्कोविन्सुखः ।

सत्यतः सत्यः ॥

हित ये वैसे वसें यह आले सत्य में गिरा है ॥

अग्नें ब्रह्मप्राप्ते ब्रह्मपा या तथं तनुमेष्वभेदेवा सा त्वयि यो ममं तनुमेष्वभेदियंमा मयि । ग्रथाग्रपत्नीं ब्रह्मपते ब्रह्मान्यनुं मे दीक्षान्दीक्षापतिममरुत्नांनु तपस्वपंभवतिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(पुत्रः) जैसे सत्य का पालने द्वारा विद्वान् हो वैसे (भग्न) हे विशेष ज्ञानवान् पुत्र ! जो मेरा (पुत्रः) सत्य विद्या गुणों का पालने द्वारा आचार्य्य (धर्मन्) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा होऊँ (या) जो (तव) तेरी (तन्) विद्या वादि गुणों में व्याप्त होने वाला देख है (या) यह (मयि) तेरे मित्र मुझ में भी हो (परा) यह (मयि) मेरे मित्र तुम में युक्ति हो (या) जो (मम) मेरी (तन्) विद्या को पालना है (या) यह (मयि) मेरे पढ़ाने वाले तुम में हो (इयम्) यह (मयि) तेरे शिष्य तुम में युक्ति हो (पुत्रः) हे सत्य आत्माओं के पालने द्वारा ' जैसे सत्यगुण सत्य उपदेश रहकर विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथायुक्त मित्र होकर (पुत्रानि) सत्य आचरणों का पालने पसैं । हे मित्र ' जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालने द्वारा तेरे लिये (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अभिल) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिये (अनु) जाने । जैसे तेरा (तपस्पतिः) आषण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने द्वारा आचार्य्य तेरे लिये (तप) पहिले क्रुश और पीछे सुग देने द्वारा ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा आषण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने द्वारा मेरे लिये जाने ॥ ४० ॥

भाषार्थः—जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होता चाहिये । जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानने तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होता इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें ॥ ४० ॥

उद्विष्णोपित्यस्यागस्त्य क्वयिः । विष्णुदेवता । भुरिगार्प्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

(क्षयाय) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (नः) हम लोगों को (ह्यधि) कीजिये है । (धृतयोने) विद्यादि सुशिक्षा युक्त पुरुष ! जैसे अग्नि धृत पी के प्रदीप्त होता है जैसे तू भी अपने गुणों में (धृतम्) धृत को (प्रप्र पिव) बारंबार पीके शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज् आदि विद्वान् लोग (यज्ञपतिम्) यज्ञमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं जैसे तू भी (स्वाहा) यज्ञ की क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ के (तिर) पार हो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है जैसे आनन्द में हम सबों को रहना उचित है जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा धृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है जैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिये और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यज्ञमान को पाकर अपने कामों की सिद्ध करते हैं जैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने २ सुखों को सिद्ध किया करें ॥ ३८ ॥

देवसवितरित्यस्यागस्त्यऋषिः । सोमसवितारौ देवते । आद्यस्य साम्नी बृहतो
छन्दः । मध्यमः स्वरः । एतत्त्वमित्युत्तरस्यापि पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवसवितरेप ते सोमस्तथ रक्षस्व मा त्वां दमन् । एतत्त्वं देव
सोम देवो देवाँर ॥ उपांगा इदमहमन्नुप्यान्तसह रायस्पोपेण
स्वाहा निर्वहेणस्य पाशांन्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (देव) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले ऐश्वर्यवान् विद्वान् स-
भाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य को रखता हूँ जैसे तू जो (एपः)
यह (ते) तेरा (सोमः) ऐश्वर्य समूह है (तम्) उस को (रक्षस्व) रख जैसे मुझ
को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं जैसे (त्वाम्) तुझे भी (मा दमन्) न दे सकें
हे (देव) सुख के देने और (सोम) सजनों के मार्ग में चलने वाले राजा ! (त्वम्)
तू (एतत्) इस कारण सभाध्यक्ष ओर (देवः) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ
(देवान्) श्रेष्ठ विद्वानों के (उप) समोप (अगाः) जा और मैं भी जाऊँ जैसे (इदं)
इस आवरण को कर के (रायः) अत्यन्त धन को (पुष्टया) पुष्टताई के साथ (मनुष्यान्)
विचारवान् पुरुष और (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होकर (यद्यथा) दुःख से तिरस्कार
करने वाले दुष्ट जन को (पाशांन्) पन्थन से (मुच्ये) छुड़ूँ जैसे तू भी (निः) नि-
रंतर छूट ॥ ३९ ॥

विद्वान् जन ! हम लोग (न्या) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं । श्रेष्ठ विद्वान् जन जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता दैसे तू भी (एनम्) इस यज्ञ को (मा) मत (हिंसाः) बिगाड़ ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—यहाँ षाचक्रतुमोपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे २ व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनो से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें । यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ॥ ४२ ॥

याम्मालेखीरित्यस्यागतस्य ऋषिः । यज्ञो देयता । द्वाद्वा त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

याम्मा लेखीरन्तरिक्षम्माहिंसेः पृथिव्या संभव । अपञ्च हि
त्या स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वन्देव
वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा विद्यपथ रुहेम ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे मैं सूर्य के सामने होकर (याम्) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूँ वैसे तू भी उसको (मा) (लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर जैसे मैं (अन्तरिक्षम्) पदार्थ पदार्थों के अषकाश को नहीं बिगाड़ता हूँ वैसे तू उस को (मा) (हिंसाः) मत बिगाड़ । जैसे मैं (पृथिव्या) पृथिवी के साथ होता हूँ वैसे तू भी उस के साथ (सम्) (भव) हो (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पैना (स्वधितिः) यज्ञ शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्या) तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभगाय) सौभाग्यपन के लिये सम्पन्न करें । और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करने हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य्य पहुंचावे । हे (देव) आनन्दयुक्त (वनस्पते) पनों की रक्षा करने वाले विद्वान् ! जैसे (शतवल्शा) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशस्तनीय सौभाग्यपन से (वि) (रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ॥४३॥

भाषार्थः—यहाँ षाचक्रतुमोपमालङ्कार है—इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अग्रगण्य अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥

फिर वे कैसे बसें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उरु विंणो विक्रमस्थोरुक्षपांघ नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिष
मंत्र यज्ञपतिन्तिरु स्नाहर्हा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पयन चलता है वैसे हे विद्या
गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वान् । (उरु) अत्यन्त विस्तार युक्त (क्षयाय) विद्योन्नति
के लिये (विक्रमस्व) अपनी विद्या के अङ्गों से परिपूर्ण हो और (नः) हम लोगों को
सुखी (कृधि) कर जैसे जल का निमित्त बिजुली है वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले
विद्वान् । बिजुली के समान (घृतम्) जल (पिय) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख
से पार करता हूँ वैसे तू भी (स्नाहर्हा) अच्छे प्रकार हयन आदि कर्मों को संवन
करके (प्रप्रतिर) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे पयन सब को सुख देता
हुआ सब के रहने का स्थान होरहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये ॥ ४१ ॥

अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मीप्रिटुप् छन्दः ।

धैवत. स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न बनने चाहिये यह उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

अत्युन्वाँ २॥ अग्राहान्वाँ २॥ उपांगामुंवाक्त्वा परेभ्योऽ वि-
दम्परोऽधरेभ्यः । तं त्वा जुपामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वां
देवयज्यायै जुपन्तां विण्णवे त्वा । ओपथे त्रापंस्व स्वधिते मैनंछ
हिंसीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) सब वृष्टियों के रखने वाले (देव) विद्वान् जन । जैसे
तू (अन्यान्) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (अन्यान्) मूर्खों के विरोधी
विद्वानों के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (उप) समीप
(अगाम्) जाऊँ । जो तू (परेभ्यः) उत्तमों से (परः) उत्तम और (अधरेभ्यः) छोटी
से (अर्वाक्) छोटे हो (तम्) (त्वाम्) उन्हें मैं (अपिदम्) पाऊँ जैसे (देवाः)
विद्वान् लोग (देवयज्यायै) उत्तम गुण देने के लिये (त्वा) तुझ को चाहते हैं वैसे
हम लोग भी (त्वा) तुझे (जुपामहे) चाहें और जैसे हम लोग (देवयज्यायै)
अच्छे २ गुणों का सङ्ग होने के लिये (त्वा) तुझ चाहते हैं वैसे और भी ये लोग
चाहें । जैसे ओपधियों का समूह (विण्णवे) यज्ञ के लिये सिद्ध होकर सब की रक्षा
करता है वैसे हे लोगों को दूर करने ओर (स्वधिते) दुःखों का विनाश करने वाले

अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः ॥

—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—०—

विद्वानि देव सविगर्हृत्विगानि परांमुव । पशुं गह्म मासुव ॥ १ ॥

काम देवस्य विद्वानात्मन् इति । सविना देवता । पशुः श्वेत्पशुः । धीमन्तः
रश्म । पशोऽर्थात्पशुनां गुरो रियेत्पशु न भुमिगात्पशुः पशुः पशुः ।

अपानः स्याः ॥

अथ पांचमो अध्याय के पश्चात् ६ षष्ठाध्याय वा आरम्भ है इस के प्रथम मंत्र
में सव्याभिरंके के लिये अच्छी शिक्षायुक्त समाध्यक्ष विद्वान् को आचा-
र्यादि विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह उपदेश किया है ॥

देवस्यै त्वा सविनुः प्रसूयेऽश्विनोर्षीहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्या-
माददे नापिसीदमहधं रक्षसाहृषीषा अपिं कृन्तामि । पशोऽसि
यवशास्मद्धेषो यवपारांतीर्द्विषे त्याऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा
शुन्धन्ताँस्त्योकाः पितृपदानाः पितृपदानमसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हं समाध्यक्ष । जन्मे (पितृपदानाः) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग
(देवस्य) प्रकाशमय और (सविनुः) सत्य विद्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के
(प्रसूये) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (वाहुभ्या-
म्) बल और उत्तम चोर्ख से तथा (पूष्णः) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के
(हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं जैसे ही मैं (आ-
ददे) ग्रहण करता हूँ जैसे मैं (रक्षसाम्) हुए काम करने वाले जीवों के (शीषाः)
गले (कृन्तामि) काटता हूँ जैसे (त्वम्) तू (अपि) भी काट । हे समाध्यक्ष । जिस का-
रण से (यवः) संयोग विभाग करने वाला (असि) है इस कारण (अस्मत्) मुझ
से (द्वेषः) द्वेष अर्थात् अप्रतीति करने वाले वैरियों को (यवय) अलग कर और (अ-
राताः) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय) पृथक् कर । जैसे मैं न्याय व्यवहार
से रक्षा करने योग्य जन (द्विषे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (त्वाम्)
न्याय प्रकाश करने वाले तुझ को (अन्तरिक्षाय) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने
के लिये (त्वाम्) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (पृथिव्यै)

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विघ्न, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म का कहना, प्राण और अपात की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य और समाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और समाध्यक्ष के कर्म का उपदेश यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और समाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उन के स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्तव्य और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की संगति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ॥

यह पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



भाषार्थः—प्रजा पुत्रों के म्यांकार क्रिये बिना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि समाजिन को आदर से न चाहे यह मन्त्री होने को या कीर्ति पुत्र अर्थात् कीर्ति को उत्तरोत्तर बढ़ता के बिना संना का ईश्वर यथायोग्य व्याप से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥ २ ॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । त्रिष्णुर्वेदता । आच्युष्णिक्छन्दः । अत्रा-
 हेति साम्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वः । ब्रह्मवर्षित्वेत्यस्य निचृत्वा-
 जापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वः ॥

फिर वाणिज्य काम करने वाले मनुष्य उस को कैसा जानकर आश्रय करते हैं
 यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते धामान्पुद्गमसि गमंष्टै पत्र गावो भूरिर्बृहन्ना अयासः ।
 अत्राह तदुक्तगायस्य विष्णोः परमम्पदमर्ष भारि भूरि । ब्रह्मवर्षि
 त्वा क्षत्रवर्षि रायस्पोपवनि पर्यहामि ब्रह्मं ददं ह क्षत्रन्दुं द्वापुं-
 दं दं ह प्रजान्दं दं ह ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे समाध्वज ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्रा-
 णो सुरपाने हों उन स्थानों को हम (गमदुधे) (उश्मसि) प्राप्त होने को इच्छा क-
 रते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य का प्रकाश है वैसे (यत्र) जिन में (उरगायस्य)
 स्तुति करने के योग्य (विष्णोः) सर्व व्यापक परमेश्वर की (भूरिर्बृहन्नाः) अत्य-
 न्त प्रकाशित (गायः) किरणें चैतन्यकला (अयासः) फैली हैं (अत्र) (अह) इ-
 न्हीं में (तत्) उस परमेश्वर का (परमम्) सब प्रकार उत्तम (पदम्) और प्राप्त
 होने योग्य परमपद विद्वानों ने (भूरि) (अव) (भारि) बहुधा अवधारण किया है इस
 कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवर्षि) परमेश्वर या वेद का विज्ञान (क्षत्रवर्षि) राज्य और
 शौरों को चाहना (रायस्पोपवनि) धन की पुष्टि के विभाग करने वाले आप को मैं
 (पर्यहामि) विविध तर्कों से समझाता हूँ कि तू (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को
 (दं दं) दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर यदु (क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेदयन्त्र
 क्षत्रियों को (दं दं) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (दं दं) बढ़ा अर्थात्
 ब्रह्मचर्य और राज्यधर्म से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने सन्तान वा रक्षा करने योग्य
 प्रजाजनों को (दं दं) उन्नति दे ॥ ३ ॥

भूमि के राज्य के लिये (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूँ
 जैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृपदनम्)
 विद्वानों के घर के समान (अति) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर । हे स-
 मापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचककुसीपमालङ्कार है—जो विद्या में अति विचक्षण
 पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते
 हैं वे सुख संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

अग्नेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।

पद्भ्जः स्वरः । देवस्वेत्यस्य स्वराद् पङ्क्तिद्वन्द्वः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे बसें इस विषय का उपदेश
 अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेणीरंसि स्वावेशऽङ्घ्रेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्प-
 ति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौपधीभ्यः । द्या-
 मग्नेणास्पृक्ष आन्तरिक्षमध्वेनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृष्टिर्हीः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्नेणीः) पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को या पिता
 अपने पुत्रों को उन के पठनारम्भ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय
 धार्मिकता युक्त करता है जैसे हम सबों के लिये तू (असि) है (उन्नेतृणाम्) जैसे
 उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो जैसे (स्वावेशः) अच्छे गुणों में प्रवेश करने
 वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान । हे रा-
 जन् ! जैसे (त्वा) तुझे सभासद् जन (सुपिप्पलाभ्यः) अच्छे २ फलों वाली (ओप-
 धीभ्यः) ओपधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अ-
 नक्तु) सीधे जैसे प्रजाजन भी तुझे सींचें तू इस राज्य में अपने (अग्नेण) प्रथम यश
 से (धाम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्यमेन)
 मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाए हुए यश से (अन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्ग
 को (आप्राः) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस
 भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अदृष्टिर्हीः) दृढ़ कर बढ़ता न जा और (देवः) म-
 मस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत् की अन्तर्यामी पन से प्रेरणा देने वा-
 ला जगदीश्वर (त्वा) तुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर
 रहेगा ॥ २ ॥

के प्रमाण में (अजन्तम्) राज (मनुः) नेत्र के (इय) समान (सदा) सत्य समय में (पर्वणि) देखते हैं (तत्) उम को तुम लोग भी निरन्तर देखो ॥ ५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में पूरे मंत्र में (पर्वणि) इस पद का अनुपत्तन किया जाता है और पूर्णमासोंकार है । निर्मूल अर्थात् दृष्ट गये हैं प.प जिन के ये पिदान् लोग अर्थात् पिता के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों का देख के सत्य धर्माचार मुक्त होते हैं वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ ५ ॥

परिषोरित्यस्य दीर्घतमावर्णः । पिडासादेवताः । आर्षुष्णिग् छन्दः । ऋषभः
स्वरः । दिवः सूनुरस्योत्पत्ते भुक्तिः सामी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर इस उपासना करने वाले समाध्यक्ष किस प्रकारका होता है यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

परिषोरिति परिं त्वा देवीर्षिशो व्ययन्ताम्परीमं पजमान्थे रा-
षोमनुष्णाणाम् । दिवः सूनुरस्येपते पृथिव्याल्लोक आरुण्यस्ते
पशुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे समाध्यक्ष राजन् ' त्व (परिषोः) सब पिताओं में अच्छे आस होने वाले के समान (अमि) है (त्वाम्) तुम (देवीः) पिदानों के (विशः) सन्तान के समान प्रजा (परि) (व्ययन्ताम्) सब व्याप्त अर्थात् सब ठिकाने घ्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हों (दिवः) प्रकाश के पुंज सूर्य से (सूनुरः) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य त्व (अति) है (ते) तेरा (पृथिव्याम्) पृथिवी में (लोक) राजधानी का देश हो और (आरण्य.) वनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे पदय भी हों ॥ ६ ॥

भाषार्थः—राज्य का आचरण करने हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त होकर अपने पदार्थों का कर चुकावे और वह राजा उन प्रजाओं की रक्षा करने के लिये सिंह और शूकर या अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू खोर उठाईगीरे और गांठ कटे आदि दुष्ट जनों को दण्ड से पश में कर अपना प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करें ॥६॥
उपसोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । त्वष्टा देवता । आर्षु बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर वह प्रजा जनों के प्रति क्या करे और वे प्रजा जन उस राजा के प्रति क्या करें यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उपाधीरस्युपदेवान्देवीर्षिशः प्रागुरुशिजो बह्वितमान् । देवं
त्वष्टृवसुं रम हृव्याते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे देव । दिव्यगुण संपन्न (त्वष्टः) सब दुःख के दहन करने वाले समा-

भावार्थः—सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के बिना कोई भी पु-
रुष सुख नहीं पासकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्ती राज्यभो-
गने के योग्य होता है नहीं कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अथवा
संतान और प्रजा की रक्षा के बिना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणोऽत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुदेवता । निचूदापां गायत्री-
छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

अब सभापति अपने सभासद आदि की क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र
में कहा है ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यन् पतों व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य पुत्रः
सखा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे सभासदो ! जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) सदाचार युक्त
(सखा) मित्र (विष्णोः) उस व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जो संसार का बनाता
पालन और संहार करना सत्यगुण है उन को देखता हुआ मैं (यतः) जिस ज्ञान से
(व्रतानि) अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) बांध रहा अर्थात् निय-
म कर रहा हूँ जैसे ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को (पश्यत) दृढ़ता से
देखो कि जिस सं राज्यादि कामों में सत्य व्यवहार के करने वाले होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के बिना कोई भी मनुष्य श्वर के
गुण कर्म और स्वभाष को देखने के योग्य नहीं हो सकता जैसे हुए बिना राजपत्रों
की पदार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढ़ाने
को कर्मा समर्थ हो सकता है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुदेवता । निचूदापां गायत्री
छन्दः । पङ्कजः स्वरः ।

उक्त मंत्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उस से क्या सिद्ध होता है
यह अगले मंत्र में कहा है ॥

तद्विष्णोः परमपुद्गलं सदा पश्यन्ति मूरपः । द्विवीच चक्षु-
रात्ततम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे सम्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूर्यः) स्तुति करने वाले वेद-
देता जन (विष्णोः) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले परमेश्वर
के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (द्विवि) स्व

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽदिवनोऽग्नीष्टुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नीषोमाभ्याञ्जुष्टमिदुनजिम । अद्भ्यस्तथौषधीभ्योनुत्वा माता
मन्यतामनुपितानुभ्राता सगर्भोऽनुसखा सगृह्यः । अग्नीषो-
माभ्यान्त्वा जुष्टमप्रोक्षामि ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे शिष्य । मैं (सवितुः) समस्त देवस्य युक्त (देवस्य) वेद विद्या प्रका-
श करने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अदिवनोः)
सूर्य्य और चन्द्रमा के (यादुभ्याम्) गुणों से या (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्)
हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आवदे) स्वीकार
करता हूँ तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से
(जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को जो ब्रह्मचर्य्य धर्म के अनुकूल जल
और औषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (औषधोभ्यः) गोधूम आदि अन्नादि
पदार्थों से (नियुनजिम) नियुक्त करता हूँ तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी (माता)
जननी (अनु) (मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सग-
र्भ्यः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सखा) मित्र (अनु) अनुमो-
दित करे और (सगृह्यः) तेरे सहयासी (अनु) अनुमोदित करे (अग्नीषोमाभ्याम्)
अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ
को (प्र) (उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त क-
रता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस संसार में माता पिता यन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि
अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा दे कर ब्रह्मचर्य्य करावें जिस से ये गुणवान्
हों ॥ १ ॥

अपापेदरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवता । प्रजापत्यापृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । सन्तह्यश्या निचृदार्यापृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ यज्ञोपसंत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या उत्तम शिक्षा
ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे
यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाम्बेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तज्यत्सद्वैवहृषिः । सन्तं
प्राणो धार्तेन गच्छताः समद्भानि यजंथैः संस्पृशपंतिराशिषां ॥ १ ॥

पदार्थः—हे शिष्य । तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पिदः) रक्षण करने वाला

ध्यक्ष जिस से तू (उपाधीः) शरणागत पालक सदृश (असि) है इसी से (वैधीः) विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाली दिव्यगुण सम्पन्न (विशः) प्रजा जैसे (उशिशः) श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य (चद्वितमान्) अतिशय धर्म मार्ग में चलने और चलाने वाले (देवान्) विद्वानों को (उपप्रागुः) प्राप्त हुए जैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य हो के सुधी हो जैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सल्लत होकर (रमस्व) हर्षित हो जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है जैसे प्रजा भी तेरे (हव्या) भोगने योग्य अमूल्य (वसु) धनादि पदार्थों को (स्वदन्ताम्) भोगे ॥५॥

भाषार्थः—जैसे गुण के ग्रहण करने वाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं वैसे न्याय करने में चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते हैं इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है ॥ ७ ॥

रेवती रमध्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । प्रजापत्यनुष्टुप् छन्दः । ऋषयः स्वरः । ऋक्षस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्रजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ अथ पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को कैसे पढ़ाने वालों को कैसे दें ? और वह उन को कैसे स्वीकार करें ? यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया धर्मुनि । ऋतस्य त्वा देवहृषिः
पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्मा मानुषः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (रेवतीः) अच्छे धन वाले सन्तानो ! प्रजा जनो ! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा में (रमध्वम्) रमो । हे (बृहस्पते) वेदयाणी पालने वाले विद्वान् ! आप (ऋतस्य) सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त (यस्तूनि) धन अर्थात् हम लोगों के दिलिये द्रव्य आदि पदार्थों को (धारय) स्वीकार कीजिये (अथ अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिये है) हे राजन् ! प्रजापुरुष ! या (मानुषः) सर्व शास्त्र का विचार करने वाला मैं (पाशेन) अविद्या बन्धन से तुझे (प्रति मुञ्चामि) छुटाता हूँ तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में धृष्ट हो ॥ ८ ॥

भाषार्थः—विद्वानों को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणीओं को परमेश्वर से लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिये कि जिस से वे मूर्खपनरूपी बंधन को छोड़ के सदा सुधी हों ॥ ८ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता-आदिष्वनी-पूषा च देवताः । प्रजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पहक्तिद्वन्द्वः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

देवस्यं त्वा सविनुः प्रमृष्टेऽदिवनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नीषोमाभ्याञ्जुष्टमिष्टं नजिम । अद्भ्यस्तर्षीपथीभ्योर्नुत्वा माता
मन्यतामनुपितानुभ्राता सगर्भोऽनुसत्या सगूरुधः । अग्नीषो-
माभ्यान्त्या जुष्टम्बोक्षामि ॥ ९ ॥

पदार्थः—दे शिष्यः मं (सविनु) ममल ऐदयं युक्त (देवस्य) वेद विद्या प्रका-
श करने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अदिवनोः)
मूर्ख और चन्द्रमा के (वाहुभ्याम्) गुणों से या (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्)
हार्थों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आददे) स्वीकार
करता हूँ तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से
(जुष्टम्) प्रीति करने हुए (त्वा) तुझ को जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल
और औषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (औषधोभ्यः) गोधूम आदि अन्नान्नादि
पदार्थों से (नियुनजिम) नियुक्त करता हूँ तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी (माता)
जननी (अनु) (मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सग-
र्भः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सत्या) मित्र (अनु) अनुमो-
दित करे और (सयूष्यः) तेरे सहयात्री (अनु) अनुमोदित करे (अग्नीषोमाभ्याम्)
अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ
को (प्र) (उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त क-
रता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस संसार में माता पिता बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि
अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा दे कर ब्रह्मचर्य करावें जिस से वे गुणवान्
हों ॥ १ ॥

अपापेऽदिवस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवता । प्रजापत्यापृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । सन्तह्यस्या निचृवापां पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ यज्ञोपसोत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या उत्तम शिक्षा
ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुण किया करे
यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाम्पेरुरस्यापो देवीः स्वंदन्तु स्वात्तञ्जितसहैवहृविः । सन्तं
प्राणो वातेन गच्छता संस्रान्ति यजंश्चैः संव्यज्ञपंतिराशिषां ॥ १० ॥

पदार्थः—दे शिष्यः त् (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (वेदः) रक्षक करने वाला

(अस्ति) है संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए (देवीः) दिव्य सुगन्ध देने वाले (आपः) जलों को (चित्) और (स्वात्तम्) धर्म युक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को (देवहविः) विद्वानों के भोगने के समान (संस्वदन्तु) अच्छी तरह से भोगें (आशिषा) मेरे आशीर्वाद से (ते) तेरे (अङ्गानि) शिर आदि अंगयय (यज्ञत्रेः) यज्ञ कराने वालों के साथ (सम्) सम्पर्क न्युक्त हों और (प्राणः) प्राण (वातेन) पवित्र वायु के सङ्ग (सङ्गच्छताम्) उत्तमता से रमण करे और तू (यज्ञपतिः) विधा प्रचाररूपी यज्ञ का पालन करने हारा हो ॥ १० ॥

भाषार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—जो यज्ञ में दी हुई आहुती हैं वे सूर्य के उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षण शक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में हैं उसी पृथिवी का जल ऊपर खिंचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञ शोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं ॥ १० ॥

घृतेनाक्तावित्यस्य मेघातिथिर्हविः । यातो देवता । भुरिगाच्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

अब यज्ञ करने और कराने वालों को कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

घृतेनाक्तौ पशून्त्रापेथाश्रेवन्ति यजमाने प्रियन्वा आविंश । उ-
रोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविप्रस्तमना यज्ञ समस्पतन्वा
भव । वर्षो वर्षीपसि यज्ञे यज्ञपतिन्वाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः
स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (घृतेन, अक्ती) घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो । तुम (पशून्) गो आदि पशुओं को (त्रापेथाम्) पालो, तुम एक २ जन (दे-
वेन) सर्वगत (वातेन) पवन से (सजूर्) समान प्रीति करते हुए समान (उरोः) विस्तृत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए (प्रियम्) प्रिय सुख को (रेवति) अच्छे पेश्वर्ययुक्त (यजमाने) यज्ञ करने वाले धनी पुत्र्य में (धाः) स्थापन करो तथा (आविंश) उस के अग्निप्राय को प्राप्त होओ और (अस्य) इस के (हविः) होम के योग्य पदार्थ को (तमना) आप ही निष्पादन किये हुए के समान (यज्ञ) अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और (अस्य) इस के (तन्वा) शरीर के साथ (सम्) (भय) एकीभाय रखो किन्तु विरोध से द्विधा

वाचरण मन करने । हे (यथा) यज्ञ कर्म से मरु सुग के पहुँचाने वाली (देवेभ्यः) (न्यादा) (देवेभ्यः) (स्वता) नगरकर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पु-
 म्मर जो कि यज्ञ देवर्षि को इच्छा करने हुए यज्ञ २ यज्ञ में माने हैं उन विद्वानों के
 लिये अच्छे प्रकार बराने वाली प्राणियों को उच्चारण करते हुए यज्ञ पति को (य-
 पोयति) नम्र सुग बराने वाले यज्ञ में (धाः) अभियुक्त करो ॥ ११ ॥

भाषार्थः—यज्ञ के लिये धृग आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्यों को गाय आदि पशु
 रखने चाहिये और घृतादि अच्छे २ पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम २ यज्ञों से
 जल और पयन को धुँसि कर मय प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिये ॥ ११ ॥

माहिर्भूमिस्त्वम्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वानो देवताः । भुरिक् प्रजापत्यानुष्टुप्
 छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

माहिर्भूमि पृदाङ्घ्रुर्नमस्त आतानानुर्वाग्महि । घृतस्य कुल्या उप
 ऋतस्य पथ्या अन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (आतान) अच्छे प्रकार सुख के विस्तार करने वाले विद्वान् । तू
 (मा) मन (अहिः) सर्प के समान कुटिल मार्गगामी और (मा) मत (पृदाङ्कः)
 मूर्खजन के समान अभिमानों या व्याघ्र के समान हिंसा करने वाला (भूः) हो (ते)
 (नमः) मय जगह तेरे सुख के लिये अन्न भादि पदार्थ पहिले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और
 (अनर्वा) अश्व आदि सवारी के बिना निराश्रय पुरुष जैसे (घृतस्य) जल की
 (कुल्याः) बड़ी धाराओं की प्राप्त ही जैसे (ऋतस्य) सत्य के (पथ्याः) मार्गों को
 प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भाषार्थः—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि सुष्टु जीवों के समान धर्म
 मार्ग में कुटिल न होना चाहिये किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये ॥१२॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवताः । त्रिचूदाप्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अथ ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान
 करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापः शुद्धा वीङ्गुधु सुपर्णिविष्टा देवेषु सुपर्णिविष्टा घृ-
 तम्पर्णिविष्टारो भूषास्म ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे कुमारियो । तुम जैसे (आपः) श्रेष्ठगुणों में रमण करने वाली (शु-

ज्ञाः) सत्कर्माङ्गुष्ठान मे पवित्र (देवोः) विद्याप्राप्ताशयती विदुषां स्त्रीजन (देवेषु) श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त (सुपरिविष्टाः) और उन को सेवा करने को सन्तुष्ट प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को (योद्धव्यम्) प्राप्त होता है और ये विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होने हैं जैसे तुम हो और हम भाँ (परिविष्टा) उस धर्म की योग्यता को (भूयास्म) पाहुँचें ॥ १३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रतधर्म में तत्पर रहती हैं जैसे ध्रुवचारिणी कन्या भाँ उन के गुण और स्वभाव वाली हों और ध्रुवचारी भाँ गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और गुरुपति आदि की रक्षा करने में तत्पर हों ॥ १३ ॥

वाचन्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान्स्त्री देयताः । भुरिगायां जगती
छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अब ये गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने २ विद्यार्थियों को अच्छे २ गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं
न्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शु-
न्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे शिष्य । मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाचम्) जिस में बोलता है उस वाणी को (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सद्कर्मानुकूल करता हूँ (ते) तेरे (चक्षुः) जिस से देखता है उस नेत्र को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूँ (ते) तेरे (नाभिम्) जिस से नाड़ों आदि बाँधे जाते हैं उस नाभि को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (ते) तेरे (मेढ्रम्) जिस से मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (ते) तेरे (पायुम्) जिस से रक्षा की जाती है उस गुरेन्द्रिय को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूँ । तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र “करती हूँ” यह योजना करनी चाहिये ॥ १४ ॥

भाषार्थः—गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे २ गुणों में प्रवृत्त कराएँ ॥ १४ ॥

मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदापीं त्रिष्टुप् छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

किर भी प्रकारान्तर से आगे मन्त्र में उक्त अथ का प्रकाश किया है ॥

मनस्त आप्यायतां वाक्त्तुऽआप्यायताम्प्राणस्तुऽआप्यायता-
श्चक्षुस्तुऽआप्यायताश्श्रोत्रंस्तुऽआप्यायताम् । यत्तौ क्रूरं यदास्थितं
तत्तुऽआप्यायतास्त्रिष्टुपायतान्तत्तौ शृण्वन्तु शमहोभ्यः । ओषधे
त्रापस्य स्वधिते मैनध्विध्वसीः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से (ते) तेरा (मनः) मन (आप्यायताम्)
पर्याप्त गुण युक्त हो (ते) तेरा (प्राणः) प्राण (आप्यायताम्) घलादिगुण युक्त हो
(ते) तेरी (चक्षुः) (आप्यायताम्) निर्मल दृष्टि वाली हो (ते) तेरे (श्रोत्रम्)
(आप्यायताम्) कर्ण सद्गुण व्याप्त हों (ते) तेरा (यत्) जो (क्रूरम्) दुष्ट व्य-
हार है वह (निः) (स्वप्यायताम्) दूर हो और (यत्) जो (ते) तेरा (आस्थित-
म्) निश्चय है वह (आप्यायताम्) पूरा हो इस प्रकार से (ते) तेरा समस्त व्य-
हार (शृण्वन्तु) श्रुद्ध हो और (अहोभ्यः) प्रतिदिन तेरे लिये (शम्) सुख हो । हे
(ओषधे) प्रवर अध्यापक ! आप (पनम्) इस शिष्य की (त्रापस्य) रक्षा कीजि-
ये और (माहिंसाः) व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये । हे (स्वधिते) प्रशस्ताध्यापिके !
तू इस कुमार्तिका शिष्या को (त्रापस्य) रक्षा कर और इस को अयोग्य ताड़ना मत
दे ॥ १५ ॥

भाषार्थः—सत्कर्म करने से सब को उन्नति होती है इस से सब मनुष्यों को चा-
हिये कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें इन्हीं से अध्यापक जन गु-
ण ग्रहण कराने ही के लिये शिष्यों को ताड़ना देने हैं वह उन को ताड़ना अत्यन्त
सुख की वारने वाली होती है स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे शर्षास-
म अध्यापक ! यह आप का विद्यार्थी जेसे शोभ विद्वान् होजाय वैसा प्रयत्न कीजिये ।
हे प्रिये ! यह कन्या जिन प्रकार भतिशोष विद्यार्थी हो वैसा काम कर ॥ १५ ॥

रक्षतां भाग इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । वाचाऽर्ध्विज्यां देवता । प्रोत्तुष्टुप् छन्दः ।
छन्दः । ऋचमः स्वरः ॥

अथ शिष्यवर्गों में से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना मन्त्र में बड़ा है ॥

रक्षंसांस्त्राणोऽग्निं निरंस्तुं रक्षंस्त्तुदमहं रक्षोऽभितिष्ठामि दम-
हं रक्षोऽवपायस्त्तुदमहं रक्षोऽघ्नन्तमो नयामि घृतेन वावा-

पृथिवी प्रोर्णुवाथाम् वापो वेस्नोकानाम्गिनराज्पस्य चेतु स्वाहा
स्वाहा कृनेऽऊर्ध्वनभसम्माकृतङ्गच्छतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे दुष्टकर्म करने वाले जन ! तू (रक्षसाम्) दुष्टों अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अमीष्ट करने वालों का (भागः) भाग (असि) है इस कारण (रक्षः राक्षस स्वभायो तू (निरस्तम्) निकल जा (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) स्वार्थसाधको (अभितिष्ठामि) तिरस्कार करने के लिये सन्मुख होता हूँ और केवल सम्मुख ही नहीं किन्तु (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अपवाधे) अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीटता हूँ जिस से वह फिर सामने न हो और (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अधमम्) दुःसह दुःख को (नयामि) पहुँचाता हूँ अथ श्रेष्ठ गुणप्राही शिष्य के लिये उपदेश है । हे पाप्यो ! गुण प्राहक सत् असत् व्यवहार की विवेचना करने वाला तू (स्तोकानाम्) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को (वेः) जान और तेरे यज्ञ शोधित जल से (घावापृथिवी) सूर्य और भूमि (प्रोर्णुवाथाम्) अच्छे आच्छादित हों (अग्निः) समस्त विद्यायुक्त विद्वान् तेरे घृत आदि पदार्थ के (स्वाहा) अच्छे होम क्रिये हुए को (चेतु) जाने तथा (स्वाहाहृते) हयन क्रिये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं वे (ऊर्ध्वनभसम्) तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुँचाने वाले (मास्तम्) पवन को (गच्छतम्) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भाषार्थः—बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करने वाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं यज्ञ कर्म से जल और पवन की शुद्धि उस की शुद्धि से वर्षा और उस से सब प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आपो देवताः । निचृद्ब्राह्मणनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अथ निर्दोष जल से क्या संभाषना करनी चाहिये यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

इदमापः प्रब्रह्मताव्यञ्च मलञ्च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं पव
जोपेऽञ्चभीरुणाम् । आपो मा तस्मादेनसुः पवमानश्च सुञ्चतु ॥ १७ ॥

पदार्थः—भो (आपः) सर्व विद्याव्यापक विद्वान् लोगो ! आप जैसे (आपः) जल शुद्धि करते हैं वैसे मेरा (यत्) जो (अपद्यम्) अरूथनाय निचकर्म (च) और विकार तथा (यत्) जो (मलम्) अपिचारूपी मल है (इदम्) इस को (प्रब्रह्म) ब्रह्मार्थे अर्थात् दूर कीजिये (च) और (यत्) जो मैं (अनुत्तम्) झूठ मूठ कित्तों से (दुद्रोह) द्रोह करता होऊँ (च) और (यत्) जो (अगीरुणम्) निर्मय निरपराधी

राधां पुनः को (भवे) उन्नाहने उन्ना हं (तस्मान्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे भग्न रहाने (न) और ज्ञान (पद्मान) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से भग्न रहना है जैसे (न) अन्य मनुष्यों को भी रहने ॥ १७ ॥

भाष्यार्थः—जैसे जलसामारिकपदार्थों का धुन्नि निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान है हम से वे अच्छे कामों को करें मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

सन्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः अग्निर्ग्रेषता । प्रजापत्यानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः
स्वरः । रेडमीत्वस्य दीर्घोपलृक्तिदछन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अप रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैला हो यह अगले मंत्र में कहा है ॥

सन्ते मनो मनमा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्टा
श्रीणात्थापस्तवा समरिणन्वातस्य त्वा भ्राज्यै पूष्णो रंष्ट्याऽऊ-
ष्मणो व्यधिपत्प्रथुतन्धेपः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे युद्धशाल शूरवीर ! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) वि-
घायल भीर (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत
हो । हे वीर ! तू (रेड्) शत्रुओं को मारने वाला (असि) (रघा) तुझे (अग्निः)
युद्ध से उत्पन्न हुए मोघ का अग्नि (श्रीणात्) अच्छे पचाचे तू (प्रयुतम्) फरोड़ों प्र-
कार के शत्रुओं को सेना को प्राप्त होता है तुझ को तज्जन्य (ऊष्मणः) गरमी का (द्वेषः)
द्वेष मत (व्यधिपत्) अत्यन्त पांडायुक्त करे जिस से (वातस्य) (भ्राज्यै) पवन की गति
के तुल्य गति के लिये वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रंष्ट्यै) वेग के तुल्य वेग के
लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्त होने के लिये (आपः) अच्छे २ जल
(सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भाष्यार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र
अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मारकर संग्राम जीतें ॥ १८ ॥

धृतं धृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विद्वेदेवादेवताः । ब्राह्मचनु-

ष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में पया होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

धृतधृतपावानः पिवतु वसां वसापावानः पिवतान्तरिक्षस्य
हविरंमि स्वाहा । दिशः प्रदिशाऽआदिशो विदिशः उदिशो दि-
ग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (घृतपावानः) जल के पीने वाले यौर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृ-
तात्मक जल को (पियत) पिओ हे (वसापावानः) नौति के पालने वाले वीरो ! तुम
(वसाम्) जो वीररस की वाणी अर्थात् शत्रुओं की स्तंभन करने वाली है उस को
(पियत) पिओ, हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूह आदि सेना रचक प्रत्येक वीर को तू ! जिस से
(अन्तरिक्षस्य) आकाश को (हविः) रुकावट अर्थात् युद्ध में वहुतों के बीच शत्रुओं को
घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण
(प्रदिशः) आग्नेयी नैऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिशः) आमने सामने
मुहाने की दिशा (विदिशा) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्रु लक्षित
हो वे दिशा हैं उन सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को
जीत ॥ १९ ॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्टकर
युद्ध के समय चक्रव्यूह श्येनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब
दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घेर
घार जाँतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋपिः । त्वष्टा देवता । ब्राह्मणवृष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं संग्राम में घोर पुरुष आपस में कैसे बर्त्स यह उपदेश अगले मंत्र
में किया है ॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः ।
देवत्वष्टुर्भूरिं ते संक्षमेतु सलक्ष्मा यद्विपुरुषम्भवाति । देवत्रा
घन्तमंषसें सखापोनुं त्वा मातापितरौ मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) शत्रुबलविदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापति ! आप
(अषसे) रक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात्
जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में टहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को
तिरस्कार करता हुआ आपही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का
तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हूँजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग
अङ्ग में (उदानः) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुँचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है
वैसे अपने विषम से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (निधीतः) निरंतर
स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूँजिये (यन्) जो (ते) आप का (विपुरुषम्)

विषय रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवति) हो यह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो । हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सखायः) मित्र होके बचें (माता) माता (पितरः) पिता, चाचा, ताऊ, भूत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यंतम्) प्राप्त होने हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन कर ॥ २० ॥

भाषार्थः—सेनापति सब प्राणियों का मित्र भाव बर्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रयत्नमान हैं वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजापुंगवों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छेत्पाद्वेदीर्घतमा क्रपिः । सेनापतिर्व्येता । याजुष्य उष्णिच्छन्दांसि ।

ऋषभः स्वरः ॥

अथ राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगले भद्र में कहा है ॥

समुद्रं गच्छेत् स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छेत् स्वाहाऽदेवेषु संघिनारंङ्गं गच्छेत्
स्वाहा । मित्राय रङ्गी गच्छेत् स्वाहाऽहोरात्रे गच्छेत् स्वाहा छन्दा-
ंसि गच्छेत् स्वाहा वायुपृथिवी गच्छेत् स्वाहा गृहं गच्छेत् स्वाहा
सोमं गच्छेत् स्वाहाऽद्विष्यजभो गच्छेत् स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छेत्
स्वाहा मनो मे हार्दिं गच्छेत् दिवन्ते धूमो गच्छेत्तु स्युज्जर्गतिः पृ-
थिवीम्भस्मना पूषं स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) बड़े २ भयवरी नाथ अर्थात् धुआँकम आदि यज्ञाने की विद्या से नीकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र की (गच्छ) जा (स्वाहा) जगोत्प्रकाश करने वाली विद्या से विश्व विधे हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद वाली से (देवेषु) प्रकाशमान (संघितारम्) सब को उपग्रह करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और राज्यों के सङ्घ से गुरु सम्भार को प्राप्त हुई वाली से (मित्राय रङ्गी) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिर्वाच-
या से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि या उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वैश्वानर विज्ञान सहित वाली से (छन्दांसि) ऋग्वेदः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमिपान आकाश नामां दिनान् भौर मू-

गोल या भूमि आदि पान पानों की पिघा में (घायापृथिवी) भूमि और सूर्यप्रकाशस्य अर्घोप देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संसृत पाणों से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारोपरी और राजनीति आदि यज्ञ को गच्छ प्राप्त हो (स्वाहा) वैद्यक पिघा में (नोमम्) ओषधिमूह अर्घान् मोमलतादि को (गच्छ) जान (स्वाहा) जल के गुण और भयगुणों को पोष कराने वाली पिघा में (दिव्यम्) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नमः) जल को (गच्छ) जान और स्वाहा बिजुली आग्नेयास्तादि नारयरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली पिघा से (धामिम्) पिघुत् रूप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे (मनः) मन को (हार्दि) प्रीतियुक्त (गच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताप वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूँधा (दिवम्) सूर्य प्रकाश को तथा (ज्योतिः) उसकी लपट (स्वः) अन्तरिक्ष को (गच्छतु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) टाँप दे ॥२१॥

भाषार्थः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य, और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षपान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सब सामग्रियों को जोड़ कर धन और राज्य का उपाजन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्यदीर्घतमा ऋषिः । षरणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः

स्वरः । दुर्मित्रियानइत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वनिज व्यापार करने के लिये राज्य प्रबन्ध आगले मन्त्र में कहा है ॥

मापो मौपंधीर्हिँँसीर्हाम्नो धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च ।
पटाद्दुरघ्नपाऽइति चरुणोति शर्षामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सु
मित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्
न्देष्टि षड्च वयं ह्रिष्यः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आपः) जल और (ओषधौः) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि धनज के पदार्थों को (मा) मत (ह्रिषीः) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चाहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (ततः) उस (धाम्नः) (धाम्नः) स्थान २. से (नः) हम लोगों को (मा) मत मुञ्च त्यागो दे (वरुणः) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए

न्याय में (अन्वाः) न मारने योग्य भों आदि पशुओं को शाय्य है (इति) इस प्रकार जो भाव बाने हैं और हम लोग भों (शाय्यते) शाय्य करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे । हे वरुण ! आप के राज्य में (नः) हम लोगों को (आपः) जल और ओषधियाँ (सुमुत्रियाः) श्रेष्ठ मित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों से (द्वेषि) घैर रखता है (च) और (ययम्) हम लोग (यम्) जिन से (द्विषः) घैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये घे भोषधियाँ (दुर्मित्रियाः) दुःग्य देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों ॥ २२ ॥

भाषार्थः—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेंगे किन्तु राज्य पालन के लिये राज पुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाँकू चोर लम्पट लघाड़ फपट्टी कुमार्गी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देंगे ॥ २२ ॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्, यज्ञ, सूर्या, देवताः । निचूदार्यनु-
ष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किस से क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मो२॥ आधिवासति । हविष्मा-
न्वेधो अंध्वरो हविष्मो२॥ अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इमाः) ये (आपः) जल (हविष्मतीः) अच्छे २ दान और धादान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासति) प्राप्त होता है (देवः) सुख का देने वाला (अंध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) ही ॥ २३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाभे से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम २ सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अग्नेर्वैत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आर्चात्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । असं-
व्यंत्यस्य त्रिपाद्गायत्री छन्दः । जड्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश
करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेर्बोऽपन्नगृहस्य सदांसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयीं स्थ
मित्रावरुणयोर्भागधेयीं स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयीं स्थ । अ-
मर्षा उप सूर्यं यामिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ । (अमः) वे (याः) जो स्वयंवरः विवाह से
पतियों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और विजुली
के गुणों को (भागधेयीः) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयोः) प्राण
और उदान के गुणों को (भागधेयीः) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेषा-
म्) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के सेवने वाली (स्थ) हैं उन (यः) तुम
सभों को (अपन्नगृहस्य) जिस को गृहहृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्माउ-
ष्ठान करने वाले और (अग्नेः) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की
(सदांसि) सभा में मैं (सादयामि) स्थापित करती हूँ और जो (या) (उप) (सू-
र्यं) सूर्यलोक गुणों में उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (यामिः) जिन के (सह)
साथ (सूर्यः) सूर्यलोक वर्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर है (ताः) वे सब
(नः) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह कर के (हिन्वन्तु) य-
द्दायें ॥ २४ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचा-
री और अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता
है इस हेतु से गुरुजनों का स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि
जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह कर के सदा सुखी रहें और
जिस का पति या जिस की स्त्री मरजाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग
करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हृदेत्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । आर्षाविराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं
दिवि देवेषु होत्रां यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे द्रव्यचारिणी कन्या ! तू जन्मे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पतियों के निश्चय रहने और अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली है वैसे ही और जन्मे हम (हरे) मौहार्त्त सुग के लिये (त्वा) तुझे या (मनसे) भला बुरा विचारने के लिये (त्वा) तुझे या (दिये) सब सुखों के प्रकाश करने के लिये (त्वा) तुझे या (सुख्योय) सुख्य के सदृश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती है वैसे तू भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (वक्ष्यम्) निरन्तर सुग देने वाले गृहाश्रम रूपी यज्ञ को (उद्धर्यम्) उन्नति (यच्छ) दिया कर ॥ २५ ॥

भाषार्थ—जैसे अपने पतियों को सेवा करता हुई उन के समीप रहने वाली पति-पुत्रा गुणवत्ता अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर द्रव्यचारिणी कन्याओं और द्रव्यचारियों को परस्पर वर्तना चाहिये ॥ २५ ॥

सोमःराजन्विश्रयन्म्य मेधातिथिर्ऋषिः । गायत्रोच्छन्दः । पद्भ्जः स्वरः । शृणोषिय-
त्यश्यापिं त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

अथ गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन की उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमं राजन्विश्रयास्थम् प्रजा उपावरोह विश्वास्तवाम्प्रजा
उपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवम्मे शृण्वन्त्वापो धिप-
णाश्च देवीः । श्रोतां प्राषाणो विदुषो न यज्ञथे शृणोतु देवः सं-
विता हवम्मे स्थाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाश-मान सभाध्यक्ष ! तू पिता के तुल्य (विदुषाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जनों का (उपा-विरोह) समीप वर्त्ता होकर रक्षा कर और (त्वा) तुझे (प्रजा) प्रजा जन के पुत्र स-मान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों हे सभाध्यक्ष ! भाप जैसे (समिधा) प्रदीत करने वाले पदार्थ से (अग्निः) सर्वगुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हजिये (च) और (आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिपणाः) विद्या बुद्धि युक्त (देवाः) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्री जनों के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें । हे (प्राषाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो । तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (स-

विता) ऐश्वर्यवान् सभापति (विदुषः) विद्वानों के (यज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो जैसे (शृणोतु) सुन ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपोदेवताः । निचृदापीत्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्ताव को वर्ते यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापो अपान्नपाद्योवञ्जर्मिर्हविष्यइन्द्रियावान् मदिन्त-
मः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषाम्भागस्थ स्वाहा ॥२७॥

पदार्थः—हे (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवीः) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो! तुम राज सेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्यः) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्यः) दिव्यगुण युक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (वः) तुम्हारा बलीरूप विद्वानों का (यः) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (जर्मिः) जल तरंग के सदृश प्रजा रक्षक (इन्द्रियावान्) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मदिन्तमः) आनन्द देने वाला (हविष्यः) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भागः) भाग है वे तुम सब (तम्) उस को (स्वाहा) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं जैसे तुम भी इन को आनन्द (दत्त) देओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त युक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पालन के लिये कर देकर न्याय की प्राप्ति हों ॥ २७ ॥

कार्पिरसात्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदाप्यत्रिष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अथ अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

कार्पिरसि समुद्रस्य त्वा चिंत्या उन्नयामि । समापो अङ्गिर-
ग्मत समोर्षधीभिरोर्षधीः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे वैश्यजन ! तू (कार्पिः) हल जोतने योग्य (असि) है (त्वा) तुझे (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (अक्षित्यै) परिपूर्ण होने के लिये (उत, यामि) मन्ते

प्रकार उत्कर्ष देता है तुम सब लोग (शक्तिः) यह शोधित जलों से (भाष्यः) जन्म और (भोगधर्मि) शोधियों से शोधियों को (मम) (अमल) प्राप्त होगे ॥ २८ ॥

भाष्यार्थः—क्षेत्र आदि स्थानों में बनेक शोधयो उत्पन्न होती है शोधियों से शक्तिहीन आदि यह जलों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊँचे होते हैं उन से आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग निवृत्ति जनों को रोती पारो ही के कामों में लगते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

यमस इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्था गायत्रीछन्दः ।

पङ्कजः स्वरः ॥

अथ यह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

यमस्ये पृथु मर्त्यमद्या याजेपु पञ्जुनाः । स यन्ता द्वाद्यन्ती-
रिपुः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जय यमी विद्येक के करने वाले आप ! (पृथु) संप्राप्तों में (यम्) जिस मनुष्य को (अद्याः) रक्षा करते और (याजेपु) अथ आदि पदार्थों को सिद्धि करने के निमित्त (यम्) जिस को (जुनाः) नियुक्त करते हो (सः) यह (शक्तयोः) निरंतर बनादिरूप (इयः) अपनी प्रजाओं का (यन्ता) निर्वाह करने द्वारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुँचता है ॥ २९ ॥

भाष्यार्थः—गुरु जनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ २९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सविता देवता । स्वराढार्यो पङ्कजदछन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ समापति कर धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार कर यह गुरुजत का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्यं तथा सधितुः प्रमद्वेद्विनोर्वाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आदंटे राषांसि गभीरमिममध्वरङ्कृधीन्द्राय सुपूतमम् । उस्त-
मेनं पविनोऽस्वन्तम्मधुमन्तुम्पयंस्वन्तन्निग्राब्भ्या स्थ देवदध्रुतं-
सुपर्षयंत म्ना ॥ ३० ॥

पदार्थः—सब सुख देने (सधितुः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसये) उत्पन्न किये हुए संसार में (अद्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (वाहुभ्याम्) बल और पराक्रम गुणों से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सोम आदि भो-

पधिमण के (हस्ताभ्याम्) रोग नाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से (त्या) तुझ कर धन देने वाले को (आददे) स्वीकार करता हूँ तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले मेरे लिये (उत्तमेन) उत्तम अर्थात् सभ्यता की (पविना) वाणी से (इमम्) इस (गर्भारम्) अत्यन्त समझने योग्य (सुपूतम्) सय पदार्थों से उत्पन्न हुए (ऊर्जस्वन्तम्) राज्य को धलिष्ठ करने वाले (मधुमन्तम्) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थ युक्त (पयस्वन्तम्) दुग्ध आदि सहित कर धन को (अध्वरम्) निष्कपट (कृधि) कर दे (देवश्रुतः) श्रेष्ठ राज्य गुणों को चुनने वाले तुम मेरे (निग्रायः) निरंतर स्वीकार करने के योग्य (स्थ) हो (मा) मुझे इस करके देने से (तर्पयत) तृप्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—प्रजा जनों की योग्यता है कि सभाभक्ष को प्राप्त हो कर उसके लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दे जिस कारण राजा, प्रजा पालन के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३० ॥

मनोम इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । प्रजासभ्यराजानो देवता । उष्णिक्छन्दांसि ।

ऋषभः स्वरः ॥

अथ राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मनों मे तर्पयत वाचंमे तर्पयत प्राणंमे तर्पयत चक्षुर्मं तर्पयत श्रोत्रंमे तर्पयतात्मानंमे तर्पयत प्रजाम्मे तर्पयत पुशून्मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत गृणा मे मा वितृपन् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे सभ्यजनों ! और प्रजाजनों ! तुम अपने गुणों से (मे) मेरे (मनः) मन को (तर्पयत) तृप्त करो मेरी (वाचम्) वाणी को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (आत्मानम्) आत्मा को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (प्रजाम्) संतानादि प्रजा को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (पशून्) गौ, हाथों, घोड़े आदि पशुओं को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (गणान्) सेवकों को (तर्पयत) तृप्त करो जिन से (मे) मेरे (गणाः) राज्य या प्रजा कर्माधिकारी या सेवक जन कर्मों में (मा) मत (वितृपन्) उदास हों ॥ ३१ ॥

भावार्थः—राज्य का प्रबन्ध सभाधोन ही होने के योग्य है जिस से प्रजाजन राज सेवक और राज पुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने २ कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें ॥ ३१ ॥

इन्द्राथेत्वेत्यस्य मधुच्छन्दाक्रमिः । सभापती राजादेवता । पञ्चपाज्ज्योतिष्म-
ती जगतीछन्दः । निपादः स्वरः ॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किस लिये प्रजाजनों को सभापति का स्वाँकार करना चाहिये यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

इन्द्रांग त्वा वसुमते रुद्रवतः इन्द्रांगत्वादिस्ववतः इन्द्रांग त्वा-
भिमात्तिघ्ने । श्येनाय त्वा सोमभृतेग्नये त्वा राघस्पोषदे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! (यजुमते) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से घन कर अच्छे २ विद्वान् होते हैं (रुद्रवते) जिस में चयालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं उस (इन्द्राय) परमेश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप को प्रहण करने हैं (आ-दित्यवते) जिस में अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य घन कर सूर्य्य सदृश पद्म विद्वान् होने हैं उस (इन्द्राय) उत्तम गुण पाने के लिये (त्वा) आप के (अभिमात्तिघ्ने) जिस कर्म में बड़े २ अभिमानो शत्रुजन मारे जाय उन (इन्द्राय) परमोच्छ्रष्ट शत्रु विदारक काम के लिये (त्वा) आप (सोमभृते) उत्तम ऐश्वर्य्य धारण करने हारे (श्येनाय) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य लपट झपट मारने वाले (त्वा) (आप) (राघ-स्पोषदे) धन की हड़ता देने के लिये और (अग्नये) विशुन् आदि पदार्थों के गुण प्र-काश कराने के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य्य यक्ष्ण और धन्वन्त के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करने वाला सब को सुग दये उसी को राजा मानना चाहिये ॥ ३२ ॥

यतइत्यस्य मधुच्छन्दाक्रमिः । सोमो देवता । भुरिगातीं पृतीछन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मंत्र में कहा है ॥

पसेँ सोम दिविज्जगोतिर्यर्यृधिष्वां यदुरायन्तरिक्षे । तेनाभ्यै

यजमानागुराये कृद्ध्यधिं द्राप्ते सोषः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य्य के निहित भोग्य करने हारे सभापति ! (ते) नेता (यन्) जो दिवि सूर्य्यलोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यन्) ज-

(उरौ) विस्तृत (अन्तरिक्षे) आकाश में (ज्योतिः) जैसे ज्योति हो वैसे राजकर्म है (तेन) उस से तू (अस्मै) इस परोपकार के अर्थ (यजमानाय) यज्ञ करते हुए यजमान के लिये (उरु) (हृदि) अत्यन्त उपकार कर तथा (राधे) धन बढ़ने के लिये (धधि, योचः) अधिक २ राज्य प्रबन्ध कर ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य कर रहा रहे जिस से वे पुरुषार्थी हो कर धनार्थि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ३३ ॥

इशाभ्रास्थ इत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । यज्ञोद्देयता । स्वराधार्यापध्यावृहती-
च्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ उक्त सभाष्यक्षात्रिकों की स्त्री कैसे कर्म करने वालीं हों यह
भागले मन्त्र में कहा है ॥

इवाभ्राः स्थं वृत्रतुरो राधो गूर्ताऽअमृतं स्पृ पत्नीः । ता देवीदे-
वप्रेमं वृज्जलं पत्तोपभृताः सोमं स्पृ पियत ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (देवीः) विद्या युक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुरः) विजुली के सदृश मे-
घ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति के तुल्य चलने (राधोगूर्ताः) धन का उ-
द्योग करने (पत्न्यः) और यज्ञ में सहाय देने वाली (स्पृ) हो (देवप्रेम) तथा म-
ष्टे २ गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हों (इवम्) इस यज्ञ की
(मपत्) मिष्टि को प्राप्त किया कौजिये और (उपहृताः) बुलाई हुई अपने पतियों
के साथ (अमृतस्य) अति स्वाद युक्त सोम भादि भोवधियों के रस को (पियत)
पीओ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विद्वानों की पत्नी स्वीय
एवधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपने
स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें वैसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥ ३४ ॥

माभेर्मालस्य मधुच्छन्दाऋषिः । धाधारुषियो देवते । मुटिगाप्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

रिद हों पुरुष परस्पर की मा बर्त्ताव वत्तं यह उपदेश भागले मन्त्र में किया है ॥

माभेर्मा संविषयाऽऊर्जेन्धरस्य धिपणे वीह्री मती वीहंपया-
मूर्जेन्दपापाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री : द (बोद्धोः) शर्मगतवत् युक्त होती हुई पति से (मा, मेः)

मन इर (मा संविफथाः) मत कं.पमौर (ऊर्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धन्व) धारण कर । हे पुरुष ! तू भी जैसे ही अपनी स्त्री से वर्त । तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिग्ने) सूर्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिस से (बोंडयेथाम्) दृढ़ बल वाले हों ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पाप्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में पाचकलुप्तोपमालङ्कार है—स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में य-
सों कि जिस से उन का परस्पर भय और उद्वेग नष्ट हो कर आत्मा की दृढ़ता, उत्सा-
हता और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़ और वे दोष तथा दुःख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आल्हादित हों ॥ ३५ ॥

अथ उन के पुत्र क्या २ करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले
मन्त्र में कहा है ॥

प्रागप्रागुद्गंधराफसुर्व्यतस्तथा विश्वाऽभाधावन्तु । अम्य निष्पं-
रसमरीषिदाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अम्य) प्रेम से प्राप्त होने वाली माता । जो तेरी (अरीः) सन्ताना-
नादि प्रजा (प्राक्) पूर्व (अयाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और
भी (सर्वतः) सब (दिशः) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ) (धावन्तु) घाय घाय
प्राप्त हों उन्हें (निः) (पर) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से
जानें ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—माता और पिता को योग्य है कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे २
गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिस से वे
नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता
पिता की सब प्रकार से सेवा करें ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गीतमद्रपिः । इन्द्रो देवता । भुरिगार्घ्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मन्त्र में
उपदेश किया है ॥

त्वमङ्ग प्रज्ञांशिसियोवेषः शश्विष्टमर्त्यम् । न त्वद्वृण्यो मघवन्न-
स्ति मर्हितेन्द्र प्रथोमि ते वचः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (मङ्ग) (शश्विष्ट) अत्यन्त बल युक्त (मघवन्) महाराज के समान

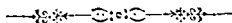
(इन्द्र) ऋद्धि सिद्धि देने हारे सभापते ! (त्वम्) आप (मर्त्यम्) प्रजास्य मनुष्य को (प्रशंसियः) प्रशंसायुक्त कीजिये आप (देवः) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (न) नहीं (त्वदन्यः) तुम से अन्य (मर्दिता) सुख देने वाला है ऐसा मैं (ते) आप को (वचः) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे ईश्वर सर्व दुहुत् पक्षपात रहित है वैसे सभापति राज्य धर्मानुवर्त्ता राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निन्दनीय की निन्दा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में राज्य के अनिषेक पूर्वक शिक्षा, राज्य का हृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन, सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा प्रजा का आपस में हृत्य, गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यवृत्त्य, मनुष्यों का परस्पर वर्त्तमान, दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धहृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का हृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य, सभापति की लक्षण, प्रजा और राज सभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों को पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता पिता के प्रति सन्तानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इस से पंचम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की सङ्गति है, ऐसा जानना चाहिये ।

यह छठा अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ सप्तसाध्यायस्यारम्भः ॥



अथ सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है ॥

विद्यमानि देव सवितद्वैरितानि परांसुव । पद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

याचन्मृतय इत्यरप गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुविगार्प्यनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में ऊष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है ॥

याचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअधुभ्याद्भस्तिपूतः । देवो देवे-
भ्यः पवस्व येषाम्भागोऽसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (याचः) वृष्णों के (पतये) पालने वाले इन्द्र के लिये (पवस्व) पवित्र हो (वृष्णः) बलवान् पुरुष के (अधुभ्याम्) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे (गभस्तिपूतः) सूर्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होने हैं वैसे शास्त्रों से (देवः) दिव्य गुण युक्त विद्वान् होकर (येषाम्) जिन विद्वानों की (भागः) सेवन करने के योग्य है उन (देवेभ्यः) देवों के लिये (पवस्व) पवित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में याचकलुप्तोपमालंकार है—सय जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा की जान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी के बोलने वाले हों ॥ १ ॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमोदेवता । निचृदाप्यपंक्तिदछन्दः ।

पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वृत्तं यह अगले मंत्र में कहा है ॥

मधुमतीर्षे इपस्वृधि यत्ते सोमादाभ्यन्नाम् जागृधि तस्मै ते
सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्ध्वन्तरिक्षमन्वोमि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य युक्त विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के लिये (मधुमतीः) मधुरादिगुणसहित (इपः) शत्रु आदि पदार्थों की (वृधि) कीर्तिये तथा

हे (सोम) शुभकर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वान् (मू) सिद्धि
का (अदाय्यम्) अहितनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (उदात्त)
नाम है (तस्मै) उम (मोनाय) ऐश्वर्य को प्राप्ति और (ते) आकाश
आप की आज्ञा वर्तमान के लिये (स्वाहा) सत्यधर्म युक्त क्रिया (सार)
और (उद्य) (अन्तरिक्षम्) भवकाश का (यमि) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों से
प्रेरित हो आँसों के लिये भी दिया करे और जैसे कारं मनुष्य कर्मों प्रदत्त
आँसों को आप भी क्रिया करे जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं
हैं ॥ २ ॥

स्वाहृत इत्यस्य गोतमत्रयिः । विद्यासो देवताः । विराद्व्याप्तो जलः
निपादः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है ॥

स्वाङ्कृतोऽसिचिदेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः
स्त्याष्टु स्वाहा त्वा सुमथ सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिभ्यः
वांश्शो यस्मै त्वेहे तत्सत्यमुपरिपुता मङ्गेन हृतोऽसौ धृष्ट
यं त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अंशो) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान । जो तू (दिव्येभ्यः) दि
द्वेभ्यः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों से
चिपेभ्यः) किरणों के समान पवित्र करने वाले (देवेभ्यः) विद्वानों और (म
पदार्थों के लिये (स्वाङ्कृतः) स्वयं सिद्ध (असि) है उस (त्वा) तुझ से
विज्ञान और (स्वाहा) घेद वाणी (अष्टु) प्राप्त हों । हे (सुमथ) अंधकार
वाले में (सूर्याय) सूर्य प्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (त्वा) तेरी (म
सा करता हूँ तू भी (तत्) उस प्रशंसा के योग्य (सत्यम्) सत्य परमानन्द
से ग्रहण कर (उपरिपुता) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने वाले (मङ्गेन)
(असौ) यह अज्ञान रूप शत्रु (फट्) झट (हतः) मारा उस (त्वम्) तुझ
णाय) जीवन के लिये प्रशंसित करता और (व्यानाय) विविध प्रकार के सु
करने के लिये (त्वा) तुझे प्रशंसा देता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जीव आप ही स्वयं सिद्ध अनादिरूप है इस से इन की वर्तनी
प्राण इन्द्रियों और अंतःकरण की निर्मल धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त हो कर

को उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को शरट पट मार और भलों की रक्षा परके आनन्दित रहें ॥ ३ ॥

उपयामगृहोत इत्यस्य गौतमऋषिः । इधया देवता । आर्षुष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

किर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघधन् प्राहि सोमम् । उरुष्य राय
र्षो यजस्व ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे योग चाहने वाले ! जिस से तू (उपयामगृहोतः) योग में प्रवेश करने वाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (अस्ति) है इस कारण (अंतः) भीतरले जो प्राणादि पञ्च मन और इन्द्रियाँ हैं इनको (यच्छ) नियम में रख । हे (मघधन्) परम पूजित धनो के समान । तू (सोमम्) योगविद्या सिद्ध ऐश्वर्य्य को (प्राहि) रक्षा कर (उरुष्य) और जो अविद्या आदि श्लेश हैं उनको अत्यन्त योग विद्या के बल से नष्ट कर जिम से (रायः) ब्रह्म और (इयः) इच्छा, सिद्धियों को (आयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में पाचकलुप्तोपमालङ्कार है—योग जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अर्थात् से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ब्रह्म सिद्धियों का सिद्ध करें ॥४॥

अन्तस्त इत्यस्य गौतमऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्षुष्णिक्छन्दः । पंचमः स्वरः ।
अथ ईश्वर जो योग में प्रथम हो प्रवृत्त होता है उस के लिये विज्ञान का उपदेश अगले मंत्र से करता है ॥

अन्तस्ते चावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्यूर्वन्तरिच्छम् । सज्जुह्वे
भिरर्षैः परैश्चान्तर्यामि मघधन् मादयस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (मघधन्) योगी ! मैं परमेश्वर (ते) तेरे (अंतः) हृदयाकाश में (चावा-पृथिवी) सूर्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों का (दधामि) स्थापित करता हूँ तथा (उरु) विस्तृत (अंतरिक्षम्) अकाश का (अंतः) शरीर के भीतर (दधामि) धरता हूँ (सज्जुः) मित्र के समान तू (देवेभ्यः) पिदानों से विद्या का प्राप्त हो के (अर्षैः) (परैः) (च) थोड़े या बहुत योग व्यपहारों से (अंतर्पामी) भीतरले नियमों में वर्तमान होकर अन्य सब को (मादयस्व) प्रसन्न किया कर ॥५॥

भाषार्थः—इस मंत्र में पाचकलुप्तोपमालङ्कार है—ईश्वर का यह उपदेश है कि

प्रज्ञान में जिस प्रकार के ज्ञाने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उत्तम ही मेरे ज्ञान में वर्तमान हैं। योग विद्या को नहीं जानने वाला उन को नहीं देख सकता और मेरी उपासना के बिना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

स्वन्दूरतोत्साहस्य मोक्षत्र प्रथमः । योगी देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैयताः स्वरः ॥

किर ईश्वर योग विद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है ॥

स्वाङ्कृतांस्मि विद्ध्येभ्य इन्द्रियेभ्यो द्विव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो
मनस्तवाष्टु स्वाहा तथा सुभ्य सूर्याय देवेभ्यस्तवा मरीचिपेभ्य
उदानाय तथा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हूँ (सुभ्य) शोभन ऐश्वर्य युक्त योगी ! तू (स्वाङ्कृतः) अनादि काल से रथय सिर (असि) हैं मैं (दिव्येभ्यः) शुद्ध (विद्ध्येभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (मरीचिपेभ्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूँ (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूँ (सूर्याय) सूर्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के धर्य (त्वाम्) तुझे ग्रहण करता हूँ जिस से (त्वा) तुझे योग चाहने वाले को (मनः) योग समाधि युक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (अष्टु) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा २ भागफल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उस को अत्यंत सुख भी नहीं होता ॥ ६ ॥

भाषायाभूषेत्यस्य पतिष्ठन्नपिः । वायुदेवता । निचृज्जगतो छन्दः । निपादः स्वरः ॥

किर योगी का कृत्व अगले मंत्र में कहा है ॥

आषापो भूप शुचिपा उपं नः सहस्रान्ते नियुतो विद्वधवार ।
उपे अन्धो मर्षमयामि पश्यं देश दधिषे पूर्वपेयं घ्रापवे ।

(शुचिपा) अत्यन्त शुद्धता को पालन और (वायो) पवन के हु-
स होने वाले योगी ! तू (सहस्रम्) हजारों (नियुत)

निश्चित शमादिक गुणों को (भाभूय) सब प्रकार सुभूषित कर । हे (विद्यपार) समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले ! जो (ते) तेरा (मधम्) अच्छी सृष्टि देने वाला (अन्नः) अन्न है उस को (उपो) तेरे समाप (अयामि) पहुंचाता हूँ । हे (वेव) योग बल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यसा) जिस तेरा (पूर्वगेषम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योग बल है जिस को तू (दधिरे) धारण कर रहा है (यावधे) उस योग के जानने के लिये (एवा) तुझे स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में याचकब्रह्मोपमालङ्कार है—जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता इंद्र के तुल्य अच्छे २ गुणों में व्याप्त होता है और अन्न या जल के सदृश सुख देता है वही योग के बीच में समर्थ होता है ॥ ७ ॥

इन्द्रयायूह्यस्य मधुच्छन्दाः प्राणिः । इन्द्रा यायू देवते । इन्द्रयायू इत्यस्यार्थिगायत्री छन्दः । उपयामगृह्णात इत्यस्यार्थि रयराड् गायत्री छन्दः । पद्भुजः स्वरः ॥

फिर यह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं वायू इमे सुता उपप्रयोभिरागतम् । इन्द्रं वो वासुशान्ति हि । उपयामगृह्णातोऽसि यावधे इन्द्रवायुभ्रान्तैव मे योनिः स्रजोपोभ्रान्तवा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रयायू) प्राण और मूर्च्छ के समान योगभास्त्र के पड़ने पड़ाने वाले (हि) जिस से (इमे) (सुताः) ये उत्पन्न हुए (इन्द्रः) तुमकारक जन्मादि पदार्थ (वायू) तुम दोनों को (उशान्ति) प्राप्त होने दें इस से तुम (योनिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (वागन्तम्) अपना आगमन जानो । भी योग चाहने वाले तू इस योग पड़ाने वाले अथवायू से (यावधे) पवन के तुल्य योगिनिस के नाम के लिये भयना योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये (उपयामगृह्णातः) योग के सम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (अवि) है ठ अथवा ' योगाभ्यसन (रयः) यह योग (मे) मुझसे (योनिः) सब दुःखों के निवारण करने वाले घर के समान है और (इन्द्रवायुभ्रान्तम्) पित्रुकी और प्राणवायु के समान योगबल से ही समस्त अन्न में और उत्तारने की शक्तियों से (उपम्) प्रत्यक्ष हुए (एवा) भास्त्रों और हे योग चाहने वाले (स्रजोपोभ्रान्तम्) शंखत लिये हुए उक्त गुणों से प्रत्यक्ष हुए (एवा) तुम में समान तुल्य के लिये चाहता हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थः—ये दो लोगोपुत्र योगी और तिरह ही रहने हैं जो हि योगिनिस समान करने इंद्र से लेंके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को समस्त करने का एक नियम करते

और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

अथामित्रावस्था गृहसमद्वारं पिः । मित्रावरुणौ देवते । आर्यो गायत्री छन्दः ।

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्यासुरो गायत्री छन्दः । पद्भजः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं पांस्मिन्नावरुणा सुतः सोमं ऋतावृथा । ममेदिह श्रुतं
हवम् । उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्तमान (ऋतावृथा) सत्य विज्ञान ब्रह्मक योग विद्या के पढ़ने पढ़ाने वाले (याम्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का ऐश्वर्य्य (सुतः) सिद्ध क्रिया हुआ है उस से तुम (इह) यहाँ (मम) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो, हे यजमान ! जिस में तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) ही (असि) है इस से मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्तमान (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकब्रह्मोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों को धारण कर के योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रखें ॥ ९ ॥

रायावयमित्यस्य असिदस्युर्भ्यः । मित्रावरुणौ देवते । ब्राह्मीगृहीतो छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के हृद्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राया वयं संसुवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।

तान्धेनुभिर्मावरुणा युवन्नो विश्वार्हा धत्तानपस्फुरन्तीमेपतेयो-
निर्दितायुभ्यान्त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (संसुवासः) भले बुरे के अलग २ करने वाले (देवाः) विद्वानों ! आप और (वयम्) हम लोग (यवसेन) तृण घास भूसा से (गावः) गौं आदि पशुओं के समान (हव्येन) ग्रहण करने के योग्य (राया) धन से (मदेम) हर्षित हों । और हे (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जनों ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिये (विद्वार्हा) सब दिनों में (अनपस्फुरन्तीम्) ठोक २ ज्ञान देने वाली (धेनुम्) बाणों को (धत्तम्) धारण कीजिये । हे यजमान ! जिस से (ते) तेरा (पयः) यह विद्यापोष (धोनिः) घर है इस से (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहने वालों सहित (त्वा) तुझ को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थः—इम मन्त्र में उपमा और वाचकानुसंगमालङ्कार हैं—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और पिछानों के सङ्ग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली घेद घाणों को प्राप्त हो कर आनन्द में रहें ॥ १० ॥

यायाङ्गोत्पत्य मेधातिथिर्ऋषिः । अश्विनी देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः ।

प्रथमः स्वरः ॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

या वाङ्मया मधुमत्यश्विना सूनृतायती । तथा यज्ञमिमि-
क्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यान्त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्या-
न्त्वा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अश्विनी) सूर्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने पढ़ाने वाले (या) जो (यम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुण युक्त (सूनृतायती) प्रभात समय में काम २ से प्रदीप्त होने वाली उपा के समान (कशा) घाणी है (तथा) उस से (यज्ञम्) ईश्वर से सङ्ग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को (मिमिक्षतम्) सिद्ध करना चाहो हे योग पढ़ने वाले तू (उपयामगृहीतः) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (यपः) यह योग (योनिः) घर के समान सुखदायक है इस से (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्तमान (त्वा) तू और हे योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्य्य लिए जो श्रेष्ठ नीति और योग रीति हैं उन के साथ वर्तमान (त्वा) आप का हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समोपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—योगी लोग मधुर प्यारी घाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य जैसे योगी का सदा आश्रय किया करें ॥ ११ ॥

तं प्रसथेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदार्या जगती
छन्दः । निपादः स्वरः । उपयामगृहीत इत्यस्य पठ्तिच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है ॥

तं प्रत्नया पूर्वधा विश्वधेमया ज्येष्ठताति वह्निपदं स्पृधिदम् ।
प्रतीचीनम्पृजनन्दोहसे धुनिमाशु जपन्तमनु पामु बर्हेसे । उप-

ग्रामग्रहीतोऽसि शण्डाग स्वैप तं योनिर्वीरतां प्राक्ष्यमृष्टः श-
ण्डो देवास्त्वां शुक्रपाः प्रणयन्त्यनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे योगिन् ! आप (उपयामग्रहोतः) योग के अंगों शर्मान् शौच आदि नियमों के प्रवृत्त करने वाले (असि) हैं (तं) आप का (एपः) यह योगयुक्त स्वभाव (योनिः) सुख का हेतु है । योग से आप (अपमृष्टः) अविद्यादि दोषों से मलम हूए (शण्डः) शमादि गुण युक्त (असि) हैं (यासु) जिन योगक्रियाओं में आप (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (विदयथा) समस्त (प्रदाया) प्राचीन महर्षि (पूर्वथा) पूर्व काल के योगों और (इमथा) वर्तमान योगियों के समान (ज्येष्ठतातिम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (बर्हिपदम्) हृदयकाश में स्थिर (स्वर्दिदम्) सुख लाभ करने (प्रतीचीनम्) अविद्यादि दोषों से प्रतिकूल होने (आशुम्) शीघ्र सिद्धि देने (उदयन्तम्) उत्कर्ष पहुंचाने और (धुनिम्) इन्द्रियों को कम्पाने वाले (वृजनम्) योगबल को (दोहसे) परिपूर्ण करते हैं उस योगबल को (शुक्रपाः) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे (देयाः) योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगों लोग हैं वे (त्वा) आप को (प्रणयन्तु) अच्छे प्रकार पहुंचावें । उस योगबल को प्राप्त हुए (शंडाय) शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग का (अनाधृष्टा) दृढवीरता (असि) ही आप उस (वीरताम्) वीरता की (पाहि) रक्षा कौजिये (अनु) यह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता (त्वा) आप को पाले ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपनालङ्कार है—हे योगविद्या की इच्छा करने वाले जैसे शमदमादिगुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है वही अविद्यारूपी अंधकार का विध्वंस करने वाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आप को दे ॥ १२ ॥

सुवीर इत्यस्य पत्नारः काश्यप ऋषिः । विद्वेदेवा देवताः । निचुदापीत्रिष्टु-
पछन्दः । धैवतः स्वरः । शुक्रस्येत्यस्य प्रजापत्या नायत्री छन्दः ।

पद्मजः स्वरः ॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले
अत्र में किया है ॥

सुवीरों वीरान् प्रजुनयन् परीच्छभि ग्रापस्पोषेण यजमानम् ।
सं जुगमानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिप्रा निरस्तः शण्डः
शुक्रस्पाधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे योगिन् ! (सुशौरः) श्रेष्ठ और के समान योगफल को प्राप्त हुए आप (शौरान्) शक्ये ३ गुणयुक्त पुण्यों को (प्रजनन्) प्रसिद्ध करने हुए (परीहि) सब जगह समान कीजिये इसी प्रकार (यजमानम्) धन नादि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुण्यों के (धर्मि) मन्मथ (रायः) धन को (पोषेण) पुष्टि से (संजग्मानः) सङ्गत कीजिये । और आप (दिवा) सूर्य और (पृथिव्या) पृथिवी के गुणों के साथ (शुक्रः) धाति बन्धवान् (शुक्रभोजिया) सत्य को शोधने वाले सूर्य की दीप्ति से (निरः) अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगफल के प्रकाश से विषय घासना से छूटे हुए (शण्डः) शमदमादि गुणयुक्त (शुक्रस्य) अत्यंत योगफल के (अधिष्ठानम्) आधार (भसि) है ॥ १३ ॥

भाष्यार्थः—शमदमादिगुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगी जन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहने वालों का आत्मफल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य पदभारः काश्यप ऋषि । विद्वेदेवा देयता ।

रघराड् जगती छन्दः । तिपाद्ः स्वरः ॥

अथ शिष्य के पढ़ाने की युक्ति आगे मंत्र में कही है ॥

अच्छिन्नस्यते देव सोम सुधीर्यस्य रापस्पोपस्य ददितारः
स्वाम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विद्ववारुः स प्रथमो वरुणो मित्रो
अग्निः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (देव) योगविद्या चाहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य ' हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये (सुधीर्यस्य) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उस के समान (अच्छिन्नस्य) अखण्ड (रायः) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोषस्य) दृढ़ पुष्टि के (ददितारः) देने वाले (स्वाम) हों जो यह (प्रथमा) पहिली (विद्ववारा) सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य (संस्कृति) विद्यासुशिक्षा जनित नीति है (सा) वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (सः) यह (प्रथम) सब से प्रथम तेरा (मित्रः) मित्र हो ॥ १४ ॥

भाष्यार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है । योगविद्या में संपन्न शुद्धचित्त युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्मफल से युक्त किया करें ॥ १४ ॥

स प्रथम इत्यस्य षष्ठारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचुद्रा-

क्षयमुद्गुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ स्वामी और सेवक के कर्म की अगले मंत्र में कहा है ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्सांस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत
स्वाहा । तृस्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्थिष्टा याः सुर्षिताः सुहुता प-
त्स्वाहा यांङ्गनीत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मंत्र से प्रतिपादित (प्रथमः) आदि
मित्र (चिकित्सान्) विज्ञानवान् (बृहस्पतिः) सब विद्या युक्त वाणों का पालने वाला
जिस ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करता है जैसे (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लि-
थे (स्वाहा) सत्य वाणों और (सुतम्) निष्पादित श्रेष्ठव्यवहार का (आनुहोत)
अच्छे प्रकार ग्रहण करी और जैसे (यत्) जो (होत्राः) योग स्वीकार करने के योग्य वा
(याः) जो (मध्वः) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (स्थिष्टाः) जिन से कि अच्छे २ इष्ट काम बनते हैं (याः)
वा जो ऐसी हैं कि (सुहुताः) जिनसे अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म सिद्ध होते हैं (सुर्षि-
ताः) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन (अमीत्) या कोई अच्छी प्रेरणा का
प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (स्वाहा) सत्यवाणों से (अयात्) सबों को संसृष्ट करता और तृप्त
रहता है आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (तृस्पन्तु) तृप्त हूजिये ॥ १५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में याचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे योगी विद्वान् और योगि-
नी विद्वानों को स्त्रीजन परमैश्वर्य के लिये यत्न करें और जैसे सेवक अपने स्वामी
का सेवन करता है जैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन २ कामों में प्रवृत्त हो-
कर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुँचे ॥ १५ ॥

अथ वेन इत्यस्य षष्ठारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्य

निचुद्राय त्रिष्टुच्छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

अथ समाप्यक्ष राजा का क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले
मंत्र में किया है ॥

अपं वेनश्चोदयत्पृथिनगर्भा उज्जपोतिर्जरायू रजसो धिमानं ।
इममपा २ संहमे सूर्यस्य शिशुस्य विप्रं मृतिर्भारिहति । उप्रपा-
मर्गृहीतोऽसि मर्काप त्वा ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे शिष्यविधि के जानने वाले समाप्यक्ष विद्वान् ! आप (उपयामपृहीत)
मेगा आदि राज्य के भंगों से मुक्त (भवि) हैं इन मं मं (रजसः) लोगों के प्राय

(पृथिव्याः) जिन में अथकाश अधिक है उन लोगों के (ज्योतिर्जरायुः) तारागणों को ढांपने वाले के समान (अथम्) यह (वेगः) अति मनोहर चंद्रमा (चोदयत्) पथायोग्य अपने २ मार्ग में अभियुक्त करता है (इमम्) इस चंद्रमा को (अपाम्) जलों और (सूर्यस्य) सूर्य के (संगमे) संबन्धी आकर्षणादि विषयों में (शिशुम्) शिशु के धैर्य बालक को (मतिमि.) विद्वान् लोग अपने बुद्धियों से (रिहति) सरकार करके (न) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं (मर्काप) दुष्टों को शांत करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापन करने के लिये (विमाने) अतन्त अन्तरिक्ष में (रथा) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूँ ॥ १६ ॥

भाष्यार्थः—सभाष्यक्ष को चाहिये कि सूर्य और चंद्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शांत करके श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आन्वह्य देवे ॥ १६ ॥

मनो न धेयिष्यस्य वत्सारः काश्यप क्रुचिः । दिद्ये देवा देवताः ।

रथराड्, माहां विष्टुष्टुः। धैवतः स्यर. ॥

किर भी उसी विषय को अगले मंत्र कहा है ॥

मनो न धेयु हृषनेषु निगमं विपुः शक्यां यनुधो ध्रुवन्ता । आ
पः शर्यामि स्तुधिनृम्णो अस्या श्रीणीलादिज्ञानमस्तांशुपते गोभिः
प्रजाः प्राह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वां मान्धवाः प्रणयन्तवनां वृष्टा-
सि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे शिखाविद्या में चतुर समापने (पपः) यह गुरुधर्म (ने) नेरा (योनिः) तुम्हें पूर्वक रिधरता का स्थान है जैसे नृ (वः) जो (तुधिनृम्णः) मय्यन्त धनयुक्त प्रजा का पातनं वाला वा (विपुः) बुद्धिमान प्रजाजन धे तुम दोनों (धेयु) जिन दृषनादि कामों में (शक्याभिः) धेगों से (निगमम्) वज्र के तुम्हें शक्तिदत्त (मनः) मन के (न) समान वेग से (द्रवन्ती) चलने हुए (शक्या) बुद्धि के साथ (भाव-
नुधः) परस्पर कामना करते हो धैर्य प्रत्येक प्रजा पुरुष (अन्ध) इन प्रजापति का (गमली) अंगुली निदर्श से (आदिशाम्) सब दिशाओं में नेत जैसे हो धैर्य शत्रुओं को (भा, अश्रीणीत) धक्के प्रकार दुःख दिया वने (मर्) मरने के तुम्हें दुःख देनी और वृद्धि चालचलन रखने वाला शत्रु (अगमृष्ट) दूर हो और नृ (प्रजाः) प्रजा का (पाहि) पातन कर (मान्धवाः) शत्रुओं का मंधने वाले वरों के साथ (देव) विद्वान् लोग (रथा) तुझे (म, ननु) आह्वय करें । हे प्रजा जने ! तुम्हें जिन से

(अनाधृष्टा) (अलि) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (अलि) हो. उस राजा को रक्षा किय करो ॥ १७ ॥

भाषार्थः—प्रजा पुरुष राज्य कर्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन को रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय की शङ्का समाधान के साथ कहें राजा के नोकर चाकर भी न्यायकर्म हों से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥१७॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिदेवता । निचृत् त्रिष्टुब्धः ।

धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । पद्भुजः स्वरः ॥
न्यायाधीश की प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्तना चाहिये यह अगले मंत्र में कहा है ।

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीच्छभि र्वास्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को
मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त भाप ! (प्रजाः) प्रजाजनों की (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) दृढ़ता के साथ (यजमानम्) यज्ञादि अच्छे कामों के करने वाले पुरुष की (अभि) (परि) (रक्षि) सर्वथा धन की वृद्धि से गुन कीजिये (मन्थी) वादविवाद के मंथन करने और (दिवा) सूर्य या (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्तने वाले भाप (मन्थिनः) लक्षसहस्रवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (अलि) हो इस कारण तुम्हारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य की वृत्ति के समान न्यायवृत्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥१८॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—न्यायधीश राजा की चाहिये कि धर्म से पन्न करने वाले संपुष्ट पुरोहित के समान प्रजा का निरंतर पालन करे ॥१८॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विदयेदेता देवताः । भुरिगार्गी
पद्भुजः छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजा और समासर्षों के काम अगले मंत्र में कहे हैं ॥

ये देवासो द्विष्पेकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अमु-
क्षितो महिनकादश स्थ ते देवासो गृजामिमं जुषयम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा में (द्विषि) विष्णु के स्वल्प में (एकदश) ग्यारह भाषांत् प्राण, अगान, उदान, ध्यान, समान, नाग, कूर्म, इन्द्र, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा (देवाः) दिव्यगुणगुण देव (स्थ) हैं

(दृष्टिमान्) दृष्टि के (दृष्टि) ज्ञान (दृष्टान्) ग्यारह कार्यों वृद्धियों, जल, स-
 ति, पवन, सञ्चार, सर्वादि, धातुमान, सञ्चर, सञ्चरार, सञ्चरान और प्रवृत्ति (स्य)
 है तथा (आवृत्तः) कामों में उदरने वाले (प्राप्तान्) ग्यारह भोज, स्वयं, जल,
 जिज्ञा, सर्वादि, बालो, हाथ, पाँद, गुण, शक्ति और मन (स्य) है (ते) वे जैसे
 करने २ कामों में वर्तमान हैं वैसे ही (देवानः) राजन्मत्ता के समानसे : आप लोग
 वाचायोग्य करने २ कामों में वर्तमान हो कर (इमम्) इम (यज्ञम्) राज और प्रजा
 सम्बन्धी व्यवहार का (हृत्पथम्) नियत किया करें ॥ १९ ॥

भाषार्थ--इस मंत्र में वाचकतुमोग्ना मन्त्रद्वार है—जैसे करने २ कामों में प्रवृत्त
 हुए धन्वन्तरिणादिकों में मद्य पदार्थ हैं वैसे राजन्मत्ताओं को चाहिये कि करने २ न्या-
 यमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोमीत्यत्र यस्मात्: काश्यप प्रविवि: । पशो देवता । त्रिभृशार्थी
 जगती छन्द: । त्रिपाद: म्यर: ॥

मद्य राजा और विद्वानों के उपदेश को रोति सगले मन्त्र में कही है ॥

उपयामगृहीतांऽस्याप्रगृणोऽस्मि श्वाप्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि
 यज्ञर्षिं विष्णुस्त्वर्षामिन्द्रियेण पाशु विष्णुस्त्वम् पाशुभि सय-
 नानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे समापने राजन् या उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप (उपया-
 मगृहीतः) विनय खादि राजगुणों या वेदादि शास्त्र बोध से युक्त (असि) हैं इस से
 (यज्ञम्) राजा और प्रजा की प्रालना कराने हारे यज्ञ की (पाहि) पालो और (स्या-
 प्रयणः) जैसे उत्तम विज्ञान युक्त कामों को पाहुँचाने वाले होते हैं वैसे (आप्रयणः)
 उत्तम विचार युक्त कामों को प्राप्त होने वाले इजिये इस से (यज्ञपतिम्) यथायत्
 न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो यह (विष्णु) जो सपस्त अच्छे गुण
 और कामों को टोक २ जानने वाला विद्वान् है वह (इन्द्रियेण) मन और धन से (त्वर्षां)
 तुम्हें (पाशु) पाले और तुम उस (विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो (सय-
 नानि) वेभ्यर्थ्य देने वाले कामों की (अभि) सय प्रकार से (पाहि) रक्षा करो ॥२०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकतुमोपमालद्वार है—राजा और विद्वानों को योग्य
 है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के बिना वि-
 द्वान् लोग सावधानों से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न
 विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के बिना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है

(अनाधृष्टा) (भसि) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (भसि) हो उस राज को किय करो ॥ १७ ॥

भाषार्थः—प्रजा पुरुष राज्य कर्म में जिस राजा का आश्रय करें वह बन करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शब्दों के साथ कहें राजा के नोकर चाकर भी न्यायकर्म हो से प्रजाजनों को रक्षा करें।

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निघृत् त्रिपुण्ड्र-
धैयतः स्यरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्रजापत्या गायत्री छन्दः । पद्भ्यः स-
न्यायाधीश की प्रजाजनों के प्रति कैसे वचनना चाहिये यह अगले मंत्र में है।

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीच्छाभि र्वास्पोषेण पजमान
संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो वा
मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त भाप । (प्रजाः)
को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) हृदय के समान-
मानम्) यज्ञादि अच्छे कामों के करने वाले पुरुष को (भसि) (परि) (त्से)
सर्वथा धन को वृद्धि से युक्त कीजिये (मन्थी) वादविवाद के मंथन करने
(दिवा) सूर्य या (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य घोरतानि गुणों
संगे वाले भाप (मन्थिनः) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (मन्थिन-
भाषार के समान (भसि) हो इस कारण तुम्हारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य की
के समान न्यायशक्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निरस्त हो
भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—न्यायाधीश राजा को सर्वथा दिवस
से यज्ञ करने वाले संपुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरंतर पालन करे ॥ १८ ॥

ये देवाग इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विद्येदेवा देवताः । मुनि-
पद्भ्यः स्यरः । धैयतः स्यरः ॥

अथ राजा और समासों के काम अगले मंत्र में वरें हैं ॥

ये देवागो दिव्येकां दशा स्थ पृथिव्यामध्येकां दशा स्थ । प्र-
दितो महिमांकां दशा स्थ ते देवागो प्रजाभिर्वा जुषयन् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (महिमा) अपनी महिमा में (दिवि) दिव्य देव-
में (दशः) दश भागों में मान, ध्यान, उदान, ध्यान, मानन, का, पू-
वत्, देवदत्त, धनदत्त और जीवामा (देवागः) दिव्यगुणयुक्त देव । १९ ॥

जन्तुम्) धूमि है (मणि) जल (पद्मम्) मारुत मर्त्यां ३ पृथिवी, जल, वा-
 युत, वायु, शक्ति, कण्डला, मन्त्र, मन्त्र, मन्त्र, मन्त्र और प्रकृति (स्य)
 वा (आशुभिः) शक्तियों में शक्ति देने वाले (पद्मम्) मन्त्र, शक्ति, वायु,
 १. शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति और मन (स्य) हैं (ते) वे जैसे
 १२ शक्तियों में वर्तमान हैं वैसे हैं (देवताः) राजसभा के सम्मानार्थ ' वायु योग
 योग शक्ति २ शक्तियों में वर्तमान हो कर (इमम्) इम (पद्मम्) राज और प्रजा
 शक्तियों का (हृदयम्) भेदन किया करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे अपने २ कामों में प्रयुक्त
 शक्तिशक्तियों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभामन्त्रों को शक्तियुक्त कि अपने २ न्या-
 यों में प्रयुक्त करें ॥ ११ ॥

उपयामपृष्टोतीमोयम्य वामारः कादन्न प्रदिः । पशो देवता । तिसृशर्मा
 जगती छन्दः । त्रिपादः म्यरः ॥

यद्य राजा और विद्वानों के उद्देश्य की रीति मन्त्र में कही है ॥

उपयाममृष्टोतीमोऽस्याप्रयुणोऽस्मि स्त्राप्रयणः । पाहि पृशं पाहि
 पृशपतिं विष्णुस्त्राभिन्द्रियेणं पागु विष्णुस्त्रवम् पाशुभि सध-
 नानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे समापने राज्य वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण वायु (उपया-
 पृष्टोतः) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्र बोध से युक्त (मसि) हैं इस से
 यज्ञम्) राजा और प्रजा की प्रालम्भा कराने हारे यज्ञ को (पाहि) पालो और (स्या-
 यणः) जैसे उत्तम विद्वान युक्त कामों को पालने वाले होते हैं वैसे (आप्रयणः)
 उत्तम विचार युक्त कामों को प्राप्त होने वाले ऋषिये इस से (यज्ञपतिम्) यथावत्
 न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो यह (विष्णु) जो सपस्त अच्छे गुण
 और कामों को ठीक २ जानने वाला विद्वान् है यह (इन्द्रियेण) मन और धन से (श्वी)
 तुशे (पातु) पाले और तुम सब (विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो (सध-
 नानि) ऐश्वर्य देने वाले कामों की (अभि) सब प्रकार से (पाहि) रक्षा करो ॥२०॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—राजा और विद्वानों की योग्य
 है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के बिना वि-
 द्वान् लोग साधवानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न
 विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के बिना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है

तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के बिना ऐश्वर्य की उन्नति और ऐश्वर्य की उन्नति के बिना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सोमः पवते इत्यस्य यत्सारः काश्यप ऋषिः । सोमो देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । पपत इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अब राजों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमं पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणंऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते
यजमानाय पवत इप ऊर्जं पवतेऽद्भ्य ओपधीभ्यः पवते धावा-
पृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एपते यो-
निर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह (सोमः) सोम्यगुण सम्पन्न राजा (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये (पवते) पवित्र होता है (अस्मै) इस (क्षत्राय) क्षत्रियधर्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (सुन्वते) समस्तविद्या के सिद्धान्त को निष्पादन (यजमानाय) और उत्तम सङ्ग करने हारे विद्वान् के लिये (पवते) निर्मल होता है (इपे) अन्न के गुण और (ऊर्जं) पराक्रम के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अद्भ्यः) जल और प्राण वा (ओपधीभ्यः) सोम आदि ओपधियों को (पवते) जानता है (धावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और पृथिवी के लिये (पवते) शुद्ध होता है (सुभूताय) अच्छे व्यवहार के लिये (पवते) बुरे कामों से बचता है । जैसे (सोमः) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी वैसा पवित्र रहे । हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन जिस (ते) आप का (एपः) यह राजधर्म (योनिः) घर है उस (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये तथा (त्या) आप को (विश्वेभ्यः) सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में चाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिये धर्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्यपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वत्तें जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है । इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से घिया आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अलिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

उपयामगृहानाम्मान्द्राय त्या पृहत्तु नगरस्य उपयाम् गृ-
हामि । यन् इन्द्र पृहत्तुम्भस्मै त्या विष्णवे त्वेष ते योनिरुत्पथे-
भ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवान् गृहामि गुजन्वागुने गृहामि ॥ २२ ॥

परार्थः—हे (इन्द्र) सेनापति ! तू (उपयामगृहीतः) भक्तों नियमों से विना को
पढ़ने वाला (यामि) है इस हेतु से (पृहत्ते) जिन के बच्चे बड़े २ कर्म हैं (यय-
स्यते) भीरु जिन को दार्प आयु है उन (इन्द्राय) परमेश्वरों वाले सेनापति के लिये
(उपयाम्यम्) प्रभावनीय स्तोत्र या विशेष मान्य विद्याय ले (त्या) तेरा (गृह्णा-
मि) ग्रहण जैसे में करना हूँ जैसे (यन्) जो (ते) तेरा (पृहत्) अत्यन्त (ययः)
जीवन है (तस्मै) उन के पालन करने के अर्थ भीरु (विष्णवे) ईश्वर ज्ञान या वे-
दज्ञान के लिये (त्या) तुम्हें (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ और (ययः) यह सेना
का अधिपति (ते) तेरा (योनिः) स्थित होने के लिये स्थान है । हे सेनापति ! (उ-
त्पथेभ्यः) प्रमाणा योग्य वेदोंक कर्मों के लिये (त्या) तुम्हें (देवेभ्यः) भीरु विद्वानों
वा दिव्यगुणों के लिये (देवाभ्यम्) उन के पालन करने वाले (त्या) तुम्हें को (य-
ज्ञस्य) राज्यपालनादि व्यवहार के (आयुषे) बढ़ाने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण क-
रता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् की योग्य है कि राज्य व्यवहार
में सेना के चीर पुढों को रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र वि-
द्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले चीर पुढों को सेनापति के काम में
युक्त करे और सेनापति तथा सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति कर के राज्य
और यज्ञ को बढ़ायें ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्याम्येत्यस्य वरुणः कारुष्य इन्द्रः । विदयेदेवा देवताः । मित्रावरु-
णाम्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्रान्भ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणा-
भ्यामित्यस्य स्वरद्व साम्यनुष्टुप् छन्दोति । गान्धारः स्वरः । इन्द्राष्ट-
हस्पतिभ्यामित्यस्य सुरिगाद्यां गायत्री छन्दः । पञ्जः स्वरः ।
इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य सुरिक् साम्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरश्च ॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा
देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे
गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रायृह-
स्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा
देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं (यज्ञस्य) अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन पर्यन्त यज्ञ की (आयुषे) उन्नति होने के लिये (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ। हे सभापते विद्वन् ! (यज्ञस्य) सत्सङ्गति करने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् पुरुष के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! (यज्ञस्य) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (आयुषे) प्राप्ति के लिये (इन्द्राग्निभ्याम्) विजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) दिव्यविद्या बोध की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे शिल्पिन् ! (यज्ञस्य) क्रिया चतुराई का (आयुषे) ज्ञान होने के लिये (इन्द्रावरुणाभ्याम्) विजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) उनका विद्या जानने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे अभ्यापक ! (यज्ञस्य) पढ़ने पढ़ाने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्रावृहस्पतिभ्याम्) राजा और शस्त्रवक्ताओं के अर्थ (देवाव्यम्) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे विद्वन् ! (यज्ञस्य) विज्ञान की (आयुषे) बढ़ती के लिये (इन्द्राविष्णुभ्याम्) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (देवाव्यम्) ब्रह्मज्ञानी को कृत करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥

भाषार्थः—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त प्रह्लादचर्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता करता रहे ॥ २३ ॥

मूर्धानमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्देवेया देयताः । आर्षाप्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस के अनन्तर विद्वानों का कर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

मूर्धानन्दिषो अंरतिमृधिन्वा वैश्वानरमृत आज्ञातमग्निम् ।

ऋषिः, सम्राजमतिथिं जनानाम्नासन्नापाद्यं जनयन्त देवाः ॥२४॥

पदार्थः—जैसे (देवाः) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से (विद्) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्धानम्) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के गुणों को (अर-
तिम्) प्राप्त होने वाले (ऋते) सत्यमार्ग में (आज्ञातम्) सत्यव्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध
(वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुंचाने और (जनानाम्) सतपुत्रों के (अ-
तिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (आसन्) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख
में (पात्रम्) समस्त शिल्प व्यवहार की रक्षा करने (ऋयिम्) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त
होने वाले (अग्निम्) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (सम्राजम्) एकचक्राभ्य करने
वाले के समान (आ) अच्छे प्रकार से (जनयन्त) प्रकाशित करते हैं जैसे सब मनु-
ष्यों को करना योग्य है ॥ २४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जैसे सतपुत्र धनुर्वेद के जानने वाले
परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कहीं हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्रविद्या
में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जाता करते हैं वैसे ही अन्य सब म-
नुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४ ॥

उपयामगृहोत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वैश्वानरो देवता । यानुष्यनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः । ध्रुवोऽस्य ध्रुवमित्यस्य च

विराडायां बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽचु-
तानामचपुतक्षित्तम एव ते योनिर्वैश्वानरार्षं त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण
मनंसा वाधा सोममवर्नयामि । अर्षा न इन्द्र इद्विशोऽसपुःसनाः
समनमुस्करत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (उपयामगृहोतः) शास्त्रमात्र नियमों से स्वोक्तार किये
जाते (असि) हैं ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (अग्नि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन भाग
में भूमि स्थिर हो रही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रु-

वतमाः) अत्यन्त स्थिर (अस्ति) हैं तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशियन बसाने वाले हैं (पयः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास स्थापन के समान है (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्यमार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले (त्वा) आप को (ध्रुयम्) निम्नप पूर्वक जैसे हो वैसे (अपनयामि) स्वीकार करता हूँ (अथ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सद्य दुःख के त्रिनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजा जनों को (भसपज्ञाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के सुख चाहने वाले (इत्) हो (करन्) कीजिये ॥ २५ ॥

भाषार्थः—जो नित्य पद्यों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीकर ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराद्वाह्यो गृहतां छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है ॥

यस्मै द्रुप्तस्कन्दति यस्मै अथंशुर्वाचं च्युतो धिपणयोऽरुपस्थात् । आध्वर्यां परिं वा यः पवित्रात्तन्ते जुहोमि मनसा वपद्रुतुधे स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे यज्ञपते । (य) जो (ते) तेरा (द्रुप्त) यज्ञ के पदार्थों का समूह (स्कन्दति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे यज्ञ से युक्त (प्रायच्युतः) मेघ मण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिपणयोः) प्रकाश भूमि के (पवित्रात्) पवित्र (उपस्थात्) गोत्र के समान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अध्वर्यां) यज्ञ करने वालों से । वा) अथवा (परि) सत्य से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को मैं (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यपाणों और (मनसा) मन से (वपद्रुतम्) किये हुए सहस्र के समान (जुहोमि) देता हूँ अर्थात् उस के फलदायक होने से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुँचाता हूँ जिस लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने द्वारा तू (देवानाम्) विद्वानों के लिये । उक्तमगम्) ऊँचों श्रेणों का प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य के समान (भवि) है इस से तुझ को सुख प्राप्त होगा है ॥ २६ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—होता आदि विद्वान् लोग अत्यंत हृदय सामग्री से यह करते हुए जिन सुगन्धि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों को पवित्र कर उस के साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । प्राणायेत्यस्य चासुर्यंनुष्टुप्, उदाना-
येत्यस्यासुर्यंष्णिक्, व्यानायेत्यवाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामि-
त्यासुरी गायत्री, श्रोत्रोपमेत्यस्यासुर्यंनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्यं-
ष्णिक् उन्दासि । अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्जः उष्णिज
ऋषभश्च स्वराः ॥

फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय आगे मन्त्र में कहा है ॥

प्राणायं मे षर्चोदा षर्चसे पवस्व व्यानायं मे षर्चोदा षर्चसे पवस्वो-
दानायं मे षर्चोदा षर्चसे पवस्व वाचे मे षर्चोदा षर्चसे पवस्व
क्रतूदक्षाभ्यां मे षर्चोदा षर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे षर्चोदा षर्चसे
पवस्व चक्षुर्भ्याम्मे षर्चोदसौ षर्चसे पवेधाम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (षर्चोदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ कर्म करने वाले । आप (मे) मेरे (प्राणाय) हृदयस्थजीवन के हेतु प्राणपायु और (षर्चसे) वेद विद्या के प्रकार के लिये (पवस्व) पवित्रता से वत्तं, हे (षर्चोदाः) ज्ञान दीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप (मे) मेरे (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले प-
वन और (षर्चसे) अन्न आदि पदार्थों के लिये (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होयें हे (षर्चोदाः) विद्या बल देने वाले । आप (मे) (उदानाय) भास से ऊपर को मंगने वाले उदान संज्ञक पवन और (षर्चसे) पराक्रम के लिये (पवस्व) ज्ञान दीप्तिये । हे (षर्चोदाः) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणी और (षर्चसे) प्रगल्भता के लिये (पवस्व) प्रवृत्त हूजिये (षर्चोदाः) विज्ञान देने वाले आप (मे) मेरे (क्रतूदक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (षर्चसे) अच्छे बोध के लिये (पवस्व) शिक्षा कीजिये । हे (षर्चोदाः) शब्द ज्ञान के देने वाले यज्ञपति आप (मे) मेरे (श्रोत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये (ष-
र्चसे) शब्दों के अर्थ और सम्यग्ध का (पवस्व) उपदेश करें । हे (षर्चोदसौ) सूर्य

और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (मे) मेरे (चक्षुर्भ्याम्) नेत्रों के लिये (वर्चसे) शुद्ध सिद्धान्त के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त हूँजिये ॥२७॥

भाषार्थः—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठन पाठन रूप यज्ञ कर्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ २७ ॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवाऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मो वृहतो छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पव-
स्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चो-
दसौ वर्चसे पवेधाम् ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्म विद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (आत्मने) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदाः) उक्त विद्या देने वाले विद्वान् ! आप (मे) मेरे (औजसे) आत्मबल होने के लिये (वर्चसे) योग बल को (पवस्व) जनाइये । हे (वर्चोदाः) बल देने वाले ! (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले औषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदसौ) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वाले । तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वर्चसे) सर्वगुण प्रकाश करने को (पवेधाम्) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

भाषार्थः—योग विद्या के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के बिना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इस के बिना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

कोसोत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्चोपंक्तिरछन्दः । भूर्भुवस्व-

तिस्य भुरिक् साम्नी पंक्तिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

समापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या २ कहे यहाँ अगले मन्त्र में कहा है ॥

कोऽसि कतसोऽसि कस्यांसि को नामांसि । यस्य ते नामाम-
न्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः
स्वाः सुधीरो यैरैः सुपोषः पौषैः ॥ २९ ॥

पदार्थः—सभा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (कः) कौन (असि) है। (कतमः) बहुतों के बीच कौनसा (असि) है (कस्य) किसका (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्य) जिस (ते) तेरी (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (त्वा) तुझ को (सोमेन) धन आदि पदार्थों से (अतीवृषामः) वृत्त करें यह कह उन से समापति कहता है कि (भूः) भूमि (भुषः) अन्तरिक्ष और (स्यः) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्म सुख की कामना करने वाला मैं तुम (प्रजामिः) प्रजालोगों के साथ (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला (धारेः) तुम धारों से (सुधीरः) श्रेष्ठ धीर युक्त (पोषैः) पुष्टिकारक पदार्थों से (सुपोषः) अच्छा पुष्ट (स्याम्) होऊँ। अर्थात् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २१ ॥

भाषार्थः—समापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा कर के उन,सभों को उन्नति देवे और अतिप्रबल धीरों को सेना में रखे जिस से कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ॥ २१ ॥

उपयाम शृङ्गातोसोत्स्य देवश्रवा ऋचिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप् सृतीयचतुर्थपञ्चमानां साम्नी गायत्री षष्ठ्यासुर्य्यनुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्षानुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप् एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप् त्रयोदश्यासुर्य्यणिक् छन्दासि, अत्र गायत्र्यापह्जः, अनुष्टुभो गान्धारः, पङ्क्तेः पञ्चमः, उणिजत्रापमदच स्वराः ॥

फिर भी विषयान्तर से यही उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामशृङ्गातोऽसि मध्वं त्वापयामशृङ्गातोऽसि माध्वाय त्वापयामशृङ्गातोऽसि शुक्राय त्वापयामशृङ्गातोऽसि शुच्यं त्वापयामशृङ्गातोऽसि नभसे त्वापयामशृङ्गातोऽसि नभस्राय त्वापयामशृङ्गातोऽसि त्वापयामशृङ्गातोऽस्यूर्जं त्वापयामशृङ्गातोऽसि सहसे त्वापयामशृङ्गातोऽसि सहस्राय त्वापयामशृङ्गातोऽसि तपसे त्वापयामशृङ्गातोऽसि तपस्राय त्वापयामशृङ्गातोऽस्यधे हसस्पृतये त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से षाप (उपयामगृहीतः) अच्छे २ राज्य प्रकल्प के नियमों से स्वीकार किये हुए (अति) हैं इस से (त्वा) षाप को (मध्ये) चैत्रमास को समा के लिये अर्धान् चैत्रमास प्रतिष्ठा हुआ कराने वाले व्यवहार को रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं समापति कहता है कि हे समासदो तथा प्रजा या सेना जनो ! तुम में से एक २ (उपयामगृहीतः) अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (अति) है इसलिये तुम को चैत्रमास के शुभ के लिये स्वीकार करता हूँ इस प्रकार वारहों महीनों के यथोक्त शुभ के लिये राजा, राजसभासद, प्रजाजन और समाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

भाषार्थः—समाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा को आज्ञा ले अनुकूल व्यवहारों में यत्ना करें ॥ ३० ॥
इन्द्राग्नीत्यस्य पिश्वामिन्न ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षं त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वराः ॥
अथ राज्य के व्यवहार से नियत राज कर्म में प्रयुक्त हुए राजा और प्रजा के पुण्यों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह भगले मन्त्र में कहा है ।

इन्द्राग्नी आगतं सुतं गोभिर्धन्वां वरेण्यम् । अस्प पातं धिः
योपिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्यैप ते योनिरिन्द्राग्नि-
भ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे इन्द्राग्नी सूर्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान समापति और समासद ! तुम दोनों (आगतम्) आगो मिलकर (गोभिः) अच्छों शिक्षा युक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नमः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (इपिता) पढ़ाये हुए या हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख को (पातम्) रक्षा करो । ये राजा और सभासद कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तु (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—अकेला पुण्य यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुण्यों का सत्कार कर के राज कार्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

आघ्राये अग्निमित्यस्य प्रिशोक ऋषिः । विद्वेदेवा देवताः । आघस्यापि गा-
यत्री छन्दः । पद्भजः स्वरः । उपेत्यस्याच्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मंत्र में कहा है ॥

आघ्राये अग्निमिन्धृते स्नृणन्ति यर्हिंरानुषक् । येपामिन्द्रोष्वा
सखा । उपग्रामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यान्त्यैपत्ने यानिरग्नीन्द्राभ्यां-
न्त्वा ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(ये) जो वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद् (अग्निम्) विद्युन् आदि
अग्नि (घ) हीं को (इन्धने) प्रकाशित करते और (शानुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ
के यथोक्त क्रम से (यर्हिः) अन्तरिक्ष का (आ) (स्नृणन्ति) आच्छादन करते हैं
तथा (येपाम्) जिनका (युषा) सर्षाङ्ग पुष्ट सर्षाङ्ग सुन्दर सर्व विद्या विचक्षण त-
रण अवस्था और (इन्द्रः) सकलैदवर्य्य युक्त सभापति (सखा) मित्र है (अग्नीन्द्रा-
भ्याम्) उन अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपग्रामगृहीतः) प्र-
जाधर्म से युक्त तू ग्रहण किया गया (अस्ति) है जिस (ते) तेरा (एषः) न्याययुक्त
सिद्धान्त (योनिः) घर के सदरा है । उस (त्या) तुझ को प्राप्त हुए हम लोग (अग्नी-
न्द्राभ्याम्) उक्त महा पदार्थों के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करते हैं ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—राजधर्म में सब काम सभा के अधीन होने से विचारसभाओं में प्रवृ-
त्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद् मिल कर अपने विचार से जिस
अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्तीय रफ्तें ॥३२॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वेदेवा देवताः । आघस्यापि गायत्री छन्दः ।

पद्भजः स्वरः । उपग्रामइत्यस्यार्चिं बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मंत्र में कहा है ॥

ओमांसश्चर्षणीधृतो विद्वेदेवाम् आगत । दाइवा२ सों दा-
शुपः सुभम् । उपग्रामगृहीतोऽसि विद्वेदेभ्यस्तथा देवेभ्यं पुषत्ने पो-
निर्विद्वेदेभ्यस्तथा देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(चर्षणीधृतः) मनुष्यों की पुष्टि संतुष्टि करने और (ओमासः) उत्तम २
गुणों से रक्षा करने हारो, हे (विद्वेदे) समस्त (देवासः) विद्वानो ! तुम (दाइवासः)
उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए (दाशुपः) दान करने वाले उत्तम जन का (सुभम्) जो
बच्चे कामों के करने से ऐदवर्य्य को प्राप्त होने वाला है उस के (आ, गत) सम्मुख
धामो । हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालकतू (उपग्रामगृहीतः) पढ़ाने के

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से आप (उपयामगृहीतः) अच्छे २ राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को (मध्वे) चैत्रमास की सभा के लिये अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा या सेना जनो ! तुम में से एक २ (उपयामगृहीतः) अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिये तुम को चैत्रमास के सुख के लिये स्वीकार करता हूँ जो प्रकार वारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

भाषार्थः—समाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा ले अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षोऽत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वः ॥ यय राज्य के व्यवहार से नियत राज कर्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के

प्रति कोई सत्कार से कहता है यह भगले मन्त्र में कहा है ।

इन्द्राग्नी आगतम् । सुतं गीर्भिर्गन्धं धरेण्यम् । अस्य पातं धियेपिता । उपयामगृहीतोऽसोऽग्निभ्यां त्वैव ते यांनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे इन्द्राग्नी सूर्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद् ! तुम दोनों (आगतम्) आगे मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षा युक्त वाणियों से हमारे लिये (धरेण्यम्) श्रेष्ठ (नमः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (श्रिता) पढ़ाये हुए या हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख को (पातम्) रक्षा करो । ये राजा और सभासद् कहने हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग ऐसा ही मानते हैं (ययः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता हम कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सन्तार कर के राज काव्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सन्तार करें ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ाई और प-
रम विद्वान् पंडित लोग उनकी परीक्षा भी प्रत्येक महाने में किया करें' इस परीक्षा से
जो तौरणबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया
करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विरथामित्र क्रयिः । प्रजापतिर्वेधता । निचूदोर्नीचिष्ठुर्छन्दः ।

धैर्यतः स्वयः । उपयाम इत्यन्वाप्युं प्लिक् छन्दः । क्रयमः स्वयः ॥

अप राजा पढ़ाने आदि व्यवहार को रक्षा को किस प्रकार से कर यह
अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाँटि सोमं यथां शारथ्यानि अरिषियः सुगस्य ।
तथ प्रथीती तथं शूर शर्मन्नाविषासन्ति क्वयः सुयज्ञाः । उप-
ग्रामर्होतोऽसीन्द्राय तथा मरुत्वत एव ते योजिरिन्द्राय तथा मरु-
त्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—दे (इन्द्र) सब विद्याओं के दूर करने वाले सब मन्त्रों से युक्त तेजस्वी
(मरुत्वः) अर्थात्नीच धर्मयुक्त प्रजापालने हारे समन्ती राजर्षि । मरु (इन्द्र) इस
संसार में (यथा) जैसे (शारथ्यानि) अपने हाथों में कें परिश्रम से मित्रक क्रिये
दुष्ट व्यवहार में (सुगस्य) अथवाय क्रिये हुए विद्या रूप को (अरिषिय) भी दूरे हों
धैर्य (यामि) समस्त आर्यो लुप्त होकर यों कें दूर करके जाने सम्मानजनक या यज्ञ
को (पाँटि) पाला । इ (शूर) धर्म विद्यार्थियों को दूर देने वाला । तथ (सुयज्ञ)
(शर्मन्) राज्य धर्म में (सुयज्ञ) अथवा यज्ञ के दूर करने क्रिये को के सम्मान (क-
वयः) बुद्धिमान लोग (तथ) सुयज्ञी । अथवा (मरुत्वत) अथवा मरुत्वत । अ विषय मित)
संबन्ध करने हैं । इ शूर । जिस वाक्य युक्त (उपयाम) इन्द्र । इन्द्र मन्त्रों विद्या से
प्राप्त करके दूरे हों (यामि) हा इन्द्र को (तथ) इन्द्र को (इन्द्र) इन्द्र को (मरुत्वत)
मरुत्वत के लिये हम लोग आहत हैं । इन्द्र को (क्वयः) यज्ञ के लिये को (यामि)
मरुत्वत के लिये है । इन्द्र को (तथ) इन्द्र को (इन्द्र) इन्द्र को (मरुत्वत)
(शारथ्यानि) मरुत्वत वाक्य के लिये मरुत्वत हैं । इन्द्रः ।

भाषार्थः—सब विद्याओं को उचित है कि इन्द्र को दूर करने वाले सब मन्त्रों से युक्त तेजस्वी
जो आहत हो जग को कभी कभी यज्ञ के लिये इन्द्र को (उपयाम) इन्द्र । इन्द्र मन्त्रों विद्या से
प्राप्त करके दूरे हों (यामि) हा इन्द्र को (तथ) इन्द्र को (इन्द्र) इन्द्र को (मरुत्वत)
मरुत्वत के लिये हम लोग आहत हैं । इन्द्र को (क्वयः) यज्ञ के लिये को (यामि)
मरुत्वत के लिये है । इन्द्र को (तथ) इन्द्र को (इन्द्र) इन्द्र को (मरुत्वत)

नियमों से ग्रहण क्रिया हुआ (अस्ति) है इसलिये (त्वा) तुझे (विद्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये अर्थात् उन को सेवा करने को आज्ञा देता हूँ जिसलिये (ते) तेरा (एपः) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होता (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुझे (विद्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें राजा और धनी आदि लोगों के घन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् या विदुषी स्त्रियों को घन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उन की सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र या आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥३३॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

आद्यस्यापीं गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः । उपयाम इत्यस्य

निचृदार्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ प्रति दिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

विश्वे देवास आगत शृणुता मं इमं हर्षम् । एदं बर्हिर्निर्षीदत ।

उपयामगृहीतांऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एप ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादितगुणकर्मस्वभाववाले (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप (आगत) आइये और हम लोगों के दिये हुए (इमम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आ निर्षीदत) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिये (मे) मेरी (हर्षम्) इस स्तुतियुक्तवाणी को (शृणुता) सुनिये । गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति बड़े कि हे पुत्र ! जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) विद्वानों का ग्रहण क्रिया हुआ (अस्ति) है इस से हम (त्वा) तुझे (विद्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपे जिस लिये (एपः) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिये (त्वा) तुझे (विद्वेभ्यः) (देवेभ्यः) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पंडित लोग उनको परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तौष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विरषामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्वंशता । निचृदापीत्रिण्डुच्छन्वः ।

धैर्यतः स्वरः । उपयाम इत्यस्याप्युष्णिक् छन्वः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ राजा पढ़ाने आदि व्यवहार को रक्षा को किस प्रकार से करे यह

आले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्य्यते अपिषः सुतस्य ।

तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाधिवासन्ति क्वयः सुयज्ञाः । उप-
यामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एप ते योनिरिन्द्राय त्वा मरु-
त्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब विद्वान् के दूर करने वाले सब सगति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्मयुक्त प्रजा पालने वाले सभापति राजन् । आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्य्यते) अपने हाथ पौरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किये हुए विद्या रस को (अपिषः) पी चुके हो वैसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य्य और सुख करने वाले पठनपाठन रूपा यज्ञ का (पाहि) पाला । हे (शूर) धर्म विरोधियों को दण्ड देने वाले (तव) तुम्हारे (शर्मन्) राज्य घर में (सुयज्ञा) अच्छे पढ़ाने पढ़ाने वाले विद्वानों के समान (क्वयः) बुद्धिमान् लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीता) उत्तमनोति का (आधिवासन्ति) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम (उपयामगृहीतः) प्रजापालनादि नियमों से स्वांकार किये हुए (असि) हो इस से (त्वा) इन्द्राय परमश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा सम्यन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो (ते) तेरा (एपः) यह विद्या का प्रचार (योनिः) घर के समान है इस से (त्वा) तुम को (इन्द्राय) परमश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा पालन सम्यन्ध के लिये मानते हैं ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों को न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस को कभी उल्लंघन न करें वैसे ये राजसभा के सभासद् भी येदृश विद्वानों की आज्ञा को उल्लंघन न करें जा सब गुणों से उत्तम हो उसों को सभापति करें और यह सभापति भी उत्तमनोति से समस्त राज्य के प्रयत्नों को चलाये ॥ ३५ ॥

महत्पन्तमित्तरय विद्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराट्प्राचीन्निष्ठुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य द्वितीय भागस्यार्थी तृतीयस्य सामान्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा भीर प्रजा को क्या करना चाहिये यह उपदेश

अगले मन्त्र में किया है ॥

मरुत्वन्तं घृषभं वावृधानमकेश्वारिन्द्रिव्यथे शासमिन्द्रम् । वि-
द्व्यासाहमवसे नूतनायोमथसंहोदाग्निह तथं हुवेम । उपयामगृही-
तोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वन्त एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वन्ते । उ-
पयामगृहीतोऽसि मरुत्तान्तवौजसे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(कथयः) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग (नूतनाय) नवीन २ (अवसे)
रक्षा आदि गुणों के लिये (महत्पन्तम्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (घृषभम्) सब से उत्तम
(वावृधानम्) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त (अकेश्वरिम्) समस्त
धर्म विरोधी दुष्टों का निवारण करने वाले (विद्वयम्) शुद्ध (विद्वयासाहम्) सर्व
सहनशील (उग्रम्) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (सहोदाम्) सहायता (शासम्) और सब
को शिक्षा देने वाल (तम्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रम्) परमेश्वर्य्य युक्त सभापति को निम्न-
लिखित प्रकार से (हुवेम) स्वीकार करें । हे मुख्य सभासद् राजन् ! तू जिस कारण
(उपयामगृहीतः) समस्त बड़े २ और छोटे २ नियमों की सामग्री से सहित (असि)
है इस से (त्वा) तुझ को (मरुत्वन्ते) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (इन्द्राय) परमेश्वर्य्यवान्
सभापति होने के लिये स्वीकार करते हैं (एषः) यह सभा में न्याय करने का काम
(ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इस से (त्वा) तुझे (मरुत्वन्ते) उत्तम प्रजा से
युक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिये स्वीकार करते हैं
और जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त
(असि) है इस से (मरुत्ताम्) प्रजाजनों का (वोजसे) बल बढ़ाने के लिये (त्वा)
तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कथयः) इस पद की अनुवृत्ति जाती है
प्रजा जनों को याग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयु-
क्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के
सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्यन्याययुक्त धर्म कार्य से प्रजा के उ-
त्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

सजोपेत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भाषस्य निचृदार्यान्निष्ठुप् ।

उपयामेत्यस्य प्राजापत्यान्निष्ठुप् छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥

अथ सेनापति का काम अगले मंत्र में कहा है ॥

सजोषा इन्द्र सर्गषो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँ २॥ रघु मृषो नुदस्थाथा भंगं कृणुहि विश्वतो नः । उ
पग्रामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वंत एपतं योनिरिन्द्राय त्वा म-
रुत्वन्ते ॥ ३७ ॥

पदार्थः—इन्द्र कहता है कि हे (इन्द्र) सब सुपों के धारण करने हारे (शूर) शत्रुओं के नश करने में निर्भय । जिस से तू (उपग्रामगृहीतः) सेना के अच्छे २ नियमों से श्वाकार किया हुआ (भूमि) है इस से (मरुत्वन्ते) जिस में प्रशंसनीय वायु की शक्त विद्या है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूँ कि (ते) तेरा (एपः) यह सेनाधिकार (योनिः) एत तुझ दायक है इस से (मरुत्वन्ते) (इन्द्राय) उक्त युद्ध के लिये पक्ष करते हुए तुझ को मैं श्वाकार करता हूँ और (सजोषाः) सब से समान प्राति करने वाला (सगणः) अपने मित्र जनों के सहित तू (मरुद्भिः) जैसे पवन के साथ (वृत्रहा) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्य (सोमम्) समस्त पदार्थों के रस को लींचता है ऐसे सब पदार्थों के रस को (पिब) सेवन कर और इस से (विद्वान्) ज्ञानयुक्त हुआ तू (शत्रूँ) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्टजनों का (जहि) विनाश कर (भय) इस के अनन्तर (मृषः) जहाँ दुष्टजन दूसरे के सुख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (अपनुदस्व) दूर कर और (नः) हम लोगों को (विद्वतः) सब जगह से (अभयम्) भय रहित (वृणुहि) कर ॥ ३७ ॥

भाष्यार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र या शत्रु को रक्षा करता है ऐसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और विजुलो के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है ऐसे राजा की चाहिये कि युद्ध की सामग्रों जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धर्म्मार्त्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्व्यथा । निष्पुदायां त्रिष्टुप् । उप-

य.मेत्वस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ समध्यक्ष के लिये अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मरुत्वोँ २॥ इन्द्र वृषभो रणांश्च पिब सोमेमनुष्यधम्मदां ।

आसिञ्चस्व जठरे मद्धं ऊर्मिं त्वं राजासि प्रतिपरमुतानाम् ।

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वंत एव ते योनिरिन्द्राय त्वा
मरुत्वन्ते ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के जीतने वाले समापते । जिस कारण आप (उप-
यामगृहीतः) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (अस्ति) हो इसलिये हम लोग तुम को
(मरुत्वते) जिस में अच्छे २ अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य
को प्राप्त करने वाले युद्ध के लिये युक्त करते हैं जिससे (ते) आप का (एवः) यह
युद्ध परमेश्वर्य्य का (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुम को (मरुत्वते) (इ-
न्द्राय) उस युद्ध के लिये कहते हैं कि आप (प्रतिपत्) प्रत्येक बड़े २ विचार के कामों
में (राजा) प्रकाशमान (मरुत्वान्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (वृषभः) अत्यन्त
श्रेष्ठ ही इस से (रणाय) युद्ध और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) प्रत्येक
भोजन में (सोमम्) सोमलतादि पुष्ट करने वाली ओषधियों के रस को (पिय) पीओ
(सुतागाम्) उत्तम संस्कारों से बनाये हुए अन्नों के (मध्वः) मधुर रस को
(ऊर्मिम्) लहरी को अपने (जठरे) उदर में (आसिऽचस्व) अच्छे प्रकार स्थापन
करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को
चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं
को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । प्रजा सेनापतिदेवता । आद्यस्य भुरिक् पतिरुच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । उपयामेत्यस्य सान्नां त्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ इन्द्राय अपने गुणों का उपदेश अगले मंत्र में करता है ॥

महो२॥ इन्द्रो नृवदा चर्षणीप्रा वृत द्विषर्ही अग्निः सहो-
भिः । अस्मद्रथगवावृषे धीर्य्योरुः पृथुः सुकृतः कर्तुमिभूत् । उ-
पयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैव ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे मन्थन जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) योगाभ्यास
से ग्रहण करने के योग्य (अस्ति) हैं इस से (महेन्द्राय) अत्यन्त उत्तम पदार्थ्य्य के
लिये हम लोग (त्वा) आप ही उपरतना हनारे लिये (योनिः) कल्याण का कारण
है इस से (त्वा) तुम को (महेन्द्राय) परमेश्वर्य्य पाने के लिये हम भोजन करते हैं
जो (महान्) सर्वोत्तम अत्यन्तपूज्य (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (था) अच्छे प्रकार
(चर्षणीप्राः) सब मनुष्यों को तुलों से परिपूर्ण करने (द्विषर्हीः) व्यवहार और प-

रमार्य के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त (असद्यक्) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जानने वाले (अमिनः) अतुल पराक्रम युक्त (कर्त्तृभिः) अच्छे कर्म करने वाले जीवों ने (सुकृतः) अच्छे कर्म करने वाले के समान प्रहण क्रिये हुए और (इन्द्रः) अत्यन्त उग्ररूप पेटपर्ण वाले आप हैं उन्हीं का आश्रम क्रिये हुए समस्त हम लोग (साहोभिः) अच्छे २ बलों के साथ (धौर्याय) परम उत्तम बल का प्राप्ति के लिये (वावृषे) दृढ़ उत्साह युक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता । जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आधय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३१ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य परस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भार्या गायत्री छन्दः । उपमा-

मेखस्य पिराडार्पा गायत्री छन्दः । पदज्ञः एषरः ॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मूहौ २॥ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ २॥ इव । स्तोमै-
ध्रत्सस्य वावृषे । उपग्रामर्गृहीतोऽस्ति महेंद्राय ह्येष ते पोनिर्म-
हेन्द्राय तथा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे अनादिदिग्द योगिन् सर्वज्ञापी ईश्वर । जो आप योगियों के (उपमा-मण्डितः) यमनियमादि योग के शक्तों से रचोकार क्रिये हुए (भक्ति) हैं इस कारण हम लोग (तथा) आप को (महेंद्राय) योग से प्रकट होने वाले अच्छे ऐश्वर्य के लिये आश्रय करते हैं (ते) आपका (एषः) यह योग हमारे करवाण का (योनिः) निमित्त है इसलिये (तथा) आपका (महेंद्राय) मोक्ष कराने वाले ऐश्वर्य के लिये ध्यान करते हैं (यः) जो (महान्) बड़े २ गुण कर्म और स्वभाव वाला (वृष्टिमान्) वर्षने वाले (पर्जन्यश्च) मेघ के तुल्य (परकण) स्तुति वृत्तों का (स्तोमैः) स्तुतियों से (ओजसा) अमन्तव्य के साथ प्रशिक्षित होगा है उत ईश्वर की आज्ञा कर योगों (वावृषे) परब्रह्म उन्नति का प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

भाषार्थः—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने उत के समूह से सब पदार्थों को नृत करवा हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करने के समय में योगाभ्यास करने वाले योगी परब्रह्म के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥

उदुत्वमित्यस्य प्रस्फण्य ऋषिः । सूर्यो देवता । सुरिणापी नायत्री छन्दः ।
पदजः स्वरः ॥

इस के पीछे सूरज की उपमा से इंद्रवर के गुणों का उपदेश भगले मंत्र में किया है ॥
उदु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति क्रेतवः । दृशो विश्वापु सूर्यं १-

स्वाहा ॥ ४१ ॥
पदार्थः—जैसे फिरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (दृशे) देखने

जानने के लिये (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुये सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्वम्) उस (सूर्यम्) (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य को (उ) तर्क के साथ (उत्) (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं जैसे विद्वान् के (केशवः) प्रष्टष्ट ज्ञान और (त्याहा) सत्य वाणी का उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—जैसे प्राणियों के लिये सूर्य के फिरण उसको प्रकाशित कराते हैं जैसे मनुष्य को अनेक विद्यायुक्त बुद्धियों इंद्रवर का प्रकाश करा देता है ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । सुरिणापी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी जैसे ही इंद्रवर के गुणों का उपदेश भगले मंत्र में किया है ॥
चित्रन्देवानामुदंशादनीकं चक्षुर्मिषत्रस्य चर्दणस्थाने । आ-

प्रा चावापृथिनी अन्तरिक्षे सूर्ये आत्मा जगतास्तृप्यंदध
स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम की मति उचित है कि जो (सूर्यः) सविता (स्वर्ग) सत्य क्रिया से (देवताम्) नेत्र आदि के समान विद्वानों (मिषत्र) मित्र वा प्राण (चरणम्) अं छ पुत्र वा उदान और (मन्त्रे) कृति के (चित्रम्) बहुरूप (मनोवम्) चित्रवत्तर शैला के मुख्य प्रतिबिम्ब (आत्मा) अन्तः के (चित्रम्) बहुरूप (मनोवम्) (आत्मा) अन्तः प्रकाश प्राप्त होता और (जगताः) जड़म प्राणों और (तरुण्यः) हवावर गीतारों पदार्थों वा (आत्मा) आत्मा के तुल्य हो कर (प्राचापृथिवी) आकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्यः) आकाश दोनो जगत् के समस्त परमाणु हैं जगत् का उदर तथा निरंतर दिया करो ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—जिन कारण पर इंद्रवर आकाश के समस्त सब जगत् जगत् सूर्य के तुल्य बहुरूप प्रकाशमान और आकाश जगत् के अन्तः सब का अन्तर्धानी है पर जो

सब जाँचों के लिये सत्य और असत्य को घोष कराने वाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

अग्ने नयेत्यस्यागिरस ऋषिः । अन्तर्यामिं जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्षीं त्रिष्टुप्
छन्दः । घैषतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर का प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है ॥

अग्ने नयं सुपथां रागे अस्मान्निश्चानि देव वयुनानि विद्या-
न् । पुण्योऽयुस्मज्जुहुराणमेतो भूयिष्ठान्तं नम उक्ति विधम स्वा
हा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करने वाले परमेश्वर आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्मयोगयुक्त मार्ग से (रागे) योग का सिद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोगों को (निश्चानि) समस्त (वयुनानि) योग के विद्वानों को (नय) पहुँचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवणी या घेदवाणी से (ते) आप को (भूयिष्ठम्) बहुत (नमउक्तिम्) नमस्कार पूर्वक स्तुति को (विधम) करें । हे (देव) योगविद्या को देने वाले ईश्वर (विद्वान्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप । श्रुता कर के (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलता रूप (एतः) दुष्ट क्रमों को (अस्मत्) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (यु-योषि) दूर कर लीजिये ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के बिना योग सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम भक्ति युक्त होकर योग बल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

अयमित्यस्यागिरस ऋषिः । प्रजापतिदेवता । भुरिगार्षीं त्रिष्टुष्टन्दः । घैषतः स्वरः ॥

अथ संप्रान में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार मुद करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में दिया है ॥

अगष्टो अग्निर्वरिवसृणोत्यगममृषंः पुर एतु प्रसिन्दन् । अग्ने
वाजांजगन्तु वाजंमानावृगश् दार्ष्टंजगन्तु जर्ह्येपाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) वैश्वदेव विद्या का प्रकाश करने वाला वैश्व (स्वाहा) वैश्वक और मुद का शिक्षायुक्त वाणी से (वाजम तो) मुद में (नः) हम लोगों को (वरिवः) सुखकारक संवन (एणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा मुद

करने वाला मुख्य घोर (प्रमिन्दन्) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (मृघः) संग्राम के (पुरः) आगे (पतु) चले (अयम्) यह तीसरा घोर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (वाजान्) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त घोरों को (जयतु) उत्साह युक्त करता रहे (अयम्) यह चौथा घोर (जहर्षाणः) निरन्तर आनन्द युक्त होकर (शत्रून्) धर्म विरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जीते ॥ ४४ ॥

भा.वार्थः—जब युद्धकर्म में चार घोर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब घोरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

रूपेनेत्यस्याङ्घ्रिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृज्जगतिच्छन्दः । निपादः स्वयः ॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

रूपेण वा रूपमभ्यागान्तुथो वा विश्ववेदा विभजतु । श्रुतस्य
पथा प्रेतं चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य वृणुन्नरिंजं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं (रूपेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (वः) तुम्हारे (रूपम्) स्वरूप को (अभि) (वा) (अगाम्) प्राप्त होता हूँ, वैसे (विश्ववेदाः) सब को जानने वाले परमात्मा के समान समापति (वः) तुम लोगों को (वि) (भजतु) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे। हे समापते ! (तु-
अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य के
) सत्य के (पथा) मार्ग से (अन्तर्दक्षिम्) अविनाशी राजनीति वा
(वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सद-
स्यैः) के साथ सत्य मार्ग से (प्र) (यतस्व) विशेष २ यत्न करो तथा हे
) सुवर्ण के दान करने वाले राज पुरुषो ! तुम लोग धर्म को (वात)
प्राप्त हों ॥ ४५ ॥

:-समापति राजा को चाहिये कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुढ-
रपखे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर ग्याय करे। धार्मिक स-
त्तान सभा होनी चाहिये उन में से एक राजप्रताप जिस के आधीन राज्य
चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें, दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का
प्रिधि वद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म-

ना ज्ञिय मे घ्नन् नी उन्नतिं शीर शधर्मं को हाणि निरन्तर की जाय । मय लोगों उन्नति है कि धरने आत्मा और परमात्मा को देगकर बन्नाय मार्ग से अलग हो, मैं फा सेवन शीर सभासदों के साथ सप्तयानुक्तं बनेक प्रकार से विचार कर के य शीर शधर्म के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमिदस्याद्विरस ऋषिः । विद्वानो देवताः । भुरिगार्गं त्रिष्टुष्टन्दः ।

घैषतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ब्राह्मणमथ विदेयस्वितृमन्त्रंस्वैतृमत्पमृषिमाप्येगधं सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्द्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारुमानिशात ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो ! जैसे मैं (अथ) आज (ब्राह्मणम्) शीर शधर्म को जानने यात्रा (वितृमन्त्रम्) प्रशंसनीय वितृ अर्थात् सत्यासत्य के क्षेत्र से जिस के सर्वथा रक्षक हैं (वैतृमन्त्रम्) वितृभाव को प्राप्त (ऋषिम्) वेदार्थ ज्ञान कराने वाला ऋषि (आप्येम्) जो ऋषिजनों के इस याग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त (सुधातुदक्षिणम्) जिस के अच्छी अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणा रूप धान उत (प्रदातारम्) अच्छे दान शील पुरुष को (विदेयम्) प्राप्त होऊँ जैसे तुम लोग अस्मद्द्राताः) हमारे लिये अच्छे गुणों के देने वाले होकर (देवत्रा) शुद्ध गुण कर्म श्रम, य युक्त विद्वानों के (गच्छत) समीप आओ और शुभ गुणों में (आपिरात) धेरा करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचस्त्वसोपमालङ्कार है । उस्ताही पुरुष को क्या नहीं हो सकता कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋण लोगों के प्रकाशित किये हुए याग विज्ञान को न लिख करसके कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाता जनों को रूपता कर्म नहीं आती है इस से जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुधात्रार्थिकः सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं उनको अच्छल कीर्ति क्यों कर न हो ॥ ४६ ॥

अग्नेयेत्यस्याद्विरस ऋषिः । वरुणो देवता । आधस्य भुरिक् प्राजापत्या, उद्राय-

स्वेत्यस्य स्वरः प्राजापत्या, पृहस्पतयेत्येतस्य निचृदाचं । यमायत्येतस्य

विराडाचं जगत्यश्नुदासि । निपादः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान निरप्रद सेवन करना चाहिये इस विषय का है ॥

अग्निं त्वा मया वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमंशीवापुर्द्विष एधि
 मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मया वरुणो ददातु सोऽमृत-
 त्वमंशीय प्राणां द्वात्र एधि ययो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये
 त्वा मया वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमंशीय त्वग्दात्र एधि मयो
 मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे यमार्गं त्वा मया वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमं-
 शीय ह्यो द्वात्र एधि मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे वसु संज्ञक पदाने वाले । जिस (अग्नि) चीर्षास पर्यंतक ब्रह्मचर्य का
 सेवन कर के अग्नि के समान तेजस्वि होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) तुम
 अध्यापक को (वरुणः) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (सः) यह मैं (अमृतत्वम्)
 अपने शुद्ध कर्माँ से सिद्ध किये सत्य आनन्द को (अशीय) प्राप्त होऊँ उस (द्वात्र)
 द्वात्रांश विद्वान् का (आयुः) बहुत कालपर्यन्त जीवन (एधि) पढ़ाईये और (प्र-
 तिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) तुम विद्यार्थीके लिये (मयः) तुल्य पढ़ा-
 ईये । हे दुष्टों का उलाने वाले अध्यापक जिस (रुद्राय) चत्वारंश वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्या-
 श्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने का इच्छा वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा)
 रुद्र नामक पदाने वाले आपको (वरुणः) अत्युत्तमगुणयुक्त (ददातु) देवे (सः) यह
 मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के साधनों को (अशीय) प्राप्त होऊँ उस (द्वात्र) विद्या देने
 वाले विद्वान् के लिये (प्राणः) योग विद्या का बल (एधि) प्राप्त कराईये और (प्र-
 तिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (मयः) तीनों अवस्था का
 सुख प्राप्त कौजिये । हे सूर्य के समान तेजस्वि अध्यापक जिस (बृहस्पतये) अद्भुता-
 लोस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन को इच्छा करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा)
 पूर्णविद्या पढ़ाने वाले आप को (वरुणः) पूर्णविद्या स शरीर और अत्मा के बलयुक्त
 विद्वान् (ददातु) देवे (सः) यह मैं (अमृतत्वम्) विद्या के आनन्द का (अशीय)
 भोग करूँ उस (द्वात्रे) पूर्ण विद्या देने वाले महा विद्वान् के अर्थ (त्वक्) सरदी ग-
 रमों के स्पर्श का सुख (एधि) पढ़ाईये और प्रतिग्रहीते पूर्ण विद्या के ग्रहण करने
 वाले (मह्यम्) तुझ शिष्य के लिये (मयः) पूर्णविद्या का सुख उन्नत कौजिये । हे महा-
 श्रम से होने वाले विषय सुखसे विमुक्त सत्योपदेश करने वाले आप्त विद्वान् ।
 जिस (यमाय) महाश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा)
 सर्व दोषरहित उपदेश करने वाले आप को (वरुणः) सकलशुभगुणयुक्त विद्वान् (द-
 दातु) देवे (सः) यह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के सुख को (अशीय) प्राप्त होऊँ उस

(दात्र) प्रज्ञ विद्या देने वाले महा विद्वान् के लिये (ह्यः) प्रज्ञ ज्ञान की वृद्धि (पथि) कीजिये और (प्रतिप्रदोत्रे) मोक्ष विद्या के ग्रहण करने वाले (मताम्) मेरे लिये (वयः) तानों अथवा के सुख को प्राप्त कीजिये ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तमगुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उन के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों को परीक्षा करके अपनी २ कन्या और पुत्रों को उन २ के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वायें और पढ़ने वाली को भी चाहिये कि अपनी २ अधिक न्यून वृद्धि को जान के अपने २ अनुकूल अध्यापकों को प्रतिपूर्वक सेवा करने हुए उन से निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥ ४७ ॥

कोशादित्यस्याद्विरस इतिपिः। आत्मा देवता । आप्युष्पिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
 सद्य भगले मन्त्र में इन्धर जीवों को उपदेश करता है ॥

कौऽद्वात्कस्मा अद्वात्कामोऽद्वात्कामावादात् । कामो दाता
 कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(कः) कौन कर्म फल को (अदात्) देता और (कस्मै) किस के लिये (अदात्) देता है । इन दो प्रश्नों के उत्तर (कामः) जिस को कारण सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) देता है । अब विवेक करते हैं कि (कामः) जिस की योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दाता) देने वाला है (कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है । हे (काम) कामना करने वाले जीव ! (ते) मेरे लिये मैंने वेदों के द्वारा (एतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—इस संसार में कर्म करने वाले जीव और फल देने वाला इन्धर है यहाँ यह जानना चाहिये कि कामना के बिना कोई आंस का पलक भी नहीं हिला सकता इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म सम्यन्धी कामना करे अधर्म की नहीं यह निश्चय कर जानना चाहिये कि जो इस विषय में मनुजो ने कहा है वह वेदानु-
 कूल है । जैसे इस संसार में अति कामना करना प्रशंसनीय नहीं और कामना के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये धर्म की कामना करनी और अधर्म को नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का अचरण करना आदि कामना इच्छा के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस संसार में तानों फल में इच्छा के बिना कोई किया नहीं दीख पड़ती जो २ कुछ किया जाता है सो २ सब इ-

कछा हो का व्यापार है । इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करना इतर दुष्टकामों की नहीं ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आत्मा का कर्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगों के लिये ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योग विद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासों का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामिसेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म, राजा का उपदेश, राजाओं की कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा को कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म, सभाध्यक्ष की किया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसको प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य सेवन की रीति और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की पट्टाध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथाष्टसाध्यायस्यारम्भः ॥

इस शास्त्र में अष्टसाध्याय का आरम्भ किया जाता है ।

विद्वानि देव सवितादुशितानि परांसुव । पशुद्रं तस्य आसुव ॥ १ ॥

उपयाम इत्यस्माद्द्विरस ऋषिः । गृहस्पतिस्तोमो देवता । धर्मो धर्मिण्युतः ।

पञ्चमः खरः ॥

इस के प्रथम मन्त्र से गृहस्था धर्म के लिये ब्रह्मचारिणो कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

उपग्रामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्तथा विष्णो उरगायैप ते सोम-

रुथं रक्षस्व मा त्वां दमन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! तू जोस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन करने वाला मैं (शा-दित्येभ्यः) जिन्होंने शङ्कतालोस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की स-मा में (त्वा) शङ्कतालोस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूँ आप (उपग्रामगृहीतः) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले (अ-सि) हो । हे (विष्णो) सभस्ता श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठज (ते) आप का (एषः) यह गृहस्थाश्रम (सोमः) सोमलता आदि के तुल्य वैश्वर्य का व-दाने वाला है (तम्) उस को (रक्षस्व) रक्षा करें । हे (उरगाय) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले । (त्वा) आप को काम के पाण जैसे (मावमन्) दुःख देने वाले न होंवे, ऐसा साधन कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थः—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुईं सुवर्ती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अथवा रजनी चाहिये कि अपने सत्सह रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या बला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो ऐसे पति की स्वर्द्धर विधि से स्वीकार कर के उस की सेवा किया करें । ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को चाहिये कि अपने अपने समान सुवर्ती स्त्रियों का पाणिग्र-हण करें इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को समातन गृहस्था के धर्म का पालन करना चाहिये । और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा धर्म का विनाश कभी न करें किन्तु सदा प्रवृत्तगामी हों । दश सज्जनों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर

अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीति पूर्वक रामण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग अर्पति और व्यभिचार आदि दोष न हों ऐसा वर्त्ताय वर्गकर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में क्रिया करें ॥ १ ॥

कदाचन इत्यस्य,ङ्गिरस ऋषिः । गृहपतिर्गणया देवता । मुक्तिं पंक्तिदृष्टम् ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में क्रिया है ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्रं सध्वसि दाशुपे । उपोपशु मघयन्मू-
य इक्षु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमेश्वर्य से युक्त पति । जित कारण आप (कदा) कभी (चन) भी (स्तरीः) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (सति) हैं इस कारण (दाशुपे) दान देने वाले पुरुष के लिये (उपोप) समीप (सध्वसि) प्राप्त होते हैं । हे (मघयन्) प्रशंसित धन युक्त भर्त्ता । (देवस्य) विद्वान् (ते) आपका जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा या धन आदि पदार्थों का देना है (इत्) वही (तु) शीघ्र (भूयः) अधिक कर के मुझ को (पृच्यते) प्राप्त होवे इसी से मैं स्त्रों भाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महाने दुख देने वाले आप का आश्रय करता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थः—यिबहू की कामना करने वाली युवति स्त्रों को चाहिये कि जो छक फपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक हो स्त्रों को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगों धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उस के सार्थ विबहू करके आनन्द में रहै ॥ २ ॥

कदाचन प्रयुच्छसोत्यस्य,ङ्गिरस ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचूदापं
पंक्तिदृष्टम् । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

कदाचन प्रयुच्छसुभे निपांसि जन्मनी । तुरीयादित्यु सध्वन-
न्त इन्द्रियमा तंस्थाद्यमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—इस मन्त्र में नकार का अभ्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप को (कदा) कभी (चन) भी (म) (युच्छसि) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उभे) दोनों (जन्मनी) वर्त्तमान और परजन्म की (पालि) निरन्तर पालते हो । हे (अदित्य) विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान जो (ते) आप के (सध्वनम्) उत्पत्ति धर्म युक्त कार्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय के

पण में स्त्री तो भाव (भा) (तर्कणी) (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्)
 यदितारणं सुग नो प्राप्त हो जयें । हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले (भा-
 दिग्भ्यः) प्रतिनाम के सुख के लिये (तथा) इदंन्द्रिय भाव को मैं स्त्री स्वीकार
 करती हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो प्रमादी पुण्य विवाहित स्त्री को छोड़कर पर स्त्री का सेवन करता
 है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागो होता है और जो संयमी बपनो हो स्त्री का
 पहनने वाला दूसरे का स्त्री को नहीं चाहता यह दोनों लोक में परम सुख को क्यों
 न मोगे । इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का
 नहीं ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुन्स क्षयिः । अदित्यो गृहपतिर्देवता । निवृज्जगताञ्छ-
 दः । निरादः स्वयः ॥

किर भी गृहाश्रम का विषय थगले मंत्र में कहा है ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुन्स क्षयिः । अदित्यो गृहपतिर्देवता । निवृज्जगताञ्छ-
 दः । निरादः स्वयः ॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्य लोको के समान विद्या आदि शुभ गुणों से
 प्रकाशमान । भाप जो (देवानाम्) विद्वान् (वः) भाप लोगों का यह (यज्ञः) स्त्री
 पुण्यों के भर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार (सुमन्म्) सुख को (प्रति) (पति) निश्च-
 य करके प्र स करता है और (या) जो (अहोः) गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने
 वाली (अर्थात्) अच्छी शिक्षा और विष.भ्यास के पीछे विज्ञान प्राप्ति का हेतु (व-
 रिवो वितरा) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली भाप लोगों की (सुमतिः)
 श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में निरन्तर (आ) (वद्व्यात्) प्रवृत्त होवे जो (आदित्यभ्यः)
 आसविद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो (तथा) तुम को (असत्) प्राप्त हो
 (चिन्) उस बुद्धि से ही युक्त हम दो स्त्री पुण्य को (मृडयन्तः) सदा दुःख देते
 रहिये ॥ ४ ॥

भाषार्थः—विवाह करके स्त्री पुण्यों को चाहिये कि जिस २ काम से विद्या अच्छी
 शिक्षा बुद्धि धन सुदृढ़त्व और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया
 करें ॥ ४ ॥

विष्वक्त्रियस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्याऽ
 नुष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः । श्रदित्युत्तरस्य निचुदार्पा
 जगतो छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

विष्वक्त्रिणादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्य । अर्दस्मै नरो
 वचसे दधातन यदांशीर्द्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो
 जांगते विन्दते वसवर्धा विश्वाहारूप एधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (विष्वक्त्रि) विविध प्रकार के स्थानों में चलने वाले (आदित्य)
 अविनाशी स्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एवः) यह जो (ते) अपना (सोमपीथः) जिस
 में सोमरता आदि ओषधियों के रस पीने में आवे ऐसा गृहाश्रम है (तस्मिन्) उस
 में आप (विश्वाहा) सब दिन (मत्स्य) आनन्दित रहो । हे (नरः) गृहाश्रम क-
 रने वाले गृहस्थो । आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहश्रम के वाग् व्यवहार के
 लिये (श्रुत्) सत्य हाँ का (दधातन) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहाश्रम में
 (दम्पती) स्त्र.पुरुष (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्नुतः) प्राप्त होते
 हैं उस में (आशांर्द्दा) कामना देने वाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुमान्) पुरु-
 पार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता
 है और वह उत्तम (यतु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अथ) इस के अनन्तर
 वह (एधते) विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है ॥ ५ ॥

अ.पार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षा पूर्वक स्वयं-
 पर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर यतुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके
 नित्य उन्नति पावें ॥ ५ ॥

वाममघेत्यस्य अष्टाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचुदार्पा छिन्दुच्छन्दः ।
 धैवतः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इस विषय का उपदेश
 अगले मंत्र में किया है ॥

वाममघ संयितवामसु श्रयो द्विषे द्विषे वाममसमर्ष्येत् साधीः ।

—हे क्षणस्य देवभूरेणा घिया वामभाजः स्नाम ॥ ६ ॥

—हे (द्वेष) दुष्ट देने (संयितः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने
 ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अथ) आज (वामम्) अति

निरुद्धो वृद्धाश्रमः काष्ठीयं मन्त्रं मन्त्रं मन्त्रं ॥

उपपत्त्यामृतातीतोऽसि मन्त्रादिनांऽसि चतुर्विधाऽन्यासा अस्मि चतुर्विधाऽसि । जिन्वन् वृद्धं जिन्वन् वृद्धं वृद्धं वृद्धं वृद्धं देवार्थं तथा स-
 शिष्टे ॥ ७ ॥

वदार्थः— हे पुत्र ! तुम से जैसे मैं निरुद्ध और अनियमों से ग्रहण करोगयी हूँ
 से मैंने भाग को (उपपत्त्यामृताः) विषाद निरुद्ध से ग्रहण किया (भक्ति) है जैसे
 गाय (चतुर्विधाः) (चतुर्विधा) धन ७ के धारण करने वाले (भक्ति) हैं और (सा-
 वत्रः) सर्वांगी समस्त स्थानादि सुख उत्पन्न करने वाले भाग को अपना इष्टरेय मा-
 नि पाते (शक्ति) हैं ऐसे मैं भी भाग के निमित्त धारण करूँ जैसे भाग (यज्ञम्)
 :द पुत्रों के भोजन योग्य धर्म व्यवहार का (जिन्वन्) प्राप्त हो ऐसे मैं भी प्राप्त हो-
 द और जैसे (शक्ति) समानों को उत्पन्न के हेतु (भाग्य) धनदि भोजनीय (वे-
 शय) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (यज्ञार्थम्) वृद्धाश्रम को पालने द्वारे भाग को मैं प्रस-
 द्द रहूँ ऐसे भाग भी (जिन्वन्) प्राप्त वोजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकत्वे- विषादित स्त्री पुत्रों को योग्य है कि लाभ के
 अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ संतानोत्पत्ति का आच-
 रण करें ॥ ७ ॥

उपपत्त्यामृतातीतोऽसि मन्त्रादिनांऽसि चतुर्विधाऽन्यासा अस्मि चतुर्विधाऽसि । जिन्वन् वृद्धं जिन्वन् वृद्धं वृद्धं वृद्धं देवार्थं तथा स-
 शिष्टे ॥ ७ ॥

मध्यमः रघवः॥

फिर भी गृहस्थ को संवने योग्य धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

**उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानां गृहद्वेषाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यं एव ते योजिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥**

पदार्थः—हे पते ! जैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) नियम उपनियमों से ग्रहण किया है (असि) हैं और (सुप्रतिष्ठानः) अच्छे प्रतिष्ठा और (सुशर्मा) अच्छे घर वाले (असि) ही उन (गृहद्वेषाय) अत्यन्त बोर्य देने वाले आप को (नमः) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ भक्त चित्त का प्रसन्न करने वाला उचित समय पर देती हूँ जिस आप का (एव) यह (योजिः) सुखदायक महल है (त्वा) उस आप को (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य सुखों के लिये संवन करता हूँ और (ते) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये नियुक्त करता हूँ जैसे आप मुझको कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब क्रतुओं में सुख देने वाला घर ही और आप बोर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करें और उस के लिये यथोचित समय पर सुख दें तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगें और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्संग किया करें ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः ।

आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री, गृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्याप्युष्णिक्,
अहमित्युत्तरस्य स्वराढार्यं पंक्तिश्च छन्दांसि । क्रमेण षड्जर्मणश्चक्रमाः स्वराः ॥

फिर गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

**उपयामगृहीतोऽसि गृहस्पतिसुतस्य देवसोम तऽइन्द्रोऽरिष्टि-
यावन्तः । पत्नीयतोऽग्रहोऽसि । ऋद्ध्यासम् । अहम्परस्तां गृहस्प-
स्तां च दन्तरिक्षन्मदं मे पिताभूत् । अहं सूर्यसुभ्यतो ददशाहन्दे-
धानां परमद्गृहा पत् ॥ ९ ॥**

पदार्थः—हे (सोम) पेश्वर्य्य सगणः (देव) अति मनोहर पते ! जिस आप को मैं कुमारी ने (उपयामगृहीतः) विषयः नियमों से स्वीकार किया (असि) है उन (इन्द्रोः) सोम गुण सम्पन्न (इन्द्रियावतः) पशुत धन वाले और (पत्नीयतः) यज्ञ सन्त में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाले (गृहस्पतिसुतस्य) और यज्ञो वेद वाणी के वाले के पुत्र (ते) आप के गृह और रक्षिणियों को प्राप्त होके मैं (परस्तात्) और (गवतात्) पीछे के समय में (अभ्यासम्) सुगों से यदती जाऊँ

(पत्) जित (देवानाम्) विद्वानों को (गुहा) बुद्धि में स्थित (अन्तरिक्षम्) सत्य विद्वानों में (पति) प्राप्त होता है उसी को तू मो प्राप्त हो भौर जो (मे) मेरा (पिता) पालन करने द्वारा (अमृत) हो (सहम्) मैं (उभयतः) उसके अगले पिछले उन शिक्षा विषयों से जित (सूर्यम्) घर बचर के आत्मारूप परमेश्वर को (वदर्स) देण उसी को तूमो देण ॥ १ ॥

भाषार्थः—स्त्री और पुत्र्य विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे को परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुत्र्यार्थ और विद्या युक्त होकर स्वयंपर विधि से विवाह करके ऐसा पत्न करे कि जित से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्धि को प्राप्त हो जित को माता और पिता विद्वान् न हो उनके संतान भी उत्तम नहीं हो सकते इस से अच्छी शिक्षा और पूर्ण विद्या को ग्रहण करके ही गृहाश्रम को आचरण करे इस को पूर्व नहीं ॥ १ ॥

अग्ना २॥ इ पत्नीयन्त्यस्य मर्यागाः पितृः । गृहपतयो देवताः । पितर-

इ प्राद्वी बृहती चन्द्रः । मध्यमः स्वतः ॥

स्त्री अपने पुत्र्य को किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्ना ३ इ पत्नीयन्त्यस्य मर्यागाः पितृः । गृहपतयो देवताः । प्रजा-
पतिर्विषयासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो
रेतोधामशीप ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समस्त सुख पहुंचाने वाले स्वामिन् ! (सज्) समान प्रीति करने वाले आप मेरे (देवेन) दिव्य सुख देने वाले (त्यष्टा) समस्त बुध विनाश करने वाले गुण के साथ (स्वाहा) सत्यवाणी युक्त क्रिया से (सोमम्) सोम पत्नी आदि औपधियों के विशेष आसय को (पिय) पीओ! हे (पत्नीयन्) प्रशंसनीय यज्ञ सम्पत्ति को स्त्री को ग्रहण करने (वृषा) बोर्य सौचने (रेतोधाः) बोर्य धारण करने (प्रजापतिः) और सन्तानादि के पालने वाले । जो आप (असि) हैं यह (मयि) मुझ विषयाहित स्त्री में (रेतः) बोर्य को (धेहि) धारण कीजिये हे स्वामिन् ! मैं (वृष्णः) बोर्य सौचने (रेतोधसः) पराक्रम धारण करने (प्रजापतेः) सन्तान आदि की रक्षा करने वाले (ते) आप के संग से (रेतोधाम्) बोर्य बान् अति पराक्रम युक्त पुत्र को (अशोय) प्राप्त होऊँ ॥ १० ॥

भाषार्थः—इस संसार में मनुष्य जन्म को

उत्तम

विद्या अज्ज्ञातुण और पराक्रम युक्त होकर विवाह करें विवाह की मर्यादा ही में स-
स्तनों की उन्नति और रतिक्रीडा से उत्पन्न हुए सुख की प्राप्ति होकर गिय भानन्द में
रहें बिना विवाह के स्त्रो पुण्य व पुण्य स्त्रो के समागम की इच्छा मन से भी न करें
जिससे मनुष्य व्यक्ति की पदता होवे इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्रो पुण्य करें ॥१०॥

उपयामगृहीतो मोक्षय भद्राज्जगपिः । गृहपतयो वैशताः । निष्पदा-
र्ष्यन्तुष्टु पृच्छन्ः । मान्धारः स्वयः ॥

विर गृहस्थों का धर्म अज्ज्ञे मंत्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरेसि हरियोजनो हरिभ्यान्तथा । ह-
र्योऽह्नीना स्थं मृहसोमा इन्द्राय ॥ ११ ॥

पदार्थः—हं पते ! आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम के लिये प्रदण किये हुए (स-
सि) हैं (हरियोजनः) घोड़ों को जोड़ने वाले सारथि के समान (हरिः) यथायो-
ग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले (अति) हैं इस कारण (हरिभ्याम्) म-
च्छो शिक्षा की पाप हुए घोड़ों से युक्त रथ में विनाजानान (तथा) आप की मैं सेवा
करूँ तुम लोग गृहाश्रम करने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सहसो-
माः) उत्तम गुण युक्त हाकर (हर्याः) वेगादि गुण वाले घोड़ों को (घान्ताः) स्था-
नादिकों में स्थापन करने वाले (स्थ) होना ॥ ११ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सगुण सद्भियायुक्त होकर विवाह की इच्छा
करने वाले कन्या और पुरुष युवावस्था की पधुंन और परस्पर एक दूसरे के धन की
उन्नति की अच्छे प्रकार देखकर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उ-
न्नति होती है, इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रति दिन वैश्वर्य्य
की उन्नति करें ॥ ११ ॥

यस्त इत्यस्य भद्राज्जगपिः । गृहपतयो वैशताः । आर्षोपकिञ्चदः ।

पञ्चमः स्वयः ॥

अथ गृहस्थों की मित्रता अज्ज्ञे मंत्र में कहा है ॥

यस्ते अश्वसनिर्भ्रक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुपस्तुतस्तोम-
स्य शस्तोपयुस्योपहृतस्योपहृतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हं प्रिययोर पुरुष मित्र । जो आप (उपहृतः) मुझ से सत्कार प्राप्त हो-
कर (अश्वसनिः) अग्नि आदि पदार्थ या घोड़ों और (गोसनिः) संसृष्ट पाणी
भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले (अति) हैं उन

(शस्तोपधस्य) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्त युक्त (इष्टयजुषः) इष्ट हुल कारक यजुर्वेद के भागयुक्त वा (स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (ते) आप का (यः) जो (भद्रः) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को आप से सत्कृत हुए मैं (भद्रयामि) भोजन करूँ । तथा हे मिथे सगि ! जो दू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों के देने और संस्कृत पाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे २ पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक् सूक्त भाग से स्तुति क्रिये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूँ ॥ १२ ॥

भाष्यार्थः—अच्छे उसाह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्रऔर दन्तु जन आदि को बुलाकर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्बिलास की करें ॥ १२ ॥

देववृत्तस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । मनुष्यवृत्तस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक्, पितृवृत्तस्येत्यस्यात्मवृत्तस्येत्यस्य च निचृत् साम्न्युष्णिक्, एतस्य इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदाप्युष्णिक् च छन्दसि

ऋषभः स्यरः ॥

अगले मंत्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है ॥

देवकृतस्वैनसोऽव्यपजंनमसि मनुष्यकृतस्वैनसोऽव्यपजंनमसि
पितृकृतस्वैनसोऽव्यपजंनमस्यात्मकृतस्वैनसोऽव्यपजंनमस्येनस ए-
नसोऽव्यपजंनमसि । पचाहमेनो विद्वाँश्चकार पचाभिद्वाँस्तस्य
सर्वस्वैनसोऽव्यपजंनमसि ॥ १३ ॥

पदाथः—हे सब के उपकार करने वाले मित्र ' आप (देववृत्तस्य) दान देने वाले के (एतसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (आस) हो (मनुष्य-
वृत्तस्य) साधारण मनुष्यों के क्रिये हुए (एतसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (अमि) हो (पितृवृत्तस्य) पिता के क्रिये हुए (एतसः) विरोध आच-
रण के (अवयजनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (अमि) हो (जाग्वृत्तस्य) अपने क-
संब्य (एतसः) पाप के (अवयजनम्) दूर करने वाले (अमि) हो (एतसः) (ए-
नसः) अधर्म अधर्म के (अवयजनम्) नाश करने हारे (अमि) हो (विद्वान्) जा-
नता हुआ मैं (यत्) जो (च) कुछ भी (एनः) अधर्माचरण (चकार) क्रिया,

करता है या करूँ (अविद्वान्) अनजान मैं (यत्) जो (घ) कुछ भी किया, करता है या करूँ (तस्य) उस (सर्वस्य) सब (एतसः) हुए अपराध के (अपराधजनम्) दूर करने वाले आप (अस्ति) हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे विद्वान् गृहस्थ पुण्यदान आदि अच्छे काम के करने वाले तनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें। जाने या बिना जाने अपने फर्साव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किये हुए अपराध को औरों से छुड़ावें जैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥ १३ ॥

सर्वस्यैतस्य भद्राज्जगत्पिः । गृहपतयो देवताः । विराट्पार्थी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैयतः स्वरः ॥

फिर भी मित्रवृत्त्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

संघर्षसा पर्यसा सन्तनुभिरगन्महि मनसा सधे शिवेन ।

त्वष्टा सुदधो विदधातु राघोऽनुमार्ष्टु तन्धो पथिलिष्टम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे सब विचारों के पढ़ने (त्वष्टा) सब व्यवहारों के विस्तार कारक (सुदधः) अत्युत्तम दान के देने वाले विद्वान् । आप (संशिवेन) ठीक २ कल्याणकारक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण (संघर्षसा) अच्छे अध्ययन अध्यापन के प्रकाश (पर्यसा) जल और अन्न से (यत्) जिस (तन्धः) शरीर की (पथिलिष्टम्) विशेष म्यूनता को (अनुमार्ष्टु) अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और (राघः) उत्तम धर्मों को (विदधातु) विधान करो उस देह और शरीरों को हम लोग (तनूभिः) ब्रह्मचर्य ब्रूतादि सुनियमों से धलयुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि पुण्यपार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों की निरोग और मन की धर्म में निवेश कर के सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ म्यूनता हो उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिये पचाव बत्तें जैसे उस सुख के लिये आप भी पत्तों ॥ १४ ॥

समिन्द्रमित्यसावृर्षिः । गृहपतिदेवता । भुरिगार्थी त्रिष्टुप् छन्दः । धैयतः स्वरः ॥

फिर मित्र का उक्त अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिन्द्रणो मनसा नेपि गोभिः सधुं सूरिभिर्मघयन्तसधे स्वस्त्या ।

संघर्षाया देवकृतं पदमित्ति सन्देवानां सुप्तगीं प्रतिपात्ता स्वहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—हं (मघषन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करने हारे । आप जिस से (सम्) (मनस्ता) उत्तम अन्तःकरण से (सम्) अच्छे मार्ग (गीभिः) गीर्षो या (सम्) (स्वस्त्या) अच्छे शब्दन युक्त सुख रूप व्यवहारों से (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान या धन से विद्या और (यत्) जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ के पालन करने वाले को करने योग्य (देषानाम्) विद्वानों की (स्वाहा) सत्य याणी युक्त (सुमती) श्रेष्ठ बुद्धि में (देषटतम्) विद्वानों के किये कर्म हैं उन को (स्वाहा) सत्य याणी से (नः) हम लोगों को (सखेपि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप हमारे पूज्य हो ॥ १५ ॥

भाषार्थः—गृहस्थ जनों को विद्वान् लोग इस लिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे पालकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्य युक्त करते हैं ॥ १५ ॥

संघर्चसा इत्यस्यान्निर्ऋषिः । गृहपतिदेवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

संघर्चसा पयसा सन्तनुभिरगन्महि मनसा सध शिषेन । त्य-
ष्टा सुदष्टो विदधानु रायोऽनुमाष्टु तन्व्यो पद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे आप अत्युत्तम विद्वानो । आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य (सुदष्टः) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (त्य-
ष्टा) अविद्यादि दोषों का नष्ट करने वाला विद्वान् हम को (संघर्चसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (संशिषेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से (य-
त्) जिस (तन्यः) शरीर के हानिकारक कर्म को (अनुमाष्टु) दूर करे और (रा-
यः) पुष्टिकारक द्रव्यों को (विदधानु) प्राप्त करावें उस और उन पदार्थों को (सम-
गन्महि) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के सङ्घ से घर्मार्ष काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें ॥ १६ ॥

धाता रातिरित्यस्यान्निर्ऋषिः । विद्वेदेया गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धाता रातिः संघितेदं जुषन्ताम्प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया सधं रराणा यजमानाष्ट द्रविणन्दघात
स्वार्हा ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्म धारण करने (रातिः) सब के लिये सुख देने (सविता) समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने (प्रजापतिः) सन्तानादि के पालने (निधिपाः) विद्या आदि ऋद्धिः अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देवः) दोषों के जीतने (अग्निः) अविद्या रूप अन्धकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णुः) समस्त उत्तम २ शुभ गुण कर्मों में व्याप्त होने वाली के सदृश हो के (प्रजया) अपने सन्तानादि के साथ (संरराणाः) उत्तम दानशौल होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इदम्) इस गृहकार्य को (जुपन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढ़ते जाय उस (द्रविणम्) धन को (दघात) धारण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कर्मों का धारण ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा प्रजा पालन योग्य पुरुषों को दान दुःखियों का दुःख छुड़ाना शत्रुओं को जीतने और शरीरात्म बल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

सुगाय इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्यां त्रिष्टुप् छन्दः । धैयतः स्वरः ॥

फिर गृह कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुगा वो देवाः सदर्ना अकर्म य आजग्मेदधे सर्वनं जुषा-
णाः । भरमाणा वहमाना हवीश्च्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वा-
र्हा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) श्रेष्ठ गुणों में रमण करने वाले (देवाः) व्यपहारो जनों ! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (इदम्) इस (सचनम्) ऐश्वर्य का (जुषा-
णाः) सेवन (भत्मानाः) धारण करने (वहमानाः) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सर्वना) जिन के निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन (हवींषि) देने लेने योग्य (वसूनि) धनों को (अक-
र्म) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुए हैं (अस्मे) हमारे लिये उन (वसू-
नि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—जैसे पिता पति इत्यशुर साम् मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री सुगा

मरणा और मृत्यों का पालन करने हुए सुख देने हैं वैसे पुत्रादि भी इन की सेवा करना उचित समझते ॥ १८ ॥

यौ२॥ आपह इयस्यात्रिर्ऋषिः । विद्वेदेयाः गृहपतयो देवताः ।

मुनिगार्थी त्रिष्टुप्छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

किर भी घर का काम अगले मंत्र में कहा है ॥

यौ३॥ आर्षह उशानो देव देवाँस्तान्मेरघृस्वे सग्ने मधस्थे । ज्ञ
क्षिवाँसः पपिवाँसंश्च विद्वे सुहृद्यर्म्मं स्वरातिष्ठतानु
स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य स्वभाय वाले अध्यापक ! तू (स्व) अपने (मधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान) जिन (उशतः) विद्या आदि अच्छे २ गुणों को प्राप्त करने हुए (देवान्) विद्वानों को (वा) (अथह) प्राप्त हो (तान्) उन की धर्म में (प्र) (इत्ये) नियुक्त कर । हे गृहस्थ ' (जतिर्वाँसः) अन्न खाते और (पपिवाँसः) पानों पीते हुए (विद्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्यपार्थी में (धर्मम्) अन्न और यज्ञ तथा (अरुम्) श्रेष्ठ बुद्धि या (स्व) अत्यंत सुख को (अनु) (आ) (तिष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ १९ ॥

भाषार्थः—इन संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जा पाकर सब धर्म कर्म बर्त्सने वाले हों वे सुख भागी हों और नहीं ॥ १९ ॥

षपमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्थी त्रिष्टुप्छन्दः ।

धेवतः स्वरः ॥

अथ व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इयथे हि त्वां प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने हातां रुमवृणीमहीह । ऋधंगुता
मधंगुताशमिष्टाः प्रजानन् यज्ञमर्पयाहि विद्वान् स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञान देने वाले ! (ययम्) हमलोग (इह) (प्रयति) इस प्रयत्न साथ (यज्ञे) गृहाश्रम रूप यज्ञ में (त्वा) तुझ को (होतारम्) सिद्ध करने वाला (अनूणोमहि) प्रहण करें (विद्वान्) सब विद्या युक्त (प्रजानन्) क्रियाओं के जानने वाले आप (ऋधक्) समृद्धि कारक (यज्ञम्) गृहाश्रम रूप यज्ञ को (स्वाहा) शास्त्रोंक क्रिया से (उप) (याहि) समीप प्राप्त हो (उत) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु (अयाः) उस से दान सत्संग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निदचय करके (अस्मिन्) इस (ऋधक्) अच्छों ऋद्धिसिद्धि के पदाने वाले गृहाश्रम के निमित्त में (अशमिष्टाः) शीत्यादि गुणों को प्रहण करके सुखी हो ॥ २० ॥

भाषार्थः—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में प्रवृत्त हो उस को उती काम में प्रवृत्त करें ॥ २० ॥

देवा गातित्वस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराष्टाष्टुष्णिक्
छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवां गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमन्द्देव
यज्ञश्च स्वाहा धामे धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (गातुविदः) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथियों के जाने जाने को जानने (देवाः) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान् लोगो ! तुम (गातुम्) भूगर्भ विद्या युक्त भूगोल को (वित्त्वा) जान कर (गातुम्) पृथियों राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को (इत्) प्राप्त हजिये । हे (मनसस्पते) इन्द्रियों के रीझने हारे (देव) श्रेष्ठ विद्यायोग्य सम्पन्न विद्वानो ! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वाहा) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से (इमम्) इस गृहाश्रम रूप (यज्ञम्) सब सुख पहुँचाने वाले यज्ञ को (धामे) विशेष जानने योग्य व्यवहारों में (धाः) धारण करो ॥ २१ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ विद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारी हो कर और उत्तम धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणी मात्र को सुखी करें ॥ २१ ॥

यज्ञयज्ञमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । भुरिक् साम्युष्णिक्छन्दः ।

ऋषयः स्वरः । एष इत्यस्य विराडाचार्यो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यज्ञं यज्ञं च यज्ञं पतिं च स्वामिं च यज्ञं च स्वाहा । एषं
यज्ञं यज्ञं पते सहसूक्तवाकः सर्वधीरुस्तञ्जुपस्य स्वाहा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सत् कर्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमो ! तू (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार पूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपतिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वामि) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्म पालक व (ते) तेरा जो (एष) यह (सहसूक्तवाकः) ऋग्यजुः साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुयायी से कथित (सर्वधीरः) जिस से आत्मा और शरीर के पूर्वजल युक्त समस्त

योग प्राप्त होने हैं (यज्ञः) प्रथमर्गाय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्या प्रचार रूप यज्ञ है (तम्) उमरुता तु (स्यात्ता) मन्त्र विद्या न्याय प्रकाश करने वाली वेद पाणी किया से (सुप्रवच) प्रीति से सेवन कर ॥ २२ ॥

भाषार्थः—प्रजा जन गृहस्थ पुत्र्य यज्ञे २ यज्ञों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें राजमति राक्षसहायता और उत्तम धर्म से गृहाश्रम को संय प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करे ॥ २२ ॥

माहिर्भूर्मिन्द्रियात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य याज्ञुषुप्तिन् उन्वः ।

ब्रह्मणः स्वरः । उदमित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । भुरिगार्थी त्रिष्टुप्छन्वः ।

धंषतः स्वरः । नम इत्यन्वापुरी गायत्री छन्वः । पञ्जः स्वरः ॥

सब झाले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुः उरुधे हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय प-
न्यामन्नेत्या । अपदे पाठा प्रतिधातयेऽकृतापंशुक्ता हृदयाधि-
धञ्चित् । नमो वरुणायाभिष्टितो वरुणस्य पाशाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे राजन् सभापते ! तू (वरुणाय) उत्तम पेश्वर्क्य के वालो (उरुम्) प-
हुत गुणों से युक्त न्याय को (अकः) कर (सूर्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के
विज्ञान होने (सूर्याय) और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म प्रकाश में चलने के लिये
(पन्थाम्) न्याय मार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत और कभी (अपवला) झूठ
बोलने वाला (हृदयाविध) धर्मात्माओं के मन को संताप देने वाले के (चित्) स-
दृश (पृदाकुः) छोटे घबन कहने वाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्प के स-
मान क्रोधरूपी विष का धारण करने वाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (वरुण-
स्य) वीर गुण वाले तेरा (अभिष्टित) अति प्रकाशित (नम) यज्ञरूप वृष्ट और
(पाशाः) धंधन करने की समग्री प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥ २३ ॥

भाषार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मा-
त्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे
और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा या
प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को नकरें जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अ-
नुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्डदेवे किन्तु कभी अपराधों को दण्ड दि-
ये बिना न छोड़े वीर निरपराधों को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे इस प्रकार सब कोई
न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्येक कामों के चित्तजन में रहें जिस से

अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले, और शत्रु नहीं और विद्या तथा धर्म के प्रा-
गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी र-
हें ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमित्पस्याभिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । आर्षाभिष्टुष्टुन्दः । धैवतः स्वः ॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नेरनीकमप वा विधेशार्षान्नपात् प्रति रक्षन्सुर्यम् । दमे
दमे समिधं यक्षयन्ते प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरपयन्त् स्वाहा ॥२४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि को (अनीकम्) लपट रूपी संता के
प्रभाव और (अपः) जलों को (वा) (विवेश) अच्छी प्रकार समझ (मपाम्) उ-
त्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) शविनाशिस्वरूप
(असुर्यम्) श्रेय और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन की
(प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमे दमे) घर घर में (समिधम्) जिस कि-
या से ठीक २ प्रयोजन निकले उसको (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा)
जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा)। सत्य व्यवहार से (उत) (चरन्पत्)
देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भाषार्थः—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इस से गृहस्थ-
जन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्य-
वहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रेत इत्यस्याभिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षापकिरुन्दः । पंचमः स्वः ॥
फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समुद्रे ते हृदयमपस्वन्तः सं त्यां विशन्त्वोर्पधीकृतापः । गृहस्थं
त्वा यज्ञपते स्वकीकृतौ नमो वाके विधेम् परस्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञपते) जसे गृहाश्रम धर्म के पालने हारे । हम लोग (स्वाहा)
प्रमास्यद् वाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (स्वकीकृतौ) उस प्रपञ्च कि
में वेद के यज्ञों के प्रमाण से अच्छी २ बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाण
और सत्कारादि पदार्थों के पादानुवाच रूप (समुद्रे) आर्ष व्यवहार और
(त्यां) सब के प्राणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में
(निष्कृते) निष्कृते वंसे उस से जानो हुई (ओपधीः) यह मोहू चना सोमलतादि

गुण देने वाले पदार्थ (वा) (विशतु) प्राप्त हों (उत) और न केवल ये ही किन्तु (आपः) अच्छे जन्म भी तुम को गुण करने वाले हों ॥ २५ ॥

भाषार्थः—इम मंत्र में वाचकलुः-पदाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुण्य गृहस्थों को मत्स्य विद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सब को युक्त करें जिस से गृहाश्रम चाहने और करने वाले पुण्य शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें ॥ २५ ॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवता । स्वराडार्षी गृहतां छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अथ विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मंत्र में किया जाता है ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तं सुभीतं सुभृतस्त्रिभृत । देवं सो-
मैष ते लांकसगस्मिच्छञ्जु पक्ष्व परिं च पक्ष्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (आपः) समस्त शुभ गुण कर्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवोः) अति शोभा युक्त स्त्री जनों । तुम सब (यः) जो (एषः) यह (पः) गुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है (तम्) उस को (सुभीतम्) श्रेष्ठ भीति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय जैसे (त्रिभृत) धारण और उस की रक्षा करो । हे (देव) दिव्यगुणों से मनोहर (सोम) ऐश्वर्ययुक्त । तू जो यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है (तस्मिन्) इस के निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (पक्ष्व) पहुँचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिचय) सब प्रकार कर ॥ २६ ॥

भाषार्थः—पदो हुँ स्त्रियां यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त हो कर उस को आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करें यह पति भी स्त्री को रक्षा और उस की प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥

अथभुधेत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दाम्पती देवते । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गांधारः
स्वरः । अथदेवैरित्यथ स्वराडार्षी गृहतां छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

फिर गृहस्थ धर्म में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अथभृथ निचुम्पुण निचुम्पुसि निचुम्पुयः । अयं देवैर्देवकृतमे-
नोऽपासिपमथ मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुकराणो देव रिप स्वाहि देवानां छ-
समिदंसि ॥ २७ ॥

अधिक मित्र, थोड़े प्रति रखने वाले, और शत्रु नहीं धीर विद्या तथा धर्म के मा-
गां का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी र-
हें ॥ २३ ॥

अग्नेरनोकमित्यस्यात्रिकर्षिः । गृहपतिर्दंयता । आर्षात्रिष्टुष्टन्दः । धैवतः स्वः ॥
अग्नेरनीकमप धा विवेक्षापांज्ञपात् प्रति रक्षंस्तसुर्यम् । दमे

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि की (अनीकम्) लपट रूपी सेना के
प्रभाव और (अपः) जलों की (आ) (चिवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उ-
त्तम व्यवहार लिखि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) ध्विनाशिस्वरूप
(असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुदर्ण आदि धन को
(प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमे दमे) घर घर में (समिधम्) जिस कि-
या से ढाँक २ प्रयोजन निकले उसको (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा)
जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) । सत्य व्यवहार से (उत) (चरन्तः)
वेह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भाषार्थः—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इस से गृहस्थ-
जन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्यव-
यहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रेत इत्यस्यात्रिकर्षिः । गृहपतिर्दंयता । भुरिगार्षात्रिष्टन्दः । पंचमः स्वः ॥
फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विश्वान्त्वोपधीकृतापः । गुहस्पं
त्वा यज्ञपते सकोक्तौ नमो वाके विधेम यत्स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञपते) जसे गृहाश्रम धर्म के पालने हारे । हम लोग (स्वाहा)
प्रेमास्पद वाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूकोक्तौ) उस प्रपद्य कि
जिस में वेद के षट्ठों के प्रमाण से अच्छी २ बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाण
सिद्ध भक्त और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाक रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और
(अप्नु) सब के प्राणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में
(विधेम) नियत करें वैसे उस से जानी हुई (ओपधी-) सोमल्लभा

फिर भी गृहस्थ धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्यपयी । अद्भान्पहृता य-
स्य तम्मात्रा समंजीगम् ५ स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्याहित संभोग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते)
नेरो (हिरण्यपयी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः)
यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (बहुता) सुन्दर सींभे (अ-
द्भानि) अद्भुत हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ स-
मागम करके (स्वाहा) धर्म युक्त पिता से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त
होऊं ॥ २९ ॥

भाषार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना धैर्य्य की
बढ़ती शुद्धि से उस को उन्नति करें स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त
होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पु-
रुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव
और पल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

पुरुदस्म इत्यस्याग्निर्ऋषिः । दम्पतीदेवते । आर्षो जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पुरुदस्मो विपुरुषु इन्दुरन्तर्माहिमानमानञ्जु धीरः । एकपदी-
न्धिपदीन्धिपदीञ्चतुष्पदीमष्टापदीम्भुवनानु प्रथन्ता ५ स्वाहा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विपुरु-
षः) जिस ने जन्म क्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या विषयों में प्रवेश किया है (इ-
न्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने
द्वारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म से विद्याही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (म-
हिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त
होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करे, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का
विधान कर के जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में
दो अर्थात् संसार सुख और मोक्ष सुख (त्रिपदीम्) जिस से याणी मन और शरीर
तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदी-
म्) और जिस से आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा
ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होने हैं उस (स्वाहा)

पदार्थः—हे (अथमुप) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उत की रक्षा करने (नि-
सुम्पुन) और मन्त्र २ चलने वाले पति आप (निसुम्पुनः) नित्य मन करने और (नि-
वेद्यः) धर्म के साथ नित्य ब्रह्म का सञ्चय करने वाले (भक्ति) हैं । तथा (देयानाम्)
पितृणां के बीच में (मगित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (भक्ति) हैं । हे (देव) सब से
अपनी जय चाहने वाले (देवैः) पित्रान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ
पत्तमान आप जो मैं (देवदत्तम्) कामो पुरुषों या (मर्त्यदत्तम्) साधारण मनुष्यों के
किये हुए (एनः) अपराध को (अयातिपम्) प्राप्त होना चाहूँ उस (पुत्रराज्यः)
बहुत से अपराध करने वालों के (रिपः) धर्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि)
दूर रख ॥ २७ ॥

भाषार्थः—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य मान-
न्दित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूँ वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ
भर मेरी रक्षा करो जिस से मैं वृष्टावरण करने वाले मनुष्य के किये हुए अपराध को
भागिनी किसी प्रकार न होऊँ ॥ २७ ॥

पञ्चतिलस्यात्रिंशत्पिः । दम्पती देवते । पथायमित्यस्यापि सामान्यासुख्युष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः । यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुरदृच्छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

अथ गृहस्य धर्मा में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

एजंतु दशमास्यो गर्भो ज्जरायुणा सह । यथा यं वापुर्जति
यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्त्रं ज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष जैसे । (वायुः) पवन (एजति) कम्पता है या जैसे (स-
मुद्रः) समुद्र (एजति) अपनी लहरी से उछलता है वैसे तुम्हारा (अयम्) यह (द-
शमास्यः) पूर्ण दश महाने का गर्भ (एजतु) कम २ से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ
(अयम्) यह (दशमास्यः) दश महाने में परिपूर्ण हो कर ही (अस्त्रत्) उत्पन्न
होवे ॥ २८ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म से शरीर को पुष्टि, मन को संतुष्टि और विद्या की वृद्धि
को प्राप्त हो कर और विवाह किये हुए जो स्त्री पुरुष हों वे मन के साथ गर्भ को र-
खें कि जिस से वह दश महाने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महाने
से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और इस से
पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८ ॥

यस्या इत्यस्यात्रिंशत्पिः । दम्पती देवते । मुनिगार्थनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्यपरी । अद्भान्पहुता य-
स्यु गम्मात्रा समजीगम् स्वार्हा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते) तेरी (हिरण्यपरी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अद्भुता) सुन्दर सोपे (अद्भानि) अद्भुत हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (स्वार्हा) धर्म युक्त क्रिया से (सम्) (भजीगम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ ॥ २९ ॥

भाषार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहस्थ्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना यीर्ष्य की यद्दती शुद्धि से उस की उत्पत्ति करें स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ की प्राप्त होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और घल घाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

पुरुदस्म इत्यस्याग्निर्ऋषिः । दम्पतीदेवते । आर्षो जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पुरुदस्मो विपुरुष इन्दुरन्तर्भेदिमानमानञ्ज धीरः । एकपदी-
न्दिपदीन्त्रिपदीञ्चतुप्पदीमष्टापदीम्भुवनानुं प्रथन्ताः स्वार्हा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विपुरुषः) जिस ने जन्म क्रम से अनेक रूप रूपान्तर विधा विधियों में प्रवेश किया है (इन्दुः) जो परमैश्वर्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने द्वारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (मदिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करे, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान कर के जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में दो अर्धान् संसार तुल्य और मोक्ष तुल्य (त्रिपदीम्) जिस से वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदीम्) और जिस से आठों अर्धान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होने हैं उस (स्वार्हा)

समस्त विद्या युक्त वाणी को जान कर सय गृहस्थ जन (भुवना) जिन्हें मैं प्राणीमात्र नियास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उस से सय मनुष्यों को (अनु) अनुकूलता से बढ़ायें ॥ ३० ॥

भाषार्थः—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम को विद्या को सय प्रकार जानकर उस के अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उस को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त अङ्ग उपाङ्ग सहित विद्या का ग्रहण करा के उत्तम २ सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥ ३० ॥

मरुतो यस्थेत्यस्य गोतम ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म का विषय कहा है ॥

मरुतो यस्पृ हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो
जनः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (विमहसः) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (मरुतः) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप (दिवः) दिव्य गुण स्वभाष वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त हो (सः) (हि) यह (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी को पालना करने वाला (जनः) मनुष्यों को सेवा के योग्य है ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस वाक्य का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ पेश्वर्य्य सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के बिना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता ॥ ३१ ॥

मरुो यौः पृथिवी च न इमं यज्ञमिमिक्षताम् । पिपृताहो भ-

रिमभिः ॥ ३२ ॥

मरुो यौः पृथिवी च न इमं यज्ञमिमिक्षताम् । पिपृताहो भ-

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों (मरुो) अति प्रशंसनीय (यौः) दिव्य पुरुष को आपत्ति युक्त पति और अति प्रशंसनीय (पृथिवी) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने वादि को सामर्थ्य्य पालो नू (भरीमभिः) धीरता और सय को संतुष्ट कर-
पाले गुणों से युक्त व्यवहारों या पदार्थों से (नः) दमारा (च) औरों का भी (इ-
) इस (यज्ञम्) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (मिमिक्षताम्) सु-
अभिप्रेत और (पिपृताम्) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

उपशान्तेत्यस्य विराडापर्यन्तित् छन्दः । प्रथमः स्वरः ॥

एतद् प्रकृत्यान्तरं से गृह्यन्तु का धर्मं भगले मन्त्र में कहा है ।

भानिष्ठ वृत्रहृत्तर्ष युक्ता ते व्रतंणा हरी । अर्वाचीन ॐ सुते
मन्त्रे प्राचा वृतांनु यन्नुना । उपशान्तमर्वाहीतोऽसीन्द्रांग रथा पोडु-
जिनं पुष ते पानिन्दिन्द्रांग रथा पोडुशिने ॥ ३३ ॥

परार्थः—ॐ (वृत्रहृत्) मन्त्रो को मानने वाले गृहाधमी गृ (प्राचा) मेघ के
गुण गुण परमाने वाला है (ते) तेरे जिन रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा
रथ में (व्रतंणा) उल्ल वा धन से (हरी) प्राण सीर आर्वाचीन अर्धात् गोचने के
समान घोड़े (युक्ता) युक्त किये जाने हैं उस गृहाधम करने को (भानिष्ठ) प्रतिज्ञा
कर इव गृहाधम में (ते) तेरा जो (मन) मन (अर्वाचीनम्) मन्त्रपन को पहुँचाता है
उस को (यन्नुना) देवपत्नी से शास्त्र कर जिन से गृ (उपशान्तगृहांतः) गृहाश्रम
करने को सामग्री प्रहण किये हुए (भवि) है इव कारण (पोडुशिने) सोलह क-
लाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमेभ्यर्ष्य देने वाले गृहाधम करने के लिये (रथा) तुदा
को शास्त्र देता है ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस
गृहाश्रम को सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमे-
भ्यर्ष्य पाने के लिये गृहाधम हो सेवना उचित है ॥ ३३ ॥

गुह्याहित्यस्य मधुच्छन्दा प्रापिः । गृहपतिर्देवता । विराडापर्यन्तुष्टुप छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । उपशान्तेत्यस्य पूर्वपच्छन्दः स्वरश्च ॥

अथ राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म भगले मन्त्र में कहा है ॥

गुह्या हि क्रैशिन्या हरी वृषंणा कक्षुभ्रा । अर्था न इन्द्र सोम-

पा गिरामुपश्रुतिञ्चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा पोडुशिनं
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा पोडुशिनं ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले तुम (केशिना) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन (वृषणा) बँल के समान बलवान् (कश्यपा) अमीए देश तक पहुँचाने वाले (हरी) चलाने हारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युश्व) जोड़ी (अथ) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिराम्) विनयपत्रों को (उपश्रुतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानो । आप (उपयामगृहोतः) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (अति) हैं इस कारण (पोडुशिनं) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझे को उपदेश करता हूँ कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (पोडुशिनं) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (त्वा) तुझे आज्ञा देता हूँ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में पिछले मंत्र से “ रथे ” यह पद अर्थ से आता है । प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आप को शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और धल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य की रक्षा करना चाहिये ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराड्वाच्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः
स्वरः । उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्वपत् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रमिन्द्रां बहुनाऽप्रतिघृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुपं
यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा पोडुशिनं
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा पोडुशिनं ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले समाध्यक्ष आप जो (हरी) हरण कारक बल और आकर्षण रूप घोड़ों से (अप्रतिघृष्टशवसम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को (यहनः) बढ़ाते हैं उन से उक्त होकर (ऋषीणाम्) वेद मन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) यों के (स्तुति) गुणों के (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) संगम करने योग्य व्यवहार

और (च उन की पालना करो और (उप) समीप प्राप्त हो जिस (ते) तेरा (पयः) यह (योनिः) निमित्त राज्य धर्म है जो तू (उपयामगृहीतः) सय सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा) तुझ को (षोडशिने) षोडश कलायुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपाः) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है । राजा राज्य कर्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को योग्य यह है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥ ३५ ॥

यस्मान्नेत्यस्य विषयवान् ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिगोप्यं

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर हाँ की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आशिवेश भुवनानि वि-
इषां । प्रजापतिः पूजयां सधै रगणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स
षोडशी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (पर) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विद्या) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आशिवेश) व्याप्त हो रहा है (स) यह (प्रजया) सय संसार से (सं-
राणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वाय्यं तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संहार मात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रोगिण) तीन (ज्योतींषि) ज्योति अर्थात् सूर्य विजुली और अग्नि को (सचते) सय पदार्थों में स्थापित करता है ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जो सर्वत्र व्याप्त सय लोकों का रचने और धारण करने वाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसाही बना रहता है सत् अविनाशो चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध युद्ध मुक्त स्वभाष और सय पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटा पड़े से बड़ा राशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम या जिस के समान नहीं है उस की उपासना करें ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः । सम्राट् माण्डलिकी राजानो देवते ।
 साम्ना विष्टु छन्दः । तयोरहमित्यस्य विराडाचो विष्टु छन्दः ।
 धेयतः स्वयः ॥

अथ गृह्याश्रम के उपयोगो राजविषय की अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च सम्राट् पर्यवश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रं पृतम् ।
 तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु
 सह पाणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य युक्त (च) राज्य के भोग, हित (सम्राट्) सब जगह एक चक्र राज करने वाला राजा (वदणः) (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) दोनों (अत्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (पृतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) टै (भक्षयामि) सेवन करके कराऊँ । ऐसे करते हुए हम तुम सब को (सोमस्य) विचारणीय ऐश्वर्य्य के वीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विषयों के प्रकाशक (वाक्) वेदयाणी है उससे (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥ ३७ ॥

भाष्यार्थः—प्रजा के वीच अपनी २ सभागों सहित राजा होने के योग्य होकर एक चक्रपत्ती अर्थात् एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो पृथक् २ का ईश्वर ही ये दोनों प्रकार के राजा जन उत्तम २ न्याय नम्रता सुरीला और धीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजा जनों से परमोत्तम राज्य कर लें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्यवचन का आचरण एवं प्रकार धर्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोष देकर आप संतोष करने के पताल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥ ३७ ॥

अग्नेपथस्येत्यस्य वैश्वानर ऋषिः । राजादयो गृहपतयो देवताः । भुक्तिर्विष्णुः ।

गायत्री छन्दः । पङ्क्तः स्वयः । उपयामेत्यस्य स्वराडाच्यनुष्टुप्छन्दः ।

अग्नेवर्चोऽपि त्रित्यस्य भुक्तिर्गान्धर्वनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वयः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अग्ने पर्वश्च स्वपां अस्मे वर्चः सुनीर्यम् । दर्शद्विष्मपि के
 पम् । उपयाममर्गहीतोऽप्यग्नये स्वा वर्चंस एष ते योनिर्गनपंत्वा

वर्चसे । अग्नें वचंसिधुन्वनीशुं स्वयन्देवेषामि वचंस्यान्हम्मनु-
ष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) उत्तम २ काम तथा (वर्चंसिधुन्) सुन्दर प्रकार से वेदा-
पठन करने वाले (अग्ने) समापति साथ (वरचसे) हम लोगों के लिये (वचंसिधुन्)
उत्तम पराक्रम (वर्चः) देव का पढ़ना तथा (मयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अरमदादि
जन में (रयिम्) घन और (पयम्) पुष्टि को (वधर्) धारण करते हुए (पयस्य)
पवित्र इतिव (उपमानचूरीत) राज्य व्यवहार के लिये हम ने स्वीकार किये हुए
(वसि) साथ हैं (त्या) तुम को (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (आ)
या विद्वान्युक्त परमेश्वर को प्राप्ति के लिये हम स्वोन्नत करते हैं (ते) तुम्हारी (पयः)
यद् (योनि) राजभूमि निवास स्थान है (त्या) तुम को (वर्चसे) हम लोग अ-
पने विद्या प्रकाश सब प्रकार तुम के लिये बार ० प्रदेश कामों में प्रार्थना करते हैं ।
हे तेजधारी समापने राजन् ! जैसे (वधुन्) साथ (वधेषु) उत्तम २ विद्वानों में (वर्च-
स्यान्) प्रार्थनायोग विद्याध्ययन करने वाले (अग्नि) हैं वैसे (अहम्) मैं (मनुष्येषु)
विचारणीय पुरुषों में साथ के सदृश (भूयासम्) होऊँ ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—राजा आदि सभ्यजनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम २ विद्या
और अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिससे समस्त लोग अंश गुण और कर्म प्रचार करने
में उत्तम हों ॥ ३८ ॥

वसिष्ठप्रियस्य दैत्यान् ऋषिः । राजादयो गृहस्था वंशताः । उचित्प्रियायसोपेत्येतस्य
घायो गायत्री उम् । पद्भ्यः स्वरः । इन्द्रत्वस्यार्चुष्णिक् छन्दः ।

प्रथमः स्वरः ॥

किर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसिष्ठोऽज्ञोर्जसा सह पीतवी जिघ्रं अवेपथः सोममिन्द्र चमू
सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांघ र्यांजस एष ते योनिरिन्द्रांघ
त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठैत्यन्देवेष्वस्यौजिष्ठौऽहम्मनुष्येषु
भूयासम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य रखने वाले या ऐश्वर्य में रमने वाले समापति साथ
(चम्) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) सोम को (पीतवी)
पी के (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (वसि-
ष्ठम्) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (जिघ्रं) मुझादि

कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अघेपयः) फंफाओ अर्थात् यथायोग्य कर्मों में अङ्गों की चेष्टा करो । हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर को प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं । हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं की जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊँ ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन बस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उन्नति दें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कर्मी न प्रवृत्त हों और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥ ३९ ॥

अष्टश्रमित्यस्य प्ररुक्त्व ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अष्टश्रमित्यस्य
सूर्य्यंत्यस्य चार्षी गायत्री । उपयामगृहीतोसीत्यस्य स्वराढार्षी गायत्री
उन्दः । पङ्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वांक विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अष्टश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनुँ २॥ अनुं भ्राजन्तो अग्नयो
यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय
त्वा भ्राजाय । सूर्य्यं भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्यं देवेष्वसि भ्रा-
जिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—जैसे (असि) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जानने वाले (अग्नयः) सूर्य्यं विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (अनात्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अष्टश्रम्) मैं दिवालाऊँ है सभापते । आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं जिन (ते) आपको (पयः) यह राज्य कर्म (योनिः) पेश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्याय) प्राण के लिये चिताता हूँ तथा उन्हीं आप को (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्याय) नराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूँ । हे (भ्राजिष्ठ) पराक्रम से प्रज्जशमान (सूर्य्यं) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्र-
• जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) स्वस्व विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान

(भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित हैं जैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भू-
पासम्) प्रकाशमान होऊँ ॥ ४० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे इस संसार में सूर्य की किरण
सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद जन शुभ गुण कर्म
और स्वभावों में प्रकाशमान हों क्योंकि ऐसा है कि मनुष्य शरीर पाकर किसी उत्साह
पुरुषार्थ सःपुरुषों का संग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म
अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दु-
र्लभ नहीं है इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न
किया करें ॥ ४० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्य ऋषिः । सूर्यो देवता । पूर्वस्य निवृत्तार्थी । उपयामे-
त्यस्य स्वराडार्थी गायत्री च छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

अथ ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदुत्यं जातयेदसं देवं वहन्ति कृतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम्
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैप ते पौनिः सूर्याय त्वा
भ्राजायै ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(जातयेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता या प्राप्त कराता या
वेद और संसार के पदार्थ जिस से उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्ध स्वरूप जगदीश्वर !
जिस को (विश्वाय) संसार के उपकार के लिये (दृशे) ज्ञान चन्द्र से देखने को (के-
तवः) किरणों के तुल्य सूर्य अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत्) (वहन्ति) अपने
उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उन
जगदीश्वर को हम लोगःप्राप्त हों । हे जगदीश्वर ! जो आप हम लोगों में (भ्राजाय)
प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्याय) प्राण के लिये (उप-
यामगृहीतः) धर्म नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वोत्कार किये हुए
(असि) हैं उन (त्वा) आप को उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वोत्कार करें और
हे ईश्वर ! जिन (मे) आपका (पपः) यह कार्य और कारण की व्याप्ति से एक अ-
नुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) प्रकाशमा-
न (सूर्याय) ज्ञानरूपी सूर्य को पाने के लिये एक कारण जानने दें ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुशुद्ध मार्ग से परमेश्वर को जा-
नकर उत्तम ज्ञान से उनका सेवन करने हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपाम-

नीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है जैसे ज्ञान के बिना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सके क्योंकि विज्ञान ही उसकी अर्पि है ॥ ४१ ॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुमविन्दु ऋषिः । पत्नी देवता । स्वराद्ब्राह्म्यु णिष् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म में स्त्री के उपदेश विषय की अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ जिघ्र कुलशम्भुषा त्वां विशन्तिस्वन्दयः । पुनरूर्जा निध-
त्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्योरुधारा पर्यस्वती पुनर्मां विशताद्भयिः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री ! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी २ शिक्षाओं को अत्यन्त धारण करने (पर्यस्वती) प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कुलशम्भु) नवीन घट का (आजिघ्र) आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उस को उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्) असंख्यात (इन्दयः) सोम आदि ओपधियों के रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निर्यतस्व) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो । तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुक्ष्य) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें जैसे ही अपने पति को भी खिलायें कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहे ॥ ४२ ॥

इद्वेरन्ता इत्यस्य कुसुमविन्दुऋषिः । पत्नी देवता । आर्यपङ्क्तिरुच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

किर भी प्रकाशान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडे रन्ते हृद्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतिऽदिते सरस्वति महि विश्रु-
ति । एता तैऽअद्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं व्रतात् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अद्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुण युक्त (हृद्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छों बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी

उत्तम गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुत्तम्) उत्तम उपदेश (प्रतात्) किया कर ॥४३॥

भाषार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पति और अन्य सभ स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म गिरालाये जिस से किसी तरह ये अधर्म की धोर न हिनै वे दोनों स्त्री पुण्य विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें ॥ ४३ ॥

विन इत्यस्य शासकऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुपुष्टु छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडापीं गायत्री छन्दः । षड्ज. स्वरः ॥

अथ सिंह जेमे पीठे लीट कर देगता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ प्रतन्युना । यो अस्माँ २ ॥
अभिदासत्पथरङ्गमया तमः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा वि-
मृधे पुप ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हं (इन्द्र) सेनापते । तू (नः) हमारे (प्रतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना को इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) यश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सभ प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्) अधोगति को (गमय) प्राप्त कर जिस (ते) तेरा (एपः) उक्त कर्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ (अस्ति) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमृधः) जिस में षडे २ युद्ध करने वाले शत्रु जन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वाकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमृधे) जिस के शत्रु नष्ट होगये हैं (इन्द्राय) उस राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म से अपना वर्ताव न बर्ते ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—जो खोटे काम करने वाला पुण्य अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सभ को दुःख देना चाहे उस को राजा सभ प्रकार से दण्ड दे तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उस को मार डाले अथवा नगर से इस की दूर निकाल बन्ध रखे ॥ ४४ ॥

वाचस्पतिमित्यस्य शासकऋषिः । ईश्वर सभैशौ राजानौ देवते । भुरिगार्थो त्रिपुष्टु छन्दः । उपयामेत्यस्य स्वराडापींनुपुष्टु छन्दः । आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च ॥

आय गृहभक्तं मं राजा भीरु ईश्वर का नियम भगते मन्त्र में गदा है ॥

प्रायस्परिनिं विद्वक्कर्मणांमृगमं मनोजुयं याजे अथा हुवेम । स
नो विद्वानि ह्यनानि जापतिद्वन्नाम्भूरगं साधुकर्म । उपया-
मगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विद्वक्कर्मण एव ते योनिरिन्द्राय त्वा
विद्वक्कर्मणे ॥ ४५ ॥

पदार्थ - हम (अथ) अथ (याजे) विज्ञान या गुण के निमित्त जिन (याचः)
प्रेमपूर्णों के स्वामी या रक्षा करने वाले (विद्वक्कर्मणाम्) जिन के सब धर्मयुक्त कर्म
हैं जो (मनोजुयम्) मन चाहती गति का जानने वाला है उस परमेश्वर या समाप-
ति को (हुवेम) चाहते हैं मो भाग (साधुकर्मा) अच्छे २ कर्म करने वाले (विद्व-
क्कर्मणः) समस्त गुण को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर या समापति (नः) हमारे
(अथते) प्रेम बढ़ाने के लिये (विद्वानि) (ह्यनानि) दिये हुए सब प्रार्थना वचनों
को (जापत्) प्रेम से माने जिन (ते) आप का (परः) यह उक्त कर्म (योनिः)
एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए
(असि) हैं इस से (विद्वक्कर्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय)
पेश्वर के लिये (त्वा) आप को प्रार्थना तथा (विद्वक्कर्मणे) समस्त काम की सिद्धि
के लिये शिल्पकिया कुशलता से उत्तम पेश्वर्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥४५॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जो परमेश्वर या न्यायाधीश समापति हमारे
के किये हुए कामों की जाच कर उन के अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता
है जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता जिस परमेश्वर
वा समापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धर्मशील होता
है यही ईश्वर परमार्थसिद्धि या समापति व्यवहार सिद्धि के निमित्त हम लोगों को
सेवने योग्य है ॥ ४५ ॥

विद्वक्कर्मण्यस्य शास ब्रह्मिणः । विद्वक्कर्मन्द्रो देवता । भुरिगार्पा त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडाप्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मन्हृषिषा वरुणेन ज्ञातार मिन्द्रमकृणोरवधयम् । त-
स्मै विशः समनमन्त पूर्षारुपमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयाम-
गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एव ते योनिरिन्द्राय त्वा वि-
द्वक्कर्मणे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) समस्त अच्छे काम करने वाले जन आप (वर्जनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) प्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म से रहित (इन्द्रम्) परम देवद्वय देने तथा (प्रातारम्) संमस्त प्रजा जनों की रक्षा करने वाले समापति को (भद्राणोः) कीजिये कि (तस्मै) उसे (पूर्वाः) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं की रक्षा की हुई है वे (विशः) प्रजाजन (समनमन्त) अच्छे प्रकार माने जैसे (अयम्) यह समापति (इन्द्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार धमकाती और (विह्वल्यः) शमेक प्रकार के राज्य साधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखने वाला (अस्तु) हो जैसे प्रजा भी इस के साथ बतें ऐसी युक्ति कीजिये (उपयामगृहीतोः) यहाँ से लेकर मंत्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा समाप्यक्ष को न मूले किन्तु उन की अनुमति में सब कोई अपना २ पक्षों पर प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी अर्थि को नहीं पहुँचता है और ईश्वर या राजा के बिना प्रजा जन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते इस से प्रजा जन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म के साथ अपना पक्ष रखें ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोऽसौत्यस्य शासः ऋषिः । विश्वकर्म्मोऽग्रे देवता । विराट् ऋषी
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर मो प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्युग्रवे तथा गायत्र्यच्छन्दसङ्गृह्णामीन्द्राव
तथा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्स्था द्वेषेभ्यो जगच्छन्दसङ्गृ-

ह्णाम्यनुष्टुप्छन्दसमिन्द्रः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) अच्छे २ कर्म करने वाले जन ! मैं जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान दुबाने वाला (अमिन्द्रः) सब प्रकार से विचारात् अज्ञानता वाप्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेद मंत्र गायत्री छन्द के अर्थ को जानाने वाले (तथा) आप को (अग्रवे)—अग्नि आदि पदार्थों के गुण आतने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ या (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम देवद्वय देने वाले त्रिष्टुप् छन्द पुनः वेद मंत्रों का अर्थ कराने हारे (तथा) आप को (इन्द्राय) परम देवद्वय की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ (जगच्छन्दसम्) समस्त ज-

पदार्थों की धारणा (स्याद्वा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य किया हो। तुम (इह) इम गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विधाहित स्त्री है उस (माध्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धर-णम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपरुजन्) उत्पन्न कर और यह (धरणः) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पाने। वैसे (अस्मात्तु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन को (पोषम्) समृद्धि को (स्याद्वा) सत्य भाष से (क्षीघरत्) उत्पन्न कीजिये ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—जय तक राजा आदि सभ्यजन या प्रजाजन सत्य धैर्य या सत्य से जोड़े हुए पदार्थ या सत्य व्यवहार में अपना यत्न न रखें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जय तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

सन्नस्यैत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्व्येता । भुरिगार्पो वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सन्नस्य ऋद्धिरुस्पगन्म ज्योतिरुमृता अभूम । दिवं पृथिव्या
अध्याह्नमामिदाम देवान्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (सन्नस्य) प्राप्त हुए राज प्रजा व्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धि रूप (असि) हैं आप के सङ्घ से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होंगे और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अध्या-म) पूर्ण वृद्धि को पहुंचें (देवान्) विद्वानों दिव्य २ भागों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अधिदाम) प्राप्त होंगे ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—जय तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा या आत विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्बिघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

युधमित्यस्य देवा ऋषयः । गृहपतयो देवताः । पूर्वशार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः

स्वरः । दूरेत्यस्यामुयुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजा-पत्या वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूमिषित्यस्य विराट्प्राजापत्या

पद्वक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रोम्प बल पराक्रम धोरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजा पालन में प्रीति हो उसी को समा का अधिपति राजा मानें ॥ ४९ ॥

उशिक्वमित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडापां जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उशिक्व त्वन्देव सोमार्गनेः प्रियम्पाथोऽपीहि वशी त्वन्देव सो-
मेन्द्रस्य प्रियम्पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वन्देव सोम विश्वेषाम्देवा-
नाम्प्रियम्पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य गुण सम्पन्न (सोम) समस्त ऐश्वर्य्य युक्त राजन् ! आप (उशिक्व) अति मनोहर होके (अग्ने) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) रक्षा योग्य व्यवहार को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त करो और जानो हे (देव) दानशील (सोम) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले आप (वशी) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य वाले धार्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अपि) निश्चय से (इहि) जानो-हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐश्वर्य्य युक्त आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के मित्र हैं ऐसे आप होकर (विश्वेषाम्) समस्त देवानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने हारें (पाथः) विज्ञान के आचरण को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ॥ ५० ॥

भाषार्थः—राजा राजपुरुष समासद् तथा अन्य सय सज्जनों को उचित है कि पु-
दपार्थ, अच्छे २ नियम और मित्रभाव से धार्मिक धेव के पारगन्ता विद्याओं के मार्गों को चले क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये बिना कोई विद्या धर्म सय से एक प्रीति भाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ॥ ५० ॥

इह रतिरिह रंगच्छमिह घृतिरिह स्वर्गः । उषसृजन्धु-
र्णम्रात्रे धरुणोः सातुं चरुं । रायसोः पमसासुं दीधरुत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

निपादः म्बरः ॥

अथ गार्हस्थ्य धर्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इह रतिरिह रंगच्छमिह घृतिरिह स्वर्गः । उषसृजन्धु-
र्णम्रात्रे धरुणोः सातुं चरुं । रायसोः पमसासुं दीधरुत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो तुम लोगों की (इह) इस गृहाध्यय में (रतिः) प्रीति (इह) इत में (घृतिः) सब व्यवहारों को धारणा (इह) इसी में (स्वर्गः) आने

पिताको ही प्रजा (प्राजा) नाम मुन्धारी मन्त्र वाली और मन्त्र दिया हो। तुम (इह) इस मन्त्रमय में (मन्त्रम्) मन्त्र करो। हे सृष्टाधर्म्य पुत्र वृ मन्तानों की माता जो कि जैनी विद्वान्मन्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धत्-पन्) मन्त्र प्रजात से प्राप्त होना कराने योग्य मन्त्र को (उपगृह्णन्) उत्पन्न कर और यह (प्राजाः) वह तुज वाला पुत्र (मातरम्) उस बननी माता का (धयन्) दूध पाने। पाने (सम्भान्तु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन को (पोषम्) समृद्धि को (प्राजा) मन्त्र भाव से (दीपयन्) उत्पन्न कीजिये ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—जब तक राजा यादि सम्पन्न वा प्रजाजन सत्य धैर्य या सत्य से लोहे हुए पदार्थ या मन्त्र व्यवहार में अपना यत्नाय न रखे तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकने और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष गिता और पुत्र के तुल्य पश्य प्रीति और उपकार नहीं करने तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

मन्त्रोऽस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्वेवता । भुविर्गार्थो वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी सृष्टियों के विषय में विशेष उपदेश भगले मन्त्र में किया है ॥

सृजन्म्य ऋक्षिरुस्पगंन्म ज्योतिरुमृता अभूम । दिवं पृथिव्या
अप्याहंमामाविंदांम देवान्स्सुज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (सत्स्य) प्राप्त हुए राज प्रजा व्यवहाररूप वज्ञ के (ऋक्षिः) समृद्धि रूप (मति) हैं आप के सङ्घ से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकार को (मगन्म) प्राप्त हार्य और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुँचें (देषान्) विद्वानों दिव्य २ भागों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होयें ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—जब तक स्व को रक्षा करने वाला धार्मिक राजा या यात विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

सुर्षामत्यन्त देवा ऋषयः । गृहपतयो देवताः । पूर्वस्थार्थनुष्ठुप् छन्दः । गान्धारः
स्वरः । दूरेवेत्यस्यारुमुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजा-
पत्या वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूभुषित्यस्य विराट्प्राजापत्या

पङ्क्तिदछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को भगले मन्त्र में कहा है ॥

गृहन्तमिन्द्रापर्यता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपु तन्तमिद्धं
 वज्रेण तन्तमिद्धं तम् । दूरे चत्तार्यं छन्तसुद् गहनं यदि नक्षत् । अ-
 स्माकम् शत्रून् परि शूर विद्वतों दृम्मां दर्षीष्ट विद्वतः । भू-
 र्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्पाम सुवीरां वीरैः सुपोषाः
 पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) युद्ध समय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्यता) सूर्य
 और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युष्म) तुम दोनों (यः) जो (नः)
 हमारी (पृतन्यात्) सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी २ को (वज्रेण)
 शस्त्र और अस्त्र पिघा के बल से (इतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) ह-
 मारे शत्रुओं को (गहनम्) दुर्जय सेना हमारी सेना को (नक्षत्) व्याप्त हो और
 (यत्) जो २ (छन्तसु) बल को बढ़ावे उस २ को (चत्तार्य) आनन्द बढ़ाने के
 लिये (इद्धतम्) अवश्य मारो और (दूरं) दूर पहुंचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को
 सुप्त से बचाने वाले समापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विद्वतः) सब
 प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग (भूः) इस भूलोक
 (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) मुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुख रूप लोक
 में (प्रजाभिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों
 से (सुवीराः) बहुत अच्छे २ वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) भ-
 च्छो २ पुष्टि वाले (विद्वतः) सब ओर से (स्पाम) होयें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—जब तक समापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी
 न हों तब तक सेना और आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के
 पिना कभी विजय नहीं होता । तथा जब तक शत्रुओं को निर्मूल करने हारे समा-
 पति आदि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी
 हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्युष्णिक् छन्दः ।
 ऋपमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृताष्टामन्यो अन्तैतः ।
 सविता सन्वां विद्वकर्मर्मा दीक्षावांस्पृषा सौमि कथंणाम् ॥२४॥

पदार्थः—हे गृहरूपो ! तुम ने यदि (व्याहृतायाम्) उच्चारित उपविष्ट को छुई (याची) वेदयाणों में (परमेष्ठी) परमानन्द स्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विद्वक्कर्मा) सब विद्या और कर्मों को जानने वाले सर्पया श्रेष्ठ समापति को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमकल्प्याम्) पेश्वर्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने द्वारे उत्तम पेश को भीर (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सपिता) सब जगत् का उत्पादक (अभिर्घातः) सुविचार से धारण किया (गन्धः) उत्तम सु-संस्कृत मन्त्र का सेवन किया तो सदा सुखी हों ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—जो इंद्रवर येद विद्या से अपने सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म स्वरूपों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के बिना निरन्तर सुख क्योंकर हो सकता है ॥ ५४ ॥

इन्द्ररघेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राद्यथो देवताः । भार्गो पङ्क्तिरुत्तमः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषयों को भगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रंश्च मरुतंश्च क्रुपायोपोत्थितोऽसुरः पृष्यमानो मिश्रः क्रीतो
विष्णुः शिपिविष्ट ऊरायासंनो विष्णुर्निरन्धिषः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग ! जो विद्वानों ने (क्रुपाय) व्यवहारसिद्धि के लिये (इन्द्रः) पित्रुष्ठी (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पृष्यमानः) स्तुति के योग्य (मिश्रः) सजा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णुः) सर्व शरीर व्याप्त घनजय वायु और इन में से एक २ पदार्थ (नरन्धिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साष्टी (विष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) टापने भादि क्रियाओं में (नासन्नः) संनिकट वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में बर्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित भूमि भादि पदार्थों की क्रिया कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

प्रोक्षमाणेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः निरयेदेवा गृहरूपा देवताः । भार्गो बृहती उम् ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को भगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणमांशः सोम आगतो वर्हण आसन्ध्यामासंघोऽग्निराग्नी-
ध्र इन्द्रो हृदिर्दानेऽधर्वापावहृष्यमाणः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की छष्टि में (आसन्ध्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) बाया हुआ पुण्य जैसे विराजमान हो जैसे (प्रोक्षमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) ऐश्वर्य का समूह (वर्हणः) सहायकारी पुण्य के समान जल का समूह (आग्नेधिं) बहुत रन्ध्रों में, (अग्निः) अग्नि (उपावहृष्यमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अधर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हृषिर्दाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) विजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥ ५१ ॥
भाषार्थः—तर्क के बिना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के बिना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥ ५१ ॥
विश्वेदेवाश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक्साज्ञी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अथ गृहस्थ कर्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है ॥
विश्वे देवा अशुपु न्युप्तो विष्णुराग्नीतपा आप्यायमानो
यमः सूपमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः ।

शुक्रः क्षीरध्रामन्धी संक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥
पदार्थः—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारा जो (अशुपु) बाला २ संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आग्नीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाला विजुली (आप्यायमानः) बलि बढ़ हुए के समान (यमः) सूर्य (सूपमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (सम्भ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्ट किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शीघ्र चेष्टा करने हारा और (मंधो) थिलीड़ने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) सुधादि पदार्थों को पकाने और (संक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥
भाषार्थः—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब छष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥
विश्वेदेवाश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । भुरिक्साज्ञी जगती छन्दः ।
निपादः स्वरः ॥

निर प्रभारान्तर में विद्विज्जिय को अगले मंत्र में कहा है ॥

विश्वे देवाग्भ्रंमसेपूहीनोऽमुर्होमायोर्द्यंतो रुद्रो ह्युमानो वा-
गोऽभ्यार्हतो नृचक्षाः प्रतिरुपातो भ्रक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नारा-
शुंमाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने यज्ञ विधान से (चमसेपु) मेघों में सुगन्धि धादि
यन्तु (वर्षातः) ऊँचे पहुँचाया (वसुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे पक्ष में
लगा रक्षणा (रुद्र) जीव को पवित्र कर (ह्युमानः) स्वाँकार किया (नृचक्षाः)
मनुष्यों को प्रमद करने वाला (प्रतिरुपातः) जिन्होंने वादायुवाद से चाहा (वातः)
वाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (भक्ष्यमा-
णः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) चाहिये (नाराशंसा) प्रशंसा कर म-
नुष्यों के उपदेशक (विरचेदेवाः) सप्त विद्वान् (पितर) उन सप्त के उपकारकों को
ज्ञानों समझने चाहिये ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने सुगन्धि
पुष्टि मधुरता और रोग नाशक गुण युक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में
उत्पन्न होम कर शुद्ध वायु धर्या का जल या ओषधियों का सेवन कर के शरीर को
धारोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५८ ॥

सप्त इत्यस्य यतिष्ठ प्रपिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षो बृहती छन्दः । निपादः

स्वरः । यापल्येतेत्यस्य चिराद्दर्षो गायत्री छन्दः । पद्भजः स्वरः ॥

अथ गृहस्थ के कर्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुप्तः सिन्धुरथभृथापोर्द्यंतः समुद्रोऽभ्यवधिष्यमाणः सलिलः
प्रहृतो यपोरोजंसा एकभिता रजांसि धीर्भिर्धीरतमा शधि-

ष्ठा वा पश्येते अग्रंतीता सहोभिर्विष्णुं अग्रन्वरुणा पूर्वहृतौ ॥५९॥

पदार्थः—जिन्होंने (अथभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र क-
रने के लिये (अभ्यवधिष्यमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है
यह व्यवहार (उद्यतः) नियम से खंपादन किया (सिन्धुः) नदियाँ (सप्तः) निर्मा-
ण कीं (समुद्रः) समुद्र (प्रहृतः) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग
(ययोः) जिन को (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (एकभिता)
स्थित हैं (या) जो (धीर्भिः) और पराक्रमों से (धीरतमा) अत्यन्त दौर (श-

विद्या) नित्य बल संपादन करने वाले (सहोमिः) बलों से (अप्रतीता) मूर्खों
 जानने अयोग्य (विष्णु) व्याप्त होने हारे (परुणा) अतिश्रेष्ठ स्वोकार करने
 (पूर्वहृत्) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (प्रत्येते) श्रेष्ठ
 को प्राप्त होते हैं उन यज्ञ कर्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को (अगन्) प्राप्त
 वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—यज्ञ आदि व्यवहारों के बिना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ॥ ५१ ॥
 देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराद् साम्नां प्रिष्टुप् ऋषिः
 धैयतः स्वरः ॥

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवोन्दिबमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्ट मनुष्यान्तरिक्षम्
 यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्ट पितृन् पृथिवीमगन् यज्ञस्ततो मा द्र
 णमष्ट यं कं च लोकमगन् यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो (यज्ञः) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के
 और (देवाम्) दिव्य भोगों को प्राप्त करता है जिस को विद्वान् लोग (अगन्)
 हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) विद्यादि गुण (अष्टु) प्राप्त
 (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघ मण्डल और (मनुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त
 है जिस को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को
 विणम्) धनादि पदार्थ (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्)
 और (पितृन्) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है जिस को प्राप्त लोग
 प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋतु
 (अष्टु) प्राप्त हो जो (यज्ञः) यज्ञ (कम्) किसी (च) (लोकम्) लोक
 होता है (यम्) जिस को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस
 मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हो ॥ ६० ॥

भाषार्थः—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों
 त करना चाहिये ॥ ६० ॥

अनुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । साम्न्युष्णिक् ऋषिः
 अ पमः स्वरः ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा

यमेस्त्रिषुऽन्नन्तयो ये विंशतिरे य इम यज्ञश्च्यधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नं सम्येनर्दयामि स्वाहा यमां अप्येनु देवान् ॥ ६१ ॥

पदार्थ—(ये) जो (यन्त्रिंशत्) बाटों यन्त्र ग्याह मद्र बारह आदित्य इन्द्र
प्रजापति और प्रवृत्ति (तन्त्रः) मद्र के गान (यज्ञम्) सुप्त उपस्र करने हारे
यज्ञ को (विंशतिरे) विस्तर करने है अथवा (ये) जो (च्यधया) अन्न आदि उ-
पान पदार्थों से (इन्म्) इन यज्ञ को (ददन्ते) देते हैं (तेषाम्) उन का जो (छि-
न्नम्) अन्न किया हुआ यज्ञ (पत्तु) उस को (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से
(यम्) (दयामि) इकट्ठा करता हूँ (उ) और यही (धर्म्मः) यज्ञ (देवान्) वि-
द्वानों को (अपि) निश्चय से (प्तु) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चीनीस ३४ तत्त्व कारण हैं उन के गुण
और दोषों को जो जानते हैं उन्हीं को सुप्त मिलता है ॥ ६१ ॥

यज्ञस्येवम्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वगङ्गायं त्रिदुष्यन्दः । धैयनः स्वरः ॥
फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान । स
पञ्च धुक्ष्य महि मे प्रजायाश्च गायस्पोषं विश्वमागुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

पदार्थ—दे (यज्ञ) सङ्घटित करने योग्य यिद्वन् आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरु-
त्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अष्टधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार
का (दोहः) परिपूर्ण सामग्री समूह है (सः) एह (दिवम्) सूर्य के प्रकाश को
(अन्वाततान) ढाप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य के प्रकाश में यज्ञ
करने वाले गृहस्थ त् उस यज्ञ को (धुक्ष्य) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्)
प्रजा में (विश्वम्) सब (महि) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) स-
मृद्धि को वा (आयुः) जीवन की वार २ विलारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्य-
युक्त क्रिया से (वशीय) प्राप्त होऊँ ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का धारम्भ और समाप्ति को करे और
संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुंचाये ॥ ६२ ॥

आपवस्थेत्यस्य कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वगङ्गायं गायत्री छन्दः ।
पञ्चः स्वरः ॥

मनुष्य किन के तुल्य यज्ञ का सेवन करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ पवस्व हिरण्यवत्सोम धीरधत् । वाजं गोमन्तमा
मरु स्वाहा ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू (स्वाहा) सत्य वाणी या सत्य कृत्या से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अथवत्) अथ आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अन्नादि मय यज्ञ का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पवस्व) पवित्र कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को एकट्ठा कर छोड़े आदि उत्तम पशुओं को रखें तदनन्तर वीरों को रखें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रम रूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम को उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ धर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार गृहस्थ धर्म का वर्णन राज प्रजा और समापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथ नवसाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परांसुष । पद्भ्रं तन्न आसुष ॥ १ ॥

देवसवितरित्यस्य इन्द्रावृहस्पती ऋषी । सविता देवता ।

स्वराडायां त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग चक्रयतः राजा को कैसा २ उपदेश करें इस विषय को भगले मंत्र में कहा है ॥

देव सवितुः प्रसुष यज्ञं प्रसुष यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्ध
र्षः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजंज्ञः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणयुक्त (सवितः) संपूर्ण ऐश्वर्य्य वाले । राजन् भाप (भगाय) सध ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) घेद्र वाणी से (यज्ञम्) सध को सुप देने वाले राज धर्म का (प्र) (सुष) प्रचार और (यज्ञपतिम्) राज धर्म के रक्षक पुरुष को (प्र) (सुष) प्रेरणा कीजिये जिस से (दिव्यः) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गन्धर्षः) पृथिवी को धारण और बुद्धि को शुद्ध करने वाला (वाचस्पतिः) पढ़ने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक समापति राज पुरुष है यह (नः) हमारे (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे और हमारे (वाजम्) गध को सत्य वाणी से (स्वदतु) शच्छे प्रकार भोगे ॥ १ ॥

भाषार्थः—न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १ ॥

ध्रुवसदन्तेत्यस्य वृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदमिति पूर्वगायत्रीवृत्तिरष्ट-
न्दः । पंचमः स्वरः । ध्रुवसदमित्यस्य चित्तिरष्टन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याधिकार में स्वीकार करें इस विषय को भगले मंत्र में कहा है ॥

ध्रुवसदन्तथा नृपदंमनुः सदमुपग्रामगृहीतोऽमीन्द्राय स्वा जुष्टं
गृहाम्पेय ते योन्निरिन्द्राय स्वा जुष्टंमम । अप्सुपदं स्वा घृतसदं
प्योमसदमुपग्रामगृहीतोऽमीन्द्राय स्वा जुष्टं गृहाम्पेय ते योन्नि-

रिन्द्राय त्वा जुष्टं तमम् पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं
 देवसदं नाकसदं सुपद्यामगृहीतोऽसिन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येव ते
 योऽनिरिन्द्राय त्वा जुष्टं तमम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे चक्रवर्ति राजन् । मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो
 आप (उपयामगृहीतः) योग विद्या के प्रसिद्ध अंग यम के सेषने वाले पुरुषों ने स्वी-
 कार किये (असि) हो । उस (ध्रुवसदम्) निश्चल विद्या विनय और योग धर्मों में
 स्थित (नृपदम्) नायक पुरुषों में अवस्थित (मनः सदम्) विज्ञान में स्थिर (जुष्ट-
 म्) प्रीतियुक्त (त्वा) आपका (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ । जिस (ते) आपका
 (पपः) यह (योनिः) सुख निमित्त है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेषतोय (त्वा)
 आप का (गृह्णामि) धारण करता हूँ । हे राजन् । मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य धारण के
 लिये जो आप (उपयामगृहीतः) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो
 उस (धम्नुसदम्) जलों के बीच चलते हुए (घृतसदम्) घी आदि पदार्थों को प्राप्त
 हुए और (व्योमसदम्) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (जुष्टम्) सप के
 प्रिय (त्वा) आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ । हे सप की रक्षा करने हारं स-
 भाष्यश राजन् । जिस (ते) आप का (पपः) यह (योनिः) सुपदायक घर है उस
 (जुष्टतमम्) अति प्रसन्न (त्वा) आप को (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये
 (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ हे सप भूमि में प्रसिद्ध राजन् । मैं (इन्द्राय) विद्या
 योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) साधन उ-
 पसाधनों से युक्त (असि) हो उस (पृथिविसदम्) पृथिवी में धमण करते हुए (अ-
 न्तरिक्षसदम्) अथकाश में चलने वाले (दिविसदम्) न्याय के प्रकाश में नियुक्त
 (देवसदम्) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाकसदम्) सप दुःखों
 से रहित परमेश्वर और धर्मों में स्थिर (जुष्टम्) सेषतोय (त्वा) आप का (गृह-
 णामि) स्वीकार करता हूँ । हे सप सुख देने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ।
 जिस (ते) तेरा (पपः) यह (योनिः) रहने का स्थान है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त
 प्रिय (त्वा) आप को (इन्द्राय) समस्त सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण कर-
 ता हूँ ॥ २ ॥

मार्थः—हे राज प्रजापति । मैंने सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य भोगने के
 लिये सप के सप के लिये सुख देना पैसा हो साधन सुख योग मोक्ष के
 लिये सप का और मोक्ष करने की प्राप्ति सुगत होवे ॥ २ ॥

अपामिन्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अतिशक्तरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
 फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये यह विषय भगले
 मन्त्र में कहा है ॥

अपा५ रसमुद्रंय स॥ सूर्ये सन्तं॥ समाहितम् । अपा॥ र-
 संस्य षो रसस्तं षो गृहाम्पुत्रममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा
 जुष्टं गृहाम्पेव ते योन्निरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे राजन् । मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य प्राप्ति के लिये (षः) तुम्हारे लिये
 (सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समाहितम्) सर्व प्रकार चारों ओर
 घारण किये (उद्रयसम्) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार का
 ग्रहण करता हूँ (यः) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रसः) सार वी-
 र्यं धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (गृह्णामि)
 स्वीकार करता हूँ जो आप (उपयामगृहीतः) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार
 किये गये (अस्ति) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीति-
 पूर्वक वर्त्तने वाले आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ जिस (ते) आप का (एषः)
 यह (योनिः) घर है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप को (इन्द्राय)
 परम सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के
 बल बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य धोषधि विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करें ।
 जिस से सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ॥ ३ ॥

प्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । राजधर्मराजादयो देवताः । भुरिष्वृत्तिश्छन्दः ।
 निपादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा करके सद्गुण करें
 यह विषय भगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रहा ऊर्जाहृतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिंप्रिया-
 णां षोऽहमिषमूर्जं॥ समग्रममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं
 गृहाम्पेव ते योन्निरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचो स्थः सम्मा-
 भद्रेण पृक्तं विपृचो स्थो वि मां प्राप्मना पृक्तम् ॥ ४ ॥

विद्वन् । सप्त (भुवनम्) जगत् (धाविवेश) प्रविष्ट है और जहाँ (देवः) सप्त का काशक (मयिता) सप्त जगत् का उत्पादक परमात्मा (नः) हमारा (धर्म) धारण मादिदन्) करे (तस्याम्) उस में (नाम) प्रसिद्ध (वाजस्य) संप्राम के (प्रसवे) श्वर्य्य में (मातरम्) मान्य देने हारी (अदितिम्) अराडित (महोम्) पृथिवी को पचसा) वेदोक्त न्याय के उपदेशरूप वचन से हम लोग (तु) शीघ्र (करामहे) हण करें ॥ ५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौ-
ग्य के उत्पन्न माता के समान रक्षा और सप्त को धारण करनेहारी प्रसिद्ध है उस का
या न्याय और धर्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो ॥ ५ ॥

अप्सवन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्हविः । ऋषो देवता । भुरिग्जगतां छन्दः ।

निपादः स्वरः ।

किर स्त्री पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ।

अप्सवन्तरिमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्या भवत घा-
जिनः । देवीरापो । पो व ऊर्मिः प्रतृत्तिः कृकृन्मान्वाजसास्तेनायं
वाजंसेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (देवोः) दिव्यगुणवाली (आपः) अन्तरिक्ष में घ्यापक स्त्री पुरुष-
दोगो! तुम (यः) जो (वः) तुम्हारा (समुद्रस्य) सागर के (ककुन्मान्) प्रशस्त ध-
वल गुणों से युक्त (वाजसाः) संप्रामों के सेवने को हेतु (प्रतृत्तिः) अति शीघ्र च-
ठनेवाला समुद्र के (ऊर्मिः) आच्छादन करनेहारे तरंगों के समान पराक्रम और जो
अप्सु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (अमृतम्) मरण धर्म रहित कारण और जो
अप्सु) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (भेषजम्) रोग निवारक औषध
के समान गुण है जिस से (अपम्) यह सेनापति (वाजम्) संप्राम और भक्ष का
प्रयत्न करे (तेन) उस से (अपाम्) उक्त प्राणों और जलों की (प्रशस्तिषु) गुण प्र-
शंसाओं में (वाजिनः) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (अश्याः) कुलीन घोड़ों
के समान वेगबले (भवत) हजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान ग-
र्भार जल के समान शांतिस्वभाव और पुत्रों को उत्पन्न करने नित्य शोषधियों को से-
वने और जलादि पदार्थों को ठीक २ जाननेवाली हों इसी प्रकार जो पुरुष पायु
और जल के गुणों के चेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी
होते हैं ॥ ६ ॥

वातोवेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता । भुरिगुणिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
 मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेग वाले हों इस विषय का उपदेश अगले
 मंत्र में किया है ॥

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः । ते अग्रेऽश्वमयु
 ङ्जन्ते अस्मिन् ज्वमादधुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (वातः) वायु के (वा) समान (मनः) मन के (वा)
 समतुल्य और जैसे (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (गन्धर्वाः) वायु इन्द्रिय और भूतों
 को धारण करने हारे (अस्मिन्) इस जगत् में (अग्रे) पहिले (अश्वम्) व्यापकता
 और वेगादि गुणों को (अयुञ्जन्) संयुक्त करते हैं (ते) वेहीं (जघम्) उत्तम वेग
 को (आदधुः) धारण करते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थः—जो एक समष्टि वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म,
 कृकल, देवदत्त, और धनंजय, (दश) बारहवाँ मन, तथा इसके साथ श्रोत्र आदि
 दश इन्द्रिय और पाँच सूक्ष्म भूत ये सब २७ सत्ताईस पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में
 पहिले रचे हैं । जो पुरुष इन के गुण कर्म और स्वभाव को ठीक २ जान और यथा-
 योग्य कार्यों में संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐ-
 श्वर्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

वातरहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्निष्ठुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
 उस राजा की विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

वातरंथाहा भव वाजिन् गुज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
 युञ्जन्तु त्वा मरुतो विद्वयेदस आ धे त्वष्टा पत्सु ज्वन्दघातु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) शास्त्रोक्त क्रिया कुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन् ।
 जिस (त्वा) आप को (विद्वयेदसः) समस्त विद्याओं के जानने हारे (मरुतः)
 विद्वान् लोग राज्य और शिल्प विद्याओं के कार्यों में (युञ्जन्तु) युक्त और (त्वष्टा)
 वेगादि गुण विद्या का जानने हारा मनुष्य (ते) आप के (पत्सु) पगों में (जघम्)
 वेग को (आदधातु) गच्छे प्रकार धारण करे । यह आप (वातरंहाः) वायु के समान
 वेग वाले (भव) हृजिये और (गुज्यमानः) सायधान होके (दक्षिणः) प्रशंसित धर्म
 से चलने के चलने के बल से युक्त होके (इन्द्रस्येव) परम ऐश्वर्य वाले राजा के स-
 मान (श्रिया) शोभा युक्त राज्य संपत्ति या राणों से सहित (एधि) वृद्धि को प्राप्त
 हृजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजसम्बन्धो स्त्री पुण्यो । आप लोग अभिमान रहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों को उन्नति को देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राज धर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि-पानों में बंड के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न कर के श्रीमान् हुआ कीजिये ॥ ८ ॥

जष इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । धारो देवता । घृतिदण्डः । ऋषभ. स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होवे यह विषय भगले मन्त्र में कहा है ॥

जुषो पस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीप्तो अचरच्च
 वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजिच्च भव समने
 च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजित् वाजंश्च सरिष्यन्तो बृहस्प-
 तेर्भागमवेजिघ्न ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) शं ए शास्त्र बोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा
 क स्वामी राजन् ! (ते) आप का (यः) जो (जषः) वेग (गुहा) बुद्धि में (निहितः)
 स्थित है (यः) जो (श्येने) पक्षी में जैसा (परीप्तः) सय और दिया हुआ (च)
 वीर जैसे (वाते) वायु में (अचरत्) विचरता है (तेन) उस-से (नः) हम लोगों
 क (बलेन) सेना वा पराक्रम से (बलवान्) बहुत बल से युक्त (भव) हूजिये हे
 (वाजिन्) वेगयुक्त राजपुरुष । उसी बल से (समने) संग्राम में (पारयिष्णुः) दुःख
 क पार करने और (वाजजित्) संग्राम के जीतने वाले हूजिये हे (वाजिनः) प्रश-
 सेत वेग से युक्त योद्धा लोगो ! तुम (बृहस्पतेः) यज्ञों की रक्षा करने हारे समाध्यक्षे
 ती (भागम्) सेवा को प्राप्त हो के (वाजम्) बोध वा अन्नादि पदार्थों को (सरिष्य-
 तः) प्राप्त होते हुए (वाजजितः) संग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त प-
 दार्थों का (अवेजिघ्न) सेवन करो ॥ ९ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के
 पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शौभ्रकारी हो
 के अपने सब समासद सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा मुष्प
 से युक्त कर धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चा-
 हिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ९ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पतो देवते । विराडुल्लतिदण्डः ॥

हैं मूर्खों का नहीं यह

मनुष्य लोगों की उचित है कि विद्वानों का अनुकरण ।

विषय भगले मन्त्र में कहा है ॥

पतेरुत्तमं नाकंश्च रु-

देवस्याहं संधितुः सने सत्यसंघसो वृह-

इन्द्रस्योत्तमं नाकंश्च

हेमम् । देवस्याहं संधितुः सने सत्यसंघस-

वसो वृहस्पतेरुत्तमं

रुहेगम् । देवस्याहं संधितुः सने सत्यप्रस-

सवस इन्द्रस्योत्तमं

नाकंमरुहम् । देवस्याहं संधितुः सने सत्यप्र-

नाकंमरुहम् ॥ १० ॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषों । जैसे (अहम्) मैं समाध्यक्ष राजा (सत्यसंघसः) जिस का ऐश्वर्य्य और जगत् का कारण सत्य है (सधितुः) सत्य जगत् को प्रकाशमान (वृहस्पतेः) बड़े प्रख्यादि पदार्थों के रक्षक (रुहेम्) में (उत्तमम्) सत्य से उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (सने) उत्पन्न किये जगत् को (रुहेम्) आरूढ़ होऊँ (नाकम्) सत्य दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप पुरुष (सत्यसंघसः) सहे राजा के सभासद् लोगो । जैसे (अहम्) मैं परोपकारी (देवस्य) के उत्पन्न करने ल्यन्याय से युक्त (देवस्य) सत्य सुख देने (सधितुः) सम्पुः (सने) ऐश्वर्य्य में (उहारे (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के सहित चक्रवर्ती राजा प्राप्त हो के (रुहेयम्) आत्तमम्) प्रशंसा के योग्य (नाकम्) दुःख रहित भोग को प्र अहम्) मैं विद्या चाहने रुढ़ होऊँ । हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्या प्रिय लोगो । जैसे (देवस्य) संपूर्ण विद्या हारा जन (सत्यप्रसंघसः) जिस से अविनाशी प्रकटयोध धंधितुः) समग्र विद्या घोष द्या और शुभ गुण, कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (सने हारे वेद वेदांगोपगों के के उत्पन्न कर्ता (वृहस्पतेः) उत्तम वेद थाणो की रक्षा करने से उत्तम (नाकम्) सब पारदर्शी के (सने) उत्पन्न किये विज्ञान में (उत्तमम्) सविजय प्रिय लोगो । जैसे दुःखों से रहित आनन्द को (अहम्) आरूढ़ हुआ हूँ हे ॥ य विनय और विजयादि (अहम्) मैं योद्धा मनुष्य (सत्यप्रसंघसः) जिस से सत्यन्यसधितुः) शत्रुओं के वि-उत्पन्न हों उस (देवस्य) धनुष्यं युद्ध विद्या के प्रकाशक (पुरुष की (सने) प्रेरणा जय में प्रेरक (इन्द्रस्य) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे) ने हारे संग्राम को (अहम्) मैं (उत्तमम्) विजय नामक उत्तम (नाकम्) सत्य सुख वै ॥ १० ॥

हम्) आरूढ़ हुआ हूँ जैसे आप भी सब लोग आरूढ़ हजिये के पुरुषों को चाहिये कि भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब राजा और प्रजा

सत्या संवागभूयथेन्द्रं वाज्रमर्जीजपतार्जीजपतेन्द्रं वाजं वनस्प-
तयो विमुञ्चध्वम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पतयः) क्रिणों के समान न्याय के पालने हारे राज तुम लोगो (यथा) जिस से (पृहस्पतिम्) धेद शास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (वाजम्) धेद शास्त्र के योध को (अर्जीजपत) पदाभो (पृहस्पतिम्) बड़े राज्य के रक्षक राज पुरुष के संप्राप्त को (अर्जीजपत) जिताभो (सा) वह (यथा) पूर्व वा आगे जिस को कहेंगे (यः) तुम लोगों को (सम्वाक्) राजनीति में स्थित अच्छी वाणी (सत्या) सत्य स्वरूप (अभूत्) होये, हे (वनस्पतयः) सूर्य को क्रिणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राज पुरुषो तुम लोग (यथा) जिस से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को (वाजम्) तुम को (अर्जीजपत) जिताभो (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (वाजम्) अत्युत्त लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को (अर्जीजपत) अच्छे प्रकार प्राप्त कराओ (सा) वह (यथा) आगे पोछे जिस का प्रतिपादन किया है (यः) तुम लोगों को (सम्वाक्) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वाणी (सत्या) सत्य भाषणादि लक्षणों से युक्त (अभूत्) होये ॥ १२ ॥

भावार्थः—राजा उस के नौकर और प्रजा पुरुषों को उचित है कि अपने प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य होने कभी न दें जितना कहें उतना ठोक २ करें जिस की वाणी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुख को नहीं बढ़ा सकते ॥ १२ ॥

देवस्याहमित्यस्य पृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्मात्मा राज पुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छ बुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याहं संविनुः सवे सत्प्रसवसो वृहस्पतेर्वाज्रजितो वा-
जं जेपम् । वाजिनो वाज्रजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मि-
मानाः काष्ठाद्गच्छत ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति (सत्यप्रसवसः) जिस के वनाथे जगत् में कारण रूप से पदार्थ नित्य हैं उस (सविनुः) सय ऐश्वर्य के देने (देवस्य) सय के प्रकाशक (वाज्रजितः) विद्वान्

मादि से उत्पन्न (वृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी के पालने हारे जगदांबर के (सवे)
 इन्द्र के इसे इस वेदवर्ष्य में (वाजम्) संप्राम को (जेयम्) जीतूँ जैसे तुम लोग भी
 जीतो दे (वाजिनः) विज्ञान रूपी वेग से युक्त (वाजजितः) संप्राम को जीतने हारे
 (योजना) बहुत फोशों से शत्रुओं को (मिमाताः) देग भीर (भयनः) शत्रुओं के
 मार्गों को रोकने हुए तुम लोग जैसे (काष्ठाम्) दिशाओं में (गच्छत) चलो हो जैसे
 हम लोग भी चलें ॥ १३ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा
 से ही शत्रुओं को जीत और उन के मार्गों को रोक सकते हैं । और इन अध्यक्षदि रा-
 ज पुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करने हों वही जाके उन
 को बश में करें ॥ १३ ॥

एषम्वेत्यस्य दधिकायाः ऋषिः । वृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

जय सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवें
 तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

एष स्य वाजी क्षिप्रयि तुरण्यति ग्रीषापी यद्धो अपिकक्ष आ-
 सनि । क्रतुं दधिका अतुमथ सनिष्यदत्पथामङ्गाश्शयन्वापनीफण-
 त् स्वार्हा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे (स्यः) वह (एषः) और यह (वाजी) वेगयुक्त (भासनि) मुख
 और (ग्रीषायाम्) कण्ठ में (यद्धः) बंधा (क्रतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसनि-
 ष्यदत्) अर्थात् फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अकांसि) चिन्हों को (अनु) समीप
 (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दधिकाः) धारण करने हारों को चला-
 ने द्वारा घोड़ा (क्षिप्रयिम्) सेना को जाता है जैसे ही (अपिकक्षे) इधर उधर के ठी-
 क २ अवयवों में सेनापति अपनी सेना को (स्वार्हा) सत्यवाणी से (तुरण्यति) वेग
 युक्त करता है ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुये वीर पुरुष
 घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं जो सेनापति उत्तम कर्म
 करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता वह प्रशंसित हुआ विज-
 य को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥ १४ ॥

उतेत्यस्य दधिकाया ऋषिः । वृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

सेनापति आदि राजपुरुष कौंसा पराक्रम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुं वाति प्रगर्धिनः । श्ये-
नस्यैव धर्जतोऽङ्कुसं परिदधिक्रावणः सहोर्जा तरिन्नतः स्वाहा ॥१५॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! जो (ऊर्जा) पराक्रम और (स्वाहा) सत्यकिया के (सदा) साथ (अस्य) इस (द्रवतः) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और (तुरण्यतः) शीघ्र उड़ने वाले (वेः) पक्षी के (पर्णम्) पंखों के (न) समान (उत) और (प्रगर्धिनः) अत्यन्त इच्छा करने (धर्जत) चाहते हुए (श्येनस्येव) बाज पक्षी के समान तथा (तरिन्नतः) अति शीघ्र चलते हुए (दधिक्रावणः) घोड़े के सदृश (अङ्कुसम्) अच्छे लक्षण युक्त मार्ग में (परि) (अनु) (वाति) सब प्रकार अनुकूल चलता है (स्म) यही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और याचकलु०—जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्येन पक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं उन के शत्रुलोग सब ओर से विलाय जायें ॥ १५ ॥

शन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शान्नो भवन्तु वाजिनो ह्येषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भ-
यन्तोऽहिं वृकथे रक्षांसि सनेम्यस्मर्गुयधुसमीवाः ॥१६॥

पदार्थः—जो (मितद्रवः) नियम से चलने (स्वर्काः) जिन का बाण या सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (बाहिम्) मेघ के समान खेपा करते और बड़े हुए (वृकम्) घोर और (रक्षांसि) दूसरों को हानि देने वाले डाकुओं के (जम्भयन्तः) हाथ पाँव तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्ध विद्या के जानने वाले वीर पुरुष (न) हम (देवताता) विद्वान् लोगों के कर्मों तथा (ह्येषु) संग्रामों में (सनेमि) सनातन (शम्) सुख को (भवन्तु) प्राप्त होयें (अस्मत्) हमारे लिये (अमीया) लोगों के समान वर्तमान शत्रुओं को (युयधन्) पृथक् करें ॥ १६ ॥

भावार्थः—श्रेष्ठ प्रजा पुरुषों के पालने में तत्पर और लोगों के समान शत्रुओं के करने वाले राज पुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

स्य नामानेदिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ ।

प्रजाजन भयनी रक्षा के लिये कर देयें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें,
अन्यथा नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते नो धर्मज्ञो ह्यनभ्युक्तो ह्येवं विद्वेषं शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रव-
षः । सहस्रता मेघसाता समिष्यवो महो ये धर्मं सन्निधेयुं जः
भिरै ॥ १७ ॥

पदार्थः—(ये) जो (धर्मज्ञः) ज्ञानवान् (ह्यनभ्युक्तः) ग्रहण करने योग्य शा-
स्त्रों को सुनने (वाजिनः) प्रशंसित बुद्धिमान् (मितद्रव-
षः) शास्त्रयुक्त विषय को प्रा-
प्त होने (सहस्रताः) अर्लक्ष्य विद्या के विषयों को सेवने और (समिष्यवः) अपने
आत्मा को सुन्दर मल्लि करने हारे राजपुरुष (मेघसाता) समग्रता के दान से युक्त
(सन्निधेयुः) संप्रामों में (नः) हमारे षडे (धर्मम्) ऐश्वर्य्य को (ज्ञिरै) धारण करें
ये (विद्वेषं) सब विद्वान् लोग हमारा (ह्यम्) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दों
और वादो प्रतिवादिनों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुने ॥ १७ ॥

भाषार्थः—जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा कर
गहों तो न लें हम भी उन को कर न दें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के
साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह
निश्चित है ॥ १७ ॥

वाजे वाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्वेदता । निष्पत् त्रिष्टुप् छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

यव ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे बलें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धर्मेषु विमा अमृता ऋतज्ञाः ।

ह्यस्य मध्वः पियत मादयंश्चन्तुसा यांत पृथिभिर्देवपानैः ॥१८ ॥

पदार्थः—हे (ऋतज्ञाः) सत्य विद्या के जानने हारे (अमृताः) अपने अपने
स्वरूप से नाश रहित जीते ही मुक्ति सुख को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक्त (विमाः)
विद्या और अच्छे शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो तुम लोग (वाजे
वाजे) संप्राम २ के बीच (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्व-
मधुर रस को (पियत) पीओ । हमारे धर्मों से (वृताः) वृत्त होके (मादयंश्चम्)
आनन्दित होओ । और (देवपानैः) जिम में विद्वान् लोग मल्लते हैं उन (पृथिभिः)
भागों से सदा (यात) चलो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा

से ठीकर घोष को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चले । अन्य मार्ग के गहरी तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पचाये हुए भोजन आदि से युक्त रत्नों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही भाग्य को प्राप्त हों । और प्रजापुत्रों को निरन्तर प्रसन्न रखें ॥ १८ ॥

मा मा वास्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निवृत्तृतिरुच्छन्दः । ऋषयः स्वतः । मनुष्यो को धर्माचरण से किस किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ मा वाजस्य प्रसूयो जगम्यादेमे वावांशृषिषी विह्वस्वै ।
आ मा गन्ताम्यितरांमातरा चा मा सोमो अमृतत्वेनं गम्यात् ।
वाजिनो वाजजितो वाजंश्च असूवाश्सो भृहस्पतेर्भागमर्ष जि-
घ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो ! जिन आप लोगों के सहाय से (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों के अर्थों के घोषों का (प्रसूयः) सुन्दर ऐश्वर्यं (मा) मुझ को (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त होये (इमे) ये (विभ्यरूपे) सय रूप विषयों के सम्बन्धी (वावांशृषिषी) प्रकाश और भूमि का राज्य (च) और (अमृतत्वेन) सय रागों की निवृत्ति कारक गुण के साथ (सोमः) सोमवर्ती आदि ओषधि विज्ञान मुझ को प्राप्त हो और (पितरा मातरा) विद्या युक्त पिता माता (भागताम्) प्राप्त होयें वे आप (वाजिनः) प्रशंसित बलवान् (वाजजितः) संप्राम के जातने वाले (वाजम्) संप्राम को प्राप्त होते हुए (निमृजानाः) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (भृहस्पतेः) पड़ों सेना के स्वामी के (भागम्) सेवने योग्य भाग को (अर्षजिघ्रत) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं उन को इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य का साधक राज्य विद्वान् मातापिता और नोरोगता प्राप्त होती है । जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सय सुखों को भोगते हैं । इस से विद्वद् चलने हारे नहीं ॥ १९ ॥

आपयइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिकृतिरुच्छन्दः । निषादः स्वतः ॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या २ प्राप्त होता है

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपयो स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा कर्मणे स्वाहा

बसवे स्वाहाऽहर्षतये स्वाहाऽन्हे मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनथे
 शिनाय स्वाहा पिन्थे शिनं आन्त्यायनाय स्वाहाऽन्त्याय भौ-
 बनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझ को (आपये) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (स्यापये) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (कतये) बुद्धि बढ़ने के लिये (स्वाहा) पढ़ाने की प्रवृत्ति कराने वाली क्रिया (बसवे) विद्या निवास के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (महर्षतये) पुण्यार्थ पूर्णक गणित विद्या से दिन पालने के लिये काल गति को जानने वाली वाणी (मुग्धाय) मोह प्राप्ति के निमित्त (अह्ने) दिन होने के लिये (स्वाहा) विज्ञान युक्त वाणी (वैनशिनाय) नष्ट स्वभाव युक्त कर्मों में रहने वाले (मुग्धाय) मूर्ख के लिये (स्वाहा) चित्ताने वाली वाणी (आन्त्यायनाय) नीच प्राप्ति वाले (विनशिने) नष्ट स्वभाव युक्त पुण्य के लिये (स्वाहा) पदार्थों को जानने वाली वाणी (भुवनस्यपतये) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (स्वाहा) योग विद्या को प्रकट करने वाली बुद्धि और (अधिपतये) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहने वाले पुण्य के लिये (स्वाहा) सब व्यवहारों को जानने वाली (गम्यात्) प्राप्त होवे । वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़ के किया करो ॥ २० ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिस से सब सुख सदा मिलते रहें ॥ २० ॥

आयुर्वर्जनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गोधारः स्वरः ॥

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्वर्जनेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्वर्जनेन कल्पतां
 श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
 प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्तामृतां अभूम ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारी (आयुः) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (कल्पताम्) समर्थ होवे (प्राणः) जीवने का हेतु बलकारी प्राण (यज्ञेन) धर्म युक्त विद्याभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) प्रत्यक्ष के विषय शिष्टाचार से (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) वेदाभ्यास

से (कल्पताम्) समर्प्य हो और (पृथम्) पृथना (यज्ञेन) संवाद से (कल्पताम्) समर्प्य हो (यज्ञः) यज्ञ धातु का अर्थ (यज्ञेन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्पित हो जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सत्य के पालने द्वारा ईश्वर के समान धर्मान् राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (अभूम) होयें तथा (देवाः) पिदान् पुत्र (भन्मृताः) जाँपन मरण से छूटे (स्वः) मोक्ष सुख को (भागम्) म प्रकार प्राप्त होयें ॥ २१ ॥

भाषार्थः—मैं ईश्वर सत्य मनुष्यों को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्म-युक्त गुण फल और स्वभाव वाले पुरुष हो को प्रजा होना अन्य किसी मूल श्रद्धापूर्वक पुरुष को प्रजा होना स्वोकार फभी मत करो जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त और अपना सत्य कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो जैसे जो पुरुष धर्म युक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे वसी को सभापति राजा मानो ॥ २१ ॥

अस्मे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विशो देवताः । निचृदत्यष्टिदृष्टः । गान्धारः स्वर्गः ॥
ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्तना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अस्मे वाँ अस्तिवन्द्द्वयमस्मे नृम्णमुत् ऋतुरस्मे षर्चांसि सन्तु
यः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इवन्ते राख्यन्तासि
यमनो भ्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रुर्यै त्वा पोषा-
य त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य । मैं ईश्वर (रुच्यै) खेती के लिये (त्वा) तुझे (क्षेमाय) रक्षा के लिये (त्वा) तुझे (रुर्यै) संपत्ति के लिये (त्वा) तुझे और (पोषाय) पुष्टि के लिये (त्वा) तुझ को नियुक्त करता हूँ । जो तू (ध्रुवः) दृढ़ (यन्ता) नियमों से चलने द्वारा (असि) है (धरुणः) धारण करने वाला (यमनः) उद्योगी (असि) है जिस (ते) तेरी (इयम्) यह (राट्) शोभा युक्त है इस (मात्रे) मान्य की हेतु (पृथिव्यै) विस्तारयुक्त भूमि से (नमः) अज्ञादि पदार्थ प्राप्त हों इस (मात्रे) मान्य देने द्वारा (पृथिव्यै) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भ विद्या को जान के इस से (नमः) अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और यत्नों कि जो (अस्मे) हम (नमः) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (वः) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे) हमारा (नमः) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (वः) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे) हमारे (क-

तुः) बुद्धि वां कर्म है (यः) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (वर्चीसि) पढ़ा पढ़ाया और भक्षण हैं ये (यः) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों जो यह सब तुम्हारा है यह हमारा भी हो ऐसा आचरण आपस में करो ॥ २२ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सर्वत्र पुण्यार्थ में प्रयत्न रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हों उन की रक्षा कर के यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो ऐसा यत्न करो । कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य सिद्ध करे उस का तुम भी किया करो ॥ २२ ॥
 वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिवेंवता । स्वराद् विष्णुप्लवः । धैवतः स्वरः ॥
 फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय आगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजस्येभ्यं प्रसवः सुपुत्रेभ्यो सोमं राजानमापधीष्वप्सु । ता
 अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वषथं राष्ट्रे जागृयाम पुराहिंताः स्वा-
 हां ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (अग्ने) प्रथम (प्रसवः) देवर्ष्य युक्त होकर (वाजस्य) वैद्यक शास्त्र बोध समग्रणी (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करने वाले (राजानम्) विद्या व्याप और वित्तों से प्रकाशमान राजा को (सुपुत्रे) देवर्ष्य युक्त करता हूँ । जैसे उस की रक्षा में (भोगधौषु) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली सब आदि भोगधियों और (भवन्तु) जलों के बीच में वसमान भोगधी हैं (ताः) ये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमतीः) प्रगल्भ मधुर गुण वाली (भवन्तु) हों जैसे (व्यादा) मत्स्य क्रिया के साथ (पुरोहिताः) सब के हितकारी हम लोग (राष्ट्रे) राज्य में निरन्तर (जागृयाम) आत्मस्य छोड़ के जागते रहें ऐसे तुम भी वृत्तां करो ॥ २३ ॥

भाषार्थः—शिशु मनुष्यों को बोध है कि सब विद्याओं की अनुशासित रोगरहित और सुन्दर गुणों में शोभायमान पुण्य की राज्याधिकार देकर उन की रक्षा करने वाला वैद्य देना प्रयत्न करे कि जिस से इस के शरीर बुद्धि और भावना में रोग का आदेश न हो । इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्रों आदि भूयों और प्रजाजनों को रोग रहित करें । जिस से ये राज्य के राजजनों के पालने और दुष्टों के नाशने में प्रयत्न करते रहें राजा और प्रजा के पुण्य परस्पर विना पुत्र के समान सब वर्णों ॥२३॥

वाजस्येभ्योऽस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिवेंवता । सुपुत्रं जागृयामः ।

विषादः स्वरः ॥

राजा किस का आश्रय लेकर किस के साथ क्या करे यह विषय भगले मंत्र में कहा है ॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि
सम्राट् । अदिरसन्तं दापयति प्रजानन्तस नो रुषिं सर्व्वीरुं निष-
च्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (वाजस्य) राज्य के मध्य में (प्रसवः) ठला
हुए (सम्राट्) अच्छे प्रकार राज धर्म में प्रवर्तमान हैं (इमाम्) इस भूमि को (दि-
वम्) प्रकाशित और (इमा) इन (विश्वा) सब और (भुवनानि) घरों को (शि-
श्रिये) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूँ जैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो
और जो (स्वाहा) धर्म युक्त सत्यवाणों से (प्रजान्) जानता हुआ (अदिरसन्तम्)
राज्य कर देने का इच्छा न करने वाले से (दापयति) विलाता है (सः) सो (नः)
हमारे (सर्व्वीरम्) सब धीरों को प्राप्त कराने हारे (रुषिम्) धन को (निषच्छतु)
प्रहण करे ॥ २४ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर
जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्ती राजा करो और जो कर देने
वालों से कर दिलाये वह मन्त्री होने को योग्य होये जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ
हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोशाध्यक्ष
करो ॥ २४ ॥

वाजस्यन्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिदेवता । स्वराट्त्रिष्टुब्धन्ः । धैवतः स्वः ॥

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश भगले मंत्र में किया है ॥

वाजस्य नु प्रसव आ यभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्व्वता ।
सनेमि राजा परिंयाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे
स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—जो (वाजस्य) वेदाविशास्त्रों से उत्पन्न योध को (स्वाहा) सत्यनीति
से (प्रसवः) प्राप्त होकर (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या को ज्ञानने वाला पुरुष (आ)
अच्छे प्रकार (यभूव) होये (च) और (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) प्रा-
कृतिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्म सहित वर्तमान (प्र-
जाम्) पालने योग्य प्रजाओं को (पुष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता
हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है यह (अस्मे) हम लोगों का राजा

भाषार्थः—ईश्वर सब से उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उस को समाप्य कर के शासनीति से चक्रवर्ति राज्य करो ॥ २५ ॥

सोममित्यस्य तापस ऋषिः । सोमान्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयो देवताः ।

अनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

किर कैसे राजा का श्चौकार करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सोमये राजानमर्षसेऽग्निमन्वारभासहे । ध्वादिस्वान्विष्णुं
सूर्यं बृह्माणं च बृहस्पतिं स्वार्हा ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (भवसे) रक्षा आदि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्यम्) विद्वानों में सूर्यबृहद्विद्वान् (बृह्माणम्) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले (बृहस्पतिम्) पढ़ों के रक्षक (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त गुण सम्पन्न (राजानम्) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (धादित्यान्) विद्या के लिये जिन ने अङ्गतालीस वर्षतक ब्रह्मचर्य रह कर पूर्ण विद्या पद सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्घ से विद्या पद के गृह्यक्रम का (भारभामहे) आरम्भ करें जैसे तुम भी किया करो ॥ २६ ॥

भाषार्थः—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य प्रत्यादि से विद्या के पारंगता विद्वानों के बीच जिस ने अङ्गतालीस वर्ष ब्रह्मचर्यप्रत किया हो ऐसे राज को श्चौकार कर के सच्ची नीति को बढ़ायें ॥ २६ ॥

अर्ष्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्ष्यमादिर्मन्त्रोका देवताः । स्वरानुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

किर राजा कित्त को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अर्ष्यमणं बृहस्पतिमिन्दुं दानाय चोदय । वाथं विष्णुं सरं-

स्वतीं सवितारं च वाजिनं स्वार्हा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्यनीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिये (अर्ष्यमणम्) पक्षपात रहित व्याप करने (बृहस्पतिम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (रुद्रम्) बड़े ऐश्वर्य युक्त (वाथम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाना (सवितारम्) वेदविद्या तथा सब वेदवर्ष उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे बाल बंग से युक्त शूरे और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विद्वान युक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोदय) सदा प्रेरणा किया कीजिये ॥ २७ ॥

भाषार्थः—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् ही कर सत्यन्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रेरणा करे जिस से विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों ॥ २७ ॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा क्या क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अग्ने अच्छां वदेह नः प्रति नः सुमनां भव । प्र नो पच्छ सहस्रजिचवथि हि धनदा असि स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् आप (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्यवाणी से (नः) हम को (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपदेश कीजिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभाव युक्त (भव) इजिये (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप बिन सहाय हज़ारों को जीतने (धनदा) ऐश्वर्य्य देने वाले (असि) हैं इस से (नः) हमारे लिये (प्रपच्छ) दीजिये ॥ २८ ॥

भाषार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्य प्रियवचन कहै उन को धन दे उन से धन ले शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और भित्त शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पाले ॥ २८ ॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अर्थ्यमादिमंत्रोक्ता देवताः । भुरिगानी गान्धारी छन्दः ।

पद्मजः स्वरः ॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे बचें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

प्र नो पच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र वृहस्पतिः । प्र वाग्देवी देवातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—जैसे (अर्थ्यमा) न्यायाधीश (नः) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रपच्छतु) देवे जैसे (पूषा) पोषण करने वाला शरीर और आत्मा को पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवे जैसे (वृहस्पतिः) विद्वान् (प्र) (स्वाहा) अत्युत्तम विद्या देवे जैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त (देवी) प्रकाशमान पढ़ाने वाली माता हमारे विद्या युक्त वाणी का (प्रदानु) उपदेश सदा किया करे ॥ २९ ॥

—यहाँ जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुत्र्य और माता गा-

प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा की प्रहण करावें जिस से प्रजा और पुत्र पुत्रों आदि सदा आनन्द में रहें ॥ २९ ॥

ऽद्येत्यस्य तापस ऋषिः । समाद् देवता । जगतीछन्दः । निपादः स्वरः ॥

कहाँ कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश धगले मन्त्र में किया है ॥

वस्यं तथा सधितुः प्रसन्नेऽश्विनोर्धाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
 त्वस्यै धाचो घन्तुर्घन्त्रिये दधामि बृहस्पतेःपुत्रा साम्राज्येनाभि-
 न्याम्यसौ ॥ ३० ॥

वार्थः—हे सव अच्छे गुण कर्म स्वभाव युक्त विद्वान् । (हासी) वह मैं (सधितुः) जगत के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसने) क्रिये संसार में (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिष्य विद्या युक्त (वचः) देवता के मध्य (अश्विनोः) सूर्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुण युक्त (हस्ताभ्याम्) गों से (त्वा) तुम को (दधामि) धारण करता हूँ और (बृहस्पतेः) बड़े विद्वान् (धन्त्रिये) कारीगरी विद्या से सिद्ध क्रिये राज्य में (साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा गुण से सहित (त्वा) तुझ को (धामि) सव और से (सिचामि) सुगंधित रसों मार्जन करता हूँ ॥ ३० ॥

वार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी बल पराक्रम पुष्टि युक्त चतुर तत्पदादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजा पालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर समा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें ॥ ३० ॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः । शम्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । शन्पच्छिरछन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ावा करे १९० ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदंजयत् तमुज्ज्वलं शिष्यनी दृशुक्षरेण द्वि-

पदो मनुष्णानुदंजयन्तानुज्ज्वलं विष्णुसृष्टरेण श्रीसंतो कानुदंज-
 यस्तानुज्ज्वलं सोमश्चतुरक्षरेण शन्पदः पृथुनुदंजयता नुज्ज्वल ॥ ३१ ॥

वार्थः—हे राजन् । (अग्निः) अग्नि के समान वर्षमान भाग ऊँचे (पदाक्षरेण) चिताने द्वारा एक अक्षर को दूसी गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में उमान प्रजाजनों को (उत्) (जेवम्) उत्तम उत्त को मैं भी (उत्) (जेवम्) चन्द्रमा के समान

पदः) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयतम्) उत्तम
 (तान्) उनको मैं भी (उज्जेपम्) उत्तम करूँ । हे सर्वप्रधानपुरुष ! (त्रि-
 भेद्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की वैषी से जिन (त्रान्)
 जन्मस्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों को
 जयत्) उत्तम करते हो जैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेपम्) उत्तम करूँ । हे
 पेश्यर्था की इच्छा करने वाले व्यापारशा ! आप जैसे (पशून्) हिरणादिपशुओं को
 जयत्) उत्तम करते हो जैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेपम्) उत्तम करूँ ।

भावार्थः—इसमंत्र में वाचकलु०—जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार
 तो उसको भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावे और जो ऐसा न करे तो उसको प्रजा में
 न बढ़ावे ॥ ३१ ॥

पृथेयस्य तापस ऋषिः । पूषाद्यो मंत्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निपादः ऋ-
 फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या २ करें इत० ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेपम् सविता ।
 षडक्षरेण षड् ऋतून् उदजयत्तामुज्जेपम् । मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त-
 म्यान् पशून् उदजयत्तामुज्जेपम् ! बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीं पञ्च-
 यत्तामुज्जेपम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (पूषा) चन्द्रमा के समान सबको पृष्ट करने वाले आप
 (पञ्चाक्षरेण) पांच अक्षर की वैषीपंक्ति से (पञ्च) पूर्वादिचार और एक ऊपर की
 को (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो जैसे (ताः)
 को मैं भी (उज्जेपम्) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भरदेऊँ । हे राजन् ! (सविता) सूर्य के रूप
 आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की वैषी त्रिष्टुप् से जिन (षड्) छः (ऋतू-
 पसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो जैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्-
 पम्) शुद्ध करूँ । हे सभाजनो ! (मरुतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सप्त
 अक्षरों की वैषी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़ और ग्या
 सात (प्राण्यान्) गाय के (पशून्) पशुओं को (उदजयन्) बढ़ाते हो जैसे (तान्)
 नको मैं भी बढ़ाऊँ । हे सभेश ! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं को जानने वाले ब्रह्म
 के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याज्ञुषी अनुष्टुप् से जिन (गाय-
 त्रीम्) गान करने वाले को रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री की (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते
 हो जैसे (ताम्) उसको मैं भी (उज्जेपम्) प्रतिष्ठा करूँ ॥ ३२ ॥

भाषार्यः—इस मन्त्र में वानरानु०—जो राजा सय का पोरण जिस की सय दि-
तों में कौत्तिं पेश्यर्थं युक्त सभा के कामों में नतुर पशुओं का रक्षक और घेदों का
ता दो उस को राजा प्रजा और सेना के सय मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उ-
त देयें ॥ ३२ ॥

इत्यस्य तापस ऋषिः । मित्रादयो मंत्रोक्ता देयताः । रुतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥
राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस० ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तश्च स्तोममुदंजयत् तमुज्जेपम् । वरुणो
दशाक्षरेण विराजमुदंजयत्तामुज्जेपमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टु-
भमुदंजयत्तामुज्जेपम् । विश्वे देशे द्वादशाक्षरेण जगतीमुदंजय-
स्तामुज्जेपम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (मित्रः) सय के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अ-
र की याजुषो पृथ्वी से जिस (त्रिवृत्तम्) फर्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्)
तुति के योग्य को (उदंजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी
उज्जेपम्) अच्छे प्रकार जानूँ । हे प्रशंसा के योग्य सभेश ! (वरुणः) सय प्रकार से
पेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषो पंक्ति से जिस (विराजम्) वि-
त्त छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदंजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं
भी (उज्जेपम्) प्राप्त होऊँ (इन्द्रः) परम पेश्यर्थं देने वाले आप जैसे (एकादशा-
क्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची की
उदंजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेपम्) अच्छे
प्रकार जानूँ । हे सभ्यजनो ! (विश्वे) सय (देशः) विद्वानो आप जैसे (द्वा-
दशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साक्षां गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कहीं
दुर् नोति का (उदंजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेपम्)
प्रचार करूँ ॥ ३३ ॥

भाषार्यः—राज पुरुषों को चाहिये कि सय प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शि-
क्षा कर इन प्रजा जनों को उत्तम गुण युक्त विद्वान् करें जिस से ये पेश्यर्थ के भागी
होकर राज भक्त हों ॥ ३३ ॥

यस्य इत्यस्य तापस ऋषिः । यस्यादयो मंत्रोक्ता देयताः । यसाय इत्यस्य निचृज्जग-
ती छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचृदृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म वाच्य का उप० ॥

नवमीऽध्यायः ॥

पदः) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयताम्) उत्तम करो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेयम्) उत्तम करूँ। हे सर्वप्रधानपुरुष! (विष्णुः) परमेदवर के समान व्यापकारी आप जैसे (व्यक्षरेण) तान् अक्षर की वैया अनुष्टुप्छन्द से जिन (प्रीन्) जन्मस्थान और नामधानों (लोकान्) देखने योग्य लोकों को (उज्जयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेयम्) उत्तम करूँ। हे (सोम) वेदपर्य्य की इच्छा करने वाले व्यापारियों! आप जैसे (पशून्) हिरणादि पशुओं को (उज्जयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेयम्) उत्तम करूँ ॥३१॥

भाषार्थः—इसमंत्र में पाचकलु०—जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ाये तो उसको भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावे और जो ऐसा न करे तो उसको प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥ ३१ ॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः । पूषादयो मंत्रोक्ता देवताः । छतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥
 फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या २ करें इस० ॥

पूषा पञ्चक्षरेण पञ्च दिश उदंजयत्ता उज्जेयं छे सविता पञ्चक्षरेण पञ्च ऋतून् उदंजयत्तानुज्जेयम् । महतः सप्ताक्षरेण सप्तम्याभ्यान् पशून् उदंजयत्तानुज्जेयम् ! बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदंजयत्तानुज्जेयम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन्! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे (पञ्चाक्षरेण) पांच अक्षर की वैबीपंक्ति से (पञ्च) पूर्वादिचार और एक ऊपर नीचे की (दिशः) दिशाओं को (उदंजयत्) उत्तम कीर्ति से भरते हो वैसे (ताः) उनको मैं भी (उज्जेयम्) श्रेष्ठ कीर्ति से भरदेऊँ। हे राजन्! (सविता) सूर्य के समान आप जैसे (पञ्चक्षरेण) छः अक्षरों की वैबी त्रिष्टुप् से जिन (पद्) छः (ऋतून्) बसन्तादि ऋतुओं को (उदंजयत्) शुद्ध करते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेयम्) शुद्ध करूँ। हे समाजनों! (महतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सात अक्षरों की वैबी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़ और गधा इनको मैं भी बढ़ाऊँ। हे सभेश! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुयी अनुष्टुप् से जिस (गायत्री-मू) गान करने वाले की रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री की (उदंजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उसको मैं भी (उज्जेयम्) प्रतिष्ठा करूँ ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—इत मन्त्र में वाचाऽनु०—जो राजा सब का पोषण जिस को सब दि-
शाओं में कौत्सिं पेश्य्यं युक्त सभा के कामों में चतुर पशुओं का रक्षक और वेदों का
ज्ञाता हो उस को राजा प्रजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उ-
न्नति देवे ॥ ३२ ॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः । मित्रादयो मंत्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस० ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तं स्तोममुदंजयत् तमुज्जेपम् । चरुणो
दशाक्षरेण विराजमुदंजयत्तामुज्जेपमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टु-
भमुदंजयत्तामुज्जेपम् । विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदंजय-
त्तामुज्जेपम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (मित्रः) सब के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अ-
क्षर की याज्ञुषी षडती से जिस (त्रिवृत्तम्) कर्मा उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्)
स्तुति के योग्य को (उदंजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी
(उज्जेपम्) अच्छे प्रकार जानूँ । हे प्रशंसा के योग्य समेश ! (चरुणः) सब प्रकार से
श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याज्ञुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) वि-
राट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदंजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं
भी (उज्जेपम्) प्राप्त होऊँ (इन्द्रः) परम पेश्य्य देने वाले आप जैसे (एकादशा-
क्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को
(उदंजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेपम्) अच्छे
प्रकार जानूँ । हे सभ्यजनो ! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो आप जैसे (द्वा-
दशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साद्यो गायत्रो से जिस (जगतीम्) जगती से वहाँ
हुई नोति का (उदंजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेपम्)
प्रचार करूँ ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—राज पुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शि-
क्षा कर इन प्रजा जगों को उत्तम गुण युक्त विद्वान् करें जिस से वे पेश्य्य के भागो
होकर राज भक्त हों ॥ ३३ ॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः । वसवादयो मंत्रोक्ता देवताः । वसव इत्यस्य निचुज्जग-
ती छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचुद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म वाच्य का उप० ॥

पञ्चदशप्रबोधशास्त्रेण प्रबोधशास्त्रेण स्तोममुद्दजग्रस्तमुज्जैवम् ।
 सप्तदशप्रबोधशास्त्रेण प्रबोधशास्त्रेण स्तोममुद्दजग्रस्तमुज्जैवम् । अदित्याः
 पञ्चदशप्रबोधशास्त्रेण पञ्चदशशास्त्रेण स्तोममुद्दजग्रस्तमुज्जैवमदितिः पञ्च
 शास्त्रेण पञ्चदशशास्त्रेण स्तोममुद्दजग्रस्तमुज्जैवम् । प्रजापतिः सप्तदश
 शास्त्रेण सप्तदशशास्त्रेण स्तोममुद्दजग्रस्तमुज्जैवम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजादि नम्य जानो । (चतुर्दशः) चौबीस वर्ष तक प्रदाचर्य से विद्या
 पढ़ने वाले विद्वानो आप लोग जैसे (प्रबोधशास्त्रेण) तेरह अक्षरों की आत्तुरी अनु-
 षुप् वेदस्थ छन्द से जित (प्रबोधशास्त्रेण) दश प्राण जीव महात्त्व और अत्यन्त कारण
 रूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (उदजयन्) श्रेष्ठता से जानें जैसे
 (तम्) उस को मैं भी (उज्जैवम्) उत्तमता से जानूँ । हे वल पराक्रम और पुण्यार्थ
 युक्त (यद्वाः) अत्यन्त नम्य पर्यन्त प्रदाचर्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानो । जैसे आप
 (चतुर्दशशास्त्रेण) चौदह अक्षरों की आत्तुरी उष्णिक छन्द से (चतुर्दशम्) दश इन्द्रि-
 य मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ विद्या को
 (उदजयन्) प्रशंसित करें जैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जैवम्) प्रशंसित करूँ हे
 (अदित्याः) अदृतालीस वर्ष प्रदाचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने वाले पूर्ण
 विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त पल से युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वानो
 आप लोग जैसे (पञ्चदशशास्त्रेण) पंद्रह अक्षरों की आत्तुरी गायत्री से (पञ्चदशम्)
 चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गार्धर्षवेद (मानविद्या) तथा अर्थ
 वेद (शिल्पशास्त्र) छः अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष
 मिल के चौदह उन का संख्यापूर्क पंद्रहवाँ क्रिया कुशलता रूप (स्तोमम्) स्तुति के
 योग्य को (उदजयन्) अच्छे प्रकार से जानें जैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जैवम्)
 अच्छे प्रकार जानूँ । हे (अदितिः) आत्मारूप से नाश रहित सभाध्यक्ष राजा को वि-
 द्युपी स्त्री अलण्डित पदार्थ युक्त आप जैसे (पञ्चदशशास्त्रेण) सोलह अक्षरों की सा-
 भी अनुष्ुप् से (पञ्चदशम्) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अण-
 यत्र, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेतुमात्रा, छल, जाति और निग्रहस्थान
 इन सोलह पदार्थों की व्याख्या युक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयन्)
 उत्तमता से जानें जैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जैवम्) उत्तमता से जानूँ । हे नरेश
 (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक आप जैसे (सप्तदशशास्त्रेण) सत्रह अक्षरों की निचूदापी
 गायत्री छन्द से (सप्तदशम्) चार वर्ण चार आश्रम सुनना, विचारना, ध्यान करना,

अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग सब के उपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठान रूप (स्तो-मम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय की उत्तमता से जाने जैसे मैं भी (उज्जेपम्) उत्तमता से जानूँ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उस का अनुष्ठान कर तुम सुखी होवो ॥ ३४ ॥

एषत इत्यस्य वरुणः पिः । विश्वेदेवा देवताः । निचूदुत्तुतिच्छन्दः । पद्भ्यः स्वरः ॥
कैसा मनुष्य चक्रवर्ति राज्य सेवने को योग्य होता है इस० ॥

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषंश्च स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरुः
सद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्व-
देवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रायर्षणनेत्रेभ्यो वा
मरुत्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यं उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सामनेत्रेभ्यो देवेभ्यं
उपरिसद्भ्यो दुषंस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) सर्वैष सत्याचरण युक्त राजन् । (ते) आप का जो (ए-
पः) यह (भागः) सेवने योग्य है उस की (अग्निनेत्रेभ्यः) अग्नि के प्रकाश के स-
मान नीति युक्त (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरुःसद्भ्यः) जो प्रथम
सभा या राज्य में स्थित हों उन (देवेभ्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्म
युक्त क्रिया (यमनेत्रेभ्यः) जिन की वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्भ्यः)
जो दक्षिण दिशा में राज प्रबन्ध के लिये स्थित हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वा-
हा) दानक्रिया (विश्वदेवनेत्रेभ्यः) सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी (पश्चा-
त्सद्भ्यः) जो पश्चिम दिशा में राज कर्मचारी हों उन (देवेभ्यः) दिव्य गुण देने
द्वारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साह कारक वाणी (मित्रायर्षणनेत्रेभ्यः) प्राण और अ-
पान के समान वा (मरुत्नेत्रेभ्यः) अरुणक यज्ञ के कर्ता (वा) संपुण्य के समान
न्यायकारक वा (उत्तरासद्भ्यः) जो उत्तर दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेभ्यः)
विद्वानों से दूत कर्म की कुशला क्रिया (सामनेत्रेभ्यः) चन्द्रमा के समान वैभवं युक्त
दोषर सब की धानन्ददायक (उपरिसद्भ्यः) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की
सेवा करने द्वारे (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) अ.स पुण्यों की वाणी की प्राप्त
हो के सदा धर्म का (जुषंश्च) सेवन क्रिया कर ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—हे राजन् ! समापन्न सब आप सब गोर से उत्तम विद्वानों से युक्त हो

मेहन करो और (ये) जो (उपनिषद्ः) ऊँके सामन वा ध्यवहार में स्थित (दु-
बन्धन) पशुन प्रकार से धर्म के मेहन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम भादि गोपघिषां
के जानने तथा (देवाः) सामुन्वेद से जानने करते हैं उन से (ग्याहा) अमृत रूपी
गोपधि विद्या का सेवन कीजिये ॥ ३६ ॥

मार्ग्यः—हे राजा भादि मनुष्यो ! तुम लोग ऊप धार्मिक सुशील विद्वान् होकर
सब दिग्गामों में स्थित सब विद्याओं के जानने वाले भास विद्वानों की परीक्षा और
सङ्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होगे तब यह तुझारे समीप आके तुझारे साथ
सङ्घ करके धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को सिद्ध करायें जो देश देशांतर तथा द्वीप
द्वीपांतर में विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम को चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही
सब को अच्छे सुख कराने वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

भग्नैस्सहस्येत्यस्य देववातऋषिः । अग्निर्वैवता । निष्वृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर भी राजा भादि किस प्रकार वचनं इस० ॥

अग्ने सहस्यै पृतना अभिमातीरपांस्य । दुष्टरस्तारुक्षरातीर्वचो
धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन् ! (दुष्टरः) दुःग्र से
तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञवाहसि) जिस
में राज धर्म युक्त राज्य में (अभिमाताः) अभिमान आनन्द युक्त (पृतनाः) बल और
अच्छी शिक्षा युक्त घाँट सेना को (सहस्य) सहो (भारता) दुःख देने वाले शत्रुओं
को (अपास्य) दूर निकालिये और (वर्धः) विद्या बल और न्याय को (धाः) धा-
रण कीजिये ॥ ३७ ॥

मार्ग्यः—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपने वृद्ध विद्या और अच्छी शिक्षा
से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओं को जाँतते हुए भूमि पर उत्तम यश
का विस्तार करें ॥ ३७ ॥

देवस्यत्येत्यस्य देववातऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । स्वराद् ग्राह्यो पृहता छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

मजा जन में कै तीश का स्वीकार करें इस० ॥

उनीर्वाहृभ्यां पूषणो हस्ताभ्याम् ।
रक्षः स्वाहा । रक्षसां त्वा यथा-
ी हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे राजन् । मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सवितुः) ऐश्वर्य के उपरान्त करने वाले (देवस्य) प्रकाशित न्याय युक्त (प्रसवे) ऐश्वर्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना से (धीयेण) सामर्थ्य से (अभिनोः) सूर्य चन्द्रमा के समान सेनापति के (बाहुभ्याम्) भुजाँ से (पूष्णः) पुष्टिकारक बैध के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (वधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आप को (जुहोमि) ग्रहण करता हूँ जैसे तुने (रक्षः) दुष्ट को (हतम्) नष्ट क्रिया जैसे हम लोग भी (अवधिष्म) दुष्टों को मारें जैसे (असी) वह दुष्ट (हतः) नष्ट होजाय जैसे हम लोग इन सत्य के (अवधिष्म) नष्ट करें ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—प्रजा जनों को चाहिये कि अपने पचाप और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारें और जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥ ३८ ॥
सवितात्वेत्यस्य देववात ऋषिः । रक्षोऽन्तो देवता । अति जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस २ विषय में प्रेरणा करें इत् ॥

सविता त्वां सवानां५ सुवतामग्निर्गृहपतीना५ सोमो वनस्पतीनाम् । गृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् । जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्यों के (सविता) सूर्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पायक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोमः) सोमवहो के सदृश (धर्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में (सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरुणः) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिये (गृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिये (इन्द्रः) परमैश्वर्य से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिये (रुद्रः) शत्रु वायु के सदृश है उस () तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्)

करें ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—हे राजन् । जो आप को अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा उन्हीं का सङ्ग सदा करो औरों का नहीं ॥ ३९ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । भुक्तिं प्राप्तीं त्रिष्टुप्

छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्याः प्रजापतेः पुत्रोऽस्य तस्यैव तस्यैव तस्यैव तस्यैव ॥

इमं देवः। अमृतमृतं सुवर्णं महते भूवर्षं महते उपैतृवापि स-
हते तामेवाह्वयः। इमममृतं पुत्रममृतं पुत्रममृतं
द्विज एव वीर्यं राज्ञा सोमोऽध्वार्यं प्राण्यमानाधे राजा ॥ ४० ॥

व्याख्यानः—हे प्रजापते (देवः) विद्यान् सोमो तुम जो (एवः) एव (सोमः) प-
शुना के समान प्रजा में विद्यान् (वः) तुम अश्विनादि और हम प्राजनादि और जो
(सोमो) पशुना में वर्णमान ही उन महता राजा है उन (इमम्) इम (अमृतम्) उ-
पैतृ उक्त पुत्र का (पुत्रम्) पुत्र (अमृतम्) उन विद्यादि तुमों में श्रेष्ठ धर्मान्ना वि-
द्यान् सोमो के पुत्र जो (वीर्यं) इम (विद्यो) प्रजा के लिये इमो पुत्र को (महते)
महते (उपैतृवापि) प्रजापते के सोम (महते) महते (जानमान्नाधे) धर्मान्ना जनों के
राज्य करने (इन्द्रम्) परमेश्वरों तुम (इन्द्रियाय) धन के करने (अमृतम्) श-
शुभ्रित (सुवर्णम्) कोलिये ॥ ४० ॥

भाष्यः—हे राजा और प्रजा के मनुष्यों ' तुम जो विद्यान् माता और पिता से
सच्छे प्रजापते सुभिन्न कुर्वात महते उत्तम २ तुम वर्य और अभाग तुम जितेन्द्रियादि
तुम तुम ४८ महान्नाधे वर्य परमेश्वरों से पूर्ण विद्या से सुशील शरीर और
धाम्ना के पूर्ण वर्य तुम धर्म से प्रजा का पालक प्रेमो विद्यान् हो उन को समापति
राजा मान कर अमृतमृत राज्य का संयत्न करो ॥ ४० ॥

इमं अमृतं मृतं राजधर्म के धर्म से इम अर्थ ही पूर्ण अमृत के अर्थ
के साथ महति जानो चाहिये ॥

एत नर्गा अध्याय समाप्त इत्या ॥



अथ दशसाध्यायारम्भः ॥

विद्वानि देव नयितर्दुरितानि परांसुव । पद्भ्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अपो देवा इत्यस्य वक्ष्यन् ऋषिः । आपो देवताः । निवृत्तापो त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

इस के पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है ॥

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णधूर्जस्वती राजस्युद्दिचतानाः । या-
भिर्मित्रावरुणावभ्यपिञ्चन्याभिरिन्द्रमन्युत्तत्परांतीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों 'तुम लोग (देवाः) चतुर विद्वान् लोग (याभिः) जिन क्रियाओं से (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान को (अभ्यपिञ्चन्) सब प्रकार सींचते और जिन क्रियाओं से (इन्द्रम्) विजुली को प्राप्त और (अरातीः) शत्रुओं को (अदयन्) जीतते हैं उन क्रियाओं से (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुरादि गुण युक्त (ऊर्जस्वतीः) बल पराक्रम बढ़ाने (चेतानाः) धैर्यगता देने और (राजस्वः) ज्ञान प्रकाश युक्त राज्य को प्राप्त कराने हारे (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥ १ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों को परीक्षा करके उन से उपयोग लें । शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से बचें । और इन जल तथा प्राणों से उपकार लें ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरित्थस्य वक्ष्यन् ऋषिः । वृषा देवता । स्वराङ्ग्राहो पङ्क्तिदृष्टः ।

धैवतः स्वरः ॥

अथ विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या २ मांगें यह ॥

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा । वृष्णं ऊर्मिर-
सि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि । वृष्मेन्नोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि
। वृष्मेन्नोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

र्थः—हे राजन् ! जित कारण भाव (वृष्णः) तुझ के वर्षा कारक ज्ञान के प्रा-
प्ति (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं हम से (मे) मुझे (स्वाहा)

सत्य नीति से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये (धृत्वाः) युद्ध को वृष्टि करने वाले राज्य के (जर्मि) जानने और (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने वाले (अस्ति) हैं (धनुष्यै) उस राज्य को रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये (राष्ट्रदाः) राजाओं के कर्मों के देने वाले (वृषसेनः) बलवान् सेना से युक्त (अस्ति) हैं (मे) प्रत्यक्ष परमान मेरे लिये (स्वाहा) तुम्हारे वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । तथा (राष्ट्रदाः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनन्दित पुष्टमेना से युक्त (अस्ति) हैं इत से थाप (धनुष्यै) उस परोक्ष पुष्ट के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थः—जो राज पुष्ट हुए प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पुष्टों का सरकार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥ २ ॥

अथेत इत्यस्य षट्पण इति । अर्था पतिर्दयता । पूर्वस्वामिहितिरुद्धः । ऋषयः

स्वरः । देहोत्पत्त्य निवृत्तगन्तो छन्दः । निपादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुष्ट थापत में किस प्रकार वरों इत ॥

अथेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहाअथेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मु-
 ष्यै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ रा-
 ष्ट्रदा राष्ट्रम्मुष्यै दत्तापः परिव्राहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त
 स्वाहापः परिव्राहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मुष्यै दत्तापास्पतिर-
 सि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहाऽपास्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्-
 मुष्यै देहापां गभोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपाङ्गभोऽसि
 राष्ट्रदा राष्ट्रम्मुष्यै देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (अथेतः) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले समासद (स्थ) होयें थाप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (अथेतः) पदार्थों को जानते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) होये तुम लोग (धनुष्यै) राज्य के रक्षक उस पुष्ट को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वतीः) विद्या बल और परामर्श से युक्त हुए राजी लोग थाप (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं ये (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य

को (दत्त) दीजिये । जो आप लोग (भोजस्यताः) जितेन्द्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य को देने वाले (स्थ) हैं वे आप लोग (अनुभूत) विद्या धल और पराक्रम से युक्त पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति से (परिवाहिणोः) अपने समान प्यारी (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारो (स्थ) हैं वे आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (परिवाहिणोः) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं वे आप (अनुभूत) उस ब्रह्मचारी पति पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । वे समाप्यक्ष ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारो (अपाम्) जलाशयों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं सो (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज को (देहि) दीजिये । वे समापति ! जो आप (स्वाहा) सत्य वचनों से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) प्राणों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं वे (अनुभूत) उस प्राणियों के पोषक पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । हे पति पुरुष राजन् ! जो आप (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) सेनाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान रक्षित (असि) हैं सो आप (मे) विचारशील मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये हे राजन् ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारो (अपाम्) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि) हैं सो आप (अनुभूत) उस प्रशंसित पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उन की स्त्रियाँ हों उन को चाहिये कि अपना उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य करें । और आप भी चक्रवर्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि करके अपने राज्य का भङ्ग करें ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस इत्यस्य षष्ठा ऋषिः । सूर्यादयो मंत्रोक्ता देवताः । पूर्वस्य जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः । सूर्यवचस इति द्वितीयस्य स्वरान् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः

स्वरः । प्रजक्षित इति तृतीयस्य शबिष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वरान् विद्व-

तिद्वन्द्वः । मध्यमः स्वरः । प्रजक्षितस्थेयस्य स्वरान् संवृत्तिद्वन्द्वः ।

गान्धारः स्वरः । शपवरीस्थेयस्य । भुरिगावृत्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः

स्वरः । मधुमतीस्थेयस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों की कैसा हो के किस २ के लिये क्या २ देना चाहिये यह वि० ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ

राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त
 स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्र-
 दा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्त ब्र-
 जक्षितं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ब्रजक्षितं स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रमुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा वाशा
 स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त
 स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्त शकुरी स्थ राष्ट्र-
 दा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शकुरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्त
 जनभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा जनभृतं स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रमुष्मै दत्त विश्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वि-
 श्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मै दत्तार्पः भ्वराजं स्थ राष्ट्रदा रा-
 ष्ट्रमुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्महिं क्षत्रं क्षत्रि-
 यांष घन्वाना अनाघृष्टाः सीदत सहैजसो महिं क्षत्रं क्षत्रियांश्च
 दधतीः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (सूर्यत्वचसः) सूर्य के समान अपने न्याय
 प्रकाश से सब तेज को ढाकने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य न्याय के साथ (रा-
 ष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिये (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (द-
 त्त) दीजिये । हे मनुष्यो ! जिस कारण (सूर्यत्वचसः) सूर्य प्रकाश के समान विद्या
 पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिये
 (अमुष्मै) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (द-
 त्त) दीजिये । हे विद्वान् मनुष्यो ! (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान तेजधारी होने हुए
 तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हो इस कारण
 (मे) तेजस्वी मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस कारण (सूर्यवर्चसः)
 सूर्य के समान प्रकाशमान होने हुए आप लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ)
 हो इसलिये (अमुष्मै) उस प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त)
 दीजिये । जिस कारण (मान्दाः) मनुष्यों को आनन्द देने हारे होते हुए आप लोग
 (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो इस लिये

(मे) धानन्द देने हारे मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस लिये आप लोग (मान्दाः) प्राणियों को सुख देने वाले होके (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हो इस लिये (भुम्भै) उस सुख दाता जन को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (भजशितः) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (स्वाहा) सत्य क्रियाओं के सहित (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) पशु रक्षक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (भजशितः) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस से (भुम्भै) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (याशाः) कामना करते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) इच्छायुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (याशाः) इच्छा युक्त होते पुत्रे (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हैं इस लिये (भुम्भै) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (शक्तिष्ठाः) अत्यन्त बल वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (मे) बलवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (शक्तिष्ठाः) शक्ति पराक्रमी (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (भुम्भै) उस शक्ति पराक्रमी जन के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे राणो लोगो ! जिस लिये आप (शक्यरीः) सामर्थ्य वाली होती हुई (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं इस लिये (मे) सामर्थ्यवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप (शक्यरीः) सामर्थ्य युक्त (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस कारण (भुम्भै) उस सामर्थ्य युक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (जनभृतः) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई (स्वाहा) सत्य कर्मों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस लिये (मे) श्रेष्ठ गुण युक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप (जनभृतः) सज्जनों को धारण करने हारी (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (भुम्भै) उस सत्य प्रिय पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे समाध्यक्षादि राजपुरुषो ! जिस लिये आप लोग (विश्वभृतः) सब संसार का पोषण करने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य पाणों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस लिये (मे) सब के पोषक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये ।

विजयिणीं (राज्यदाया) (विजयिणीः) विजय की प्राप्ति करने वाली (राज्यदायाः) राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) उस प्राप्ति करने वाली राज्य के विजे-
 १. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 २. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ३. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ४. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ५. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ६. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ७. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ८. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 ९. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-
 १०. राज्यदाया (राज्य) की विजयिणी (राज्यदाया) विजय प्राप्त कर लेगी (राज्यदायाः) राज-

मातृभ्यः—हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाशकर सब को आनन्द देने की शक्ति पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों में विश्वास और संभार का पोषण करने वाले रथाधोन हैं वे ही धीरों के लिये राज्य देने और राज्य में बंधन करने को समर्थ होने हैं अन्य नहीं ॥ ४ ॥

सोमस्य स्वर्णं त्विषिरसि तथेव मे त्विषिर्भूषात् । अग्नेयं स्वाहा सोमाय स्वाहा सधित्रं स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्यं स्वाहा वृहस्पत्यै स्वाहन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा इलोकाय स्वाहा दाय स्वाहा भगाय स्वाहा र्वस्वे स्वाहा ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य के (त्विषिः) प्रकाश करने वाले (सि) हैं वैसे मैं भी होऊँ जिन से (तथेव) आप के समान (मे) मेरा

(त्विषिः) विद्याओं का प्रकाश होवे जैसे आप ने (अग्नये) विजुली आदि के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और प्रियाचरण युक्त विद्या (सोमाय) ओपधि जानने के लिये (स्वाहा) वैद्यक की पुरुषार्थ युक्त विद्या (सवित्रे) सूर्य को समझने के लिये (स्वाहा) भूगोल विद्या (सरस्वत्यै) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिये (स्वाहा) व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान (पूषे) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिये (स्वाहा) योग और व्याकरण की विद्या (बृहस्पतये) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये (स्वाहा) ब्रह्म विद्या (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के लिये (स्वाहा) विचारविद्या (घोषायै) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (इलोक्याय) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये (स्वाहा) छन्द और शुभमूल काव्य शास्त्र आदि की विद्या (अंशाय) परमाणुओं के समझने के लिये (स्वाहा) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थज्ञान (अर्यस्ये) न्यायार्थोक्त होने के लिये (स्वाहा) राजनीति समझ को ग्रहण करते हैं जैसे मुझे भी करना अवश्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को ऐसी आर्शंसा (इच्छा) करनी चाहिये कि जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी हों ॥ ५ ॥

पवित्रेस्थ इत्यस्य वरुणऋषिः । आपो देवताः । स्वराड्ब्राह्मो बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी करें इत्यं ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवित्र्यः प्रसव उत्पन्नाम्पच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य इक्षिमभिः । अग्निभ्रष्टमसि वाचो वन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजसूयः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिये आप (वाचः) वेदवाणी के (अग्निभ्रष्टम्) भ्रष्टारहित आचरण किये (वन्धुः) भाई (असि) हैं (सोमस्य) ओपधियों के काटने वाले (तपोजाः) ब्रह्मचर्यादि तप से प्रसिद्ध (असि) हैं आप की आज्ञा से (सवित्रः) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (वैष्णव्यौ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और (पवित्र) शुद्ध आचरणवाली (स्थः) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने

भीरु पढ़ने हारो स्त्री लोगो में (सविभुः) ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस जगत् में (सूर्यस्य) सूर्य को (रश्मिभिः) किरणों के समान (भ्रष्टिष्टेन) टेर रहित (पवित्रेण) विद्या अच्छी गिरा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य भादि करके पवित्र किये हुए से (यः) तुम लोगो के (कृत्यामि) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूँ तुम लोग (स्यादा) सत्य किया से (राजस्यः) राजाओं में धीरों को उत्पन्न करने वाली हो ॥ ६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकूलुं—हे राजा भादि पुत्रो! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगो को नियुक्त करो। जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा का प्राप्त होके युवा हुई मियवर पुत्रों के साथ स्वयंवर विवाह करके धीर पुत्रों का उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः । वरुणो देवता । विराड्दार्ढी त्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा भीरु अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षा युक्त करें यह० ॥

सुधमादो शुभ्रिनी राप एता अनाधृष्टा अपसृष्टो वसानाः ।

पस्त्यासु चक्रं चरुणः सुधस्यमपाश् शिशुर्मर्तृतमास्वन्तः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) श्रेष्ठ राजा हो वह (एताः) विद्या और अच्छी शिक्षा की प्राप्त हुई (सधमादः) एक साथ प्रसन्न होने वाली (शुभ्रिनी) प्रशंसनीय धन कीर्ति से युक्त (अनाधृष्टाः) जो किसी से न दयें (भाप) जल के समान शान्ति युक्त (वसानाः) बल और भाभूपणों से ढगी हुई (पस्त्यासु) घरों के (अपसृष्ट) कामों में धनुर विद्वान् स्त्री होयें उन (अपाम्) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (शिशुः) बालक हो उस को (मातृतमासु) भक्ति मान्य करने हारी धार्यों के (अन्त) समीप (सधस्यम्) एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये रखते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विद्वान् और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्या युक्त धार्यों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के बिना न रहें। और स्त्री भी निर्बल न हों ॥ ७ ॥

क्षत्रस्येतस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् कृतिश्छन्दः । तिपादः स्वरः ॥

सब प्रजा पुत्रों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें यह० ॥

क्षत्रस्योत्बंसि क्षत्रस्यं जराय्वंसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य

नाभिरसन्दिग्धस्य वार्त्रेहनमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वष्ट्राय
 वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि । पातैर्न प्राञ्चम्पातैर्न पृ-
 त्पञ्चम्पातैर्न त्रिष्यञ्चन्दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (क्षत्रस्य) अपने राज कुल में (उरुधम्) पलवान्
 (असि) हैं (क्षत्रस्य) क्षत्रिय पुरुष को (जरायु) वृजायस्था देने द्वारे (असि) हैं
 (क्षत्रस्य) राज्य के (योनिः) निमित्त (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (नामिः)
 प्रयत्नकर्ता (असि) हैं (इन्द्रस्य) सूर्य के (वार्त्रेहनम्) मेघ का नाश करने द्वारे
 के समान कर्मकर्ता (असि) हैं (मित्रस्य) मित्र के मित्र (असि) हैं (वरुणस्य)
 श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ (असि) हैं (द्रवा) शत्रुओं के विदारण करने वाले (असि)
 हैं (रुजा) शत्रुओं को रोगातुर करने द्वारे (असि) हैं और (क्षुमा) सत्य का
 उपदेश करने द्वारे (असि) हैं जो (अयम्) यह धीर पुरुष (त्वया) आप राजा के
 साथ (वृत्रम्) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (वधेत्) मारे (एन-
 म्) इस (प्राञ्चम्) प्रथम प्रबंध करने वाले (एनम्) राजपुरुष को तुम लोग (दि-
 ग्भ्यः) सब दिशाओं से (पात) रक्षा करो इस (त्रिष्यञ्चम्) तिहें खड़े हुए (ए-
 नम्) राज पुरुष को (पात) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या पढ़ाने वाला कर्म है
 वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति करने वाला हो-
 ता है । इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ ८ ॥

आविर्मर्या इत्यस्य वरुण ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिर्गर्गश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
 मनुष्यों की चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आत विद्वान् आदि को
 अवश्य प्राप्त होयें इस० ॥

आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा
 आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतप्रताषावित्तः पूषा विश्ववेदा आवि-
 स्ते चाषापृषिषी विश्वशम्भुयाषावित्तादिति रुद्रशर्मा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मर्याः) मनुष्यो ! तुम लोग जो (गृहपतिः) घरों के पालन करने
 द्वारे (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (आविः) प्रकटता से
 (आवित्तः) प्राप्त या निश्चय करके जाना (वृद्धश्रवाः) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को
 सुने हुए (इन्द्रः) शत्रुओं के मारने द्वारे सेनापति को (आविः) प्रकटता से (आ-
 वित्तः) प्राप्त हो या जाना (धृतप्रता) सत्य आदि बातों को धारण करने द्वारे (मि-
 त्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (आविः) प्रकटता से (आवित्तौ) प्राप्त या

जाना (विश्ववेदाः) सब शोषधियों को जानने हारे (पूषा) पोषण कर्ता वैद्य को (आविः) प्रसिद्धि से (आवित्तः) प्राप्त हुए (विश्वराम्भुवी) सब के लिये सुख देने हारे (धावापृषिषी) विजुली और भूमि को (नायिः) प्रकटता से (आविस्ते) जाने (उदरार्मा) बहुत सुख देने वाली (अदितिः) विद्वान् माता को प्रसिद्ध (आविस्ता) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जायें ॥ १ ॥

भाषार्थः—जबतक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों उत्तम विद्वान् माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने की समर्थ नहीं होते ॥ १ ॥

अवेष्टा इत्यस्य घटण ऋषिः । यजमानो देवता । विराडापी पंक्तिः छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करके जिस २ को प्राप्त हों यह वि० ॥

अवेष्टा दन्दुगुक्ताः प्राचीमारोह माध्वी स्वायत्तु रयन्तरथं
सामं त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्द्रव्यं त्रिविणम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (अवेष्टाः) विरोधों के सङ्ग (बंधुशूनाः) दूसरों की दुःख देने के लिये फाट जाने वाले हैं । उन को जीत के (प्राचीम्) पूर्व दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हों उस (स्वा) आप को (माध्वी) पढ़ा हुआ माध्वी छन्द (रयन्तरम्) रथों से जिल के पार हों ऐसा वन (साम) सामवेद (त्रिवृत्) तीन मन वाली और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (स्तोमः) स्तुति के माध्य (वसन्तः) वसन्त (ऋतुः) ऋतु (द्रव्यं) वेद बंधन और द्रव्यज्ञानी प्राद्वणकुल रूप (त्रिविणम्) धन (जवतु) प्राप्त होयें ॥ १० ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होने हैं वे शत्रुमा को जीत के पथ्यर्थों को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १० ॥

दक्षिणामित्यस्य घटण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षो पंक्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह वि० ॥

दक्षिणामारोहं त्रिष्टुप स्वायत्तु गृहन्मामं पश्यतुषास्तोमो स्तो-
म ऋतुः क्षुभ्रं त्रिविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् ! जिस (स्वा) आप को (त्रिष्टुप) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान (गृहन्) पढ़ा (साम) सामवेद का नाम (पश्यतुषा) पाँच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पाँच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, चक्षुः, नेत्र, रसना, और प्राण पाँच भूत अर्थात् जल, भूमि अग्नि, वायु, और आकाश इन पदार्थों की पूर्ति करने हारा (स्तोम) स्तुति के माध्य (शोष्य ऋतुः) शोष्य ऋतु (शानम्) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रिय कुलरूप और (त्रिविणम्) राजा से प्राप्त हुआ धन

(अवतु) प्राप्त हो। यह आप (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध ह-
जिये। और शत्रुओं को जीतिये ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रिय कुल को बढ़ावे उस का ति-
स्कार शत्रुजन कभी न कर सकें ॥ ११ ॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। निचृदापर्यनुष्टुप् छन्दः।

गांधारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें यह वि० ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपं सामं सप्तदश स्तोमों
वर्षा ऋतुर्विद् द्रविणम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुष! जिस (त्वा) आप को (जगती) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ
(वैरूपम्) विविध प्रकार के रूपों वाला (सामं) सामवेद का अंश (सप्तदशः) पाँ-
च कर्म इन्द्रिय पाँच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, विषय पाँच महाभूत अर्थात् सू-
क्ष्म भूत, फार्ण्य और कारण इन सप्तह का पूरण करने वाला (स्तोमः) स्तुतियों
का समूह (वर्षाः) (ऋतुः) वर्षा ऋतु (द्रविणम्) द्रव्य और (विद्) वैश्य जन
(अवतु) प्राप्त हों। सो आप (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को (आरोह) आरुढ़ और
धन को प्राप्त हजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थः—जो राजपुरुष राज नीति के साथ वैश्यों की वृद्धि करें वे ही लक्ष्मी
को प्राप्त हों ॥ १२ ॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। आर्ची पङ्क्तिछन्दः।

पञ्चमः स्वरः ॥

किर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह वि० ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजं सामैकविंशं शस्तोमः
शरद्वतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे समापति राजा! आप (उदीचीम्) उत्तर की दिशा में (आरोह)
प्रसिद्धि को प्राप्त हजिये। जिस से (अनुष्टुप्) जिस को पद के सब विद्याओं से दू-
रारों की स्तुति करें यह छन्द (वैराजम्) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान (सा-
मं) सामवेद का भाग (एकविंशः) सोलह कला चार पुरुषार्थों के अन्वय और एक
कला इन इन्धोश को पूरण करने द्वारा (स्तोमः) स्तुति का विषय (शरत्) (ऋ-
तुः) शरद् ऋतु (द्रविणम्) वैश्वर्ष्य और (फलम्) फलरूप सेवाकारकः दाद्रव्य
(त्वा) आप को (अवतु) प्राप्त होये ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो पुण्य भाग्य को छोड़ सब समय में पुण्यार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे मरते पत्यों को भोगते हैं ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वानियत्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । भुरिज्जगती छन्द । त्रियाद् स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये ऋि प्रपन्न विद्या से अनेक पदार्थों को जानें यह वि० ॥

ऊर्ध्वामारोहं पुंक्तिस्त्वावतु शाकररश्मते सामनी त्रिणवप्रय-
स्थिधेशो स्तोमो ह्यमन्तशिशिरादृत् वचः त्रिषिणम्प्रत्यस्तुमनुचेः
शिरः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हं राजन् । आप जो (ऊर्ध्वाम्) ऊपर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध होवें तो (त्वा) आप की (पङ्क्ति) पङ्क्ति नाम का पदा हुआ छन्द (शा-
कररश्मते) शाकररी और रश्मती छन्द से युक्त (सामनी) सामवेद के पूर्व उत्तर दो
अथर्व (त्रिणवप्रयस्त्रिणवः) तीन काल नव अक्षों की विद्या और तैंतीस वसु आदि
पदार्थ जिन देशों से व्याख्यान किये गये हैं उन के पूर्ण करने वाले (स्तोमो) स्तोत्रों
के दो भेद (ह्यमन्तशिशिरा) (ऋत्) ह्यमन्त और शिशिर ऋतु (वचः) ब्रह्मचर्य
के साथ विद्या का पढ़ना और (त्रिषिणम्) पेशवर्ष्य (अथर्व) कृत करे और (नमुचेः)
दृष्ट चोर का (शिरः) मस्तक (प्रत्यस्तम्) नष्ट स्रष्ट होवें ॥ १४ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त हो
के विद्या योगाभ्यास और सासकों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं । ये सब ऋतुओं
में सुख भोगते हैं और इन को कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥ १४ ॥

स्तोमेत्यस्य वरुणऋषिः । परमात्मा देवता । त्रिचुदार्धी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

राज और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर

आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह वि० ॥

सामंस्य त्विषिरमि तवेव मे त्विषिर्भूपात् । मृत्योः पाणो-
जोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥ १५ ॥

पदार्थः—हं परम आत्मा विद्वान् ' जैसे आप (सोमस्य) पेशवर्ष्य का (त्विषिः) प्र-
काश करने वाले (असि) हैं (जोजः) पराक्रम युक्त (असि) हैं वैसा मैं भी होऊँ
(तवेव) आप के समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूया-
त्) ही आप मुझ को (मृत्यो) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥ १५ ॥

भाषार्थः—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा
के लिये भी इच्छा करें जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी
प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥ १५ ॥

हिरण्यरूपा इत्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रा वरुणी देवते । म्यराधार्या जगती छन्दः ।

निर्यायः स्वराः ॥

अथ पित्रानां को चाहिये कि आप निष्कपट हो और भक्तानी पुत्रों के लिये सत्य का उपदेश करके उन को मुनिमान् पित्रान् बनायें यह वि० ॥

हिरण्यरूपा उपसो विरोक उभापिन्त्रा उदिथः सूर्यश्च । आ-
रोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चाध्यामदितिं दितिं च । मित्रोऽसि
वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सत्य के सुदृष्ट । जिस लिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान्, सेना-पति जिस लिये आप (वरुणः) सत्य से उत्तम (असि) हैं इसलिये आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (मारोहतम्) जाओ (अदितिम्) भविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (अध्यामाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्य-रूपौ) प्रकाश स्वरूप (उर्भा) दोनों (इन्द्रो) परमैश्वर्य करने हारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे प्यवहार में (सूर्यः) सूर्य (च) और चन्द्रमा (उपसः) प्रातः और निशा काल के अवधियों को प्रकाशित करते हैं । जैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भाषार्थः—जिस देश में सूर्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहाँ सत्यासत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहाँ यह बात नहीं होती वहाँ अन्य परम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही ह्वेश पाते हैं ॥ १६ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषि । क्षत्रपतिर्वेवता । आर्यापत्किदृच्छन्दः । पंचमः स्वराः ॥
पूर्वोक्त काव्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुत्र को राज्याधिकार देना चाहिये यह वि० ॥

सोमस्य त्वा शुम्नेनाभिपिञ्चाम्पुग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्र-
स्वेन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यातिं दिथ्यन् पाहि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे प्रशिक्षित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा जैसे मैं जिस तुम को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (पुञ्जेन) यश रूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के समान (सूर्यस्य) सूर्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रियेण) इन्द्रियों के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको (क्षत्राणां) राज्याधिकारी करता हूँ । जैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (अवेधि) अति तत्पर

जिसे और (विष्णु) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने द्वारे व्यवहारों की (पादि) रत्नर रक्षा फोजिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचस्पत्युः—मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि भूत युक्त जिनोन्द्रिय विद्यायुक्त हो उस को राज्य का अधिकार देवे। और उस राजा को चाहिये कि राज्याधिकार को प्राप्त हो अतिशय छ होना हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करने द्वारे प्रजापुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥ १७ ॥

इमं देवा इत्यम्य देवदात ऋषिः । पजमानो देवता । स्वराड्ग्राह्यो त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मन्त्र के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से ले के अच्छी शिक्षा से राजानों की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचार युक्त करें यह वि० ॥

इमन्देवा असपत्नन्धे सुवद्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायन्द्रस्वैन्द्रियार्थं । इमममुद्यं पुत्रममुद्यं पुत्रमस्यै धिय एष सोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाम् राजा ॥ १८ ॥

पदार्थः— हे (देवा;) वेद शास्त्रों को जानने द्वारे सेनापति लोग आप 'जो (पपः) यह उपदेशक वा सेनापति (य;) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिकारी है । जो (गमी) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने द्वारा है उस (इमम्) इम (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपुत्र के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बढ़ (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवद्वम्) उत्पन्न करो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होयें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ १८ ॥

प्रपत्तस्यत्यस देवदात ऋषिः । विराड्ग्राह्यो त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

हिरण्यरूपा इत्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रा वरुणौ द्वेषते । स्यरादार्षी जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

अथ विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उन को बुद्धिमान् विद्वान् बनायें यह वि० ॥

हिरण्यरूपा उपसो विरोक उभाधिन्त्रा उदिथः सूर्यश्च । आ-
रोहतं वरुण मित्र गत्तं ततश्चक्षायामदितिं दितिं च । मित्रोऽसि
वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सत्य के सुहृद् । जिस लिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेना-पति जिस लिये आप (वरुणः) सत्य से उत्तम (असि) हैं इसलिये आप दोनों (ग-त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) भविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (चक्षायाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्य-रूपौ) प्रकाश स्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमेश्वर्य्य करने हारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उपसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं । वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भाषार्थः—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहाँ सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से-सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहाँ यह बात नहीं होती वहाँ अन्ध परम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥ १६ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषि । क्षत्रपतिर्वेषता । आर्षीपंक्तिदृच्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पूर्वोक्त कार्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याधिकार देना चाहिये यह वि० ॥

सोमस्य तथा द्युम्नेनाभिपिञ्चाम्यग्नेभ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्र-
स्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेधपतिं द्विद्युन् पाहि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाय वाले राजा जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यश रूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के स-मान (ब्राजसा) तेज से (सूर्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इ-न्द्रस्य) विजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको (अभिपिञ्चामि) राज्याधिकारी करता हूँ । वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल .. हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (अत्येधि) अति तत्पर

जन्ते भौत (विद्वन्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों की (पादि) रक्षार रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में यान्तादुः—मनुष्यों को चाहिये कि जो शक्ति अति शक्ति युक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवे। और उस राजा को चाहिये कि राज्याधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होना हुआ विद्या और धर्म का प्रकाश करने हारे प्रजा पुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥ १७ ॥

धर्म देवा इत्यस्य देववत् ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मन्त्र के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावरणा से ले के अच्छी शिक्षा से राजानों की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचार युक्त करें यह वि० ॥

इमग्देवा असपुनश्च सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानमाज्जपान्द्रस्पर्शिवायं । इमममुष्यं पुत्रममुष्यं पुत्रमस्यै धिय पुष सोऽमी राजा सोमाऽस्माकं ब्राह्मणान्नाः राजा ॥ १८ ॥

पदार्थः—इ (देवाः) वेद शास्त्रों को जानने हारे सेनापति लोग आय 'जो (पयः) यह उपदेशक या सेनापति (यः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है । जो (अमी) ये धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपुत्र के (पुत्रम्) पुत्र की (अमुष्यै) प्रशंसा करने वाल्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सन्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपदाम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र की (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति क्रिया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होयें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ १८ ॥

प्रपर्वतस्यैत्यस्य देववत् ऋषिः । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जगत् में राज और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये यह वि० ॥

प्र पर्यतस्य वृषभस्य पृष्ठाक्षार्धश्चरन्ति स्वसिचं ह्युानाः । ता
 आर्धवृत्रक्षधरागुर्दक्ता अर्द्धं युध्न्यमनु रीर्यमाणाः । विष्णोर्विक्र-
 मर्णमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे राजा के कारीगर पुरुष । जो तू (स्वसिचः) जिन को अपने लोग जल से सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर २ ऊपर को जायें (अर्द्धयुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले मेघ के (अनुरीर्यमाणाः) पीछे २ चलाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) यहाँ करने हारे (पर्यतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिन से तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक मःयु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने द्वारा (असि) है और (विष्णोः) व्यापक विजुलों के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आववृत्रम्) मेघ के समान विचरते हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥ १९ ॥

भाषार्थः—जैसे मेघ वर्षके भूमि के तले को प्राप्त हो के पुनः आकाश को प्राप्त होता है । यह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है । जो जल के भीतर अर्थात् जिन के ऊपर नीचे जल होता है । जैसे ही सब कारीगर लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अनोपदेशों में यथेष्ट जाना आना करें । जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जासकता । जैसे पक्षी अपने शरीर रूप संघात को आकाश में उड़ा लेचलते हैं जैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥ १९ ॥

प्रजापते इत्यस्य वैश्वानर ऋषिः । प्रजापतिदेवता । स्वराडतिघृतिमृच्छन्दः । षड्जः स्वरः ।

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह वि० ॥

प्रजापते न त्वदेतान्युन्यो विश्वां रुपाणि परि ता यंभुव । प-
 त्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्यं पिताऽसावस्य पिता वयं
 स्पांस पतपो रयीणां स्वाहा । रुद्रयत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन्
 हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर । जो (एतानि) जोष प्रकृति आदि

मातृव्यस्य देवघातः ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचूदायीं त्रिष्टुप् छन्दः । शैवतः स्वरः ॥

प्रजा पुरुषों के राजा के साथ कैसे वचनना चाहिये यह वि० ॥

मा तं इन्द्रं तं वयं तुरापाडयुक्तासो अन्नह्यता वि दंसाम ।
तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रुद्रीन्दैव गमसं स्वश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रजाशामान (इन्द्र) समापति राजन् ! (वज्रहस्ता) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हों उस आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधमकारी (मा) न हों (ते) आप की (अन्नह्यता) देह तथा ईश्वर में रहित तिष्ठा (मा) न हो और न (विदंसाम्) नष्ट करें जो (तुरापाट) शोभकारी शत्रुओं के सहने हारे आप जिन (रुद्रीन्) घोड़े के लगाम ली रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों के (यमसे) नियम से रखते हैं । और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों का योग्य है कि राजा के साथ अत्यन्त व्यवहार कर्मों न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करें वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक विडोने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले हों । और कर्मों आलस्य प्रमाद से ईश्वर और देवों को निन्दा वा नास्तिकता में न फेंकें ॥ २२ ॥

शानव्यस्य देवघातः ऋषिः । अन्यादयो मंत्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अथ माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमये वनस्पतये स्वाहा मरुतामो-
जसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मां हिंस्री-
मां अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्य गीति (सोमये) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने वाले पौध आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों या ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने वाले प्राणों और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो । हे (पृथिवी) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मातृ करने वाले जनों व (मा) मुझ को (मा) मत (हिंस्री) घुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुम को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजा आदि राज पुरुषों की प्रजा के हित प्रजा पुरुषों के राज पुरुषों के हुए भी सब ही उन्नति के लिये परस्पर वचनना चाहिये । माता को योग्य है कि

दुःखों मिटाने और मर्त्यता रूप भविष्या देकर सन्तानों की पुष्टि नष्ट न करे। और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कर्मों प्रेम न करें ॥ २३ ॥

हंस इत्यस्य वामदेशे ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्थी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥ मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना पूर्वक मद्य के निचे न्याय और शान्ति शिक्षा करें यह वि० ॥

हृषि मः शुश्रिपद्वर्त्तन्तरेक्षसञ्जातां वद्विपदार्थिधिर्दुरोणसत् ॥
नृपद्वर्त्तमद्वर्त्तमद्वर्त्तमद्वर्त्तजा गोजा मन्त्रजा अत्रिजा मन्त्रम्युहत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हं मनुष्यों ' भाप लोगों को चाहिये कि जो परमेस्वर (ईशः) सब पदार्थों को स्थूल करता (शुचिपत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास करता और करता (अन्तरिक्षसत्) अथकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता प्रहण करता और प्रलय करता (वेदियत्) पृथिवी में व्यापक (अतिधिः) अभ्यागत के समान समान करने योग्य (दुर्गोणसत्) घर में स्थित (नृपत्) मनुष्यों के भीतर रहता (परसत्) दशम पदार्थों में बसता (अस्तसत्) सत्य प्रकृति भादि नाम वाले कारण में स्थित (ध्योमसत्) पोल में रहता (भञ्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गो-जाः) पृथिवी भादि तरलों को उत्पन्न करता (अतजाः) सत्य विद्याओं के पुस्तक धेदों को प्रसिद्ध करता (अत्रिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष भादि को रचता (अतम्) सत्यस्वरूप और (बृहत्) मद्य से बड़ा बनता है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

माधार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे द्रष्टा परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदित्यस्य वामदेशे ऋषिः । सूर्यो देवता । भार्थी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥ मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करें यह वि० ॥

इयद्वर्त्तस्याधुर्वर्त्तस्याधुर्मर्षिं धेहि युद्धर्त्तसि वधुर्वर्त्तसि वधुर्वर्त्तसि धे-
धामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हं परमेस्वर ' भाप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) तुझ में (धेहि) धरिये जिस से भाप (युद्) सब को सम.धि कराने वाले (अलि) हैं (व-धुः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊर्ध्व) अत्यन्त बलवान् (अ-सि) हैं इस लिये (ऊर्ध्वम्) बल पराक्रम की (मयि) मेरे में (धेहि) धारण की-जिये । हं राज और प्रजा के पुत्रों (वीर्यकृतः) बल पराक्रम की बढ़ाने हारे (इ-धुर्वर्त्तस्य) वेदवर्त्थ और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राज प्रजा पुत्रों के (धे-हि) बल और पराक्रम की (अम्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूँ ॥ २५ ॥

मातृव्यस्य देवमातृ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदापि विष्टुप् छन्दः । घैयताः स्वरः ॥
 प्रजा पुरुषों का राजा के साथ कैसे घर्त्तना चाहिये यह षि० ॥

ता तं इन्द्र तं यमं तुरापाडयत्कासो अग्रमत्ता वि दंसाम ।
 तिष्ठा रथमधि यं नज्रहस्ता रुदमीन्दैव गमसुं स्पश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन् । (यज्ञहस्त) जिस के कार्य में यज्ञ के समान शस्त्र ही उन आप के साथ (ययम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तसः) मघमकारी (मा) न होयें (ते) आप की (यम्यता) घेय तथा ईश्वर में रहित तिष्ठा (मा) न हा और न (विदसाम्) नष्ट करें जो (तुरापाट्) शोभकारी शत्रुओं के सहने हारे आप जिन (रुदमान्) घोड़ों के लगाम की रस्सी और (स्पश्वान्) सुन्दर घोड़ों के (यमसे) नियम से रखते हैं । और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता हों ॥ २२ ॥

भाषार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों का योग्य है कि राजा के साथ अथेय व्यवहार कर्मों न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवार्ग एक विद्योने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले हों । और कर्मों आलस्य प्रमाद से ईश्वर और घेयों का निन्दा वा नास्तिकता में न फलें ॥ २२ ॥

आनयव्यस्य देवमातृ ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह षि० ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामो-
 जसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातृर्मा मां हि धे सी-
 मां अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामो (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्य गीति (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारे वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं जैसे ही तुम लोग भी करो । हे (पृथिवी) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मातृ करने हारे जगती व (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसो) घुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देजं ॥ २३ ॥

भाषार्थः—राजा आदि राज पुरुषों को प्रजा के हित प्रजा पुरुषों का राज पुरुषों के दुःख और सब नी उन्नति के लिये परस्पर घर्त्तना चाहिये । माता की योग्य है कि

दुःखिणी सा न भवति सा च भविष्या देव्यः स्यात् । नो पुत्रि मष्ट न क्ते । सोर स-
न्मत्तो नो इति है कि स्यात्तो माता के साथ कर्मों से न करें ॥ २३ ॥

इस इच्छा का अर्थ है कि । सुखी देवता । सुनिर्गर्ह । जगतो अर्थः । निर्गन्तः स्वयः ॥
मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना पूरे मय के लिये न्याय और सन्तो
शिखा करें यह वि० ॥

॥५॥ सः पुंश्विपदमूर्त्तगिह्वसब्दोर्गा बहिषदनिधिदुराणमत् ।
नृपदंमर्तमदयोममदन्जा गोजा कान्ता अत्रिजा नृनस्पृहत् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ' भाप लोगों को बाधिये कि जो पद्मेस्वर (ईशः) सब प-
दार्थों को स्पृह करता (शुचिपत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वस्तुः) निवास कर-
ता और सन्ता (भक्तिसमत्) कथकाग में रहता (होता) सब पदार्थ देता प्रहृष
करता और प्रत्य करता (वैदिपत्) पृथिवी में व्यापक (भक्तिगिः) भाग्यगत के
समान प्रकार करने योग्य (दुर्गणमत्) घर में स्थित (चृपत्) मनुष्यों के भीतर
रहता (परमत्) दक्षम पदार्थों में बसता (प्रसमत्) साथ प्रहृति भादि नाम वाले
कारण में स्थित (स्थोममत्) पोल में रहता (शब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गो-
जाः) पृथिवी भादि ताकों को उपास करता (श्रतजाः) सत्य विद्याओं के पुस्तक
पदों को प्रसिद्ध करता (अत्रिजाः) मेघ पदार्थ और वृक्ष भादि को रचता (ऋतम्)
मत्वास्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा मानता है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥
मन्वार्थः—मनुष्यों को इच्छित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने
हारे द्रष्टा परमात्मा ही को उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को
धर्म शर्थ काम माश्र से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥
इयदित्यस्य चामर्शे भ्र विः । सूर्यो देवता । नार्थो जगतो छन्दः । निपादः स्वयः ॥

मनुष्य ईश्वर को उपासना क्यों करें यह वि० ॥
इयदुस्पायंरूरायुर्मर्षिं भेहि पुहृखंसि वचोऽसि वचो मर्षिं वृ-
क्षोऽसि वचो मर्षिं वृ-
हरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेस्वर ' भाप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मर्षि) दुःख में
(भेहि) धरिये जिस से भाप (युद्) सब को समधि कराने वाले (अमि) हैं (व-
चः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊक्) शक्त बलवान् (अ-
सि) हैं इस लिये (ऊजम्) बल परमात्म को (मर्षि) मेरे में (भेहि) धारण की-
जिये । हे राज और प्रजा के पुरुषों (पोर्व्यं हतः) बल परमात्म को पढ़ाने हारे (इ-
न्द्रस्य) ऐश्वर्य्य और परमात्मा के भाग्य से (याम्) तुम राज प्रजा पुरुषों के (वा-
ह) बल और परमात्मा की (मधुपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन
करता हूँ ॥ २५ ॥

मातृप्रत्यय देवयात ऋषिः । इन्द्रदेवता । निचूदायां त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
 प्रजा पुरुषों के राजा के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह वि० ॥

रा स इन्द्र तं ध्रुवं तुरापाडयुक्तासो अग्रहता वि दंसाम ।
 तिष्ठत रथमधि यं नजहस्ता रुद्रीन्दैव यमसु स्वज्ञान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) समापति राजन् । (यज्ञहस्त) जिस के हाथों में यज्ञ के समान शस्त्र हों उस आप के साथ (ययम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न हों (ते) आप की (यज्ञहता) देव तथा ईश्वर में रहित तिष्ठत (मा) न हों और न (विदंसाम्) नष्ट करें जो (तुरापाट्) शोभकारी शत्रुओं के सहने हारे आप जिन (रुद्रीन्) घोड़े के लगाम की रस्सी और (स्वश्यान्) सुन्दर घोड़ों का (यमसे) नियम से रखते हैं । और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता हों ॥ २२ ॥

भाषार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों का योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कर्मों न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक विद्योने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले हों । और कर्मों आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फलें ॥ २२ ॥
 शान्त्यव्यस्य देवयातऋषिः । अन्यादयो मंत्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निपादः स्वरः । अय माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुताम
 जसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मां हि छं स
 मां अहं स्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृह गृहाश्रम के स्वामों) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) गीति (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने वाले पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों या ऋषियज्ञ लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने वाली वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं जैसे ही तुम लोग भी करो । हे (पृथिवी) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मातृ करने वालों जगती वृ (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसो) घुरी शिक्षा से दुःख दे और (स्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊँ ॥ २३ ॥

भाषार्थः—राजा आदि राज पुरुषों की प्रजा के हित प्रजा पुरुषों के राज पुरुषों के दुःख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्तना चाहिये । माता की योग्य है कि

पुनः धिया भवेत्तु मूर्ता रूपं भविष्या देकर समानों को बुझि नष्ट न करे । और स-
 गानों को उचिता है कि भगनों माता के साथ कभी छेप न करे ॥ २३ ॥
 ह्ये इत्यत्र वामदेव इति । सूर्यो देवता । सुरिगार्थं जगतो छन्दः । निपादः स्वरः ॥
 मनुष्य लोग ईश्वर को उपासना पूर्ण कर सब के लिये ज्ञाय और अच्छी

शिक्षा करें यह वि० ॥

नृपदं रमदं तमदधो ममदृज्जा मोजा मंत्तजा अंत्तिया फुनम्युहत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ' भाप लोगों को साहिये कि जो परमेस्वर (ईशः) सब प-
 दार्थों को स्पष्ट करता (शुचियत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निपास कर-
 ता और करता (भन्तगिहसत्) भवनाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता प्रहण
 करता और प्रलय करता (वेदियत्) पृथिवी में व्यापक (भतिभिः) अथगत के
 समान प्रकार करने योग्य (दुरोणयत्) घर में स्थित (नृपत्) मनुष्यों के भीतर
 रहता (वरसत्) उशम पदार्थों में बसता (ऋतसत्) सत्य प्रकृति भावि नाम वाले
 जाः) पृथिवी भावि तत्त्वों को उत्पन्न करता (श्रतजाः) सत्य विचारों के पुस्तक
 कारण में स्थित (व्योममत्) पोल में रहता (भन्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गो-
 जाः) पृथिवी भावि तत्त्वों को उत्पन्न करता (श्रतजाः) सत्य विचारों के पुस्तक
 पदों को प्रसिद्ध करता (भद्रिजाः) मेघ पर्यन्त और वृक्ष भावि की रहता (ऋतम्)
 मत्स्यस्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा भन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥
 भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने
 हारे द्रष्टा परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को
 धर्म सार्थ काम मोक्ष न होने वाला पूर्ण दुष्क कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥
 मनुष्य ईश्वर को उपासना क्यों करे यह वि० ॥

इयं ह्यस्यापुंरुस्यापुर्मरिषिं घृष्टिं पुष्टं सिसि वचोऽसि वचो मरिषिं छे-
 ष्मर्गुर्गुर्ज्जै मरिषिं बहि । इन्द्रं स्व वां वीर्घकृणो वाहू अंभुपाव-
 हरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेस्वर ' भाप (इपत्) इतना (धायुः) जीवन (मरिषि) दुष्ट में
 (घेहि) धरिये जिस से भाप (युद्) सब को समाधि कराने वाले (अमि) हैं (व-
 चः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊर्क) अत्यन्त बलवान् (व-
 सि) हैं इस लिये (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मरिषि) मेरे में (घेहि) धारण फौ-
 जिये । हे राज और प्रजा के पुरयो (वीर्य्यहृतः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इ-
 ष्मस्य) ऐश्वर्य्य और परमात्मा के भाश्रय से (वाम्) तुम राज प्रजा पुरयों के (इ-
 ह्) बल और पराक्रम की (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन
 करता हूँ ॥ २५ ॥

य.यु में सुगन्धि युक्त द्रव्यों को प्राप्त करा य.यु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है जैसे ही न्याय युक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले होके सब प्रजाओं को सुख युक्त करो ॥ २१ ॥

सवित्रेऽथ शूनःशरः क्रविः । सवित्रादिमंत्रोक्ता देवताः । स्वराष्ट्राहो
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा या राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये इस० ॥

सवित्रा प्रेमवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रां रुषः पूष्णा पशु
भिरिन्द्रेणाग्ने वृहस्पतिना ब्रह्मणा षण्णोर्नाजमाऽग्निना तंजमा
सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रमृतः प्रसर्षामि ॥३०॥

पदार्थः—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं (प्रसवित्रा) प्रेरणा करने वाले वायु (सवित्रा) सापूर्ण चैष्टा उत्पन्न करने वाले के समान शुभ कर्म (सरस्वत्या) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (वाचा) वेद वाणी के समान सत्य भाषण (त्वष्ट्रा) इंद्र के और प्रत.प युक्त सूर्य के समान न्याय (रुषः) सुख रूप (पूष्णा) पृथिवी (पशुभिः) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पावन (इन्द्रेण) विजुली (अग्ने) हम (वृहस्पतिना) सूर्य के गुरु चार वेदों के जानने वाले विज्ञान के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (ब्रह्मणा) ब्रह्म (ब्रह्मणेन) जल के समुदाय (वैजसा) नीला ज्योति के समान शत्रुओं के चराने (अग्निना) अग्नि (राज्ञा) प्रकाशमान आनन्द के होने (सोमेन) अन्द्रमा (दशम्या) दशम्या को पूज्य करने वाली (देवतया) प्रकृतानाम और (विष्णुना) व्यापक इंद्र के समान शुभ गुण कर्म और स्यनाथ से (प्रमृतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (प्रसर्षामि) अच्छे प्रकार चरता हूँ । जैसे तुम लोग भी चर्यो ॥ ३० ॥

भाष्यार्थः—जो मनुष्य सूर्यादि के गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करने वाला हो वह राजा होने के योग्य है । और जो पुत्र के समान वर्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है ॥

सवित्रेऽथ शूनःशरः क्रविः । सवित्रादिमंत्रोक्ता देवताः । स्वराष्ट्राहो
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अद्विषम्यां पच्यस्य सरस्वती पच्यस्येन्द्राय सुत्राणां पच्यस्य ।
वायुः पूनः पवित्रेण स्युद्धमांसो अर्निस्तनः । इन्द्रस्य गृह्यः स-
त्ता ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे राजा तथा प्रजा पुरुषो ! तुम (अद्विषम्यां) सूर्य कर्म के समान
... और इन्द्रस्य (पच्यस्य) गुरु बुद्धि वाले हो (सरस्वती) अच्छी शिक्षा
... के लिये (पच्यस्य) रक्षक हो (सुत्राणां) अच्छी गुण करने वाले

(इन्द्राय) परमेस्वर्यं चि- (पञ्चमः) इन्द्र पुत्राय कर्म (पवित्रेण) अनुधर्म के
 अन्तर्गत में (यजुः) यजु के समान (पूजः) निर्वाण (मन्वत्) पूजा तो प्राप्त (सोमः)
 सस्ते सुतां से सुक संपन्न बने (वास्तुतः) अन्तः ज्ञानवान् (इन्द्राय) परमेस्वर
 के (सुतः) सोमाभावात् महिन (मन्वः) मित्र हो ॥ ३१ ॥
 भाष्यार्थः मरण की चाहिये कि सत्यवादी धर्मान्ता आपा अथापक और उ-
 पदेभार से अच्छी भिन्ना को प्राप्त हो भुज धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र
 सोम के सद्गुण से ईश्वर की उपासना और संपत्ति हानि के विषे प्रयत्न कर के आपम में
 मित्रभाव से पन ॥ ३१ ॥
 कुविरहं न्यस्य भुनः भोगं करि । क्षत्रपतिव्रता । निवृद्धं ह्यो त्रिदुःखन्दः ।

राजा वादि ममा के पुत्र्य तिम के तुल्य क्या २ कमें यह वि० ॥
 धैर्यतः स्व ॥
 कुविरहं यत्रमन्तो यत्रं निशुभः दान्त्थंनपूर्व विद्युगं । इहं हैषां
 कृष्णादि भोजनानि ये परिपुं नमं उक्तिं यजन्ति । उपयामगृही-

गोऽऽद्यद्विभवां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सूत्राभ्यो ॥ ३२ ॥
 पदार्थः— (अह) ज्ञानवान् राजान ' जो (कुवित्) बहुत ऐदय्य वाले आप
 (वादिप्रियाम्) विद्या को प्र म हुए शिक्षक लोगों के लिये (उपयामगृहीतः) द्रव्यच-
 र्य के नियमों से स्वोकार किये (अवि) हैं उन (सरस्वत्यै) विद्या सुक पाणों के
 लिये (त्वा) आप को (इन्द्राय) उत्तम ऐदय्य के लिये (त्वा) आप को और (सुत्रा-

भ्यो) अच्छी रक्षा के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वोकार करते हैं । उन के लिये
 सरकार के साथ भोजन आदि दीजिये । जैसे (यषमन्त) बहुत जी अदि धान्य से
 युक्त खेतों करने हने लोग (इहेह) हम २ व्यपहार में (यषम्) यथादि अन्न को
 (अनुपूर्वम्) काम से (दान्ति) तुनने (काटने) हैं । भुम से (चित्) भो (यषम्)
 जषों को (विषय) पृथक् करके रक्षा करने हैं जैसे सत्य असत्य को ठोक २ विचार
 के इन को रक्षा दीजिये ॥ ३२ ॥

भाष्यार्थः— इन मंत्र से उपमालो— जैसे खेतों करने वाले लोग परिश्रम के साथ
 पृथिवी से अनेक फलों वा उपज और रक्षा करके भोगते और अन्तर्गत को फँकते हैं
 और जैसे ठोक २ राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा अदि पुरुषों को चा-
 हिये कि अत्यन्त परिश्रम से इन की रक्षा न्याय के आचरण से ऐदय्य का उपज कर
 और सुपात्रों के लिये देतेहुए आनन्द को भोगे ॥ ३२ ॥
 सुषमित्यस्य भुन शेषं करिः । अदिबनी देवते । निवृद्धसुष्टुप् छन्द । गान्धारः स्वरः ॥

सभा और सेनापति प्रयत्न से वेश्यों की रक्षा कमें यह वि० ॥
 ध्रुवः सुराममद्विभना नमंचावासुरे सर्वा । विपिपाना गुंभ-
 स्वर्गा इन्द्रं कर्ममुषतम् ॥ ३३ ॥
 पदार्थः— (सचा) मिले हुए (विपिपाना) विविध राज्य के रक्षक (शभः)

कल्याण कारक व्यवहार के (पतों) पालन करने हारे (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (युधम्) तुम दोनों (नमुचां) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़ें (आसुरे) मेघ के व्यवहार में (कर्मसु) लेती आदि वज्रों में वत्तमान (सुराम्) अच्छी तरह जिस में रमण करें ऐसे (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले धनी की निरन्तर (आवतम्) रक्षा करो ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के बिना किसी चेष्टावान् नर का कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती। और न प्रजा जनो के अनुकूल हुए बिना राजपुरुषों की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी हो के सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ॥ ३३ ॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेष ऋषिः । अश्विनो देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्तना चाहिये यह वि० ॥

पुत्रमिव पितरं विश्विनो मेन्द्रावधुः काव्यैर्दृष्टेः सनाभिः । य-

त्सुरामं वपिषः शचीभिः सरस्वती तथा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सरकार के योग्य (इन्द्र) सब सभाओं के मालिक राजन् ! (यत्) जो आप (शचीभिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुराम्) अच्छा आराम देने हारे रस को (वपिषः) विविध प्रकार से पीयें उस आप का (सरस्वती) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री (अभिष्णक्) सेवन करे (अश्विना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उभा) तुम दोनों सेनापति और न्यायाधीश (काव्यैः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसनाभिः) कर्मों से (पितरौ) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवधुः) रक्षा करो ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—सब अच्छे २ गुणों से युक्त राजधर्म का सेवने हारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणां से युक्त रूप और लायण्य आदि गुणों से शोभायमान विद्वान् स्त्री के साथ विवाह करे। जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो। और पति भी उस के सम्मति का हो। राजा अपने मन्त्रों नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों को रीति पर पिता के समान और प्रजा पुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्ते। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित हों ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ को पूर्ण अध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह दशवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अथैकादशोऽध्यायः ॥

विश्वानि द्वे सवितर्दृष्टितानि पर्गमुव ।

यदमद्रं तन्न आमुव ॥

युञ्जानइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडा-
र्षनुष्टुप्छन्दः । मान्यारः स्वरः ॥

यस्य व्यासार्हर्षे अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इस की प्रथम मन्त्र में
योगाभ्याम और भूगर्भं विद्या का उपदेश किया है ॥

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।

अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्याअध्याभरत् ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (सविता) ऐश्वर्य के चाहने वाला अनुष्प (तत्त्वाय) मन
परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान हे ने के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचार
स्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्याम और भूगर्भविद्या
में युक्त करता हुआ (अग्नेः) एषियों आदि में रहने वाली विद्युती के
(ज्योतिः) प्रकाश का (निचाय्यं) निश्चय कर के । एषिःवाः) मूर्ति के
(अधि) ऊपर (वाप्तम्) अर्द्धे प्रकार धारण करे वह योगी भी भूगर्भ
विद्या का ज्ञानेवाला होवे ॥ १ ॥

भाषार्थः—जो पुरुष योगाभ्याम और भूगर्भविद्या किया चाहे वह मन
आदि योग के अङ्ग और क्रिया कीशलों से अपने हृदय को सुदृढ़ करने की

प्राप्त नहीं हो सकना हमसिधे जब योगविष्णुके माघदी भव मनुष्य पात्ररूप
की उपासना करें ॥ ५ ॥

सहस्रनाममिन्दस्य प्रजापतिर्हृषिः । सविता देवता ।

आर्षोऽत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस की उपासना करें यह वि० ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्युर्देवा देवस्य महि-
मानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे स एतशो
रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे योगी पुरुषो ! तूण की चाहिये कि (मरुग) जिन (दे-
यस्य) मद्य सुख देने हारे देवता के (महिमानम्) स्तुति विषय की (प्र-
याणम्) कि जिन में मद्य सुख प्राप्त होवे उन के (अनु) पीछे (अन्वे) जी-
वादि और (देवाः) विद्वान् लोग (यय.) प्राप्त होयें (य.) जो (एतशः)
मद्य जगत में अपनी उपासि में प्राप्त हुआ (सविता) मद्य जगत का रचने
हारा (देवः) शुद्धस्वरूप सगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओ-
जसा) पराक्रम में (पार्थिवानि) पृथिवी पर समिद्ध (रजांसि) मद्य लोको
की (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है यह (इत) ही नि-
रन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग मद्य जगत के बीचर पोल में अपने अनन्त
चल में धारण करने, रचने और सुख देने हारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् मद्य के हृ-
दयो में उपासक देवता की उपासना करते हैं वेही सुख पाते हैं अन्य नहीं ॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्हृषिः । सविता देवता ।

आर्षोऽत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अय किसलिधे परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनीचाहिये यह वि० ॥

देव सवितः प्र मुंव यज्ञं प्र मुंव पृज्ञपतिं भ-

भावार्थः—इमं मंत्रं नै वाचस्पत्युः—जो नियम से आहार विहार करने हारे त्रितेन्द्रिय पुरुष प्रकान्त देशमें परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

युजेवामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

विराडार्षीं त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस वि० ॥

युजे वां ब्रह्मं पूर्वं नमोभिर्विश्लोकं एतु प-
थ्येव सूरैः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ-
ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करने वाले मनुष्यो आप लोग जैसे (श्लोकः) मत्स्य याणो से संयुक्त मैं (नमोभिः) सत्कारों से जिम (पूठर्मम्) पूर्व के योगियो ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) मद्य से बड़े ठपापक ईश्वर की (युजे) अपने आत्मा में युक्त करता हूँ बह ईश्वर (वाम्) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनों को (सूरैः) विद्वान् की (परमेय) उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है जैसे (व्येतु) विविध प्रकार से प्राप्त होवे । जैसे (विश्वे) मद्य (पुत्राः) अच्छे सम्मानों के तुल्य आशाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अमृतस्य) अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि) हुए के प्रकाश में होने वाले (धामानि) स्वर्गों को (वासस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं जैसे मैं भी उन को प्राप्त होऊँ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इमं मंत्रं नै उपमालं०—योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का मङ्गल करें। उन के संग से योग की विधि को ज्ञान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रसाधित किया हुआ मार्ग मद्य को हुए से प्राप्त होता है, वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग विधि महत्तम में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सद्य सुखों को

प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए उस योगविधि के माध्यमी सब अनुष्य पात्ररूप की उपासना करें ॥ ५ ॥

यस्यप्रयागमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

आर्षात्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अनुष्य किस की उपासना करें यह वि० ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इत्युर्देवा देवस्य महि-
मानमोजंसा । यः पार्थिवानि विममे स एतंशो
रजांश्चि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे योगी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिम (दे-
वस्य) मद्य सुम देने हारे ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय को (प्र-
याणम्) कि जिम ० मद्य सुम प्राप्त होवे उस के (अनु) पीछे (अन्व्ये) जी-
यादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययः) प्राप्त होयें (य.) जो (एतशः)
मद्य जगत में अपनी उपासि से प्राप्त हुआ (सविता) मद्य जगत का रक्षने
हारा (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओ-
जसा) पराक्रम से (पार्थिवानि । पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) मद्य लोकों
को (विममे) विमान आदि यानों के समान रक्षता है यह (इत) ही नि-
रन्तर उपासनीय मागो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग मद्य जगत के बीच २ दोल में अपने अग्रन्त
वह से धारण करने, रक्षने और सुम देने हारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् मद्य के दृ-
द्यों में उपासक ईश्वर की उपासना करते हैं वेही सुम पाते हैं अन्य नहीं ॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

आर्षात्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अय किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह वि० ॥

देव सवितः प्र गुंव यज्ञं प्र सुंव पृजपतिं भ-

गाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वा-
चस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः— हे (देव) सत्ययोग विद्या मे उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सविताः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर आप (नः) हमारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार की (प्रसुय) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञवतिम्) इन शुभदायक व्यवहार के रक्षक बन की (प्रसुय) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धरने (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान मे पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः— जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य की प्राप्ति अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या की सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्ति होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्कपिः । सविता देवता ।

शकरी, छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं सभी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणाय देवाव्यथस-
खिविदंथसत्राजितं न्धनजितं स्वर्जितंम् । ऋचा
स्तोमंथसमर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रव-
त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः— हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सविताः)

संज्ञादि नाम से प्रोत्सा करने हारे अतीन्द्रिय भाव (नः) हनारे (इ-
 त्) पीटे हने जीव जाने निवृत्त को बहने उभ (देवदत्तम्) दिव्य विद्वान्
 का दिव्य सुनी की निवृत्त से रत्ता हो (मन्त्रिविदम्) निवृत्त को निवृत्त से प्राप्त
 हो । मन्त्रविदम्) मन्त्र को निवृत्त से जीति (पनक्तिम्) पन की निवृत्त से
 पनक्ति से वे (स्वर्णिम्) सुन को निवृत्त से बढ़ाये । जीव (ज्ञाना) अश्वेद
 से निवृत्त हो (कर्मम्) कर्म को उभ (पदम्) विद्या और पदों का सं-
 शोध पदार्थ हारे पद हो (स्वाहा) मन्त्र विद्या के माप (मन्त्र) प्राप्त
 होतिथि (नायकेन) नायकी आदि उद्दे से (नायकप्रतिनि) नायकी आदि
 उद्देशों की नाय विद्या (उद्दे) यद्दे (रघन्ताम्) जलदे र पानी से निवृत्त
 के पार हो उभ मार्ग को (मन्त्रपद) जलदे प्रकार बढ़ाइये ॥ ८ ॥

भाषार्थ:-सो मनुष्य संघों द्वेष आदि दोषोंको छोड़ ईश्वरके समान
 मय जीवों के माप मित्रताय रहते हैं। वे मन्त्र को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्होषिः । सविता देवता । भुरिग-
 निदाक्षरिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से विदुषी का पहल करे पद विः ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रमत्तेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पू-
 ष्णाहस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
 स्वत्पृथिव्याः सधस्थाद्गिनिपुंरीप्यमङ्गिरस्वदा-
 भंरु त्रेष्टुंभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थ:-हे विदुश् पुरुष मैं निवृत्त (रत्ता) भाव को (देवस्य) मूर्खों
 आदि मय उद्दे के प्रकाश करने और (सवितुः) मय देवस्यमें मैं (अ-
 श्विनोः) माप और उद्दान के (वाहुभ्याम्) यल और आरुद्ध से तथा
 (पूष्णः) पुष्टि कारक विदुषी के (हस्ताभ्याम्) धारण और आरुद्ध
 (मङ्गिरस्वत्) जंगलों के समान (आददे) पहल करता हूं सो भाव (गा-
 यत्रेण) नायकी संघसे निकले (छन्दसा) ज्ञानन्ददायक अर्थ के माप (पृ-

गाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वा-
चस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्ययोग विद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर आप (नः) हमारे (वाचम् । सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (प्रभुय) उत्पन्न कीजिये तथा (वाचस्पतिम्) इस शुद्धदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रभुय) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धरने (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्त्रादिष्ट अर्थात् कोमल सधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थः—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या की सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों की प्राप्ति होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्कृपिः । सधिता देवता ।

शकरी, छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रगाय देवाव्युत्स-
खिविदं सत्राजितन्धनजितस्त्रजितम् । ऋचा
स्तोमश्च समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रव-
त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः)

देवभ्योऽन्य प्रजापतिर्षोषिः । मनिता देयता । भुरिग
मिजकाराच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि तृतीयों में विजुली का ग्रहण करें यह यिः ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव्वेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पू-
ज्जाहस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
स्वत्पृथिव्याः सधस्थाद्गिनिपुंरीप्यमङ्गिरस्वदा-
भंरु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थः- हे विद्वन् पुत्र्य में जिन (त्वा) भाप को (देवस्य) सूर्य
जादि मय जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सप्त ऐश्वर्य में (अ-
श्विनोः) प्राण और उदान के (वाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा
(पूज्जाः) पुष्टि कारक विजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण
(मङ्गिरस्वत्) अगारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूं सो भाप (गा-
यत्रेण) गायत्री मन्त्रों में लिये (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (प-

विद्ययाः) पृथिवी के (सधन्धात्) एक स्थान में । अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मंत्र से निकले (छन्दसा) स्वतंत्र अर्घ के साथ (अङ्गिरस्वत्) चिन्हों के सदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने वाले (मग्निम्) विजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालकार है । मनुष्यों की चाहिये कि इंद्र की सृष्टि के गुणों की आसने वाले विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि का स्वीकार करें ॥ ९ ॥

अभिरसीत्यस्य प्रजापतिर्कपिः । सविता देवता । भूरिग-
तुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होयें यह वि० ॥

अभिरसि नार्यसि त्वयाव्यमग्निश्शक्रे स्वनि-
तुष्टुसधस्थया । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥१०॥

पदार्थः हे कारीगर पुरुष जो (त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्तमान (व्यम्) हमलोग जो (अभिः) भूमि खोदने और (नारी) विद्यादित उत्तम स्त्री के समान कार्यों को विद्व करने वाली छोड़ आदि की कमी (अग्नि) है जिस से कारीगर ठाग भूगर्भ विद्या को ज्ञान मर्के वम को पहण करके (जागतेन) जगती मंत्र से विधान किये (छन्दसा) सुरदायक स्यन्त्र साधन में (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (तमितुम्) खोदने के लिये (आशक्रे) सध प्रकार समर्पण है नमको नू दना ॥ १० ॥

भावार्थः-मनुष्यों को अग्नि है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को गोद और अग्नि के साथ मयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थों को प्राप्त करें । परन्तु पहिले भूगर्भ की त्वय विद्या को प्राप्त हो के ऐसा कर सकते हैं ऐसा नियत जागना चाहिये ॥ १० ॥

भरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सविता) ऐश्वर्य का उत्पन्न करने द्वारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दमा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्यवीम्) तेजोगय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) सोदने से शस्त्र को (हस्ते) हाथ में लिये हुए (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निघारप) निरूप्य करके (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभगत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे लोहे और पत्थरों में शिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है। उसकी विद्या को ठीक ठीक जान और कार्य में उपयुक्त कर के इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तमित्यस्यनाभानेदिष्ट ऋषिः । वाजी देवता । आस्मारपङ्क्ति-

इछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

क्ति भी वही वि० ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनुं सम्बतम् ।
द्विवि ते जन्मं परममन्तरिक्षे तव नाभिः प्रथि-
व्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रसंगित छा

आप का गिनप वि

(जन्म) प्रसिद्धि (तय) आप का (अन्तरिक्षे) आकाश में (नाभिः)
 वन्धन और (पृथिव्याम्) इम पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है जो
 आप विमानादि यानों की अचिष्टाता होकर (वगिष्ठाम्) अत्यन्त उत्तम
 (सम्प्रतम्) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति की (प्रतूर्तम्) अतिशीघ्र
 (इत्) ही (अनु) पश्चात् (आ) (द्रव्य) अच्छे प्रकार चलिषे ॥ १२ ॥

भावार्थः—जय मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीज में परम प्र
 यत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना
 आना करते हैं तब उन की धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥ १२ ॥

युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्भापिः । धार्जी देवता । गायत्री
 छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह वि० ॥

युञ्जाथाथरांसभं युवमस्मिन् यामे वृषणवसू ।
 अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (वृषणवसू) सूर्य और वायु के समान हुए वर्षाने वा
 सुख में वसने हारे कारीगर तथा उन के स्वामी लोगो (युवम्) तुम दोनों
 (अस्मिन्) हम (यामे) यान में (रासभम्) जल और अग्नि के वेगगुण-
 रूप अश्व तथा (अस्मयुम्) हम को लेगलने तथा (भरन्तम्) धारण क-
 रने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध वा विजुलीरूप अग्नि को (युञ्जाथाम्) युक्त
 करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य हम विमान आदि यान में यत्र कला जल और
 अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥ १३ ॥

योगेयोगइत्यस्य शूनःशेष ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता ।

गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

प्रशासन केते पुरुष को राजा मानें यह वि० ॥

योगेयोगे तुवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
 सखाय इन्द्रमृतये ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (सहायः) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो जैसे हम-
लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योगेयोगे) जिन २ में (याजेयाजे)
हैं मद्भाग २ के योग (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य
युक्त पुरुष को राजा (इवामहे) मानते हैं वैसे ही तुमलोग भी मानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परस्पर मित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के लिये
अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे मद्य विघनों से अ-
लग हो के सुर की उन्नति कर सकते हैं ॥ १४ ॥

प्र तूर्वन्नित्यस्य शुनःशंप ऋषिः । गणपतिर्देवता । आर्यो
जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह चिन्ता ॥

प्र तूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशंस्ती रुद्रस्य गागापत्यं म-
योभूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभं-
यानि कृण्वन् पूषणा सयुजां सह ॥ १५ ॥

पदार्थः— हे राजन् (स्वस्तिगव्यूतिः) सुर के माय जिन का मार्ग है
ऐसे भाव (सयुजा) एक माय युक्त कामे वाली (पूषणा) बल पुष्टि से युक्त
अपनी सेना के (सह) साथ (गणपतीः) निम्नदिन शत्रुओं की सेनाओं को
(मतूयन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूँजिये । शत्रुओं के देगों का (अ-
क्रामन्) सरलदुन करते हुए (एहि) आइये (मयोभूः) सुर की मन्त्र
करते आप (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के (गाण
पत्यम्) सेना समूह के स्वामीवन को (एहि) प्राप्त हूँजिये । और (अ-
भयानि) अपने राज्य में मद्य प्राणियों को भय रहित () मैं हुए
(अन्तरिक्षम्) उक्त () मैं हुए
हूँजिये ॥ १५ ॥

मद्वेव वा-
पुं के साथ
मदा दत्त मे

शत्रुओं को नारे और चञ्जनों की रक्षा करके मयंत्र सुन्दर कीर्ति फैलाये ॥१५॥

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेष ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस पदार्थ से यिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदा-
मराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्य-
मङ्गिरस्वद्गिरिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि और अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्थत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) अच्छा सुख देने वाले (अग्निम्) भूमि मण्डल की यिजुली की (अण्ड) उत्तम रीति से (इमः) प्राप्त होते और जैसे (अङ्गिरस्थत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुखदायक (अग्निम्) अन्तरिक्षस्थ यिजुली की (गिरिष्यामः) धारण करें वैसे आप भी (अङ्गिरस्थत्) सूर्य के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुख देने वाले (अग्निम्) पृथिवी पर वर्तमान अग्नि की (आभर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और याचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें सूर्यवत् नहीं । और सध काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें ॥१६॥

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग किसके समान क्या करें यह वि० ॥

अन्वग्निरुपसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो
जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च इश्मीननु
द्यावापृथिवी आर्ततन्थ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप लीसे (प्रथमः) (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य लोक और (अग्निः) (उपमाम्) उपः काल से (अग्रम्) पहिले ही (अहानि) दिनों को (अन्यरूपात्) प्रसिद्ध करता है (सूर्यस्य) सूर्य के (अग्रम्) पहिले (पुरुषा) बहुत (रश्मीन्) किरणों को (अन्यातन्म्य) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है । वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये ॥ १३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुष-लीसे कारण रूप विद्युत् और कारण रूप प्रसिद्ध अग्नि क्रमसे सूर्य, उपःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं । वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे अज्ञानचर्य विद्या धर्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाश युक्त करें ॥ १५ ॥

आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । अग्निर्देयता । निचृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ सभापति राजा किस के समान क्या करें यह वि० ॥

आगत्यं वाज्यध्वान् सर्वा मूधो वि धूनुते ।
अग्निं सधस्थं महति चक्षुपा नि चिंकीपते ॥
॥ १८ ॥

पदार्थः—हे राजन् आप लीसे (याजी) जेगवान घोड़ा (अध्वानम्) अपने भागों को (आगत्य) प्राप्त होके (सर्वा) सब (सृषः) सृष्टानोंको (विधूनुते) कपाता है और लीसे यहस्य पुरुष (चक्षुपा) नेत्रों से (महति) सुन्दर (सधस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिंकीपते) चपन किया चाहता है । वैसे और घर - द्या का प्रचार कीजिये

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः—गृहस्थों की चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर, शत्रुओं की जीत, आग्नेयादि अस्त्रविद्या को सिद्ध कर, अपने बलाऽबल को विचार और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति कर के अधर्मी शत्रुओं को जीते ॥ १८ ॥

आक्रम्येत्यस्य मपोभूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जन्म पा, और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करे यह वि० ॥

आक्रम्यं वाजिन्पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा
त्वम् । भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनेम तं
व्यम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा (त्वम्) आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (पृथिवीम्) भूमि के राज्य और (अग्निम्) विद्या की (इच्छ) इच्छा कीजिये । और (भूम्याः) पृथिवी के बीच (नः) हमलोगों को (वृत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (ब्रूहि) भूगर्भ और अग्नि विद्या का उपदेश कीजिये (यतः) जिस से (व्यम्) हमलोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ट होयें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों की चाहिये कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को सत्साह के साथ प्राप्त होयें । और जो पृथिवी की खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को हम विद्या का उपदेश करें ॥ १९ ॥

द्यौस्तइत्यस्य मपोभूर्ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदार्षी
घृह्ती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य क्या कर के क्या सिद्ध करें यह वि० ॥

द्यौस्ते पृष्टं पृथिवीमधस्थमात्मान्तरिक्षम्

समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ
पृतन्युतः ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् जिम (ते) आप का (द्यीः) प्रकाश के तुल्य यिनय (पृष्ठम्) इधर का ठगवहार (पृथिवी) भूमि के समान (मध स्पम्) साय स्थिति (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त (आत्मा) अपना स्वरूप भीर (समुद्रः) समुद्र के तुल्य (योनिः) नि भित्त है से (त्वम्) आप (चक्षुषा) विचार के माध (विख्याय) अदना ऐश्वर्य्यं प्रसिद्ध करके (पृतन्युतः) अपनी सेना की लड़ाने की इच्छा क रते हुए मनुष्य के (अभि) मन्मुख (तिष्ठ) स्थित हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष न्यायमार्ग के अनुसार उत्तमाद्, स्यान्, और आत्मा जिम के दृढ़ हों विचार से सिद्ध करने योग्य जिम के प्रयोजन हों उन की सेना वीर होती है वह निश्चल विजय करने की समर्थ होवे ॥ २० ॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्कपिः । द्रविणोदा देवता । आर्षी

पङ्क्तिदृच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों की योग्य है कि इस सत्कार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्यं उत्पन्न करें यह वि० ॥

उत्क्रामं महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्र-
विणोदा वाजिन् । व्यथस्याम सुमतां प्रथिव्या
अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य्य की प्राप्त हुए विद्वन् जीमे (द्रविणोदाः) धनदाता (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के (अस्मात्) हम (आ- स्थानात्) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप में (अग्निम्) अग्नि वि- द्या का (खनन्तः) खोज करते हुए (ययम्) हम लोग (महते) बड़े (सौ- भगाय) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (सुमतां) अच्छी बुद्धि में प्रयत्न (स्यान्) होवे धैरे आप (उत्क्राम) उत्पत्ति की प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

आ त्वां जिघर्षिं मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं
भुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयमा बृहन्तं
व्यचिंष्टमन्नैरभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष जिमे में (मनसा) मन तथा (घृ-
तेन) घी के साथ (विश्वा) भव (भुवनानि) लोकस्य वस्तुओं में (प्र-
तिक्षिपन्तम्) प्रत्यक्ष निवाम और निश्चय कारक (तिरश्चा) तिरछे ज-
हने रूप (वयमा) जीवन से (पृथुम्) विस्तार युक्त (दृशानम्) बड़े (अ-
न्निः) ली आदि भक्षों के साथ (रक्षमम्) बल वाले (व्यचिंष्टम्) अतिशय
काके फेंकने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आनिघर्षिं)
अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूँ जैसे (तयाम्) भाप को जो हम वायु के
गुणों को धारण करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—हम मन्त्र में वाचकपुत्र—मनुष्य अग्नि के द्वारा मनुष्य
आदि द्रव्यों को वायु में उड़वा नम मनुष्य से रोगों को दूर कर अधिक
अवस्था को प्राप्त होवे ॥ २३ ॥

आविश्वतइत्यस्य गृन्ममद् ऋषिः । अग्निर्देवता । धार्षीप-

द्भिरुच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर वायु और अग्नि दोनों गुण वाले हैं हम विः ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षमायनंसा
तज्जुपेत । मर्यथ्रीः स्पृहयदृणां अग्निर्नाभि-
मृशं तन्त्रा जंभुराणः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य (न) जिमे (विश्वतः) सब ओर में (अन्निः) विजुनी
और प्राण वायु शरीर में टपापक होके (अन्निमृशे) बहने वाले के लिये डि-
तकारी हूँ जैसे (तन्त्रा) शरीर के (जंभुराणः) शीघ्र हाथ वगैरे आदि क-

भावार्थः— मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहें । और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से सबों को प्राप्त होयें ॥ २१ ॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । नि-
चृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस को
प्राप्त हें यह वि० ॥

उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकश्च सु-
कृतं पृथिव्याम् । ततः खनेम सुप्रतीकमग्निश्च
स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो विद्या के जानने हारे विद्वान् (द्रविणोदाः) धन दाता आप जैसे (वाजी) बल वाला (अर्वा) घोड़ा ऊपर को उचलता है जैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी के धीच (अधि) (उदक्रमीत्) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये (सुकृतम्) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य (सुलोकम्) अच्छा देखने योग्य (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (नाकम्) सब दुःखों से रहित सुख को (अकः) सिद्ध कीजिये (ततः) इस के पश्चात् (स्वः) सुखपूर्वक (रुहाणाः) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (सुप्रतीकम्) सुन्दर प्रीति का विषय (अग्निम्) उपापक विजुली रूप अग्नि का (खनेम) खोज करें ॥ २२ ॥ -

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु० — हे मनुष्यो जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी २ चाल चलते हैं वैसे हम तुम सब मिलकर पुरुषार्थों हों पृथिवी आदि की पदार्थ विद्या को प्राप्त हो और दुःखों को दूर करके सबसे उत्तम सुख को प्राप्त हें ॥ २२ ॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद् ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य उपापक वायु को किस साधन से जानें यह वि० ॥

आ त्वां जिघर्षिं मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं
भुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयमा बृहन्तं
व्यचिंष्टमन्नैरभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष त्रिमे में (मनसा) मन तथा (घृ-
तेन) घी के माघ (विश्वा) मघ (भुवनानि) लोकस्थ यस्तुओं में (प्र-
तिलिपस्तम्) प्रत्यक्ष निवास और तिश्चय कारक (तिरश्चा) तिरछे ज-
लने रूप (वयमा) जीवन मे (पृथुम्) विस्तार युक्त (बृहन्तम्) बड़े (अ-
न्नेः) जी आदि अन्नों के साथ (अभसम्) बल वाले (व्यचिंष्टम्) प्रतिगप
काके केंकने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आजिघर्षिं)
अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूँ ऐसे (त्रयाम्) भाव को जो हम वायु के
गुणों की धारण करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—हम मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि
आदि द्रव्यों को वायु में उड़वा हम सुगन्ध मे रोमों को दूर कर अधिक
अवस्था को प्राप्त होते ॥ २३ ॥

आविश्यतइत्यस्य गुत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्योप-

द्भ्रुदन्तः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि के गुण वाले हैं हम फिर ॥

आ विश्वतः प्रत्यश्च जिघर्ष्यरक्षमायनंसा
तज्जुपेत । मर्य्यश्रीः स्पृह्यहंणां अग्निनामि-
मृशं तन्वा जंभुराणाः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य (म) जैसे (विश्वतः) जग और मे (अग्निः) विजुनी
और मान वायु शरीर में व्यापक होके (अग्निमृशं) बटने वाले के लिये हि-
तकारी हैं जैसे (तन्वा) शरीर से (जंभुराणाः) शीघ्र हाथ दान आदि क-

कैना सेनापति काना चाहिये इस वि० ॥

परिं त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं॑सहस्य धीमहि ।
धूपद्वर्णं द्विवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (महस्य) अपने को बल चाहने वाले (अग्नि) अग्नि-
वत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जैसे (वधम्) हम लोग (दिवे दिवे)
प्रतिदिन (भङ्गुरावताम्) छोटे स्वभाव वालों के (पुरम्) नगर को अ-
ग्नि के समान (हन्तारम्) मारने (धूपद्वर्णम्) दृढ़ सुन्दर वर्ण में युक्त (वि-
प्रम्) विद्वान् (तथा) आप को (परि) सद्य प्रकार से (धीमहि) धारण
करें जैसे तू हम को धारण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—राजा और प्रजा के पुरुषों को चा-
हिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने अग्नि के समान शत्रुओं को मारने
और सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें ॥ २६ ॥

त्वमग्ने इत्यस्य गृत्समद श्रापिः । अग्निर्देवता
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर सप्ताध्यक्ष कैना होना चाहिये यह वि० ॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमांशुशुक्षणिस्त्वमश्मन्-
स्परिं । त्वं वनेभ्यस्त्वमोपधिभ्यस्त्वं नृणां
नृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (नृपते) मनुष्यों के पालने हारे (अग्ने) अग्नि के स-
मान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् । त्वम्) आप (द्युभिः) दिनों के स-
मान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्यों के समान (त्वम्) आप (आ-
शुशुक्षणिः) शीघ्र २ दुष्टों को मारने हारे (त्वम्) आप (अद्रपः) घायु
या जलों से (त्वम्) आप (अश्मनः) मेघ वा पाषाणादि से (त्वम्) आप
(वनेभ्यः) जङ्गल वा किरणों से (त्वम्) आप (ओपधिभ्यः) मोमलता

आदि ओषधियों से (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (युधिः) पवित्र (परि) सद्य प्रद्वार (जायमे) प्रसिद्ध होते ही इस कारण आप का आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होंगे ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो राजा सत्तासद् वा प्रजा का पुरुष सद्य पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता धर्म के जाचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सद्य सुखी को प्राप्त हो सकता है अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २७ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समदक्रविः । अग्निदेवता ।

भुरिक् प्रकृतिश्छन्दः । धैषतः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से विजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सधस्थाद्गनि
पुंशीष्यमङ्गिरस्वत्स्वनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वा-
ग्ने सुप्रतीकमजंस्त्रेगा भ्रानुना दीद्यंतम् । शिवं-
प्रजाभ्योऽहिंसन्तंपृथिव्याः सधस्थाद्गनि पुंशी-
ष्यमङ्गिरस्वत्स्वनामः ॥ २८ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) भूगर्भ तथा शिल्प विद्या के जानने वाले विद्वान् जैसे मैं (सवितुः) सद्य लगत के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के (बाहुभ्याम्) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और (पूष्णः) प्राण के (हस्ताभ्याम्) धल और पराक्रम के तुल्य (त्वा) आप को आगे करके (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थात्) एक स्थान से (पुंशीष्यम्) पूर्ण सुग देने वाले (ज्योतिष्मन्तम्) बहुत ज्योति वाले (अग्ने)

स्तेज) निरन्तर (सागुना) दीप्ति से (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशमान (पु-
रीष्यम्) शुन्दर रक्षा करने (अग्निम्) वायु में रहने वाली बिजुली की
(अङ्गिरश्यत्) वायु के समान (सनामि) सिद्ध करता हूं । और जैसे (तथा)
आप का शाश्रव लेके दृग लोग (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (सधस्यात्)
एक प्रदेश से (अङ्गिरश्यत्) शूत्रात्मवायु के समान वर्त्तमान (अङ्गिमन्तम्)
जो कि साहना न करे ऐसे (पुरीष्यम्) पालनेहारे पदार्थों में उत्तम (प्र-
जाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) सङ्कल कारक (अग्निम्) अग्नि को
(सनामः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली
रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध कर
के कार्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याण कारक ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ।
कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की तपसि के बिना खाली नहीं रह-
ता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥ २८ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराष्टप-
ङ्गिदछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

अपां पृष्ठमंसि योनिर्गनेः समुद्रमभितः पि-
न्वमानम् । वर्धमानो म्हाँ २ आ च पुष्करे
दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

पदार्थः—इ बिद्वन् जिस कारण (गनेः) सर्वत्र अग्निठयाप्त बिजुली
रूप अग्नि के (योनिः) संयोग वियोगों के जामने (महान्) पूजनीय (व-
र्धमानः) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप (अ-
सि) हैं । इन लिये (अभितः) सब ओर से (पिन्वमानम्) जल बर्षाते
हुए (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधार भूत (पुष्करे) अन्तरिक्ष में वर्-
त्तमान (दिवः) दीप्ति के (मात्रया) विभाग बढ़े हुए (समुद्रम्) अच्छे

प्रकार जिस में ऊपर की जल उठते हैं उस समुद्र (च) और वहां के सब पदार्थों की जान को (यरिम्णा) बहुत्व के साथ (आग्रयस्व) अच्छे प्रकार मुखों की विस्तार करने वाले हूजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वृत्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझ और उस से उपकार लेके बड़े २ विस्तार युक्त मुखों को मिट्ट करी ॥ २८ ॥

शर्मचेत्पस्य गृत्समदः ऋषिः । दम्पती देवते । विराडाप्यनु-

पृच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ स्त्री भीर पुत्रप घर में रह के क्या २ सिद्ध करें यह वि० ॥

शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽच्छिद्रे बहुले उमे ।
व्यचंस्वती संवसाथां भूतमग्निं पुरीष्यम् ॥३०॥

पदार्थ:—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (शर्म) गृहाग्रम (च) और उस की मामगी को प्राप्त हुए (स्वः) हो (वर्म) सब भोर उस के सहायकारी पदार्थों की (उमे) दो (बहुले) बहुत अर्थों की ग्रहण करने द्वारे (व्यचंस्वती) मुख की व्याप्ति में युक्त (अच्छिद्रे) निर्दोष बिजुली और अग्निरिक्त के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य (स्वः) हैं । उस घर में (भूतम्) घोषण करने द्वारे (पुरीष्यम्) रक्षा करने में उत्तम (अग्निम्) अग्नि को ग्रहण करके (संवसाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादन करके वसो ॥ ३० ॥

भावार्थ:—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के साथ मत्कार और उपकार पूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब वस्तुओं में सुगदायक सब और की रक्षा और अग्नि आदि वापसी से युक्त घरी को घना के सम में सुग पूर्वक निवास करें ॥ ३० ॥

संवसाथामितस्य गृत्समदः ऋषिः । जायापती देवते । निष्-

दनुपृच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जिा भी वही उक्त वि० ॥

सं वंसाथाश्चस्वविंदां समीचीतरसात्मना ।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित्
॥३१॥

पदार्थः-हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों को (समीची) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने (भरिष्यन्ति) और सद्य का पालन करने हारे (स्वविंदा) तुम को प्राप्त होते हुए (ज्योतिष्मन्तम्) अच्छे प्रकार से युक्त (अन्तः) सद्य पदार्थों के बीच वत्तमान (मग्निम्) धिजुली को (इत्) ही (रसना) (उरसा) अपने अन्तःकरण से (अजस्रम्) निरन्तर (सवसासाम्) अच्छीतरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग सको ॥ ३१ ॥

भावार्थः-जो गृहस्थ मनुष्य धिजुली को उरसा करके ग्रहण कर सकते हैं वे उपवहार में दरिद्र कभी नहीं होते ॥ ३१ ॥

पुरीप्पहृत्पस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष धिजुली को कित्ते सत्पन्न करे वह वि० ॥

पुरीप्प्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो
निरमन्थदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निर-
मन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वान् जो (वाघतः) शास्त्रमित् भाव (पुरीप्पः) पशुओं को सुख देने हारे (अष्टि) हैं उम (त्वा) आप को (अथर्वा) रसक (प्रथमः) उत्तम (विश्वभराः) सद्य का पोषक विद्वान् (विश्वस्य) सद्य संसार के (मूर्ध्नः) ऊपर वत्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्षसे (अग्नि) समीप अग्नि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

भावार्थः-जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विद्या-

र और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थ विद्या को प्रसिद्ध करके सभ नगु-
र्यों की शिक्षा करें ॥ ३२ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्वायत्री

छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

तमुं त्वा दृध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।
वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः— हे राजन् जैसे (अथर्वणः) रक्षक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र
शिष्य (दृध्यङ्) सुख दायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ (ऋषिः)
वेदार्थ जानने द्वारा (उ) तर्क वितर्क के साथ संपूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिन-
(वृत्रहणम्) सूर्य के समान् शत्रुओं को मारने और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के
नगरों को नष्ट करने वाले आय को (ईधे) तेजस्वी करता है वैसे उन मा-
य को सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नति युक्त करें ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान्
वा विदुषी हों वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी का
के उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावे ॥ ३३ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृद्वायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

तमुं त्वा पाथयो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयश्रणैरणे ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष जो आय (पाथयः) अन्न जल आदि पदार्थों की
सिद्धि में कुशल (वृषा) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम्) पूर्वा-
क्त पदार्थ विद्या जानने (धनञ्जयम्) शत्रुओं से धन जीतने (उ) और

दस्युहन्तमम्) अतिशय करके हाफुओं को मारनेवाले (रक्षा) भाप को
रों की सेना राजधर्म की शिला से (मनीषे) प्रदीप्त करें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि प्राप्त धर्मोत्तम वि-
द्वानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चारों
पक्षों को जीत कर परम ऐश्वर्य की उत्पत्ति करें ॥ ३४ ॥

सीदेत्वस्य देवश्रवोदेववातावृषी । होतादेवता ।

निचृत्तिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जिह्व विद्वान् का क्या काम है वह श्रुति ॥

सीदं होतः स्व उं लोके चिंक्षित्वान्त्समाद्यां
यज्ञं सुकृतस्य योनौ । देवार्शित्वान्दृषिषां
यज्ञास्यग्नें बृहद्यजमाने वयोधाः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् (होतः) दान देने वाले (चिंक्षि-
तान्) विद्वान् से एक भाप (लोके) देतने योग्य (स्वे) गुण में (योनि) स्थिता
जिये (सुकृतस्य) अच्छे करने योग्य कर्म करने वाले धर्मोत्तम को (योनी)
धारण में (यज्ञम्) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के उत्पन्न करने (यज्ञम्)
प्राप्त कराइये (दृषिषा) देने लेने योग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों या
देव्य मुक्तों को (यज्ञादि) महत्कार सेवा संयोग कीजिये (यजमाने) राजा
सादि मनुष्यों में (वयोः) वही उत्तर ही (धाः) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि हम जगत में दो वरों निर-
तर करें । प्रथम ब्रह्मचर्य और नित्यव्रतता आदि की शिखा से शरीर को
योग रहित चलने युक्त और पूर्ण अवस्थावाला करें, दूसरे विद्या और विद्या
की सुशुद्धता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार मार्ग कि जिन में सब
मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब जगत् में मान्य हों ॥ ३५ ॥

निहोतेत्वस्य शूतसमद क्षापिः । अग्निदेवताः प्रिष्टुच्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

किर मनुष्यों का कर्तव्य अग० ॥

नि होता होतृपदने विदानस्त्वेपो दीदिवान् ॥
अंसदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्र-
म्भरः शुचिजिह्वा अग्निः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—जो जन मनुष्यजन्म को पा के (होतृपदने) दानशील विद्वानों के स्थान में (दीदिवान्) धर्मयुक्त उपयुक्त का चाहने (स्वेपः) शुभगुणों से प्रकाशमान (विदानः) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (शुचिजिह्वः) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्षः) अच्छे बल वाला (अदब्धव्रतप्रमतिः) रक्षा करने योग्य धर्मावरणरूपी व्रतों से सत्तम बुद्धियुक्त (वसिष्ठः) अत्यन्त बसने (सहस्रम्भरः) असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाला (होता) शुभगुणों का प्राक्कल पुरुष निरन्तर (न्यसदत्) स्थित होते तो वह संपूर्ण सुख को प्राप्त हो जाये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जय माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देने पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वाये तब वे कन्या और पुत्र चूर्ण के सन्धान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों ॥ ३६ ॥

संसीदस्वत्पंतस्य प्रस्कण्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इस पठनपाठन विषय में अध्यापक कैसा होये यह वि० ॥

सथ् सीदस्व म्हाँ २॥ अंसि शोचस्व देववी-
तमः । विधूममग्ने अरुपं मिथेध्य सृज प्रशस्त
दर्शतम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) वधुसा के योग्य (मिथेध्य) दुष्टों को पपक करने वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (देववीतमः) विद्वानों को ज्ञाप्यत

इष्ट आय (विभूयम्) निमंल (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुपम्) सुन्दर रूप को (सृज) मिट्ट कीजिये तथा (शोचस्य) पवित्र हूजिये । जिस कारण आय (महान्) यद्ये २ गुणों में युक्त विद्वान् (जमि) हैं । इनलिये पढ़ाने की गद्दी पर (संसीदस्य) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय अच्छे रूपगुण और छावण्य से युक्त पवित्र महा धर्मात्मा भास विद्वान् होये वही शास्त्रों के पढ़ाने की समर्थ होता है ॥ ३१ ॥

अपोदेवीरित्यस्य सिन्धुक्षीप ऋषिः । आपो देवताः । न्यङ्कु-
सारिणीपृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आने जल आदि पदार्थों के शोचने से प्रजा में क्या होता है इस वि० ॥

अपो देवीरुपं सृज मधुमतीरयक्ष्मायं प्रजा-
भ्यः । तासाम्नास्थानादुज्जिहतामोपधयः सुपि-
प्लाः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष आय (मधुमती.) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त (देवीः) पवित्र (अयः) जलों को (उपसृज) उत्पन्न कीजिये जिस से (तामाम्) उन जलों के (अस्थानात्) आशय से (सुपिप्लाः) सुन्दर कर्लें वाली (ओपधयः) सोमलता आदि ओषधियों को (प्रजाम्यः) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अदहनाय) यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये (उज्जिहताम्) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रखे। एक जो सु-
गन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु यथा जल और ओषधियों को शुद्ध करे। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा मय प्राणियों का रोग रहित रखे। इस कर्म के बिना संसार में मार्गक्रमिक सुख नहीं हो सकता ॥३८॥

सन्तद्वत्स्य सिन्धुक्षीप ऋषिः । वायुर्देवता ।

विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ स्त्रीपुरुष का कर्तव्य कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सन्तो वायुर्मातरिश्वां दधातूत्तानाया हृदयं
यद्विक्रंस्तम् । यो देवानां चरंसि प्राणथेन क-
स्मै देव वषट्स्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे पति राणी (उत्तानायाः) यहें शुभलक्षणों के विस्तार से
मुक्त (ते) भाग का (यत्) जो (विक्रंस्तम्) अनेक प्रकार से शिखा को
माप्त हुआ (हृदयम्) अन्तःकरण है उस को यद्य से शुद्ध हुआ (मातरि-
श्वा) आकाश में चलने वाला (वायुः) पवन (संदधातु) अच्छे प्रकार पुष्ट
करे हे (देय) अच्छे सुख देने हारे पति स्वामी (यः) जो विद्वान् भाग
(प्राणथे) सुख के हेतु प्राण वायु से (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों का
जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को (चरंसि) प्राप्त होते हो उस (कस्मै)
सुखस्वरूप (तुभ्यम्) आप के लिये मुझ से (वषट्) क्रिया की कुशलता
(अस्तु) प्राप्त हेतु ॥ ३९ ॥

भावार्थः—पूर्ण जवान पुरुष जिन ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ
विवाह करे उस के साथ विरुद्ध कर्मी न करे । जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री
जिन कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उस का अनिष्ट कर्मी मन से भी
न विधारे इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर कार्यों
संभालें ॥ ३९ ॥

सुजातइत्यस्य सिन्धुर्जाप ऋषिः । अग्निर्दधता । भुरिगनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जिन भी वचन विषय का उपदेश आ ॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरुथ्यमासदत्स्वः ।
वास्तो अग्ने विश्वरूपे संव्ययस्व विभावसो
॥ ४० ॥

पदार्थः— हे (विज्ञातगो) प्रकाश सहित धन से युक्त (जाने) अग्नि के सुन्दर तैलशरी (ज्योतिषा) विद्या प्रकाश के साथ (मुज्ञातः) अच्छे प्र-
गृह आय (स्यः) सुन्दर आयक (यरूपम्) श्रेष्ठ (गम्भ) घर को (आस-
दत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (विश्वरूपम्) अनेक चित्र विचित्ररूपी
(वागः) घर को (संवयस्य) धारण कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः— इन मन्त्र में पाचनलुप्त विद्याहित स्त्री पुरुषों को जादिये
कि जैसे सूर्यो आपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही
आपने सुन्दर वाग और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं
को सदा पवित्र रखें ॥ ४० ॥

उदुतिष्ठेत्यस्य विद्वयमना ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

द्वि भी विद्वानो का कृत्य जगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वरावां नो देव्या धिया । दृशं
च भासा वृहता सुशुक्लनिराग्नै याहि सुशस्ति-
भिः ॥ ४१ ॥

पदार्थः— हे (स्वध्वर) अच्छे माननीय ठपयहार करने वाले सज्जन
विद्वन् गृहस्थ आय निरन्तर (सत्तिष्ठ) पुरुषार्थ से सन्नति को प्राप्त हो के
अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा क्रिया कीजिये (देव्या) शुद्ध विद्या और शिक्षा
से युक्त (धिया) सुद्धि या क्रिया से (गः) हम लोगों की (अय) रक्षा
कीजिये हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सुशुक्लिः) अच्छे पवित्र
पदार्थों के विभाग करने हारे आय (व) तर्कों के साथ (दृशं) देखने को
(वृहता) बड़े (भासा) प्रकाशरूप सूर्य के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर
प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं की (याहि) प्राप्त हूजिये । और ह-
मारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दाग से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें। क्योंकि अच्छी शिक्षा के बिना मनुष्यों के मुक्त के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है। इसलिये सब को उचित है कि बालस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्व इत्यस्य कण्वक्षपिः । अग्निर्देवता । उपरिष्ठाद्बृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किः भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वं ऊ पुण ऊतये तिष्ठां देवो न संविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यद्विजिभिर्वाघद्विर्विह्व-
यामहे ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे अध्यापक विद्वान् आप (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में रहने वाले (देवः) प्रकाशक (संविता) मृद्वं के (न) सप्तम (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सुतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये (यत्) जो आप (अङ्घ्रिभिः) प्रकट करने वाले किरणों के सदृश (वापद्भिः) शुद्ध विद्या में कुशल बुद्धिसामानों के साथ (वाजस्य) विज्ञान के (सनिता) सेवन प्रारंभ हूजिये (व) उषी को हम लोग (विह्वयामहे) विशेष काके सुलासे हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे मृद्वं भूमि और सद्गता आदि लोगों से ऊपर स्थित होके अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है। वैसे सप्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें ॥ ४२ ॥

त इत्यस्य त्रित क्षपिः । अग्निर्देवता ।

वराट्त्रिष्टप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ता हार अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजातो गर्भोऽसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत
ओपधीषु । चित्रः शिशुः परितमांश्चस्यक्तून् प्र-
मातृभ्यो अधि कर्निक्रददाः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो भाप जेने (रोदस्यो) आकाश और
रुधिरि में (जामः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओपधीषु) मोमलतादि ओ-
पधिषों में (विभृतः) विशेष करके धारण या पोषण क्रिया (चित्रः) आ-
वर्णरूप (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्प (मातृभ्यः) मान्य करने-
हारी माता अर्थात् किरणों से (तमांसि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अन्धे-
रों को (पदार्थिकनिक्रदत्) स्रव और से अधिक फाँके चलता हुआ (गाः)
चलाता है देने ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होयें ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र
विद्या पढ़ के माता पिता को मुख देता है वैसे ही माता पिता को बाह्ये
कि प्रजा को मुख दें ॥ ४३ ॥

स्थिरो भवेत्स्य धित ऋषिः अग्निर्देयदा निराडनृष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ माता पिता अपने भन्तानों को किन प्रकार
शिक्षा करें यह वि० ॥

स्थिरो भव वीड्वृद्ध आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुपदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (भवंन्) धिक्ताग युक्त पुत्र तू विद्याग्रहण के लिये (स्थिरः)
दृढ़ (भव) हो (वाजी) गति को प्राप्त होके (वीड्वृद्धः) दृढ़ बलि चल-
याम् अवधियों में युक्त (आशुः) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो तू (अ-
ग्नेः) अग्नी संवन्धी (सुपदः) सुन्दर उपग्रहणों में स्थित और (पुरीषवा-
हणः) पालन आदि शुभकर्मों को प्राप्त करने वाला (पृथुः) सुख का वि-
स्तार करने हारा (भव) हो ॥ ४४ ॥

भाचार्यः—हे अच्छे सन्तानों तुम को चाहिये कि ब्रह्मण्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मन का बल पूर्ण बृद्ध कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अन्न विद्या से शत्रुओं का विनाश करो इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें ॥ ४४ ॥

शिवइत्यस्य चित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्पथ्या-
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उन को प्रजा में कैसे वर्तना चाहिये इस वि० ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमाङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा व-
नस्पतीन् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) मातों के समान मिय सुमन्तान तू (मानु-
षीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रनिदु प्रजाओं के लिये (शिवः) क
र्याणकारी मङ्गलमय (भव) हो (द्यावापृथिवी) विजुली और भूमि के
विषय में (मा) मत (अभिशीचीः) अतिशोच मत कर (अन्तरिक्षम्) अ-
वकाश के विषय में (मा) मत शोच कर और (वनस्पतीन्) घट आदि
वनस्पतियों का शोच मत कर ॥ ४५ ॥

भाचार्यः—सुमन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाकारी हो
के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोक रहित होवें । किन्तु इन सब
पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करें ॥४५॥

प्रेतुवाजीत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी-
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

प्रेतुं वाजी कनिक्रदन्नानंदद्रासंस्रः पत्वां ।
भरन्नग्निं पुंरीष्यं मा पाद्यायुपः पुरा । वृषाग्निं

वृषणं भरन्नपां गर्भं समुद्रियम् । अग्न आ-
याहि वीतये ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान तू (कनिकदत्) चलते
भीर (जानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (राससः) देने योग्य (पत्या) च-
लने वाले वा (याजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अव-
स्था से (पुरा) पहिले (मा) न (प्रैतु) नरे (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु
पदार्थों में उत्तम (अग्निम्) विशुद्धी (भरन्) धारण करता हुआ (मा-
पादि) इधर उधर मत जाग जैसे (वृषा) भतियलवान् (अपाम्) जलों
के (समुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (यपणम्)
वर्षाकरने हारे (अग्निम्) सूर्य को (भरन्) धारणकरता हुआ (वीतये)
सुखों की वृद्धि के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को
विषयों की लोलुपता से लुड़ा के ब्रह्मचर्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण
कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म युक्त व्यवहार की उत्पत्ति क-
रावे ॥ ४६ ॥

ऋतमित्यस्य त्रितप्तपिः । अग्निदेवता । विराट्त्रात्मी त्रि-
ष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या २ आचरण करना और क्या २ लोडना
चाहिये यह वि० ॥

ऋतं सत्यमृतं सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गि-
रुस्वङ्गरामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतं
शिवमायन्तंभ्यत्र युष्माः । वयस्यन् विश्वा
अनिरा अमीवा निपीदन्त्रो अपं दुर्मतिंजहि ॥४७॥

पदार्थः—हे गुणन्तानो जैसे हम लोग (ऋतम्) यथार्थ (सत्यम्) नाश रहित (ऋतम्) अठपनिधारी (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना (पुनीट्यम्) रक्षा के साधनों में उत्तम (अग्निम्) धिजुली को (अङ्गिरस्वत्) यामु के तुल्य (नरानः) धारण करते हैं (एतम्) इस पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त हुए (शियम्) मङ्गलकारी (अग्निम्) धिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी (अभिसोदध्वम्) आनन्दित रहो जो (ओषधयः) जो आदि ओषधि (युष्माः) तुम्हारे (प्रति) छिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो । हे वैद्य आप (विश्वाः) सब (अनिराः) जो निरन्तर देने योग्य न हों (अभीवाः) ऐसी रोगों की पीड़ा (त्वस्यम्) अनेक प्रकार से मलग करते और (अत्रं) इस आयुर्वेद विद्या में (निपीदन्) स्थित हो के (नः) हम लोगों की (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (अपजहि) सब प्रकार दूर कीजिये इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी पर कारण ब्रह्म दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अठपक्त जीव सत्य भाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के उबर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के नष्ट आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहे । और कभी इस से विपरीत आचरण कर हुए को छोड़ के दुःखसागर में मत गिरो ॥ ४७ ॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को क्या २ आचरण करना चाहिये यह चि० ॥

त्रोपंधयः प्रतिं गृभ्णाति पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भं ऋत्वियः प्रत्नश्चसुधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥
पदार्थः—हे स्त्रीयो तुम लोग जो (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि

हैं जिन से (अयम्) यह (अत्ययः) ठीक प्रातुफाल की प्राप्त हुआ (गर्भः)
गर्भ (वः) तुह्यारे (मत्रम्) प्राचीन (सधस्यम्) नियत स्थान गर्भाशय
की प्राप्त होवे उन (पुष्पयतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुविष्वलाः) सुन्दर
फलों से युक्त शोषधियों को (प्रतिगृह्णीत) निश्चय करके ग्रहण करे ॥४८॥

भाषार्थः—माता पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं की ठपाकर-
ण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यकशास्त्र पढ़ायें । जिन से ये कन्या लोग रोगों
का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली शोषधियों को जान और अ-
च्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४८ ॥

विपाजसेत्पस्योत्कील ऋषिः । अग्निदेवता । त्रिष्टुष्टन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या २ प्रतिष्ठा करें यह दिना ॥

विपाजंसा पृथुना शोशुचानो वाधस्व द्विपो
रत्तमो अमीवाः । सुशर्मणो बृहत्तः शर्मणि
स्यामग्नेरहृ सुहवस्य प्रणीतो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे पति जो आप (पृथुना) विरह्य (वि) विविध प्रकार
के (पाजसा) धूल के माथ (शोशुचानः) शीघ्र शुद्ध मदा वत्तें और (अ-
मीवाः) रोगों के समान प्राणियों की पीड़ा देने हारी (रत्तसः) दुष्ट द्वि-
पः) शत्रु रूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को (वाधस्व) ताड़ना दें तो मैं (ह-
हत्तः) बड़े (सुशर्मणः) अच्छे शोभायमान (सुहवस्य) सुन्दर उभा देना
व्ययहार जिस में हो ऐसे (अग्नेः) अग्नि के तुल्य प्रदाशगान आपके (श-
र्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतो) सत्तम धर्मयुक्त नीति में आप
की स्त्री (स्याम्) होऊ ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—विवाह समय में स्त्री पुरुष को चाहिये कि व्यभिचार छो-
ड़ने की प्रतिष्ठा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्बट पुरुषों का भंग मर्दवा
छोड़ आपस में जो अति विषयानुक्ति को छोड़ और अतृगामी होके पर-

स्वर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें । क्योंकि स्त्री या पुरुष के लिये अप्रिय आयु का नाशक निन्दा के योग्य कर्म ह्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है इसलिये इस ह्यभिचार कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला हो के पूर्ण अवस्था के सुख को प्राप्ति करें ॥ ४९ ॥

आपोहिष्टेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे बसैं यह धि० ॥

आपो हिष्टा मयोभुवस्तानं ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शुभगुणों में ह्वाप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियों जो तुम लोग (मयोभुवः) सुख भोगने वाली (स्य) ही (ताः) वे तुम (ऊर्जे) धल्युक्त पराक्रम और (महे) बड़े २ (चक्षसे) कहने योग्य (रणाय) मग्नान के लिये (न) हम लोगों को (हि) निश्चय करके (दधातन) धारण करो ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे स्त्री अपने पतियों को रखते वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को मदा सुख दें । ये दोनों युद्ध कर्म में भी पण्डू २ न बसैं । अर्थात् इकट्ठे ही मदा वस्तु रखें ॥ ५० ॥

पोषहृत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः ।

गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

किर भी यही उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यो चः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उश्रतीरिव सातरः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो (यः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) इस गृहाश्रम में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रमः) कर्त्तव्य आनन्द है (नस्य) उम का (मातरः) (उद्यतीरिष्य) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों को सेवन करती हैं वैसे (भाजयत) सेवन करो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—स्त्रियो को चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं वैसे अपने २ पतियों की प्रतिपूर्वक सेवा करें । ऐसे ही आपनी २ स्त्रियों की पति भी सेवा करें । जैसे पचास प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रमत्त रहें ॥ ५१ ॥

तस्मादित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उद्देश्य अगले मंत्र में किया है ॥

तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयायु जिन्वथ ।

आपो जूनयथा च नः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्त्तमान स्त्रियो जो तुम लोग (नः) हम लोगों के (क्षयाय) निवासस्थान के लिये (जिन्वथ) तृप्त और (जनयथ) अच्छे मन्तान उत्पन्न करो उन (यः) तुम लोगो को हम लोग (अरम्) सामर्थ्य के साथ (गमाम) प्राप्त होयें । जिसधर्म युक्त षष्यद्वार की प्रतिष्ठा करो उम का पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होयें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जिम पुरुष की जो स्त्री या जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्ट चिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म से घर के कार्य करें ॥ ५२ ॥

मित्रइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । मित्रो देवताः ।

उपरिष्ठाद्युहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी यही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

मित्रः सृष्ट्व सृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा

सह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वासःसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे पते जो आप (मित्रः) सद्य के होके मित्र (प्रजाभ्यः) पासने योग्य प्रजाओं को (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिये (ज्योतिषा) विद्या और न्याय को अच्छी शिक्षा के प्रकाश के (सह) साथ (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष (च) और (भूमिम्) पृथिवी के साथ (सहज्य) सम्बन्ध कर के मुझ को सुख देने हो । उस (सुजातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेदों के जानने हारे (तथा) आप को मैं (संसृजामि) प्रसिद्ध करती हूँ ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो के अच्छे २ सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

रुद्राहत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । रुद्रा देवताः । अनु-

ष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर सी वही वि० ॥

रुद्राः सः सृज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिःसमीधरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषों (इत्) जैसे (रुद्राः) प्राणवायु के अवयव रूप समानादि वायु (संसृज्य) सूर्य को उत्पन्न कर के (पृथिवीम्) भूमि को (इहत्) यद्दे (ज्योतिः) प्रकाश के साथ (समीधरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (शुक्रः) कान्तिमान् (भानुः) सूर्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्रः) निरन्तर (रोचते) प्रकाश करता है येनेही विद्यारूपी न्याय सूर्य को उत्पन्न कर के प्रजा पुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करो ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—इम मन्त्र में उपमालं०—श्रीने वायु सूर्य का सूर्य प्रकाश
 १ प्रकाश नेत्रों से देखने के उपयुक्त का कारण है जैसे ही स्त्री पुरुष आ-
 स के मुख के माधन उपमाधन करने वाले होके सुरों को सिद्ध करें ॥५४॥

संमृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । सिनीवाली देवता ।

धिराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को किसी दानी रखनी चाहिये यह वि० ॥

संमृष्टां वसुंभी रुदधीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
 हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्

॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे पते आप लीसे कारीगर मनुष्य (हस्ताभ्याम्) हाथों से
 (कर्मण्याम्) क्रिया से सिद्ध की हुई (मृदम्) मही को योग्य करता है जैसे
 (चीरेः) अच्छा संयम रखने (वसुभिः) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य के से-
 वन से विद्या को प्राप्त हुए (रुद्वैः) और जिन्होंने चयालीस वर्ष ब्रह्मचर्य
 के सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हें (संमृष्टाम्) अच्छी शि-
 ला को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को (मृद्वीम्) कोमल गुण
 स्वभाव वाली (कृणोतु) कीजिये और जो स्त्री (सिनीवाली) प्रेमयुक्त
 कन्याओं को बलवान् करने वाली है (ताम्) उस को अपनी स्त्री करके सु-
 ली कीजिये ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—इम मन्त्र में वाचकलुः—लीसे कुम्हार आदि कारीगर लोग
 बल मही को कोमल कर उस से घड़े आदि पदार्थ बना के मुख के काम
 सिद्ध करते हैं जैसे ही विद्वान् माता पिता ने शिला को प्राप्त हुई हृदय को
 प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण करके मय
 काम सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता ।

धिराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

धिरा. भी पूर्वोक्त वि० ॥

सिनिवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा
तुभ्यमदिते मुखोखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

पदार्थः— हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित ज्ञान
गने वाली स्त्री जो (सिनिवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे बेटे
ली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने वाली और (स्वौपशा)
स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस (तुभ्यम्) तेरे (हस्तं)
हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) द-
करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः— श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दान-
को रक्खें कि जिस से सब पाक आदि की सेवा ठीक २ समय पर होती रहे।
ब्रह्मामित्यस्य सिन्धुदीप ऋषिः । आदितिर्देवता ।
भुरिग्वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

उखां कृणोतु शक्त्यां बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं विभर्तु गर्भं आ
मुखस्य शिरोंऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः— हे गृहस्थ पुरुष जिस कारण तू (मुखस्य) यज्ञ के (शिर-
उत्तमाङ्ग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्मों
सथा (शक्त्या) पाक विद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं
से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) सिद्ध कर जो (अदितिः)
जननी आप की स्त्री है (सा) वह (गर्भं) अपनी कोख में (यथा) जैसे
माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वकं पैदा करे
अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी यौवर्ष को (विभर्तुं) धारण करे ॥ ५७ ॥
वार्थः— इस मंत्र में उपमालं—कुमार स्त्री पुरुषों को योग्य है कि
साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर यह बुद्धि प्री-
तिपूर्वक

पराक्रमयुक्त सन्तान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से बही र जोषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करदे पीछे पत्न्य से रहें और आपस में मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रों के गर्भाधानादि कर्म किया करें ॥ ५१ ॥

वसवस्त्येत्यस्य सिंधुद्वीप ऋषिः । यमुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देयताः ।
पूर्वाह्नस्योत्तराह्नस्य चोत्कृती छन्दसी । पद्भजः स्वरः ॥

किर स्त्री पुरुष बना कर के क्या करें पद्य वि० ॥

वसंवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिर-
स्वद्भुवासिं पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाथ राय-
स्पोपङ्गोपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाय
रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रेष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्भु-
वास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाथ राय-
स्पोपङ्गोपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाया-
ऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्व-
द्भुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाथ रायस्पोपं-
ङ्गोपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाय विश्वं
त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा-
ङ्गिरस्वद्भुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाथ
रायस्पोपङ्गोपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमा-
नाय ॥ ५८ ॥

मिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा। सा
तुभ्यमदिते म्हाखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित आनन्द भोगने वाली स्त्री जो (मिनीवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे केशों वाली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्माँ को सेवने वाली और (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस (तुभ्यम्) तेरे (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलौई को (दधातु) धारण करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भाषार्थः—श्रीष्ट स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिथिल चतुर दासियों को रखें कि जिस से सब पाक आदि की सेवा ठीक २ समय पर होती रहे ॥ ५६ ॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता।

भुरिग्वृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी यही वि० ॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिधिया।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं विभक्तुं गर्भं आ
मुखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुत्र जिस कारण तू (मुखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म से तथा (शक्त्या) पाक विद्या की सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलौई को (कृणोतु) सिद्ध कर जो (अदितिः) जननी आप की स्त्री है (मा) वह (गर्भं) अपनी कोख में (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठाये धीने (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य को (विभक्तुं) धारण करे ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालं—कुमार स्त्री पुत्रों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिखा को पूर्ण कर सब बुद्धि और

पदार्थः— हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत्) धर्मतय प्राण वायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (अग्नि) है और (पृथिव्यसि) विस्वत सुख काने हारी है उस (त्वा) तुझ को (गायत्रेण) वेद में विधान किये (उन्दना) गायत्री आदि उन्दों से (वसवः) चौथीसवर्ष ब्रह्मचर्य रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृषवन्तु) करें। हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्राणवायु के समान निश्चल है और (पृथिवी) पृथिवी के समान समायुक्त (अग्नि) है जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) एक बसु संज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये (उन्दना) गायत्री आदि उन्दों से मेरा पति (कृषवन्तु) करें। जो तू (अग्नि) अपनी प्रियपत्नी मुझ में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानों (रायः) धन की (वीषम्) पुष्टि (गीषत्यम्) गौ पृथिवी या वाणी के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन कर। मैं तू दोनों (प्रजाताम्) एक गर्भाशय में उत्पन्न हुए सब सन्तानों को (प्रजनामाय) विद्या देने हारे आचार्य को विद्या प्रदण के लिये समर्पण करें। हे त्रि जो तू (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) निश्चल (अग्नि) है और (अन्तरिक्षम्) अविनाशी प्रेम युक्त (अग्नि) है उस (त्वा) तुझ को (वद्रा) रुद्र संज्ञक चबालीसवर्ष ब्रह्मचर्य भोगने हारे विद्वान् लोग (त्रिष्टुभेन) वेद में कहे हुए (उन्दना) त्रिष्टुप् उन्द से मेरी स्त्री (कृषवन्तु) करें। हे वीर पुरुष जो तू आकाश के समान निश्चल है और रुद्र प्रेम से युक्त है जिस तुझ को चबालीसवर्ष ब्रह्मचर्य काने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप् उन्द से मेरा स्वामी करें। यह तू (अग्नि) अपनी प्रियपत्नी मुझ में (प्रजाम्) बल तथा सत्पथमें से युक्त सन्तानों (रायः) राज्यलक्ष्मी की (वीषम्) पुष्टि (गीषत्यम्) पढ़ाने के अष्टिष्ठानुत्पन्न और (सुवीर्यम्) अष्टे पराक्रम को (धारय) धारण कर मैं तू दोनों (प्रजाताम्) एक रुद्र में उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अपनी गिता देकर वेद विद्या की गिता होने के लिये (प्रजनामाय) अङ्ग प्रगाङ्गों के महिम्न वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को दूँ। हे विद्वान् स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) अचल (अग्नि) है (द्यौः) सूर्य के अङ्ग प्रजागामाम

(अग्नि) है उस (त्वा) तुम्ह को (आदित्याः) अहतासीनवयं ब्रह्मवच्यं कर के पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आज सत्यवादी चर्मात्मा विद्वान् लोग (जागतेन) वेद में कहे (उन्दसा) जगती उन्द से मेरी पत्नी (रु-गवस्तु) करें। हे विद्वान् पुरुष जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुम्ह को अहतासीनवयं ब्रह्मवच्यं सेवने वाले पूर्ण विद्या से युक्त चर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती उन्द से मेरा पति करें। वह तू (मयि) अपनी मिय भाव्यों मुझ में (प्रजाम्) शुभगुणों से युक्त सन्तानों (रायः) चक्रवर्त्ति राज्य लक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि (गीवत्यम्) संपुर्ण विद्या के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम की (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों (मजाताम्) अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सद्य विद्या ग्रहण करने के लिये (यजमानाय) त्रिपा कीशल के स-हित सद्य विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्यों को समर्पण करें। हे सुन्दर ऐ-श्वर्य युक्त पति जो तू (अङ्गिरसवत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (भ्रु-वा) निपट (अग्नि) है और (दशः) सद्य दिशाओं में कीर्तिवाली (अग्नि) है। उस तुम्ह को (यैजानराः) सद्य गणुयों में शोभायमान (वि-द्ये) सब (देवाः) उपदेशक विद्वान् लोग (भानुष्टुभेन) वेद में कहे (उ-रदमा) भनुष्टुष्ठुउन्द से मेरे आधीन (रुगवस्तु) करें हे पुरुष जो तू भु-त्रात्मा वायु के सदृश स्थिर है (दिशः) सद्य दिशाओं में कीर्तिवाला (अ-ग्नि) है जिस (त्वा) तुम्ह को सद्य प्रजा में शोभायमान सद्य विद्वान् लोग मेरे आधीन करें। सो भाव (मयि) मुझ में (प्रजाम्) शुभ लक्षण युक्त सन्तानों (रायः) सद्य ऐश्वर्य की (पोषम्) पुष्टि (गीवत्यम्) वाणी की चतुराई और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम की (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों जने अरुठा उपदेश होने के लिये (मजाताम्) अपने सन्तानों को (यजमानाय) सत्य के उपदेशक भष्वावक के समीप समर्पण करें ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपगालंकार है। जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीति वाले होंगे। तब वेदोक्त रीति से पट का विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके परम से सन्तानों की

पदार्थः— हे प्रह्लादारिणी कुमारी स्त्री जो तू (अङ्गिरस्यत्) प्राण वायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (अग्नि) है और (पृथिव्यरि स्यत् सुप्त काने हारी है तम (तथा) तुम्ह को (गायत्रेण) वेद में किये (छन्दसा) गायत्री भादि छन्दों से (यत्नतः) भीषीसकर्म रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृषवन्तु) करें । हे कुमारा पुरुष जो तू (अङ्गिरस्यत्) प्राणवायु के समान निश्चल है (पृथिवी के समान शमायुक्त (अग्नि) है जिम (तथा) तुम्ह तक यद्यु सत्तक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपासा) गायत्री भादि छन्दों से मेरा पति (कृषवन्तु) करें अथवा प्रियपत्नी सुम्ह में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तान (पोषम्) पुष्टि (गीपत्यम्) गी पृथिवी या वाणी (योर्धम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन (ताम्) एक गभर्तव्य से उत्पन्न हुए सब सन्तानों देने हारी आचार्य की विद्या पदार्थ के लिये (अङ्गिरस्यत्) आकाश के समान (ध्रुवा) अरिणा । अरिणासी तेन सत्तक (अग्नि)

वसवस्त्वेतपस्य सिन्धुद्वीप प्रापिः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता
 देवता । स्वराट् संकृतीश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
 फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को
 कैसे शुद्ध करें यह वि० ॥

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
 स्वदुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
 दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्व-
 त् । विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभे-
 न छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणास्त्वा
 धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणि जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गाय-
 त्रेण) वेद के (छन्दसा) गायत्री छन्द से (त्वा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्)
 प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कार यु-
 क्त करें (दुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेदोक्त (छन्दसा)
 त्रिष्टुप् छन्द से (अङ्गिरस्वत्) विद्या के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु)
 विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें । (दादित्याः) सर्वोत्तम अष्पा-
 पक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अङ्गिर-
 स्वत्) ब्रह्मावह के शुद्ध वायु के सङ्घ (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्म युक्त
 उपनिषद् के ग्रहण से संस्कार करें (विश्वानराः) सब मनुष्यों में मृत्यु धर्म
 और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्योपदेष्टा वि-
 द्वान् लोग (अनुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अङ्गिर-
 स्वत्) बिजुली के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार
 करें (वरुणः) परम ऐश्वर्य युक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) राजनीति
 विद्या से संस्कार करे । (वरुणः) ग्रह न्यायाधीश (त्वा) तुम्ह को (धू-

ररपन्न करें। जब कन्या पुत्र भाठ धर्म के हेतु सब माता पिता सनको अच्छी शिक्षा दें। इसके पीछे ब्रह्मचर्य धारण करा के विद्या पढ़ने के लिये अपने घर से बहुत दूर भास विद्वान् पुरुषों और भास विद्वान्-स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज दें। वहाँ पाठशाला में गितने धन का स्वर्ध करमा रचित हो रतना करें। क्योंकि सन्तानों की विद्यादान के बिना कोई उपकार या धर्म नहीं बन सकता। इस लिये इस का निरन्तर अनुष्ठान किया करें ॥ ५८ ॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुक्षीप ऋषिः । अदितिर्देवता ।

आर्षीञ्जिष्टुप् छन्दः । धैयनः स्वरः ॥

फिर भी वही धि० ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे विलं गृम्णातु ।
कृत्वाय सा महीमुखाम्मृन्मयीं योनिमृगयै । पु-
त्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

पदार्थः—ये पदाने हारी विद्वान् स्त्री जिस कारण तू (अदित्यै) विद्या प्रकाश के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इसलिये (ते) तुझ से (विलम्) ब्रह्मचर्य को धारण (कृत्वाय) काके (अदितिः) पुत्र और कन्या विद्या को (गृम्णातु) प्रदान करें सो (सा) तू (अदितिः) माता (मृन्मयीम्) नहीं की (योनिम्) मिली और पृथक् (महीम्) बड़ी (उराम्) पकाने की बटलोई को (अमृगये) अग्नि के निकट (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (प्रायच्छत्) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से मुक्त बटलोई में (इति) इस प्रकार (श्रपयान्) अन्नादि पदार्थों को प्रकाशे ॥ ५९ ॥

भावार्थः—उसके पुरुषों और उरुक्रियां स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें। कभी विषय की कथा न सुनें। नद्य मांस आलस्य और अत्यन्त निद्रा को त्याग के पदाने वाले की सेवा और उस के अनुकूल वर्तन के अच्छे नियमों को धारण करें ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वेष्वस्य सिन्धुष्ठीप श्रपिः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता
 दशता । स्यराद् संकृतीश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को
 कैसे शुद्ध करें यह वि० ॥

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
 स्वद्द्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
 दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्व-
 त् । विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभे-
 न छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणास्त्वा
 धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणि जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गाय-
 त्रेण) वेद के (छन्दसा) गायत्री छन्द से (त्वा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्)
 प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कार यु-
 क्त करें (द्द्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेदोक्त (छन्दसा)
 त्रिष्टुप् छन्द से (अङ्गिरस्वत्) विद्वान् के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु)
 विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें । (दादित्याः) सर्वोत्तम अप्या-
 यक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अङ्गिर-
 स्वत्) ब्रह्मायह के शुद्ध वायु के सदृश (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्म युक्त
 उपन्यास के पढ़ण से संस्कार करें (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में सत्य धर्म
 और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्योपदेष्टा वि-
 द्वान् लोग (वानुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अङ्गिर-
 स्वत्) बिजुली के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार
 करें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य युक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) राजनीति
 विद्या से संस्कार करे । (वरुणः) श्रेष्ठ न्यायाधीश (त्वा) तुम्ह को (धू-

पशु) स्याद्य क्रिया मे संयुक्त करे और (विष्णुः) मद्य विद्या और योग-
शास्त्रों का धेता योगीजन (स्या) तुभ्य को (पूषण्तु) योग विद्या मे सं-
स्कार युक्त करे तू हम मद्य की धेता किया कर ॥ ६० ॥

भावार्थः--मद्य अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि मद्य क्षेत्र
क्रियाओं से कन्या पुरुषों को विद्या और गिज्ञा मे युक्त शीघ्र करें । निम मे
ये पुरुष ब्रह्मचर्य ही करके गृहस्थन आदि का यथाकाल काल में आचरण
करें ॥ ६० ॥

अदितिष्टृत्यस्य सिन्धुर्जाप नदिः । अदित्यादयो लिङ्गांस्ता दंश-
ताः । भूरिककृतिश्छन्दः । निपादः स्वरः । उर्व्यकृतीत्युत्स-
रस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैर्यत स्वरः ।

विद्वान् स्त्रियों कन्याओं को उत्तम शिक्षासे धर्मोत्तम विद्या युक्त
करके इसलोक और पाछोक के सुखों के प्राप्त करायें
यह वि० ॥

अदितिर्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः
सुधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा प-
त्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सुधस्थे अ-
ङ्गिरस्वद्वधंतूखे । धिपणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्या-
वतीः पृथिव्याः सुधस्थे अङ्गिरस्वदभून्धता-
मुग्ने वरून्त्रीष्ठा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः
सुधस्थे अङ्गिरस्वच्छंपयन्तूखेऽग्नास्त्वा देवी-
र्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सुध अ-
त्पचन्तूखे जनयस्त्वा छिन्न ॥ ६१ ॥

व्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पंचन्तू- खे ॥ ६१ ॥

पदार्थः— हे (अवट) सुराई और निन्दा रहित बालक (विश्वदेवपा-
यती) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदितिः) अखण्ड विद्या
पदाने हारी (देवी) विद्वान् स्त्री (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक
शुभस्थान में (एवा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान (खन्तु)
जैसे भूमि को खोद के कूप जल निकाल कराने हैं वैसे विद्यायुक्त करे । हे
(उखे) ज्ञानयुक्त कुमारी (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्री जो
(विश्वदेवपायती) संपूर्ण विद्वानों में अधिक विद्यायुक्त (देवीः) विदुषी
(पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (अङ्गिरस्वत्) प्राण के
मदृश (एवा) तुम्ह को (दधतु) धारण करें । हे (उखे) विज्ञान की इच्छा
करने वाली (विश्वदेवपायतीः) सद्य विद्वानों में उत्तम (धियणाः) प्रशं-
सित वाणीयुक्त मुद्दिमती (देवीः) विद्यायुक्त स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृ-
थिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (एवा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्) प्राण
के तुल्य (अभीन्धताम्) प्रदीप्त करें । हे (उखे) अन्न आदि पकाने की य-
त्नोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये (विश्वदेवपायतीः) उत्तम
विदुषी (वरुषीः) विद्या ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य (देवीः) रु-
पवती स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुद्ध स्थान में (एवा)
तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के तुल्य (अघपस्तु) शुद्ध तेजस्विनी करें । हे
(उखे) ज्ञान चाहने हारी कुमारी (विश्वदेवपायतीः) बहुत विद्यावानों में उत्त-
म (देवीः) शुद्ध विद्या से युक्त (ग्नाः) वेदवाणी को जानने वाली स्त्रीलोग (पृथि-
व्याः) भूमि के एक (सधस्थे) उत्तम स्थान में (एवा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्) त्रिजुली
के तुल्य (पनस्तु) दृढ़ बल धारिणी करें । हे (उखे) ज्ञान की इच्छा रखने
वाली कुमारी (विश्वदेवपायतीः) उत्तम विद्या पढ़ी (अच्छिन्नवप्राः) अ-
खण्डित मधीन शुद्ध वस्त्रों को धारण या धारण में चलने वाली (जनयः)
सुमगुर्वा से प्रसिद्ध (देवीः) दिव्य गुणों की देने हारी स्त्री लोग (पृथि-

ठपाः) पृथिवी के (मधस्ये) उत्तम प्रदेश में (त्वा) तुम्ह की (अङ्गिर-
स्वत्) ओषधियों के रस के समान (पचन्तु) संस्कार युक्त करें । हे कु-
मारि कन्ये तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियों से ब्रह्मवर्ष के साथ विद्या ग्रहण
कर ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—माता पिता आचार्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील
विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रसोदया घटलोह आदि पार्श्वों में अन्न
का संस्कार कर के उत्तम सिद्ध करते हैं । वैसे ही वास्तव्यावस्था से लेके वि-
द्या से पहिले २ छड़कों और छड़कियों की उत्तम विद्या और शिक्षा से स-
म्पन्न करें ॥ ६१ ॥

मित्रस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता ।

निचृद्गायत्रीछन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे यह उस के ऐश्वर्य की निरन्तर
रक्षा करे यह वि० ॥

मित्रस्य चर्पणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री तू (चर्पणीधृतः) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धा-
रण करने हारे (मित्रस्य) मित्र (देवस्य) कमनीय अपने पति के (चि-
त्रश्रवस्तमम्) आश्चर्यरूप अन्नादि पदार्थ जिस से हो ऐसे (सानसि) से-
वने योग्य प्राचीन (द्युम्नम्) धन की (अथः) रक्षा कर ॥ ६२ ॥

भाषार्थः—घर के काम करने में कुशल स्त्री को चाहिये कि घर के भी-
तर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक २ बढ़ाया करे ॥ ६२ ॥

देवस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । भुरिग्-
पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी वही विषय जगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्त्वां सवितोद्दपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः

सुवाहुरुत शक्त्या । अव्यथमाना पृथिव्यामा- शा दिशऽऽपृण ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे छि (सुवाहुः) अच्छे जिन के भुजा (सुवाणिः) सुन्दर हाथ और (स्वहुरिः) शीशामुक्त जिन की अगुली हो ऐसा (मयिता) मृष के समान ऐश्वर्यदाता (देवः) अच्छे गुण कर्म और स्वभाओं से युक्त पति (शक्त्या) अपने सामर्थ्य से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर स्थित (एव) तुम्ह को (उद्वपतु) वृद्धि के साथ गर्भवती करे और तू भी अपने सामर्थ्य से (अव्यथमाना) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (आशाः) इच्छा और कीर्त्ति से सब (दिशः) दिशाओं को (आपृण) पूरण कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक दूसरे को हृदय से चाहने वाले परस्पर परीक्षा कर अपनी २ इच्छा से स्वयम्बर विवाह अत्यन्त विषयाशक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करने वाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें । क्योंकि इन्हीं से जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती । इस लिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥ ६३ ॥

उत्थापेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः ।

. गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह कैसी होवे यह वि० ॥

उत्थायं वृहती भ्रुवा दुंतिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मि- त्रेतां तं उखां परिं ददाम्यभित्या एषा मा भे- दि ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे विदुषि कन्ये तू (भ्रुवा) गङ्गल काशी में निश्चित बुद्धि-वाली और (वृहती) बड़े पुरुषार्थ से युक्त (भय) हो । विवाह करने के लिये (उक्तिष्ठ) उक्तिष्ठ उद्यत हो (उत्थाय) आलस्य छोड़ के उठ कर इस

पति का स्वीकार कर । हे (मित्र) मित्र (ते) तेरे लिये (एताम्) इ
 (उताम्) प्राप्त होने योग्य कन्या को (अभित्यै) भयरहित होने के लिये
 (परिददामि) सब प्रकार देता हूँ (उ) इसलिये तू (एया) इस प्रथम
 प्राप्त हुई स्त्री को (मा भेदि) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

भावार्थः—कन्या और घर को चाहिये कि अपनी २ प्रमदता से कन्या
 पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा करके ग्रहण करने की इ-
 च्छा करें जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता
 और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद
 या द्वेषनिघार कभी न करें । किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और प-
 तिप्रता स्त्री हो कर मिल के चलें ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः । वस्वादयो लिङ्गोक्ता
 देवताः । धृतिश्छन्दः । पञ्जः स्वरः ॥

किर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

वसवस्त्वा छन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिर-
 स्वदुद्रास्त्वा छन्दन्तु त्रेष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदा-
 द्वित्यास्त्वा छन्दन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्व-
 द्विश्वे त्वा देवा वेश्वानरा आछन्दन्त्वानुष्टुभे-
 न्छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

वदार्थः—हे त्रि या पुरुष (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण)
 छेत्त विद्याओं का जिन से गान किया जाये उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र
 (छन्दसा) गायत्रीछन्द से जिन (रवा) तुम्हको (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के
 तुम्ह (आष्टुद्वयत्) प्रकाशमान करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रे-
 ष्टुभेन) कम उपमानता और ज्ञान जिन से स्थिर हैं उन (छन्दसा) वेद के
 श्लोक भाग से (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (रवा) तुम्हको (आष्टु-

न्दन्तु) प्रज्वलित करें (आदित्याः) उत्तम विद्वान् लोग (जागतेन) जा-
गत् की विद्या प्रकाश करने हारे (उन्दमा) वेद के स्तोत्र भाग से (त्वा)
तुम्ह को (अङ्गिरस्यत्) सृष्ट्यं के सदृश तेजधारी (आच्छन्दन्तु) शुद्ध करें
(यैश्वानराः) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (देवाः) सत्य उपदेश देने
हारे (विश्ये) सद्य विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिस
से दुःखों को छुड़ाये मन (उन्दमा) वेद भाग से (त्वा) तुम्ह को (अङ्गि-
रस्यत्) समस्त ओषधियों के रस के समान (आच्छन्दन्तु) शुद्ध संपादित
करें ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमात्मक—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों को चाहिये
कि जो विद्वान् स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे
उपदेश से सुशोभित करें मन की सेवा और सत्सङ्ग निरन्तर करो और अन्य
तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो ॥ ६५ ॥

आकृतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्न्यादयो मंत्रोक्ता-
देवताः । विराड्वाह्वी त्रिष्टुच्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर ये स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

आकृतिमग्निमप्रयुज्थ स्वाहा मनो मेधाम्-
ग्निमप्रयुज्थ स्वाहा चित्तं विज्ञांतमग्निं प्रयुज्थ
स्वाहा वाचो विधृतिमग्निमप्रयुज्थ स्वाहा ।
प्रजापंतये मनवे स्वाहाऽनये वैश्वानराय स्वा-
हा ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से (स्वा-
हा) सत्य क्रिया से (आकृतिम्) उत्साह देने वाली क्रिया के (प्रयुजम्)
मेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) सत्यवाणी से (मनः)

इच्छा के माधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्बन्ध करने हारी (अग्निम्) विजुली को (स्वाहा) सत्य व्यवहारों से (विष्ठातम्) शत्रु गुण विषय के (प्रयुजम्) व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त की (स्वाहा) योग क्रिया की रीति से (याचः) याणियों की (विष्टितिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग किये हुए (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न हुई विजुली को (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी (मनसं) मननशील पुरुष के लिये (स्वाहा) सरयवाणी की और (अग्नये) विद्वान स्वरूप (वीश्वानराय) मध मनुष्यों के घोष प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त कराके निरन्तर (आच्छन्दन्तु) अच्छे प्रकार शुरु करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—यहां पूर्ण मन्त्र मे (आच्छन्दन्तु) इस पद की अनुश्रुति जाती है । मनुष्यों को चाहिये कि पुस्तकार्थ मे वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्तरदाह आदि की यत्ना कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध मे हम लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्माद्येष ऋषिः । नविता देवता । अनुष्टुप्

छन्दः । गान्यारः स्वरः ॥

किर यदर्थो को क्या करना चाहिये यह मि० ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मतो वुरीत सुख्यम् । विश्वो राय इंपुष्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा

॥ ६७ ॥

वदार्थः—श्रीमे विद्वान् भोग पहण कामे हं (विश्वः) मय (मतोः) मनुष्य (नेतुः) सब के माधक (देवस्य) मध जगत् का प्रकाशक पादेत् (सुख्यम्) निश्चय को (वुरीत) शोका करे (विश्वः) मध मनुष्य (राय) शोका ना लक्ष्मी के लिये (इंपुष्यति) याणादि जायुषी को या (स्वाहा) सत्य वाणी और (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यश वा श्र

को (वृणीत) ग्रहण करें । और जिसे हम से तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होंगे ॥ ६७ ॥

भावार्थः—हम मंत्र में वाचकलुग-ग्रहस्य मनुष्य को चाहिये कि पर-
मेश्वर के साथ मित्रता कर मत्स्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति क
राने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥ ६७ ॥

मास्वित्पस्य आत्रेण ऋषिः । अम्था देवता । गापत्री छन्दः ।
पद्मजः स्वरः ॥

किर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह वि० ॥

मा सु भित्था मा सु रिपोऽम्बं धृष्णु वीर्य-
स्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता तू हम को दिद्या मे (मा) मत (सु-
भित्थाः) छुडाये और (मा) मत (सुरिपः) दुःख दे (धृष्णु) दृढ़ता मे
(वीर्यस्य) सुन्दर आरम्भ किये कर्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए
तुम माता और पुत्र दोनों (अग्नि.) अग्नि के समान (य) (इदम्) क-
रने योग्य हम सब कर्मों को (करिष्यथः) आचरण करो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने मन्तानों को अच्छी गिरा
देवे जिस से ये परस्पर प्रीतिपुक्त और वीर होंगे । और जो कामे योग्य है
वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥ ६८ ॥

दृहस्वैत्पस्यात्रेण ऋषिः । अम्था देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

किर पति अपनी स्त्री मे क्या २ कहे यह वि० ॥

दृहस्व देवि पृथिवी स्वस्तयं आसुरी माया
स्वधयां कृतासि । जुष्टं देवेभ्यं इदमस्तु हृव्यभ-
रिष्ठा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥

इच्छा के माधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्प्रत्य करने इत्ति
 (अग्निम्) विजुली को (स्याद्वा) मत्स्य उपयहारों में (विज्ञातम्) ज्ञान
 हुम् विषय के (प्रयुजम्) उपयहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के
 नमान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्याद्वा) योग क्रिया की रीति के
 (वाचः) वाजियों को (विपृत्तिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयु
 जम्) सम्प्रयोग किये हुम् (अग्निम्) योगाभ्यास में उत्पन्न हुई विजुली के
 (प्रजापतये) प्रजा के स्यामी (मनसं) मननशील पुरुष के लिये (स्याद्वा)
 उपयहाणी को और (अग्नये) विज्ञान स्वभाव (ऐश्वानराय) मय मनुष्य
 के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्याद्वा) समंयुक्त क्रिया को पुन
 कराके निरन्तर (वाच्छन्दन्तु) अर्घ्ये प्रकार शुक करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—यहां पूर्य मन्त्र में (वाच्छन्दन्तु) इन पद की अनुवृत्ति
 जाती है । मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ में वेदादि शास्त्रों को पढ़ और
 उत्साह जादि को बढ़ा कर उपयहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्प्रत्य में
 इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेथ ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर गृहस्थों को क्या करना चाहिये यह लि० ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मतो वुरीत सख्यम् । वि
 श्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा

॥ ६७ ॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (विश्वः) सख्य (नतः)
 मनुष्य (नेतुः) सख्य के नामक (देवस्य) मय जगत् का प्रकाशक परमेश्वर
 के (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार करें (विश्वः) सख्य मनुष्य
 (राये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (इषुध्यति) वाणादि आयुधों को धार
 ण करें (स्वाहा) उत्सव वाणी और (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यश वा अश

को (वृणीत) ग्रहण करें । और जैसे इष से तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होंगे ॥ ६७ ॥

भावार्थः—हम मंत्र में वाचकलुप्त-गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर मत्स्य उपग्रहण से धन को प्राप्त हो के कीर्ति करने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥ ६७ ॥

मास्वित्पस्य आत्रेयऋषिः । अम्वा देवता । गायत्री छन्दः ।

पङ्कजः स्वरः ॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह वि० ॥

मा सु भित्था मा सु रिपोऽम्ब धृष्णु वीर्य-
स्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता तू हम को विद्या मे (मा) मत (सु-भित्थाः) लुझाये और (मा) मत (सुरिपः) दुःख दे (धृष्णु) दृढ़ता से (सुवीर्यस्य) सुन्दर आरम्भ किये कर्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए तूम माता और पुत्र दोनों (अग्निः) अग्नि के समान (च) (इदम्) करने योग्य हम सब कर्मों को (करिष्यथः) आचरण करो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने मन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिस से ये परस्पर प्रीतियुक्त और धीर होंगे । और जो करने योग्य है यही करें न करने योग्य कभी न करें ॥ ६८ ॥

दृहस्वैत्पसात्रेयऋषिः । अम्वा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ।

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे यह वि० ॥

दृहस्व देवि पृथिवी स्वस्तयं आसुरी माया
स्वधयां कृतासिं । जुष्टं देवेभ्यं इदमस्तु हव्यम-
रिंश त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवी) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (देधि) विद्या से युक्त पत्नि तू ने (स्वस्तये) सुख के लिये (स्वधया) अन्न या जल से जो (आसुरी) प्राणपोषक पुरुषों की (माया) बुद्धि है उस को (कृता) सिद्ध की (अग्नि) है । उस से तू मुझ पति को (हंहस्य) उन्नति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संग करने योग्य गृहाग्रम में (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तू ने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हृष्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ है यह (देवेभ्यः) विद्वानों या उत्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में बसती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करे । सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचि कारक बनवाये या बनाये । और किसी को दुःख या किसी के साथ वैर-बुद्धि कभी न करे ॥ ६९ ॥

द्व्यन्नइत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गापत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

किर यह स्त्री अपने पति से कैसे २ कहे यह वि० ॥

द्वन्नः सर्पिरां सुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे पति (द्वन्नः) यज्ञादि ओषधि ही जिन के अन्न र्थ से (सर्पिरासुतिः) पून आदि पदार्थों की शोषने वाले (प्रदः) मनातन (होता) देने लेने वाले (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (महानः) बलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्य गुण कम और शत्रुता से युक्त आव सुख होने के लिये इस गृहाग्रम के बीच शोषापमान हूजिये ॥ ७० ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र में (स्वस्तये) (अस्मिन्) (यज्ञे) (उदिहि) इन चार पदों की अनुकूलि जाती है । कन्या को उचित है कि जिन पिता प्रत्नवर्त्ता में बलवान् हो और जो पुत्रवार्थ में बहुल अन्नादि प-

दार्यों को इकट्ठा कर उनके सभ शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह
कारके निरन्तर सुख भोगे ॥ ७७ ॥

परस्पाहृत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवताः । विराड्गामत्री
छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

फिर पति अपनी स्त्री को बया २ उपदेश करे यह वि० ॥

परस्या अधि संवतोऽवरांशः ॥ अभ्यातर ।
यत्राहमस्मि तांशः ॥ अंशः ॥ ७७ ॥

पदार्थ—हे कन्ये तिम (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) ग्या-
भी हुमा चाहता हूं सो तू (संवतः) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरांशः)
नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उल्लंघन और (यत्र) जिन कुल में (अ-
हम्) मैं (अस्मि) हूं (तांशः) उन उत्तम मनुष्यों की (अंशः) रक्षा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थ—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या
वाले या बराबर के पति को स्वीकार करे किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले
को नहीं । जिस के साथ विवाह करे उन के सम्बन्धी और निरों को बच
काल में प्रसन्न रखे ॥ ७७ ॥

परमस्पाहृत्यस्य वारुणिक्रैषिः । अग्निर्देवता । नृसिमुदिगाङ्
छन्दः । षड्भः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से बया २ कहे इस वि० ॥

परमस्याः परावतां रोहिदंश्व इहा गन्धि । पु-
रीष्युः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तंशः मृधः ॥ ७८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विद्यान युक्त पति (रो-
हिदंश्वः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीष्युः) पशुओं से
घेस (पुरुप्रियो) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वं) आज (इहा)
इस महायज्ञ में (परावतां) दूर देश से (परमस्याः) अग्नि उत्तम हुए हुए
और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति तुम के (आग्नि) आहुति और तुम

के साथ (सृषः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने वाले शत्रुओं का (तर) तिरस्कार कीजिये ॥ ७२ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों की चाहिये कि अपनी कन्या या पुत्र का समीप-देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है ॥ ७२ ॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर स्त्री पुरुषों के प्रति सम्मानधी लोग क्या २ प्रतिज्ञा करें और करावे यह वि० ॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारुणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुपस्व यविष्ठय ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठय) अत्यन्त सुभावस्था को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष या स्त्री आप जैसे (कानि कानि चित्) कोई २ भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे हम लोग (दारुणि) काष्ठ के पात्र में (दध्मसि) धारण करें। (यत्) जो कुछ हमारी चीज़ है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो हमारा (घृतम्) घृतादि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुपस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा हो जो तेरा घृतादि पदार्थ है उस को हम ग्रहण करें ॥ ७३ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रखें किन्तु ऐश्वर्य में आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सुखों की दृष्टि होवे। और विष्णु न उठे इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्तें ॥ ७३ ॥

यदर्शास्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराटनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यदत्युपजिह्विका यहस्रो अतिसर्पति । सर्वे

तदस्तु ते घृतं तज्जुपस्व यविष्य ॥ ७४ ॥

पदार्थः— हे (यविष्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पतें आप और (उपजिह्विका) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् यश में है ऐसी स्त्री (यत्) जो (भक्ति) भोजन करे (यत्) जो (वयः) मुस से बाहर निकाला प्राणवायु (अतिसर्पति) अत्यन्त चलता है (तत्) यह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (अस्तु) होवे । जो तेरा (घृतम्) घी आदि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को (जुपस्व) सेवन किया कर ॥ ७४ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष से पुरुष या स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता है उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनों वत्तें । जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे । इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये किन्तु आपस में मिल के आनन्द भोगें ॥ ७४ ॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिर्नापिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिषुः
पञ्चन्दः । धैवतः स्यरः ॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वत्तें यह वि० ॥

अहरहरप्रयावं भग्न्तोऽश्वायेव तिष्ठते घा-
समंस्मे । गायस्पोपेण समिषा मग्न्तोऽग्ने मा
ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (अहरहः) नित्यप्रति (तिष्ठते) वर्तमान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे धरते हैं वैसे (अस्मे) हम गृहस्थ पुरुष के लिये (अम्रणावम्) अम्रणाव से एक प्रकार के योग्य (घासम्) भोगने योग्य पदार्थों को (भग्न्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि तथा (इषा) अन्न आदि से (संमदन्तः) सम्पत् आनन्द को प्राप्त हुए (प्रतिवेशाः) धर्म विषयक

प्रवेश के निश्चित हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य को (नारियाम) कभी न
ट न करें ॥ ७५ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालं०-वृहस्प मनुष्यों को चाहिये कि जैसे
से घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों का पशुओं के
पालक नित्य इकट्ठे करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य को बढ़ा के सुख देवें। और
धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरों की वृद्धि
या धन देख के सदा आनन्द मानें ॥ ७५ ॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्यर्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

नाभां पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोपाय
वृहते हवामहे । इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारम्-
ग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थ:—हे गृहि लोगो जैसे हम लोग (वृहते) बड़े (रायः) लहमी के
(पोपाय) पुष्ट करने हारे पुरुष के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा)
घीब (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए (अग्नौ) अग्नि में और
(पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील (इरम्मदम्) अन्न
से आनन्दित होने वाले (बृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसा से युक्त (यजत्रम्)
संग्राम करने योग्य (अग्निम्) विजुली के समान शीघ्रता करने हारे (जे-
तारम्) विजय शील सेनापति पुरुष को (हवामहे) बुलाते हैं । वैसे तुम
लोग भी इस को बुलाओ ॥ ७६ ॥

भावार्थ:—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय
आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का संघम कर और पूर्ण युद्ध तथा
शरीर बल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ बलें ॥ ७६ ॥

घाः सेनाइत्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
सुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राज पुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चौर आदि दुष्टों का धार २ निवारण करें यह वि० ॥

याः सेनां अभीत्वंरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्ते अग्नेऽपि दधा-
म्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे सेना और सभा के स्वामी शैवे मैं (याः) जो (अभी-
त्वंरीः) संमुख हो के युद्ध करने हारी (आठयाधिनीः) बहुत रोगों से
युक्त या ताड़ना देने हारी (उगणाः) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुईं
(सेनाः) सेना है उग (उत) और (ये) जो (स्तेनाः) चुराऊ लगा के
दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (च) और (ये) जो (तस्कराः) चूत
आदि कपट से दूसरों के पदार्थ लेने वाले हैं (ताम्) उन को (ते)
इम (अग्ने) अग्नि के (आस्ये) जलती हुई छपट में (अपिदधानि) गेरता
हूँ वैसे तू भी इम को इम में धरा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये
कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हैं उन का निरन्तर सत्कार करें
और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हो तथा हाकू चौर सोटे वचन झोठने
द्वारे निर्यावादी उपभ्रकारी मनुष्य होयें उन को अग्नि से जलाने आदि
भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर यथ में करें ॥

दंप्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिर्ऋपिः । अग्निदेवता ।

भुरिगुणिकछन्दः । श्रापभः स्वरः ॥

किर उग दुष्टों को किस २ प्रकार ताड़ना करें यह वि० ॥

दंप्राभ्यां मलिस्लून् जम्भ्यैस्तस्कराँश्च । उत ।
हनुंभ्याश्च स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादि-
तान् ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्यं वाले संज्ञा सेना के स्वामी जैसे (एवम्) आप (जम्भ्यैः) मुख के जीभ आदि अवयवों और (दंष्ट्रभ्याम्) तीक्ष्ण दाँतों से जिन (मलिम्लून) मलीन आचरण वाले सिंह आदि को और (हनुभ्याम्) मसूहों से (तस्करान्) चोरों के समान वस्त्रमान (सुखादितान्) धन्याय से दूबरी के पदार्थों के भोगने और (स्तेनान्) रात में भीति आदि फोड़ तोड़ के पराया माल नारने हारे मनुष्यों को (खाद) लड़ से नष्ट करे जैसे (तान्) उन को हम लोग (उत) भी नष्ट करे ॥ ७८ ॥

भाषार्थः—राज पुरुषों को चाहिये कि जो गी आदि बड़े उपकार के पशुओं को नारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हों उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उन को अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताड़ना दे नष्ट कर वध में लावे ॥ ७८ ॥

येजनेष्वित्यस्य नामानेदिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता ।

निचूदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर ये राजपुरुष किं २ का निवारण करे यह वि० ॥

ये जनेषु मलिम्लवस्तेनासस्तस्करा वने । ये
कक्षैष्वघ्रायवस्तांस्तै दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे सभापति मैं सेनाध्यक्ष (ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्वभाव से आते जाते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और (ये) जो (कक्षेषु) कटरी आदि में (अघ्रायवः) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उन को (तै) आप के (जम्भयोः) कैलासे मुख में घ्राण के समान (दधामि) धरता हूँ ॥ ७९ ॥

भाषार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को यही मुख्य कर्तव्य है कि जो पाप और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करे ॥ ७९ ॥

योऽस्मभ्यमित्यस्यनामानेदिर्ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ
देयते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी यही० वि ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साञ्च सर्वं तं भस्मसा
कुरु ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे मत्ता और मेता के स्वामिन् आप (य) जो (जनः) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता करे (यः) जो (नः) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (यः) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्न दिखावे और हमारे भाव छल करे (तम्) उन (सर्वम्) सब को (भस्मसा) जला के संपूर्ण भस्म (कुरु) कीजिये ॥ ८० ॥

भाषार्थः—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढ़ाने शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥ ८० ॥

संश्रितमित्यस्य नामानेदिर्नापि । पुरोहितवज्रमानां देवते ।

निष्पृथार्पी पंक्तिदृष्टन्दः । पंचमः स्वर ॥

जय पुरोहित वज्रमान आदि से किम २ पदार्थ की इच्छा करे ॥

सथ शितं मे ब्रह्म सथ शितं वीर्यं बलम् । सथ
शितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (यस्य) जिस वज्रमान पुरुष का (पुरोहितः) प्रथम धारण करने वाला (अस्मि) हूँ उन का और (मे) मेरा (संश्रितम्) प्रशंसा के योग्य (ब्रह्म) वेद का विद्या । और उन वज्रमान का (संश्रितम्) प्रशंसा के योग्य (वीर्यम्) पराक्रम प्रशंसित (बलम्) बल (संश्रितम्) और प्रशंसा के योग्य (क्षत्रम्) जय का स्वभाव वाला (सथम्) सत्रिय बुद्ध होये ॥ ८१ ॥

भाषार्थः—जो जिस का पुरोहित और जो जिस का वज्रमान हो वे दोनों आपस में जिस विद्या के योग बल और वनांश से आत्मा की

सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रमदे-
हि) अतिप्रकषं के साथ दीजिये और इन अन्न के (दातारम्) देने हारे
को (तारिणः) मृतकर तथा (न) हमारे (द्विपदे) दो पगवाले मनुष्या-
दि तथा (पतुष्पदे) चार पगवाले गी आदि पशुओं के लिये (ऊर्ध्वम्)
पराक्रम को (चेहि) धारण कर ॥ ८३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि गदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप
सेयें और दूमरों को दें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ायें ।
जिसे से इंश्वर की सृष्टिक्रमानुसूल आचरण से मय के सुखों की सदा उत्प-
त्ति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष
और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इन अध्याय
में कहे अर्थ की पूर्ण अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का ग्वारहवां ११ अध्याय पूरा हुआ ॥



सन्नति और ब्रह्मचर्य में लितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े
यही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । सभापतिर्यजमानो देवता ।
विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्ते यह वि० ॥

उदेषां ब्राह्म अतिरमुद्वर्चो अथो वलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामिस्वाँ २॥ अहम्
॥ ८२ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और
इंद्र के ध्यान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चौर आदि दुष्टों के (ब्राह्म)
बल और पराक्रम की (उदतिरम्) अच्छे प्रकार लललहून करूँ (वर्चः)
तेज तथा (वलम्) सामर्थ्य के और (अमित्रान्) शत्रुओं को (उरिणो-
मि) मारता हूँ (अथो) इस के पश्चात् (श्वान्) अपने मित्रों के तेज और
सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूँ ॥ ८२ ॥

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिये कि पा-
पियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मोत्सवों के सब पदार्थों की वृद्धि
सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अन्नपतइत्यस्य नाभानोदिर्ऋषिः । यजमानपुरोहितां देवते ।

उपरिष्ठाद्वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे २ वर्त्तना इस वि० ॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्यं शुष्मिणाः ।
प्रप्रं दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदं चतुष्पदे
॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे (अन्नपते) भोवधि अन्नों के पालन करने वाले यजमान
वा पुरोहित आप (नः) हमारे लिये (अन्नमीवस्य) लोगों के नाश से

सुख को बढ़ाने (शुद्धिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदे-
हि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इन अन्न के (दातासु) देने वाले
को (तारिषः) तृप्तकर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पगवाले मनुष्या-
दि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गी आदि पशुओं के लिये (ऊर्जम्)
पराक्रम को (चेहि) धारण कर ॥ ८३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को साहिये कि मदैव बलकारी भारोश्च अन्न आप
सेवें और दूमरे को दें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ायें ।
जिष्ट से इंशवर की सृष्टिक्रमाऽनुकूल आचरण से मद्य के सुरों की मदा उत्प-
त्ति होये ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सप्ता और सेना के अध्यक्ष
और प्रजा के मनुष्यों को काने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इन अध्याय
में कहे अर्थ की पूर्ण अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह मनुष्यदशाप्य का अवारह्वां ११ अध्याय पूरा हुआ ॥



सन्नति और अन्नपत्ये जिसेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर
यही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उदेपामित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । सभापतिर्यजमानो
विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर यजमान पुरोहित के माप कैसे वर्ये यह वि०

उदेपां ब्राह्म अतिरमुहर्चा अथो
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामिस्वाँ २
॥ ८२ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान या पुरोहित (ब्रह्म
इंद्र के ध्यान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि
बल और पराक्रम को (अतिरम्) अच्छे प्रकार छलछद्
तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य के और (अमित्रान्) शत्रु
मि) मारता हूँ (अथो) इस के पश्चात् (स्वान्) अपर
सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूँ ॥ ८१ ॥

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहित
पियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्मानों से
सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अन्नपत्येऽन्नस्य नाभानोदिर्ऋषिः । यजमान

उपरिष्ठाद्बृहती छन्दः । मध्य

अथ मनुष्यों को इस संसार में कैसे २ ८

अन्नपत्येऽन्नस्य नो देह्यनमी
प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धे
॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे (अन्नपत्ये) ओषधि अन्न
या पुरोहित आप (नः) हमारे लिये (

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे इस जगत में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर को नियम कराते हैं। वैसे ही मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १ ॥

नक्तोपासेत्यस्य कृत्स्नश्रुतिः । अग्निर्देवता ।

भुरिगार्पात्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर भी यही वि० ॥

नक्तोपामा समंनमा विरूपे ध्यापयेते शिशु-
मेकं३ समीची । द्यावात्तामा रुक्मो अन्तर्विभा-
ति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अग्निम्) विजुली को (द्रविणोदाः) ब-
लदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्म.) रुचि-
कारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो
(समनसा) एक विचार से विदिन (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से वि-
रुद्ध युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली (द्यावात्तामा)
प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोपामा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक
(शिशुम्) बालक को द्यावात्ता (ध्यापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को
तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जननी माता और धायी बा-
लक को दूध पिलाती है वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती है
और जो विजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस द्याव का तुम सब नि-
श्चय करो ॥ २ ॥

विश्वारूपाणीत्यस्य द्यावाश्चक्षुषिः । सविता देवता ।

विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कर्तव्य का उपदेश किया है ॥

विश्वां रूपाणि प्रतिमुञ्चते कृविः प्रासावी-

अथ द्वादशाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुहितानि परांसुव । य-
द्द्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

दृशानइत्पस्य षत्सप्री ऋपिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्ति-
श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ चारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम
मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुमर्षमायुः श्रिये
रुचानः । अग्निर्मृतो अभवद्द्वयोभिर्यदेनं द्यौर-
जनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो जैसे (दृशानः) दिखलाने हारा (द्यौः) स्वयं
प्रकाशस्वरूप (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (उर्व्या) अतिशूल भूमि की माप
सय मूर्तिमान् पदार्थों को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है
जैसे जो (श्रिये) (रुचानः) सीमाभागा लक्ष्मी के अर्थ रुचि कर्ता (रुक्मः)
सुशोभित जन (अभवत्) होता और जो (सुरेताः) उत्तम द्यौर्ष युक्त
(अमृतः) नाशरहित (दुमर्षम्) शत्रुओं के दुःख से निवारण के योग्य
(आयुः) जीवन की (अजनपत्) प्रकट करता है (व्योमिः) अवस्थाओं
के साथ (एणम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता ही उस को तुम सदा
निरन्तर सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वायुकलु० जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सद्य पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से पामेश्वर को नियम कराते हैं। जैसे ही मनुष्यों को हेराग तादिये ॥ १ ॥

नक्तोपामेत्पस्य कुत्सस्तपिः । अग्निर्देवता ।

भुरिगार्पीत्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर भी यही वि० ॥

नक्तोपामा समनमा विरूपे ध्यापयेते शिशु-
मेकं३ समीची । द्यावात्तामा रुक्मो अन्तर्विभा-
ति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अग्निम्) विजुली को (द्रविणोदाः) व-
लदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचि-
कारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो
(समनसा) एक विचार से विदिन (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से वि-
रुद्ध युक्त (समीची) सद्य प्रकार सद्य को प्राप्त होने वाली (द्यावात्तामा)
प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोपामा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक
(शिशुम्) बालक को देा माता (ध्यापयेते) दूध पिलाती हैं जैसे हम को
तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ध्यापकलु०—जैसे जननी माता और धायी बा-
लक को दूध पिलाती हैं जैसे ही दिन और रात्रि सद्य की रक्षा करती है
और जो विजुली के स्वरूप से सर्वत्र उपायक है इप वात का तुम सद्य नि-
श्चय करो ॥ २ ॥

विश्वारूपाणीत्यस्य द्यावाइत्यस्तपिः । सविता देवता ।

विराड्जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

जब जगले मन्त्र में परमेश्वर के कर्तव्य का उपदेश किया है ॥

विश्वां रूपाणि प्रतिमुञ्चते क्विः प्रासावी-

इंद्रं द्विपदे चतुष्पदे । विनाकंमख्यत्संविता वरे-
ण्योऽनुं प्रयाशांमुपसो विराजति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे ननुष्यो जो (वरेण्यः) ग्रहण करने योग्य (कविः) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (संविता) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य (उपसः) प्राप्तःकाल का समय (प्रयाणम्) प्राप्त करने को (भनुविराजति) प्रकाशित होता है (विश्वा) सब (रूपाणि) पदार्थों के स्वरूप (प्रतिमुद्रयते) प्रसिद्ध करता है और (द्विपदे) बहुप्यादि दो पग वाले (चतुष्पदे) तथा गौ आदि चार पग वाले प्राणिधियों के लिये (गार्हम्) सब दुःखों से पथक् (नश्रम्) वेदने योग्य सुख की (उपप्यत्) प्रकाशित करता और (प्रासाधीत्) सज्जति करता है ऐसे उस सूर्य लोक को उत्पन्न करने वाले ईश्वर को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इमं मन्त्रं मे श्लेषालं०—जिस परमेष्ठा ने संपूर्ण रूपवांशु दुर्षों का प्रकाशक प्राणिधियों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्य लोक रचा है उसी की शक्ति मय समुप्य करें ॥

सुपर्णोऽसीत्पश्य दयायाश्च ऋषिः । मरुतमान् देवता ।

धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उप० ॥

सुपर्णोऽसि गुरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं च-
क्षुर्वहद्रथन्तरे पक्षी स्तोमं आत्मा छन्दाश्चस्यङ्गा-
नि यजूंश्चपि नाम । सामं तेतनूर्वांमदेव्यं यज्ञा-
यज्ञियं पुच्छं धिषण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि ग-
रुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

पार्थः— हे विद्वन् जिम मे (मे) आपका (द्विषत्) तीन कर्म उ-
पायना और ज्ञानों मे युक्त (धिरः) दुःखों का निम मे नाश हो (गायत्रम्)
गायत्री छन्द मे रहे विशामरूप अर्थ (यद्युः) नित्र सद्व्रथगते वधि २ रथों
के सद्व्रथ से दुःखों को छुड़ाने वाले (पत्नी) इधर उधर के अवयव (वतोमा)
स्तुति के योग्य श्रग्दे (आत्मा) आपना स्वरूप (उद्वांगि) लक्षण आदि
छन्द (अङ्गानि) काम जादि (यजुषि) यजुर्वेद के मन्त्र (नाम) नाम (य-
ज्ञायज्ञियम्) यज्ञ करने और छोड़ने योग्य उपदेशों के योग्य (यामदेवम्)
यामदेव ऋषि मे जाने वा पढ़ाये (याम) तीसरे यामवेद (ते) आपका
(तनुः) शरीर है हमसे भाव (गुरुमान्) गदात्मा । सुपर्यं) सुन्दर सं-
पूर्ण लक्षणों से युक्त (जनि) है । जिम से (विष्णवाः) शठ करने के हे-
तुओं में माधु (शफा) सुर तथा (पुच्छम्) बड़ी पूंछ के समान वाक्य का
अवयव है जग के समान जो (गुरुमान्) प्रथमित शठदेश्वरण से युक्त (उ-
पणः) सुन्दर रहने वाले (जनि) है उभ पत्नी के समान भाव (द्विषत्)
सुन्दर विज्ञान जो (गच्छ) प्राप्त कृत्रिये और (स्वः) सुख को (पत) प-
हण कीलिये ॥ ४ ॥

भाषार्थः— हम मन्त्र में वाचकलु— जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल
और मूर्खों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं । वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने
और पढ़ाने द्वारा सुशोभित होते हैं । जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से ज-
पने काम करते और जैसे पत्नी पति से शालाश भाग से भाते भाते आन-
न्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ
के साध सुखो को प्राप्त हैं ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्न्या गायत्रं छन्द आ-
त्कृतिश्छन्दः । पदजः स्वरः ॥

किर भी आगे मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्न्या गायत्रं छन्द आ-
रांह पृथिवीमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्य-

भिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरौहान्तरिक्षमनु वि
क्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जा-
गतं छन्द आरौह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्र-
मोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द आरौह
दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः - हे विद्वन् पुरुष अग्नि से आप (विष्णोः) ठपापक जगदीश्वर
के (क्रमः) उपवहार से शोधक (सपत्नहा) और शत्रुओं के मारने हारे
(असि) हो इस से (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दः) शुद्ध अर्पे
पर (आरोह) आरूढ़ भूजिये (पृथिवीम्) पृथिव्यादि पदार्थों से (अनु-
विक्रमस्व) अपने अनुकूल उपवहार साधिये तथा जिस कारण आप (वि-
ष्णोः) ठपापक कारण के (क्रमः) कार्ययै रूप (भिमातिहा) भिमा-
नियों को मारने हारे (असि) हैं इस से आप (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार के
सुखों से संयुक्त (छन्दः) यलदायक वेदार्थ को (आरोह) ग्रहण और (अ-
न्तरिक्षम्) आकाश को (अनुविक्रमस्व) अनुकूलउपवहार में युक्त कीजिये
जिस से आप (विष्णोः) ठपापनशील विजुली रूप अग्नि के (क्रमः)
जानने हारे (मरातीयतः) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के (हन्ता)
नाश करने हारे (असि) हैं इस से आप (जागतम्) जगत को जानने का
हेतु (छन्दः) सृष्टि विद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को (आरोह)
प्राप्त भूजिये और (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि को (अनुविक्रमस्व) अनु-
क्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः)
आपक तथा (शत्रूयतः) अपने को शत्रु का आचरण करने वाले पुरुषों के
(हन्ता) मारने वाले (अग्नि) हैं जो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता के
साथ सुख सम्बन्ध के हेतु (छन्दः) आनन्दकारक वेद भाग को (आरोह)
उपयुक्त कीजिये और (दिशः) पूर्व भादि दिशाओं के (अनुविक्रमस्व)
अनुकूल प्रगल्भ कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यो को चाहिये कि वेद विद्या से भूगर्भ विद्याओं का निष्पन्न तथा पराक्रम से उस की उत्पत्ति करके रोग और शत्रुओं का नाश करे ॥ ५ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फि० श्री वही वि० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयान्निव द्यौःक्षामा रेरिहृद्दी-
रुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धां अ-
ख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो मभापति (मद्याः) एक दिन में (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (द्यौः) सूर्य प्रकाश रूप (अग्निः) विद्युत् अग्नि के समान (स्तनयन्निव) शब्द करता हुआ शत्रुओं को (अक्रन्दत्) प्राप्त होता है जैसे (क्षामा) पृथिवी (वीरुधः) धूलों को फल फूलों से युक्त करती है जैसे प्रजाओं के लिये सुखों को (रेरिहृत्) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य (इहः) प्रदीप्त और (समञ्जन्) मरफफु पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (उपख्यत्) प्रसिद्ध करता और (भानुना) अपनी दीप्ति के साथ (अन्तः) मध्य लोकों के बीच (आभाति) प्रकाशित होता है । जैसे जो मभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उस को तुम लोग राज कार्यों में सयुक्त करो ॥ ६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे सूर्य मध्य लोकों के बीच में स्थित हुआ मध्य को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है । जैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥ ६ ॥

अग्निदित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्थ-

त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पदार्थः—हे (आगे) तेजस्वी विद्वान् पुरुष आप दुष्ट उपग्रहारीं से (नियन्त्रण) पृथक् पूजिये (विशुद्धस्व्या) सब भोगने योग्य पदार्थों की भुगयाने हारी (धारया) संपूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु यानी तथा (रथ्या) धन के (सह) साथ (विश्रयतः) मद्य और से (परि) सब प्रकार (विन्धस्व) सुखों का सेवन कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म का आचरण न करें। और दूतों को ऐसा उपदेश भी न करें इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशना के योग्य होंगे ॥ १० ॥

अश्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्घ्यनुष्टुप्छन्दः ।

भान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश जगले मंत्र में किया है ॥

आ त्वांहार्यमन्तरं भूर्ध्रुवस्तिष्ठाविंचाचलिः ।

विशंस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्र-
शत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे शुभ गुण और लक्ष्णों से युक्त सभापति राजा (त्वा) आप को राज्य की रक्षा के लिये मैं (अन्ता) सभा के बीच (आहार्यम्) अच्छे प्रकार चरण करूँ। आप सभा में (भ्रुवः) विराजमान पूजिये (अविचाचलिः) सर्वथा निचल (ध्रुवः) न्याय से राज्य पालन में निश्चित युद्धि हो कर (तिष्ठ) स्थिर पूजिये (सर्वाः) संपूर्ण (विधः) प्रजा (त्वा) आप को (वाञ्छन्तु) चाहना करें। (त्वत्) आप के पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिभ्रशत्) नष्टभ्रष्ट न होवे ॥ ११ ॥

भावार्थः—उत्तम प्रजाशनों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उस को उपदेश करें कि आप नितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी पूजिये। आप के दुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे। जिस से सब प्रजा पुरुष आप के अनुकूल वरें ॥ ११ ॥

उदुत्तममित्यस्य शूनःशेष ऋषिः । वरुणो देवता । विराडा-
र्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं भी वही वि० ॥

उदुत्तमं वंरुण पाशंस्मदवाध्रुमं वि मंध्यमं
श्रंथाय । अथाव्यमादित्य व्रते तवानांगसो अ-
दितये स्याम ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) शत्रुभो को बाधने (आदित्य) स्वयं से अ-
पिताधी भूषण के समान मत्स्य स्थाय का प्रकाशक नभापति विद्वान् भाव
(अल्पत) हम से (अधमम्) निरष्ट (मध्यमम्) मध्यम्य और (उत्तम-
म्) उत्तम (पाथम्) वरुण को (उदुत्तमिन्वाय) त्रिविध प्रकार से लुडा-
इये (अथ) हम के पदात् (व्यम्) हम प्रजा के पुरुष (अदितये) पदि-
यी के अल्पिण ११व्य के लिये (मय) भाव के (व्रते) मत्स्य स्थाय के वा-
लन रूप नियम में (अनांगसः) अपराध रहित (स्याम) होंगे ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे इंद्र के पुत्र वरुण और स्वभाय के अमुकल मत्स्य आ-
चार्यों में सर्वमान हुए धर्मात्मा अमुक्य वाप के अन्धभो से वृत् के सुभी होते
हैं ऐसे ही उत्तम राजा को प्राप्त हो के प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥ १२ ॥

अग्नेर्दृष्टिस्तस्य त्रितक्षपिः । अग्निर्देवता । अग्नि-
गार्गी पंक्तिः उन्दः पक्षतः स्वरः ॥

किं भी वही वि० ॥

अग्नें बृहन्नुपमांमृश्वो अस्थान्निर्जगन्वान्
तमसो ज्योतिषागात् । अग्निभानुना मशता
स्वङ्ग आज्ञातो विद्मामइमान्यप्राः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे राजन् को भाव (जाने) पदिष्टे से ज्ये मृश्वं (बृहद्)
सुन्दर शवपटों से युक्त (अनाग.) प्रकृत हुआ (एरन्) वरा (उपमान्)
प्रभाते के (अस्थः) ऊपर आकाश में (अस्थः) स्थित होना और (अ-
मशता) सुन्दर (आनुना) दीति मया (पदिष्टिना) प्रकाश के (अमशः)

पशुओं को प्रसिद्ध करने द्वारा (ज्ञतज्ञाः) सत्य विद्या का उत्पन्न करने वाला (जद्विज्ञाः) भेषों का वर्णन वाला विद्वान् (ज्ञतम्) सत्य स्वरूप (पृष्टम्) अन्तःप्रद और जीव को जाने हम पुरुष को सत्ता का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है । और ऐसे राजा के बिना प्रजाओं के सुख भी नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

सीद त्वमित्यस्य त्रिन प्रापिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्

छन्दः । धैततः स्वरः ॥

माता का कर्म अगत् ॥

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयु-
नानि विद्वान् । मनां तपसा मार्चिषाऽभिर्शो-
चीन्तरस्याः शुक्रज्ज्योतिर्वि भाहि ॥ १५ ॥

पदार्थः—दे (अग्ने) विद्या को चाहने वाले पुरुष (त्वम्) आप (अस्वाम्) इस माता के विद्यमान होने में (विनाहि) प्रकाशित हो (शु-
क्रज्योतिः) शुद्ध आपखोरे के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप
पृथिवी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में (सी-
द) स्थित हूजिये । इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि)
बुद्धियों को प्राप्त हूजिये । इस माता को (अन्ताः) अन्तःकरण में (मा)
मन (तपसा) सन्ताप से तथा (भार्चिषा) तेज से (मा) मन (अभि-
शोषीः) शोक युक्त कीजिये । किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्र-
काशित हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् माता ने विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त
क्रिया माता का सेवक जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पा-
पन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य से प्रकाशित होवे ॥ १५ ॥

अन्तरग्ने इत्यस्य द्वितः ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर राजा क्या करे हम वि० ॥

अन्तरग्ने रुचात्वमुखायाः सद्ने स्वे । त-
स्यास्त्वञ्छ हरं मात पञ्जातं वेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (जाने) अग्नि के समान शत्रुओं की कल्पने वाले वि-
द्वान् पुरुष (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे से अग्नि के समान (स्वे)
जानने (सद्ने) पट्टने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए
(अस्तः) मध्य में (रुचा) प्रीति से गर्वी (तस्याः) उम प्रजा के (हर-
मा) प्रथमलिप्त तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) न-
शुद्धकारी (भव) हूँजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः - हम मन्त्र में याचकतुः—जिसे मन्त्राध्यक्ष राजा की चाहिये
कि व्याघ्र हमसे ली गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालन
करे कार्यो को करे धीमे प्रजाओं को चाहिये कि राजा की गुण देती हुई
दुष्टों की नाशना करें ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वा महासद्ने अर्थो माद शिवस्त्व-
म् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं यानिमिहा-
सद्ने ॥ १७ ॥

पदार्थः - हे (जाने) अग्नि के समान शत्रुओं की कल्पने वाले वि-
द्वान् पुरुष (तपन्) आप (अस्तः) हम प्रजापति के निम्न (शिव) नशु-
द्धकारी कामे करते (रुचा) गर्वी (इह) हम समान में (शिव) न-
शुद्धकारी हुए (भव) हूँजिये । दिशः । दिशाओं में रहने वाली प्रजाओं को

(जिघाः) मद्गुलाभाषण मे युक्त (कृत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्)
राज धर्म के आसन पर (जावद्) देखिये और (अयो) इन के पश्चात्
राजधर्म में । सीद्) स्थिर हृत्तिये ॥ ११ ॥

भावार्थः राजा को चाहिये कि आप धर्मोत्सा हो के प्रजा के मनु-
ष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय क्रिया
करे ॥ ११ ॥

दिवस्परित्यस्य वत्सर्पाः ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिमृच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं राज धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्वितीयं प-
रि जातवेदाः । तृतीयं मम नृमणा अजस्रमि-
न्धान एनं जरते स्वार्थीः ॥ १८ ॥

पदार्थ—ए मत्तापनि राजन् जो (अग्निः) अग्नि के समान आप (अ-
स्मत्) हम लोगो से (दिवः) बिजुली के (परि) ऊपर (जज्ञे) प्रकट
होते हैं उन (एनम्) आप को (प्रथमम्) पहिले जो (जातवेदाः) बुद्धि-
मानों में प्रसिद्ध उपन्न हुए उन आप को (द्वितीयम्) दूसरे जो (नृमणाः)
मनुष्यों में विचारशील आप (तृतीयम्) तीसरे (मम) प्राण वा जल क्रि-
याओं में सिद्ध हुए उन आप को (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्र-
काशित करता हुआ विद्वान् (जरते) मध्य प्रकार स्तुति काता है सो आप
(स्वार्थीः) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम के महित विद्या
सहा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृह्याश्रम से धन का संयव तीसरे वानप्रस्थ आ-
श्रम से तप का आचरण और चौथे सन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का
नित्य प्रकाश करे ॥ १८ ॥

विद्यातइत्यस्य वत्सर्पाः ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिमृच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर भी दधी वि० ॥

विद्या ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्या ते धाम् वि-
भृता पुरुत्रा । विद्या ते नाम परमं गुहा यहि-
द्या तमुत्सं यत आजगन्थं ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (ते) आप के जो (त्रेधा) तीन प्रकार से त्रयाणि तीन कर्म हैं उन को हम लोग (विद्या) जानें । हे स्थानों के स्वामी (ते) आप के जो (विभृत) विशेष कर के धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थान रूप हैं उन को हम लोग (विद्या) जानें हे विद्वान् पुरुष (ते) आप का (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उस को हम लोग (विद्या) जानें (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अछले प्रकार प्राप्त होवें (तम्) उस (उत्तमम्) कृप के तुल्य तर करने हारे आप को (विद्या) हम लोग जानें ॥ १९ ॥

भावार्थः—प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है किराजनीति के कामों सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें । जैसे कुम्भ से जल निकाल देत आदि को वृत्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को वृत्त करे ॥ १९ ॥

समुद्रहृत्यस्य वरसमी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का नय० ॥

समुद्रे त्वां नृमणां अप्स्वृन्तर्नृचक्षां ईधे द्वि-
वो अग्नऊर्धन् । तृतीयै त्वा रजंसि तस्थिवा-
धसंमपामुपस्थे महिषा अंवर्धन् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (वृषणाः) नायक पुरुषों को वि-
चारने वाला मैं जिम (तथा) आप को (ममुद्रे) आकाश में अग्नि के म-
नाम (ईधे) प्रदीप्त करता हूँ (वृषशः) बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं
(अप्सु) अन्न या जलों के (अन्तः) बीच प्रकाशित करता हूँ (दिवः)
सूर्य के प्रकाश के (ऊधन्) प्रातः काल में प्रकाशित करता हूँ (तृतीयं) ती-
सरे (राजनि) लोक में (तस्थिषान्मम) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिम आप
को (अपाम्) जलो के (उपस्थे) समीप (महियः) महत्तमा विद्वान् लोग
(अवधन्) उन्नति को प्राप्त करें जो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति
कीजिये ॥ २० ॥

भाषार्थः—प्रजा के बीच वत्समान मम श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों को और
राजपुत्र्य प्रजा पुरुषों को नित्य बढाते रहें ॥ २० ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सर्पा ऋषिः । अग्निर्देवता । निषृदार्षी
त्रिष्टुब्धन्दः । धैयतः स्वरः ॥

अथ मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अक्रन्ददुग्निस्तनयन्निवृ र्याः क्षामाररिहृद्दी-
रुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विर्दीग्निर्द्वा अ-
ख्यदा रोदसी भानुनां भात्यन्तः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों जैसे (रीः) सूर्य लोक (अग्निः) विद्युत् अग्नि
(स्तनयन्निव) दृष्ट करते हुए के समान (वीरुधः) औपचरिणों को (मम-
ञ्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) यीघ्र (दि) ही (अक्रन्दत्) पदार्थों
को इधर उधर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (ररिहृत्) कंवाता और यह
(लक्षानः) प्रसिद्ध हुआ (इदुः) प्रकाशमान हो कर (भानुना) बिजलों
के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) मम और मे (उपधत्-
त्) विस्थापित करता है । और प्रह्लाद के (भगतः) धीक (आनाति)
अच्छे प्रकार शोभामान होता है । ऐसे तुम लोग भी होओ ॥ २१ ॥

भाषार्थः—रंरवर ने जिम लिये सूर्य लोक को उत्पन्न किया है वही

लिये वह विजुली के समान मद्य लोगों का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और मद्य भूगोलों के बीच जैसे ओषधायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिये ॥ २१ ॥

श्रीणामित्यस्य यत्समीक्षाधिः । अग्निर्देवता । निष्पदार्थी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन राजकार्यों में जैसे पुरुष को राजा बनाने यह वि० ॥

**श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रा-
पणः सोमगोपाः । वसुः सूनुः सहसो अप्सुराजा
वि भ्रात्यग्रं उपसामिधानः ॥ २२ ॥**

पदार्थः—हे मनुष्यों तुम लोगों को चाहिये कि जो पुरुष (उपमान्) प्रजात समय के (अग्ने) आरम्भ में (इधानः) प्रदीपमान सूर्य के समान (श्रीणाम्) मद्य उत्तम लक्ष्मियों के मध्य (उदारः) परीक्षित पदार्थों का देने (रयीणाम्) धर्मों का (धरुणः) धारण करने (मनीषाणाम्) बुद्धियों का (प्रापणः) प्राप्त कराने और (सोमगोपाः) ओषधियों या ऐश्वर्यों की रक्षा करने (सहसः) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (सूनुः) पुत्र (वसुः) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशयुक्त हो कर (विभाति) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो उस को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि उपार्जों को दान देने धन का उपर्ये उच्यं न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिस ने ब्रह्मचर्याश्रम सेवन किया हो अपने इन्द्रिय जिस के वश में हों योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओं का पालन करने द्वारा पुरुष हो उस को राज्य छरने के लिये स्थापित करें ॥ २२ ॥

विश्वस्पेत्यस्य यत्समीक्षाधिः । अग्निर्देवता । आर्षी-
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

क्ति भी वही वि० ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अष्ट-
णाज्जायमानः । वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन्
जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (पत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भु-
वनस्य) लोको का (केतुः) पिता के समान रक्षक प्रकाशने द्वारा (गर्भः)
सम के मध्य में रहने (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (परायन्) शत्रुओं
को प्राप्त होता हुआ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (आपृणात्) पु-
रण कर्ता हो (वीडुम्) अत्यन्त बलवाम् (अद्रिम्) मेघ को (लभिनत्)
छिन्न भिन्न करे (पञ्च) पांच (जनाः) प्राण (अग्निम्) विजुली को (अ-
णयन्त) संयुक्त करते हैं (चित्) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों
का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमाखंड—सीसे ब्रह्मायुध के बीच सूर्य लोक भा-
पनी आकर्षण शक्ति से सब का धारण करता और मेघ को काटने वाला
तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब विद्याओं को जलाने और सीसे ना-
सा गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालने द्वारा विद्वान् पुरुष हो उस को
राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३ ॥

उशिगित्यस्य वरसमी ऋषिः । अग्निदेवता । निवृद्धार्थी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

क्ति मनुष्यों को बचा करना चाहिये यह वि० ॥

उशिक् पावको अंग्रतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्नि-
रमृतो निधायि । इयंतिधूममरुपम्भरिभृदुच्छु-
क्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्यों में जो (उचिक्) सामने योग्य (पावकः) पवित्र करने द्वारा (भरतिः) ज्ञान वाला (कुमेधाः) अच्छी बुद्धि में युक्त (अमृतः) माण कर्म रहित (अग्निः) आकाररूप ज्ञान का प्रकाश (मिधापि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) मूर्खलोक को (इत-सन्) उदास छोटा हुआ (धूमन्) धुंए (अरुणम्) रूप को (त्रिधित) अत्यन्त धारण या पुष्ट करता हुआ (तदिपत्तिं) प्राप्त होता है वही ईश्वर को उपासना करो या उस अग्नि से उपकार लेना ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कार्य कारण के अनुसार ईश्वर के रहे हुए मध्य पदार्थों को ठीक २ ज्ञान के अपनी बुद्धि बढ़ायें ॥ २४ ॥

दृशानइत्यस्य यत्समीश्रपिः । अग्निर्देयता । भुरिक्पशुक्तिः
इच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर मनुष्यों को क्या २ जानना चाहिये यह वि० ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यंघौर्दुर्मर्पमायुः श्रिये
रुचानः । अग्निर्मृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं चौर-
जनयत्सरेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग (यत्) जिस कारण (दृशानः) दिखाने द्वारा (रुक्मः) रुचिका हेतु (श्रिये) शोभा का (रुचानः) प्रकाशक (दुर्मर्पम्) संघ दुःखों से रहित (आयुः) जीवन करता हुआ (अमृतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरूप (सत्पां) पृथिवी के साथ (उवद्यौत्) प्रकाशित होता है (ययोत्तिः) व्यापक गुणों के साथ (अमघत्) सतक होता और जो (द्यौः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर (यत्) जिस के लिये (एनम्) इन अग्नि को (अजनयत्) उत्पन्न करता है उस ईश्वर आयु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने

वाले जनादि बृंह्यर और जगत् के कारण को ठीकर ज्ञान को उपामना करते और उपयोग लेते हैं वे निरकीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

पस्तङ्गत्यस्य वत्सप्रीक्षपिः । अग्निर्देवता । विराडाप्री
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं विद्वान् लोग कैसे रसोदया का स्वीकार करें यह वि० ॥

यस्ते अद्य कृणावद्भद्रशोचेऽपूपं देव घतवं-
न्तमग्ने । प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छामिसु-
म्नं देवभक्तं यविष्ट ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (भद्रशोचे) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (यविष्ट) लक्षण भवस्था वाले (देव) दिव्य भोगों के दाता (अग्ने) विद्वान् पुत्र्य (यः) जो (ते) भावका (घृतघनम्) यहुत घृत आदि पदार्थों से युक्त (भक्ति) मद्य प्रकार से (एष्टम्) गुलकप (देवसक्तम्) विद्वानों के भवने योग्य (अपूपम्) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (वस्यः) अत्यन्त भोग्य (अष्ट) शक्ये २ पदार्थों को (कृणवत्) घनाये (तम्) लन (प्रतम्) पाक बनाने द्वारे पुष्ट्य को भाव (भद्र) भाज (प्रतय) प्राप्त हूजिये । २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से शक्यी गिस्ता को प्राप्त हुए भक्ति उत्तम उपज्जन और शक्युली आदि तथा शाक आदि व्याद से युक्त दधिकारक पदार्थों से बनाने वाले पावक पुष्ट्य का घटन करें ॥ २६ ॥

आत्मित्यस्य वत्सप्रीक्षपिः । अग्निर्देवता । विराडाप्री
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
किं वही वि० ॥

आतं भंज सौश्रवसेष्वग्न लुक्य उंक्यु ग्रा
भंज शस्यमाने । प्रियः सूर्यो प्रियो अग्ना भंवा-
त्युज्जातेनं भिनद्वुज्जनिंत्वः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप जो (सीश्रयसेपु) सुन्दर घन
वालों में वर्तमान हो (तम्) उस को (आभज) सेवन कीजिये जो (श-
स्यमाने) स्तुति के योग्य (उद्ये उद्ये) अत्यन्त कहने योग्य उपवहार में
(प्रियः) प्रीति रखे (सूर्ये) स्तुति कारक पुरुषों में हुए उपवहार (अगत)
और अग्नि विद्या में (प्रियः) सेवने योग्य (जातेन) उत्पन्न हुए और (क-
नित्वैः) उत्पन्न होने वालों के साथ (उद्गवाति) उत्पन्न होये और श-
श्रुओं को (उद्गिनदत्) उच्छिन्न भिन्न करे (तम्) उस को आप (आ-
भज) सेवन कीजिये ॥ २७ ॥

भाष्यार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो पाक करने में साधु सब वा-
हितकारी अन्न और उपजन्तों को अच्छे प्रकार बनावे उस को अवश्य प-
हण करें ॥ २७ ॥

त्वामग्ने इत्पस्य यत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्दार्थी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें हम वि० ॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसुं द-
धिरे वाय्यांशि । त्वयां सह द्रविणामिच्छमाना
व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जिस (उद्यम्) आपका भाग्य है
कर (उशिजः) बुद्धिमान् (यजमानाः) संगतिकारक लोग (त्वया) आप
के (सह) साथ (विद्या) सब (वायांशि) ग्रहण करने योग्य (अनुद्यून्)
दिनों में (वसु) द्रव्यों को (दधिरे) धारण करें (द्रविणम्) घन की (इ-
च्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) सुन्दर किरणों के रूप से युक्त
(व्रजम्) मेघ वा गोस्थान को (विश्वः) विषय प्रकार से ग्रहण करें वे
हम लोग भी श्रावें ॥ २८ ॥

भाष्यार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रथमगीत विद्वानों के सह से पु-
रुषार्थ के साथ विद्या और धन को नित्य प्रति बढ़ते जायें ॥ २८ ॥

अस्ताशीतस्य पत्समीप्रापिः । अग्निर्देवता । विराडार्पी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर जन विद्वानों के सग से क्या होता है यह वि० ॥

अस्तांव्यग्निर्नराथ सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः
सोमंगोपाः । अद्वेपे द्यावापृथिवी हुंवेम देवा
धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) भगुओं को जीतने की इच्छा वाले विद्वानों
जिन (अग्निः) अग्नि तुम लोगो ने (नराम्) नायक विद्वानों में (सुशेवः)
सुन्दर सुत युक्त (देवता) मध भगुयों के शापार (अग्निः) परमेश्वर
की (अस्तावि) श्रुति की है जो तुम लोग (अस्मे) हमारे लिये (सुवी-
रम्) जिन से सुन्दर वीर पुरुष हो सच (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धत्त)
धारण करो सग के भाग्नित (सोमंगोपाः) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (अ-
द्वेपे) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (द्यावापृथिवी) प्रकाश रूप
राजनीति और पृथिवी के राज्य का (हुंवेम, प्रहण करें ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो सद्धिदानम्द स्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मोत्तमा विद्वान्
लोग हैं वे परीपकारी होने से भास यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषों के स-
त्संग के बिना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता ॥२९॥

समिधाग्निमित्पस्य निरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री

छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

किर मनुष्य कित का सेवन करें यह वि० ॥

समिधाग्निं हुंवस्यत घृतैर्वीधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हुंव्या जुहांतन ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो तुम लोग लीमे (समिधा) अच्छे प्रकार इन्धनों
से (अग्निम्) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करने वाले विद्वान्

पुरुष को (द्रुयस्पत) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत जम्भ तथा (घृतैः) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम कर के जगदुपकार करते हैं वैसे (अतिथिम्) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को (बोधस्पत) स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और (अस्मिन्) इस जगत् में (हृत्पा) देने योग्य पदार्थों को (आजुहेतन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥३७॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुगन्धों ही को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान कर के जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विद्य को सुखी करें ॥३७॥

उदुश्वेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् मनुष्य को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करे यह वि० ॥

- उदुं त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।

स नो भव शिवस्त्वश्च सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (जाने) विद्वन् जिस (त्वा) आप को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (चित्तिभिः) अच्छे विद्वानों के साथ अग्नि के नाम (उदुमरन्तु) पुष्ट करें (नः) जो (विभावसुः) जिन से विविध प्रकार की सेवा या विद्या प्रकाशित हों । सुप्रतीकः) सुन्दर लक्ष्यों से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) अङ्गलमय वचनों के उपदेशक (भव) हूँजिये ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का संभव करता है वह देने ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ॥ ३१ ॥

प्रदग्मइत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराटनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

द्वि राजा क्या कर के तिम को प्राप्त होये यह वि० ॥

प्रदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिर्चिभि-
ष्टम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् । माहिँऽ सीस्तन्वा
प्रजाः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् (त्वम्) तू
से (ज्योतिष्मान्) गृहपंज्योतियों से मुक्त (शिवेभिः) मङ्गलकारी (चि-
भिः) मन्त्रकार के माधन (बृहद्भिः) अथ २ (भानुभिः) प्रकाश मुखों से
(याहि) ही (नामन्) प्रकाशमान हे यैने (प्रयाहि) मुखों को प्राप्त हूनि-
ये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने योग्य प्राणियों को (मा)
मत (हिमी) मारिये ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे सेनापति आदि राज पुरुषों के
सहित राजभू जाय अपने शरीर से किसी जनपराधी प्राणी को न मार के
विद्या और ज्ञान के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीवने हुए संसार
के मुक्त को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के लक्ष को प्राप्त हूणिये ॥३२॥

अक्रन्ददित्यस्य वरसप्तश्रापिः । अग्निर्देवता । निचृदार्पी

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राज्य का प्रयाग कैसे करे यह वि० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेहिँ-
द्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानांविहीमिद्धो अ-
ख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के लोगों तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (द्यौः)
मूर्ध प्रकाश कर्ता है यैने विद्या और ज्ञान का प्रकाश करने और (अग्निः)
वाचक के मुख शत्रुओं का नष्ट करने हारा विद्वान् (स्तनयन्निव) विजुम्बी
के समान (अक्रन्दत्) गजंता और (वीरुधः) वन के वृक्षों की (समञ्जन्)
बाँटने प्रकार रक्षा करना हुआ (क्षामा) पृथिवी पर (रेहिँद्वत्) मुह करे

(जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ (इहः) शुभ लक्षणों से प्रकाशित (सद्यः) शीघ्र (व्यरुत्) धर्मयुक्त उपदेश करे तथा (भामुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) ही (रोदमी) अग्नि और भूमि को (अन्तः) राज धर्म में स्थिर करता हुआ (आभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-यम के वर्णों की रसा के बिना बहुत यथा और रोगों की भ्रूणता नहीं होती और विजुली के तुल्य दूर के मगाचारों से शत्रुओं को भागने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के बिना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर कैसे पुरुष को राजठपयहार में नियुक्त करें यह वि० ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रो-
चते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ
दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो तुम लोगों को चाहिये कि (यत्) जो (अवम्) यह (अग्निः) सेनापति (सूर्यः) सूर्य के (न) सन्तान (बृहद्भाः) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (प्रप्र) अति प्रकर्ष के साथ (रोचते) प्रकाशित होता है (यः) जो (नः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्णबल युक्त सेनाध्यक्ष के निकट (अभितस्यौ) सब प्रकार स्थित होवे (दीठयः) विद्वानों का मिय (अनिथिः) नित्य चरण करने द्वारा अतिथि (शिवः) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष (दीदाय) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे जिस को मैं (भरतस्य) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (शृण्वे) सुनता हूँ । उस को सेना का अधिपति करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमाछं०-मनुष्यों को चाहिये कि जिस

पुण्यकीर्तिं पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्या प्रचार सुनाजाये उस कुलीन पुरुष का सेना को युद्ध करने हारा अधिकारी करें ॥ ३४ ॥

आपइत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । आपो देवताः । आर्षात्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सप्त मनुष्यों को स्वयम्भर विवाह करना चाहिये यह वि० ॥

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मेतत्स्योने कृ-
णुध्वथ् सुरभा उं लोके । तस्मै नमन्तां जनयः
सुपत्नीमातिव पुत्रं विभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

पदार्थः— हे विद्वान् मनुष्यो जो (आपः) पवित्र जलों के तुल्य संपूर्ण शुभगुण और विद्याओं में वषाप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर ऊर और म्यनात वाली कन्या (सुरभा) ऐश्वर्य के प्रभाव में युक्त (लोके) देवता योग्य लोकों में अपने पत्नियों को प्रमत्त करें उन को (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकार करो तथा उनको सुख युक्त (कृणुध्वम्) करो जो (एतत्) यह (नमन्) प्रकाशक तेज है (तस्मै) उस के लिये जो (सुपत्नीः) सुन्दर (जनयः) विद्या और अच्छी शिक्षा में प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती हैं उन के प्रति आप लोका भी (नमन्ताम्) नम्र हूजिये (उ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के तुल्य (अप्सु) प्रायः में (पुनत्) इस पुत्र को (विभृत्) धारण करो ॥ ३५ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमाएँ—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रमत्तता के साथ स्वयम्भर विवाह धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और नम को विद्वान् करके गृहधर्म के ऐश्वर्य की उत्पत्ति करें ॥ ३५ ॥

अपस्वन्नइत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निदेवता । निचृदगाप-
त्री छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

अथ जीव किम २ प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह वि० ॥

**अप्स्वग्रे सधिष्टव सौपंधीरनुंरुध्यसे । गर्भे
सन् जायसे पुनः ॥ ३६ ॥**

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वन् जीव जो तू (सधिः) स-
हमशील (अप्सु) जलों में (ओषधीः) मोगलता आदि औषधियों की
(अनुरुध्यसे) प्राप्त होता है (सः) गर्भ में (सन्) स्थित हो कर (पुनः)
फिर २ जन्म मरण (तव) तेरे हैं ऐसा जान ॥ ३६ ॥

भावार्थः— जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और ओषधि आदि
पदार्थों में भ्रमण करते २ गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर
धारण कर के प्रकट होते हैं ॥ ३६ ॥

गर्भोऽस्यीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगाव्यु-
त्पिङ्गु छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर जीव कहां २ जाता है यह वि० ॥

**गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामंसि ॥ ३७ ॥**

पदार्थः— हे (अग्ने) दूसरे शरीर को प्राप्त होने वाले जीव जिन से
तू अग्नि के समान जो (ओषधीनाम्) मोगलता आदि वा यवादि औष-
धियों के (गर्भः) दोंधों के मध्य (गर्भः) गर्भ (वनस्पतीनाम्) पीपल आ-
दि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोषक (विश्वस्य) सद्य (भूतस्य) दस्य-
ज सुप्त संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने द्वारा और जो (अपाम्) प्राण
वा जलों का (गर्भः) गर्भ रूप भीतर रहने द्वारा (असि) है इस लिये
तू अज स्वर्गात् स्वयं जन्म रहित (असि) है ॥ ३७ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचस्पत्यु-हे मनुष्यो तुम लोगों की चाहिये
कि जो बिजुली के समान सद्य के अस्तमंत जीव जन्म लेने वाले हैं उन को
जानो ॥ ३७ ॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्वाऽर्णुपुष्टु-
न्दः । धैवतः स्वरः ॥

मरण समय शरीर का क्या होना चाहिये यह वि० ॥

**प्रसद्य भस्मना योनिमपश्चं पृथिवीमग्ने ।
सुसृज्यं मातृभिर्द्वं ज्योतिष्मान्पुनरासदः ॥३८॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशमान पुरुष सृष्ट्यं के समान (ज्योतिष्मा-
न्) प्रशान्त प्रकाश से युक्त जीव तू (भस्मना) शरीर दाह के पीछे (पृ-
थिवीम्) पृथिवी (च) अग्नि आदि और (अपः) जलों के बीच (योनि-
म्) देह धारण के कारण को (प्रसद्य) प्राप्त हो और (मातृभिः) माता-
ओं के उदर में घास कर के (पुनः) फिर (आसदः) शरीर को प्राप्त होता
हे ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुः—हे जीवो तुम लोग जब शरीर
को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि पांच भूतों के साथ
युक्त करो । तुम और तुम्हारे आत्मा माता के शरीर में गर्भाशय में पहुँच
फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो ॥ ३८ ॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ माता पिता और पुत्र आपस में कैसे बसै यह वि० ॥

**पुनरासद्य सदंनमपश्चं पृथिवीमग्ने । शेषं
मातुर्यथोपस्थेऽन्तरंस्याथ शिवतमः ॥ ३९ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन जिस का-
रण तू (पुनः) फिर २ (नामद्य) प्राप्त हो के (अस्वाम्) इस माता के
(अन्नः) गर्भाशय में (शिवतमः) मङ्गलकारी हो के (यथा) जैसे बालक
(मातुः) माता की (उपस्थे) गोद में (शिवे) सोता है वैसे ही माता की
सेवा में मङ्गलकारी हो ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुत्र्य आप (विश्वत्स्वया) सद्य पदा-
र्थों के भोगने का साधन (धारया) अच्छी मरकनवाणी के (मह) साध
(विश्वत्स्वरि) सद्य संसार के बीच (नि) निरन्तर (यत्स्व) यत्तमान
हृजिये और इन लोगों का (विन्ध्यस्व) सेवन कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि हम जगत में अच्छी बुद्धि
और पुरुषार्थ के साध श्रीमान् हो कर अन्य मनुष्यों को भी धनवान् करें ॥ ४१ ॥

षोडशमहृत्यस्य दीर्घतमाऋषिः । अग्निर्देवता । चिराडार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें इस वि० ॥

बोधां मे अस्य वचंसो यविष्ट म०हिंष्टस्य
प्रभृतस्य स्वधावः । पीयंति त्वो अनु त्वो गृ-
णाति वन्दारुष्टे तन्वुं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ट) अत्यन्त उग्रान (स्वधावः) प्रशमित बहुत
अच्छोंवाले (अग्ने) उपदेश के योग्य श्रोता जन तू (मे) भेरे (प्रभृतस्य)
अच्छे प्रकार से धारण या पोषण करने वाले (म०हिंष्टस्य) अत्यन्त कहने
योग्य वहे तेरी जो (त्वः) यह निन्दक पुरुष (पीयति) निन्दा करे (त्वः)
कोई (अनु) परोक्ष में (गृणाति) स्तुति करे नम (ते) आप के (तन्वम्)
शरीर की (वन्दारुष्टे) अभिवादन शील में स्तुति करता हूं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जब कोई किसी को पढ़ाये वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला
ध्याम देकर पढ़े वा सुने । जब मत्स्य वा निष्या का निषय हो जाये तब
मत्स्य ग्रहण और अमत्स्य का त्याग कर देये । ऐसे काने में कोई निन्दा और
कोई स्तुति करे तो कभी न डेहाहे और निष्या का ग्रहण कभी न करे । यही
मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ॥ ४२ ॥

स षोडशमहृत्यस्य संमार्हनिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अर्षी
पंचिष्टुप्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

समुद्र मंथन कला काके जिन को प्राप्त हो वह वि० ॥

स वांधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । यु-
योद्युस्मद्द्वेषांशिसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (समुद्रो) यज्ञों के पालक (वसुदावन्) वसुओं के लिये धन देने वाले जो (वसुधा) प्रजापति विद्या में युक्त (सूरिः) युद्धिमान् भाव मत्स्य को (वांधि) कामें मः) भी भाव (विश्वकर्मणे) संपूर्ण गुण यज्ञों के समुद्रमंथन के लिये (स्वाहा) मत्स्य माली का उपदेश करते हुए भाव (म-रुमत्) दान में (द्वेषांशि) द्वेष युक्त कर्मों के (विमुखाधि) पृथक् कीर्तिपेक्षा ॥

भावार्थः—जो समुद्र प्रलयकर्म के भाग जनेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और गुण के प्रयत्न करते हैं वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग संपूर्ण मत्स्य जनमत्स्य के ज्ञान और उपदेश करने के योग्य होते हैं और जन्म इष्ट अभिमान युक्त शुद्ध पुण्य गर्वों ॥ ४३ ॥

पुनस्त्येत्यस्य सामाहृतिर्भावः । आग्निर्देवता । स्मरराधार्यो-

त्रिष्टुप्छन्दः । धैरतः स्मरः ॥

किने समुद्रों के मंथन मिट्ट होते हैं इन वि० ॥

पुनंस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पु-
नर्ब्रह्मणां वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं व-
र्धयस्व सृत्याः संन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और गुणजांति धन प्राप्त कराने वाले भाव (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (घृतेन) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि घा जल से (तन्वम्) शरीर को मित्य (वर्धयस्व) बढ़ाइये (पुनः) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (स्वा) भाव को (आदित्याः) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (रुद्राः) सध्यस्य विद्वान् और (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (ब्रह्मणाः) चार वेदों की पढ़ के प्रस्ता की

पदवी को पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (मनिग्धताम्) मन्थक् प्रकाशित करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजमानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानों का मत्कार काने वाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) होवे ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ मद्य विद्याओं को पढ़ और पढ़ा के बारंबार जलसंग करते हैं कुपश्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को दृष्टा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नहीं ॥ ४४ ॥

अपंतैत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सन्तान और पिता माता परस्पर किन २ कर्मों का आचरण करें यह वि० ॥

अपंत व्रीत वि च सर्पता तो येऽत्रस्थ पुराणा
ये च नूतनाः । अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्या अ-
ऋन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्याः) भूमि के बीच वर्तमान (पुराणाः) प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जो (नूतना) वर्तमान समय में विद्याभ्यास काने हारे (पितरः) पिता पढ़ने उपदेश काने और परीक्षा काने वाले (स्थ) होवे ते) ये (अस्मै) इस सत्यसङ्गपी मनुष्य के लिये (इमम्) इस (लोकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अकन्) सिद्ध करें जिन तुम लोगों को (यमः) प्राप्त हुआ परी-
सक पुरुष (अवमानम्) अवकाश या अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लोग (अतः) इस अधर्म से (अपेत) पृथक् रहे और धर्म को (वीत) विशेष कर प्राप्त होओ (अत्र) और इसी में (विपंत) विशेषता से गमन करो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य का यही परम धर्म है जो

वस्तुओं के लिये विद्या और शक्तों विद्या का प्राप्त करना । जो अर्थ में वे
पुण्य और अर्थ में पुण्य वसोपकार में मोक्ष प्राप्त करने वाले गुरु और उपास
निदान लोग हैं वे निरन्तर मन्त्र पदार्थों अविद्याका निवारण और विद्या
की प्रवृत्ति काके कर्मकर्म हैं ॥ ४५ ॥

संज्ञानमित्यस्य संज्ञानमित्यस्यः । अग्निर्देवता । अग्निर्देवता । अग्निर्देवता । अग्निर्देवता ।
सिद्धयुक्तम् । अग्निः स्वयः ॥
पदार्थः पदार्थः पदार्थः पदार्थः पदार्थः पदार्थः ॥

संज्ञानंममि कामधरणम्मयि ते कामधरण-
म्भूयात् । अग्नेर्मस्मांस्यग्नेः पुंरोपमसि चित्त-
स्थ परिचितं ऊर्ध्वचितं श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् भाव जिन (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान की प्राप्त
(अग्नि) हुए हो जो भाव (अग्ने) अग्नि में हुए (अग्ने) रामके समान
देवों के भक्त करता (अग्नि) हो (अग्नेः) विद्वन् की जिन (पुं
पम्) पूर्ण मन्त्र को प्राप्त हुए (अग्नि) हो मन्त्र विज्ञान भक्त और मन्त्र को
मेरे लिये भी दीजिये जिन (मे) भाव का जो (कामधरणम्) संस्कारों
का आधार अस्तःकाल है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि)
मुझ में (भूयात्) होय । अग्ने तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से (चित्तः)
बहुते हुए (परिचितः) मन्त्र पदार्थों को मन्त्र और से बहुते करने द्वारे
(ऊर्ध्वचितः) अग्नि गुणों के मन्त्र कर्ता पुनर्पार्थ को (श्रयध्वम्) भक्त
करो ऐसे हम लोग भी करें ॥ ४६ ॥

भावार्थः—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि मन्त्र विद्वानों से विद्या
की हटा कर प्रश्न किया करें कि जिसका तुम लोगों में पदार्थों का विद्या
ही उतना मन्त्र तुम लोग हम लोगों में धारण करो । और जितनी हस्तक्री
या भाव जानते हैं उतनी मन्त्र हम लोगों की दिसाहये ॥ ४६ ॥

अयंसहस्रस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । अग्निर्देवता । अग्निर्देवता ।
सिद्धयुक्तम् । अग्निः स्वयः ॥

मनुष्यों को उत्तम आचार्यों के अनुसार यत्तना चाहिये यह वि० ॥

अयधसो अग्निर्यस्मिन्सोममिन्द्रः सुतं द-
धे जठरं वावशानः । सहस्त्रियं वाज्रमत्यं न स-
प्तिधं सप्तवान्तसन्तस्तूयसे जातवेदः ॥४७॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् जीने (सप्त-
वान्) दान देते (सम्) हुए आप (स्तूपमे) प्रशंसा के योग्य हो (अय-
म्) यह (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य (यस्मिन्) जिस में (सो-
मम्) मद्य ओषधियों के रस को धारण करता है जिस (सुतम्) सिद्ध हुए
पदार्थ को (जठरे) पेट में में (दधे) धारण करता हूं (सः) यह मैं (वा-
वशानः) शीघ्र कामना करता हुआ (सहस्त्रियम्) माप वर्तमान अपनी
स्त्री को धारण करता हूं आप के साथ (वाज्रम्) अन्न भादि पदार्थों को
(अत्यम्) ठपान होने योग्य के (न) समान (सप्तिम्) छोड़े को (दधे)
धारण करता हूं वैसा ही तू भी हो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इन मन्त्र में वाचकलुप्तोप० और सप्तमालं०—जीसे बिजुली
और सूर्य, मद्य रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं या जीने पति
के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं जीने में इन मद्य का
धारण करता हूं जीने श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो जैसे मैं भी
प्रशंसा के योग्य होऊ ॥ ४७ ॥

अग्नेपत्त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । सुरि-
गार्था पङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक लोगों को निष्कपट से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहिये
यह वि० ॥

अग्ने यत्तं द्विवि वर्चः पृथिव्यां यदोपंधी-
ष्वप्स्वा यंजत्र । यन्नान्तरिक्षमुर्वातितन्थं त्वंपः स
भानुरण्वो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

पदार्थः— हे (यज्ञत्र) घंगम काने दोरप (अग्ने) विद्वम् (पत्) जि-
म (ते) ज्ञापका अग्नि के सनाम (दिवि) ज्योत्स शील आत्मा में (यर्षः)
विज्ञान का प्रकाश (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी (ओषधीषु) यज्ञ
दि ओषधियों और (अद्यु) प्राणो या जलों में (यर्षः) रोग है (रोग)
जिम से (नृपदाः) मनुष्यों को दिखाने वाला (आगुः) सूर्य (अर्षवः)
यजुग जलों को घपाने द्वारा (रयेव) प्रकाश है (रोग) जिम से (अगत
विद्यम्) आकाश की (नन) यजुग (अग, ततमप) विस्तार युक्त कासे हो
(गः) को आप मरु मय ह्यम लंगो में धारण कीजिये ॥ ४८ ॥

भाष्यार्थः— यहाँ वाचस्पत्यु-वम जगत् में जिम को सृष्टि के पदार्थों
का विज्ञान ज्ञाना देये ज्ञाना ही भोग्य दृश्यों को घताये जो कदाचित्त दृश्यों
को न घताये तो यज्ञ मष्ट युगा किमी को प्राप्त नहीं हो सके ॥ ४८ ॥

अग्नेदिवद्व्यस्य विद्वामिन्द्र क्रविः । अग्निर्देवता । सूरि-
मार्षी पृथिव्यस्य । पञ्चमः स्वरः ॥

(का यही विः ॥

अग्नें दिवा अर्णमच्छा जिज्ञास्यच्छाद्विवां
२॥ ऊंचिप धिष्ण्या ये । या रीचने प्रस्तात्
सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) विद्वाम् को आप (दिवः) प्रक अर्ण (अर्णम्)
विज्ञान को (याः) जो (आपः) जल या जल (मृदवंश) मृद्यों के
(रीचने) प्रकाश में (वास्तात्) या है (न) भी (याः) को (आप
वस्तात्) जोये (उपतिष्ठन्ते) अर्णोय में स्थित हैं जल के । आपत्) अर्ण
(अर्णम्) इच्छा करते हैं । ये) को । विद्वाम् । ज्ञानम वा है है जल
(दिवम्) दिव्यपुत्र विद्वार्यों से वा अर्णोय के अग्नि विज्ञान का । आपत्)
अच्छे अर्ण । अर्णोय कहने है को आप वस्तु विद्वाम् अर्णोय को ज्ञान ।

साथार्थः—ओ बच्चे विचार से विजुली और मूँच के किराँतों में ऊपर नीचे रहने वाले जलों और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें ॥ ४८ ॥

पुरीष्यास इत्यस्य विद्वयामित्र क्षपिः । अग्निर्देवता । आर्ची
पाङ्कजच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को देवादिक छे।ए के आनन्द में रहना चाहिये इन विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुरीष्यामो अग्नयः प्रावृशोभिः सजोषसः ।
जुपन्तां यज्ञमद्बुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ५० ॥

पदार्थः—मय मनुष्यों को चाहिये कि (प्रावृशोभिः) विद्वानों के साथ वसंतमान हुए (अमनीवाः) रोगरहित (मद्बुहः) द्रोह से एवम् (सजोषसः) एक प्रकार की सेवा और प्रीति वाले (पुरीष्यामः) पूर्ण गुणकियारों में निपुण (अग्नयः) अग्नि के समान वसंतमान तेजसवी विद्वान् लोग (यज्ञम्) विद्याविज्ञान दान और पढ़कठप यज्ञ और (मही) यज्ञी र (इषः) इच्छाओं को (जुपन्ताम्) भोग करें ॥ ५० ॥

साथार्थः— इन मन्त्र में वाचस्पत्य-जीने विजुली मनुष्य दृष्टे समान साथ से सब पदार्थों का भोग करना है धिरे ही रोग द्राहादि दोषों भरण समान में प्रीति वाले हों के विद्वान् भोग विद्वान् बढ़ाने वाले यज्ञ को विस्तृत कर के दरे २ सुखे को निरन्तर भोगें ॥ ५० ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) विद्वान् (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होये जिस से आप का (नः) और हमारा जो (विशाधा) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (सृनुः) उत्पन्न होने वाला (तमयः) पुत्र (स्णात्) होये उस बुद्धि से उस (इवमानाय) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये (इहाम्) स्तुति के योग्य घाणी को (गोः) घाणी के मन्थन्धी (शश्वत्तमम्) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और (पुरुदंसम्) बहुत कर्म जिस से निहृ हेतु ऐसे (सनिम्) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (साध) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

भावार्थः—माता पिता और भाचार्य को चाहिये कि मातृधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सम्मान उत्पन्न कर के उन में वेद ईश्वर और विद्या युक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्य धर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

अयंत इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदा-
र्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर कृपा करना चाहिये यह वि० ॥

**अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोच-
थाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथानो वर्धयारयिम्
॥ ५२ ॥**

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष जो (ते) आप का (ऋत्विजः) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ (अयम्) यह प्रत्यक्ष (योनिः) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (यतः) जिस से (जातः) उत्पन्न हुए आप (अरोचथाः) मकार्षित होयें (तम्) उस को (जानन्) जानते हुए आप (आरोह) शुभगुणों पर आरुढ़ हू-

जिये (भय) हम के पयात् (नः) हम लोगों के लिये (रविम्) प्रशंसित
लक्ष्मी को (यथैव) बढ़ाइये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—हे माता पिता और भाचार्य्यं । तुम लोग पुत्र और कन्या-
ओं को धर्मानुकूल मेधन किये ब्रह्मचर्य्यं से श्रेष्ठान्या को प्रसिद्ध कर उपदेश
करो । हे मन्तानो । तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हम को
अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुख युक्त करो ॥ ५२ ॥

चिदसीत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता स्वराड-
नुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह धि० ॥

चिदंसि तयां देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदंसि तयां देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद
॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे कन्ये जो तू (चित) चिताई (भमि) हुई (तया) उम
(देवतया) दिव्यगुण प्राप्त कराने वाली विद्वान् स्त्री के साथ (अङ्गिरस्वत्)
प्राणों के तुल्य (ध्रुवा) निश्चल (सीद) स्थिर हो । हे ब्रह्मचारिणी जो तू
(परिचित्) त्रिविध विद्या को प्राप्त हुई (भमि) है तो तू (तया) उम
(देवतया) धर्मानुष्ठान से युक्तदिव्यसुखदायक ऋषि के साथ (अङ्गिर-
स्वत्) ईश्वर के समान (ध्रुवा) अचल (सीद) अवस्थित हो ॥ ५३ ॥

भावार्थः—सब माता पिता और पढ़ानेवाली विद्वान् स्त्रियों को चा-
हिये कि कन्याओं को सम्पक् युद्धिमती करें । हे कन्यालोगो तुम जो पूर्ण
अखण्डित ब्रह्मचर्य्यं से संपूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवति हो
कर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह काके गृहाग्रम का सेवन करो
तो सब सुखों को प्राप्त हो और मन्तान भी अच्छे होंगे ॥ ५३ ॥

लोकंपूर्णत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड-
नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ।

लोकं पृण छिद्रं पृशाथो सीद ध्रुवात्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा ब्रह्मस्पतिरस्मिन् यानावसीप-
दन् ॥ ५४ ॥

पदार्थः— हे कन्ये जिम (त्वा) तुम को (योनी) यन्त्र के छेदक
मेखल प्राप्ति के हेतु (अस्मिन्) हम विद्या के बोध में (इन्द्राग्नी) माता
पिता तथा ब्रह्मस्पतिः) बड़ी २ वेद्याणियों की रक्षा करने वाली मन्त्र
पिका स्त्री (असीपदन्) प्राप्त कराये हम में (त्वम्) तू (ध्रुवा) दृढ़ विषय
के साथ (सीद) स्थित हो (अथो) हम के अनन्तर (छिद्रम्) छिद्र को
(पृण) पूर्ण कर और (लोकम्) देखने योग्य प्राणियों को (पृण) घट
कर ॥ ५४ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की
धर्मयुक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिम को प्रदण कर कन्या लोग विभवा
रहित हों सब बुरे व्यसनों को त्याग और समाश्रित सत्कार के पश्चात् स्व-
यवर विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें ॥ ५४ ॥

ता अस्य त्वस्य प्रियमंधा ऋषिः । आपो देवता । विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी भी वही विषय का उद्देश अगले मंत्र में किया है ॥
ता अस्य सूददोहसः सामंश्च श्रीगान्ति पृ-
श्नयः । जन्मन्देवानां विशंस्त्रिष्वा रीचनं द्विवः
॥ ५५ ॥

पदार्थः— जो (देवानाम्) दिव्य विद्वान् पतिवर्ष की (सूददोहसः)
सुन्दर स्तोत्रवा और गौ भादि के दुहने से ले भयको वाली (प्रश्नयः) की-
सल शरीर मूह्य अङ्ग युक्त स्त्री दूधर (जन्मन्) विद्यारूप जन्म में विदुषी

हो के । दिवः) दिव्य (अस्व) इम गृहाश्रम के (भोगम् । उत्तम भोग
 धियों के रम से युक्त भोग (श्रीगन्धि) पकामी हैं (ताः) ये प्रत्यवागि-
 नी (वा रोचने) अच्छी रुचिकारक उपग्रहों में (त्रिपु) तीनों अर्थात्
 गत अगामी और वर्तमान काल विभागों में सुख देने वाली होती तथा
 (विशः) उत्तम मन्तव्यों की भी प्राप्त होती हैं ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—जब अच्छी जिला को प्राप्त हुए युवा विद्वानों की अपने
 मनुष्य रूप और गुण से युक्त स्त्री हों तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और आ-
 चले मन्तव्य उत्पन्न होंगे । इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर
 छूटने के पक्ष से मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वं स्वर्गं मृतजैतृमपुच्छ दा क्रपिः । इन्द्रो देवता ।

निवृद्धपुष्प छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार कामना चाहिये यह विषय भगले
 मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वां अवीष्टधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

रथीतमं रथीनां वाजांनां सत्पतिं पतिम् ॥५६॥

पदार्थः—हे स्त्री पुत्रों की (विश्वाः) सब (गिरः) वेदविद्या से
 उत्पन्न की हुई वाजों (समुद्रव्यचसम्) समुद्र की उपरान्त के मन्तव्य उत्पन्न
 जिन में ही हम (वाजांनाम्) संप्रयोग और (रथीनाम्) अश्विनित से
 वाले और पुत्रों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले (पतिम्)
 अत्य श्रेष्ठ वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुत्रों के रत्न (पतिम्) सब देवियों के स्वा-
 मी को (रथीवृषम्) बट्ट में और (रथम्) वाग देवियों की बट्ट में देते
 सब प्राणियों को बड़ा भो ॥ ५६ ॥

भाषार्थः—जो कुमार और कुमारी दोनों प्रत्ययों केवल से मन्त्री-पुत्र
 दोनों को वह भी अगमो २ मन्तव्य से उत्पन्न विवाह के दो देवियों के
 लिये प्रयत्न करें । अर्थात् उपग्रह से उन्नितव्य को लंका के सुन्दर मन्तव्य

नों को उत्पन्न करके परोपकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और पर-
लोक में सुख भोगें । और इन से विरुद्ध जनों को नहीं हो सकता ॥ ५६ ॥

समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुणिक
छन्दः । ऋषमः स्वरः ॥

पश्चात् विवाह करके कैम वर्तों इस विषय का उपदेश भगले मन्त्र में किया है ॥

समित्॑संकल्पे॒थासंप्रि॑यौ रोचि॒ष्णु सुमन्-
स्यमा॑नौ । इ॒प्मूर्ज॑मभि॒ संवसा॑नौ ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे विवाहित स्त्री पुरुषो तुम (सप्रियी) आपस में सम्पक्
प्रीति वाले (रोचिष्णु) विषयाशक्ति से एक प्रकाशमान (सुमनस्यमानी)
मित्र विद्वान् पुरुषों के समान उत्तमान (सम्बमानौ) सुन्दर वस्त्र और आ-
भूषणों से युक्त हुए (इप्मम्) इच्छा को (समितम्) इच्छे प्राप्त होओ और
(कर्जम्) पराक्रम को (अभि) सम्मुख (सङ्कल्पेषाम्) एक, अस्तिमाय में
समर्पित करो ॥ ५७ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक दूसरे की
प्रीति में तत्पर, विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे २ वस्त्र और आभूषण
धारण करने वाले हो के प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े ।
और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःख सागर में अवश्य डूबें ॥ ५७ ॥

संथामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुपरिष्ठा-
द्व्यूहती छन्दः । मधुपमः स्वरः ॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य
हो उतना ही वेदों को पढ़ायें और उपदेश करें यह विषय
भगले मन्त्र में कहा है ॥

सं वा मनां॑मि॒ सं व्र॑ता समु॒चित्तान्या॑करम् ।
अग्ने॑ पुरी॒ष्याधि॑पा भव॒ त्वं न॒ इ॒प्मूर्जं॑ यज॒मा-
नाय॑ धेहि ॥ ५८ ॥

पदार्थः— हे स्त्री पुरुषो लीने में भाचार्य (वाम्) तुम दोनों के (सं-
सर्गादि) एक धम्म में तथा सङ्कल्प विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों
को (संभ्रमा) मत्प्रायणादि (उ) और (मम्, भित्ताणि) सम्पत् जाने
हुए कर्मों में (आ) अच्छे प्रकार (अकरम्) करू । धीमे तुम दोनों मेरी
प्रीति के अनुकूल विचारो हे (पुरीष्य) रत्ना के योग्य उपग्रहों में हुए
(अग्ने) उपदेशक भाचार्य वा राजन् (त्वम्) भाव (मः) हमारे (अ-
धिपाः) अधिक रत्ना करने हारे (मय) हूजिये (यजनागाय) धर्मानुकूल
सत्सङ्ग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐनी स्त्री के लिये (इयम्) अन्न आदि उ-
त्तम पदार्थ और (रजम्) शरीर तथा आत्मा के बल को (वेहि) धारण
कीजिये ॥ ५८ ॥

भाषार्थः— उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उ-
त्तम सद्य मनुष्यों का एक धम्म एक कम्म एक प्रकार की भित्तिवृत्ति और धरा-
धार हुए दुःख लीने हों धीमे ही शिक्षा करें । मय स्त्री पुरुषों को योग्य है कि
आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उप-
देशक वा अध्यापक दम के ऐश्वर्य और पराक्रम को बढ़ावें । और सद्य म-
नुष्यों के एक धर्म आदि के बिना आत्माओं में मिश्रता नहीं होती और
मिश्रता के बिना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥

अग्ने त्वमित्पस्य मधुच्छन्दा प्रापिः । अग्निर्देवता । धुरिगु-
णिक् छन्दः । क्षपमः स्वरः ॥

कित को पढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये ॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुंश्चिमाँश्च ॥

अंसि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमि-
हासदः ॥ ५९ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) उपदेशक विद्वन् जिस से (त्वम्) भाव (इह)
इस समार में (पुरीष्यः) एक भक्त के पालने में सत्पर (रयिमान्) विद्या

स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें यह धि० ॥

अमुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्याम-
न्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तं इ-
त्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) पृथिवी के तुल्य वर्तमान (देवि) विद्वान् स्त्री तू (अस्तु) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अप्रमिदु चोर और (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (अन्यम्) भिन्न की (इच्छ) इच्छा कर और (अमुन्वन्तम्) अभिपय आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम्) दान धर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा मत कर और तू जिस (इत्याम्) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (अन्विहि) ढूँढ़े (सा) यह (इत्या) क्रिया (ते) तेरी हो तथा उस (तुभ्यम्) तेरे लिये (नमः) अक्ष या मत्कार (अस्तु) होवे ॥ ६२ ॥

भाषार्थः—हे स्त्रियो तुम लोगों की चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो । आप पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो । जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों की संयुक्त करती है वैसी होओ । ऐसे गुणों वाली तुम को हम लोग ममस्कार करते हैं । जैसे हम लोग आलसी चोरों के साथ न घटें वैसे तुम लोग भी मत घटो ॥ ६२ ॥

नमःसुत इत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । भुरि-

गार्गी पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर ये स्त्री केनी हैं इन विषय का उपदेश मगले मन्त्र में किया है ॥

नमः सुते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृ-
ता बन्धमेतम् । युमेन त्वं यस्या संविदानात्त-
मे नाके अधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे (निर्झंते) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री जिम (ते) तेरे (निश्मतेजः) तीव्र तेजों वाले (अघस्मयम्) सुगणोंदि और (नमः) अन्नादि पदार्थ हैं सो (एवम्) तू (एतम्) इन (बन्धम्) बांधने के हेतु अज्ञान का (सुविचून) अच्छे प्रकार (यमेन) श्वासाधीश तथा (यथा) व्याप करने हारी स्त्री के साथ (संविदामा) मध्यक युद्धि युक्त हो कर (एवम्) इन अपने पति को (उत्तमे) उत्तम (नाके) आनन्द भोगने में (अपिरीहय) आरूढ़ कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—हे स्त्रियो तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है वैसे तुम भी होओ । जैसे तुम्हारे पति न्यायाधीश हो कर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य न्याय से विचार करके अपराधियों को दण्ड देने और अपराध रहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगो के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥ ६३ ॥

यस्यास्त इत्यस्म मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्झंतिर्देवता ।

आर्षींश्चष्टुष्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होयें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यस्यांस्ते घोर आसन् जुहोम्येषां बन्धानां-
मवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दंते
निर्ऋतिं त्वाहं परिं वेदं विश्वतः ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे (घारे) दुष्टों को मरने हारी स्त्री (यस्याः) जिम सुन्दर निषम युक्त (ते) तेरे (आसन्) सुख में (एवम्) इन (बाधनाम्) दुःख देने हुए रोकने वालों के (अवसर्जनाय) त्याग के लिये अवसत् रूप अन्नादि पदार्थों को (जुहोमि) देना हूँ तो (नमः) मनुष्य (भूमिरिति) पृथिवी के समान (याम्) जिम (एवा) तुम्हें को (प्रमन्दते)

आनन्दित करता है उस मुक्त को (अहम्) में (विश्वतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) पृथिवी के समान (त्वा) (परि) सब प्रकार से (वेद) जानूं । सो तू भी इस प्रकार मुक्त को जान ॥ ६४ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—कैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का प्रहण करते हैं । वैसे ही स्त्री भी पतियों का प्रहण करें इस रहस्यमय में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का कोश होता है । खेतरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष को इन शुद्ध बलवान् देना के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विषाह समय में कैमी २ प्रतिज्ञा करें इस वि० ॥

यन्ते देवी निऋतिराबन्ध पाशं ग्रीवास्व-
विचृत्यम् । तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथेतं
पितुमहि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

पदार्थः— स्त्री कहे कि हे पते (निऋतिः) पृथिवी के समान मैं (ते) तेरे (ग्रीवासु) कण्ठों में (अबिचृत्यम्) न छोड़ने योग्य (यम्) जिस (पाशम्) धर्म युक्त बन्धन को (आबन्ध) अच्छे प्रकार बांधती हूँ । तम्) उपको (ते) तेरे लिये भी प्रवेश करती हूँ (आयुषः) अवस्था के माधन अन्न के न) समान (वि,स्वामि) प्रसिद्ध होनी हूँ (अथ) इस के पश्चात् (मप्यात्) मैं तू देनों में से कोई भी निगम से निरुद्ध न चले कौन मैं (एनम्) इस (पितुम्) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूँ वैसे (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को (अहि) भोग । हे स्त्री (या) जो (देवी) दिव्यगुण वाली तू (इदम्) इस पतिव्रत रूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रसूत नि-यम को (चकार) करे उस (भूत्यै) ऐश्वर्य करने वाली तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ को देना हूँ ॥ ६५ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपनाल—विवाह समय में जिन उपनिषार के त्वाग आदि नियमों को करें उन से विरुद्ध कभी न चले क्योंकि पुरुष जब विवाह समय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जाये या स्त्री दूरसे पुरुष की इच्छा करे तो ये दोनों चोर के समान पापी होते हैं इनलिये स्त्री की सम्मति के बिना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के बिना स्त्री कुछ भी काम न करे यही स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो उपनिषार को सब समय में त्वाग दें ॥ ६५ ॥

निवेशन इत्यस्य विश्वायसुश्रांतिः । अग्निर्देवता । विराडार्थी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवनः स्वरः ॥

ॐ स्त्रीपुरुष गृहाशन कामे के योग्य होते हैं यह विषय
बागले मंत्र में कहा है ॥

निवेशनः सुङ्गमनो वसूनां विश्वां रूपाऽभि-
चष्ट्रे शचीभिः । देवइव सविता सत्यधर्मन्द्रो न
तस्थी समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थः—जो (सत्यधर्म) सत्य धर्म से युक्त (सविता) सब जगत् के रहने वाले (देवइव) इंद्र के समान (निवेशनः) स्त्री का साथी (सुङ्गमनः) शीघ्रगति से युक्त (शचीभिः) बुद्धि या कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सर्व (रूपा) रूपाँ के (अभिचष्ट्रे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य के (न) समान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुष्यों के सममुख (तस्थी) स्थित होये यही गृहाशन के योग्य होता है ॥ ६६ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में दो उपनाल—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे इंद्र ने सब की उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच के उप-

(योनी) सेत में (योजम्) यव आदि या सिद्धि के मूल को (यपंत) घो-
 या करे (गिरा) सेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित घाणी (य)
 और अच्छे विचार से (समराः) एक प्रकार के चारण और घोषण में युक्त
 (श्रुष्टिः) शीघ्र हूजिये जो (सुष्यः) सेतों में उत्पन्न हुए यव आदि भाग-
 जालि के पदार्थ हैं उन में जो (नेदीयः) अत्यन्त मनीष (पक्रम्) पका-
 हुआ (अमत्) होवे यह (इत्) ही (नः) हम लोगों को (आ) (इयात्)
 प्राप्त होवे ॥ ६८ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को उचित है कि यिदुनों में योगा
 भाष और सेती करने हारों में कृपि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अ
 नेक माधमों को यथा के सेती और योगाभ्यास करो । हमने जो २ अक्षा-
 दि पका हो उस २ का ग्रहण कर भोजन करो और दूमरो को कराओ ॥६८॥

शुनमित्यस्य कुमारहारिन ऋषिः । कृपीयला देवताः । त्रि-

ष्टुष्टन्दः । धैवतः स्वरः ॥

द्विर भी वही वि० ॥

शुनश्च सुफाला वि कृपन्तु ममिंश्शुनं श्री-
 नाशां अभि यन्तु बृहः । शुनांशिरा हविषा
 तोशंमाना मुपिप्ल्ला ओपंधीः कर्त्तनास्म ॥६९॥

पदार्थः—जो (कीनाशाः) पशुधन से क्रोशभोग्या सेती कामे हारे
 हैं वे (फालाः) जिन से पृथिवी को जालें उन खालों से (वादेः) श्रेष्ठ भा
 दि के माघ यत्तंगाम हल भादि से (भूमिम्) पृथिवी को (विश्वन्तु)
 जालें और (शुनम्) शुन को (अनिदन्तु) प्राप्त होवे । हविषा) शुद्ध विषे
 यी आदि से शुद्ध (तोशमाना) मनीषकारक (शुनामीरा) माघु और
 सुदर्ष के समान सेती के माघन (आम्ने) हगारे विषे (मुपिप्ल्लाः) सु
 स्तर कलों से युक्त (ओपंधीः) श्री आदि (कर्त्त) करें और उन लोक
 पियों से (सु) सुन्दर (शुनम्) शुन भोजें ॥ ६९ ॥

भावावार्थः—जो चतुर होती करने हारे गी और वील आदि की रक्षा करके विचार के साथ होती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं । इन खेठों में विष्टा आदि गलीन पदार्थ नहीं छालने चाहिये किन्तु धीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही देखें कि जिस से अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की युद्धि की बढ़ावें ॥ ६९ ॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृपीयला देवताः । आर्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतेन सीता मधुना समञ्ज्यतां विश्वैर्वैरनु-
मतामरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना-
स्मान्तर्सीतेपयसाभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

पदार्थः—(विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादिपदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल या दुग्ध से (ऊर्जस्वतीः) पराक्रम संघन्धी (पिन्वमाना) सींचा या सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (घृतेन) घी तथा (मधुना) सहज या शक्कर आदि से (समञ्ज्यताम्) संयुक्त करके (सीते) पटेला (अस्मान्) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से (पयसा) जल से (अम्पायवृत्स्व) बार २ वर्त्ताओ ॥ ७० ॥

भावावार्थः—सब विद्वानों को चाहिये कि किमान लोग विद्या के अनु-
कूल घी गीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की प-
चित्री को अन्न को सिद्ध करने वाली करें । जैसे धीज सुगन्धि आदि युक्त
कर के होते हैं वैसे इस पचित्री को भी संस्कार युक्त करें ॥ ७० ॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृपीयला देवताः ।

विराट् पङ्क्तश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उही वि० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवंश्च सोमपित्सरु । तदुद्ध-
पति गामविं प्रफुव्यं च पीवरीं प्रस्थावंद्रथवा-
हंनम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे किमाने तुम लोग जो (सोमपित्सरु) जो आदि भोज्य
पियों के रसकों के टेटा चलाये (पवीरवत्) प्रशंसित फाल से युक्त (सु-
शेवम्) सुन्दर सुसदायक (लाङ्गलम्) फाले के पीठे जो द्रव्यता के लिये
काष्ठ लगाया जाता है वह (च) और (प्रफुव्यम्) चलाने योग्य (प्रस्था-
यत्) प्रशंसित प्रस्थान वाला (रथवाहनम्) रथ के चलने का साधन है
जिन से (गामिम्) रक्षा आदि के हेतु (पीवरीम्) सब पदार्थों को भुगाने
का हेतु स्थान (गाम्) पृथिवी को (उद्धपति) उखाड़ते हैं (तत्) उस को
तुम भी सिद्ध करो ॥ ७१ ॥

भावार्थः—किमान लोगों को उचित है कि मेरी मही गज आदि
की उत्पत्ति से रक्षा करने वाली पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल
आदि साधनों से जोत एकतार कर सुन्दर संस्कार किये धील के उत्तम धान्य
उत्पन्न करके भोगें ॥ ७१ ॥

कामित्यस्य कुमारहारित श्रुतिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता

देवताः । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर गज और उपजनें को घनाये
यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूषणो प्रजाभ्यं ओषधीभ्यः
॥७२॥

पदार्थः— हे (कामदुचे) इच्छा का पूर्ण करने वाली रभीरघास्त्री तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये अलों से (मित्राय) मित्र (वरुणाय) उत्तम विद्वान् (च) अतिथि अर्थात् (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त (अश्विभ्याम्) प्राण अपान (पूष्णे) पुष्टिकारक जन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि औषधियों से (कामम्) इच्छा को (भुक्ष्य) पूर्ण कर ॥ ७२ ॥

भावार्थः— जो स्त्री या पुरुष भोजन बनावे उन को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उन का भोजन करा के सब को रोग रहित रखे ॥ ७२ ॥

विमुच्यध्वमित्पस्य कुमारहारित ऋषिः । अचन्या देवताः ।

भुरिगार्वा भाषत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

मनुष्यों को भी आदि पशुओं को घड़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिये इस वि० ॥

विमुच्यध्वमचन्या देवयान्ना अगन्म तमस-
स्परमस्य । ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो जैसे तुम लोग (अचन्याः) रक्षा के योग्य (देवयानाः) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु शीतों को प्राप्त हो सुन्दर संस्कार किये अलों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो । जैसे हम लोग भी वर्यें । जैसे तुम लोग (तमसः) रात्रि के (परम्) पार को प्राप्त होते हो जैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य के (ज्योतिः) प्रकाश को उपान्म होते हो जैसे हम भी (आपाम) उपान्म होवें ॥ ७३ ॥

भावार्थः— हम मन्त्र में वाचकलुग-मनुष्यों को चाहिये कि भी आदि पशुओं को कभी न मारें । और न मरवायें तथा न किसी को मारने दें । जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्ति होती है वैसे वैश्वदेव्य की रीति से परम अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचे ॥ ७३ ॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अश्विनो देवते ।

आर्षी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

मनुष्यो को किम प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये यह वि० ॥

सजूरब्दो अयं वोभिः सजूरूपा अरुणीभिः ।

सजोपंसावश्विनादशसोभिः सजूः सूर एतं शेन-

सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम सब लोग खी पुरुष क्षेमे (अययोभिः) एक
रम क्षणादि काल के अययो से (सजूः) समुक्त (अट्टदः) ययं (अरु-
णीभिः) छाल कान्तियो के (सजू) साध. वसंतमान (सपाः) प्रभात न-
मय (द्नेभिः) कर्मों से (सजोपसी) एकमा यत्ताय यःले (अश्विना)
प्राण और अपान के समान खी पुरुष या (एतं शेन) चलते चोढ़े के समान
व्याप्तिले वेगवाले किरण निमित्त ययन के (सजूः) साध वसंतमान (सूर.)
सूर्य (इडया) अन्न भादि का निमित्त रूप पृथिवी या (घृतेन) जल से
(स्वाहा) मत्स्य यापीके (सजू) साध (वैश्वानर.) मित्रलीरूप अग्नि य
संतमान हे क्षेमे ही प्रीति से वसंत ॥ ७४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो वतना ही सुख और
जितना विरोध वतना ही दुःख होता है । हम से सब लोग खी पुरुष पर-
स्पर उपकार करने के साथ ही मदा वसंत ॥ ७४ ॥

या ओपंधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैश्वो देवता । अनुप-

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यो को अवश्य ओपधि मेधन कर रोगों से वतना चाहिये
यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

या ओपंधीः पूर्वा जाता देवेभ्यंन्नियुगं पुरा ।
मने नु वभूगांमहशतं धामानि सप्त चं ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (याः) जो (ओषधीः) मोमलता आदि ओषधी (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (त्रियुगम्) तीन यगं (पुग) पहिले (पूर्वाः) पूर्णसुख दान में उत्तम (जाताः) प्रसिद्ध हुई जो (बधूनाम्) धारण करने वाले रोगियों के (शतम्) सौ (च) और (ऋत) सात (पाशानि) जन्म या नाहियों के सर्वाँ में ठपान होती हैं उन को (नु) शीघ्र (मने) जानूँ ॥ ७५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में ओषधी उत्पन्न होती हैं उन तीन यगं के पीछे ठीक २ पत्नी हुईको ग्रहण कर वैद्य कशाख के अनुकूल विधान से सेवन करें। सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के मध्य अंगों में ठपान हो के शरीर के रोगों को छुड़ा सुखों को शीघ्र करती हैं ॥ ७५ ॥

शतम्ब इत्यस्य भिषगृपिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्

छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

मनुष्य यथा कारके किस को सिद्ध करें यह वि० ॥

शतं वै अस्व धामानि । सहस्रमुत वो रुहः ।
अधां शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रत्वः) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यों (यूयम्) तुम लोग जिन के (शतम्) सैकड़ों (उत) वा (सहस्रम्) हजार हैं (रुहः) नाहियों के अङ्कुर हैं उन ओषधियों से (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) नाराग (कृत) करो (अध) इस के पश्चात् (यः) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो जो (वः) तुम्हारे अवश्य (धामानि) मर्म स्थान हैं उन को प्राप्त होओ हे (अम्य) माता तू भी ऐसा ही आचरण कर ॥ ७६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को यादिये कि मध्य से पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियम पूर्वक ठपयहार कर के शरीर को रोगरहित

करें। क्योंकि इस के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७६ ॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

किसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये यह विषय ॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।

अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥७७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (अश्वाइव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ समुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) मोमलता आदि (पारयिष्णवः) दुखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रसूनि पुरुषों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देने वाली (ओषधी) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस गद्य में उपमालो-रूपे घोड़े पर चढ़े वीर पुरुष जन्तुओं को जीत विजय को प्राप्त हो के आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पच्चाहार करने वाले जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ ७७ ॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । चिकित्सुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कित बिना और पुत्र भावण में कैसे वसै यह वि० ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्धो देवीरुपंश्रुवे मुनेय-
मश्वं गां वासं आत्मानं तवं पूरुषः ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुदृढ़रूप (देवीः) सुदृढ़ विद्वान् स्त्री (मातरः) माता मैं पुत्र (वः) तुम को (मत) श्रेष्ठ परपुरुष धर्म (मश्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश कर दे (पूरुषः)

पुरुषार्थं श्रेष्ठ सन्तानों में माता (तथा) तेरे (अश्वत्) छोड़े आदि (नाम्)
 गैर आदि या पृथिवी आदि (यामः) वस्तु आदि या घर और (आत्मान-
 नम्) जीव को निरन्तर (मनेषम्) मेघन कहें ॥ ७८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमात्वं—जैसे जो आदि ओपधी सेघन की हुई
 शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश
 से सन्तानों को पुष्ट करें। जो माता का धन है वह भाग सन्तान का और
 जो सन्तान का है वह माता का ऐसे सब परस्पर मीति से वर्तन कर निर-
 न्तर सुख को बढ़ावें ॥ ७८ ॥

अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग नित्य केमा विचार करें यह वि० ॥

अश्वत्थे वो निपदनं पूर्णं वो वसतिष्कृता ।

गोभाज इत् किलासथ यत् मनवथ पूरुषम् ।

॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ओपधियों के समान (यत्) जिस कारण (यः)
 तुष्टारा (अश्वत्थे) कल रहे या न रहे ऐसे शरीर में (निपदनम्) निवास
 है । और (यः) तुष्टारा (पूर्ण) कल के वस्ते पर कल के समान चलाय
 मान संभार में ईश्वर ने (मनविः) निवास (कृता) किया है इस से (गो-
 भाजः) पृथिवी को मेघन करते हुए (क्लिड) ही (पूरुषम्) आत्मा आदि
 में पूर्णदेह वाले पुरुष को (मनवथ) ओपधि देकर मेघन करो और सुख
 को प्राप्त करते हुए (इत्) इस संभार में (भगव) रहो ॥ ७९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर का
 नित्य भी स्थिति चलायमान है इस में शरीर की रोगों में घना कारण,
 अथ, काम तथा मोह का अनुमान मंत्र काहे अमित्य मन्त्रों में नित्य मो
 ह के सुख को प्राप्त होयें । प्रिय ओपधि ओपधुन आदि कल कल वस्ते का
 अथ और आत्मा आदि में जो निवास करते हैं वैसे ही रोगराहित शरीरों में जो
 आत्मान हैं ॥ ७९ ॥

पत्रांपधीरित्यस्य भिपगृपिः । ओपपयो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

बार २ श्रेष्ठ वीरों का सेवन करें यह वि० ॥

यत्रांपर्धाः समग्रमत राजानः समिताविव ।

विप्रः स उच्यते भिपग्रंश्राहार्मावचातनः ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्र) जिन स्वलों में (ओपधीः) सोमलता आदि ओपधी होती हैं। उन को जीमे (राजानः) राज धर्म से युक्त वीरपुरुष (भगिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (सम-ग्रमत) प्राप्त हो जो (श्रोह्रा) दुष्ट रोगों का नाशक (भगीधनातनः) रोगों को मिट्टि करने वाला (विप्र) बुद्धिमान् (भिपक्) वीर्य हो (सः) वह तुझरे प्रति (उच्यते) ओपधियों के गुणों का उपदेश करे और ओपधि-यों का तथा उन वीर्य का सेवन करे ॥ ८० ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जीमे सेनापति से शिखा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जी-त के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वीर्य से शिखा को प्राप्त हुए तुम लोग ओपधियों की विद्या को प्राप्त हो। जिन युद्ध देश में ओपधि हैं। वहाँ उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिये भी बताओ ॥ ८० ॥

अश्रवावतीमित्यस्य भिपगृपिः । शैव्यां देवता । अनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये यह वि० ॥

अश्रवावतीश्च सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।

आवित्सि सर्वा ओपधीरस्मा अरिष्टतांतये ॥

॥ ८१ ॥

पदार्थः—हेमनुष्यो जैसे मैं (अरिष्टतांतये) दुःखदायक रोगों के लु-हाने के लिये (अश्रवावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्)

यजुत रम से सञ्चित (उदोजसम्) अति पराक्रम बढ़ाने वाली (ऊर्ध्वपत्नीम्) बल देती हुई अष्ट ओषधियों को (आ) मय प्रकार (अविस्ति) जान कि जिस से (संघाः) सद्य (ओषधीः) ओषधी (अरसे) इस सेरे लिये मुख देखें । इस लिये तुम लोग भी प्रयत्न करो ॥ ८१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-मनुष्यों की चाहिये कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लें कि जिस से रोगों की निवृत्ति ही कर पुण्यार्थ की वृद्धि होवे ॥ ८१ ॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः । औषधयो देवताः । विराडनु-
ष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ओषधियों का यथा निमित्त है इस वि० ५

उच्छुष्मा औषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं च सन्निष्यन्ती नामात्मानं तव पूरुष ॥८२॥

पदार्थः—हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोने वाले वा देह धारी (धनम्) ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाले को (सन्निष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (औषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्ग्रन्ध से जैसे (शुष्माः) प्रशंसित बल करने वाली (गावः) भी वा किरण (गोष्ठादिय) अपने स्थान से बचें या पृथिवी को और ओषधियों का तत्र (तय) तेरी (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होता है उन सब का तू सेवन कर ॥ ८२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमाखं०—हे मनुष्यो जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती है । जैसे ही ओषधियां तुम्हारे आत्मा और शरीर को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो कोष्टे न लगे तो कम से बल और बुद्धि की प्राप्ति हो जाये । इसलिये ओषधी ही बल बुद्धि का निमित्त है ॥ ८२ ॥

इष्टकृतिरित्यस्य भिषगृषिः । यथा देवताः । निष्टुदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अष्ट प्रकार सेवन की हुई ओषधी यथा करती हैं यह वि० ॥

इच्छन्तिर्नामं वो माताथो यूयश्च स्थ निष्कृ-
तीः सीराः पतत्रिणीं स्थन यदामयति निष्कृथ
॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इच्छतिः)
काटवेंमिद्धि करने वाली (माता) माता के समान ओषधी (नाम) प्रसिद्ध
हे उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जानने वाले (स्थ)
होओ (पतत्रिणीः) चलने वाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः)
प्रत्युपकारों को मिद्धि करने वाले (स्थन) होओ (अथो) इन के अनन्तर
(यत्) जो क्रिया या ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ाये उस
को (निष्कृथ) छोड़ो ॥ ८३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में आपकलुः— हे मनुष्यो जैसे माता पिता तु-
म्हारी सेवा करते हैं, वैसे तुम भी उनकी सेवा करो। जो २ काम रोगकारी
है उस २ को छोड़ो। इस प्रकार सेवन की हुई ओषधी माता के समान प्रा-
जियों को पुष्ट करती हैं ॥ ८३ ॥

अतिविश्या इत्यस्य निपगृपिः । वैशा देवताः । विराडनुष्टु-
पूहन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह वि० ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनइव ब्रजमंक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किंच तन्वो रपः ॥ ८४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (वि-
श्या) सब (ओषधीः) सोमलता और जी जादि ओषधी (ब्रजम्) जैसे
गोशाला को (स्तेनइव) चित्ति कोड़ के चोर जाये वैसे पृथिवी कोड़ के
(अत्यक्रमुः) निकलती हैं (यत्) जो (किष्प) कुछ (तन्वः) शरीर
का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राच्यु-
च्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को मुक्ति से सेवन करो ॥ ८४ ॥

भाष्यार्थः—इग मंत्र में उपनालः—तीमे गीर्जा के स्वामी ने पतका
या तुमा चार भित्ति को कांद् के जागता है वेमे ही मेष जोषधियां वे ता
तुमा जिसे रोग मष्ट होके जाग जाते हैं । ८५ ॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृपिः । वैद्यो देवता । अनृद्गु षण्ड ।

गान्धारः स्वरः ॥

जिह्वी तुमी नि० ॥

यद्विमा वाजयन्त्रहमोपधीर्हस्त आदधे । आ-
त्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा
॥ ८६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग (पश्य) जिस के (भङ्गमङ्गम्) मध अवयवों और (परुषपक्तः) मर्म २ के प्रति वर्तमान है उस के सम (उग्रः) तीव्र (महमम्) क्षयी रोग को (अध्यमशीरिव) बीध के मर्म स्थानों को काटते हुए के समान (विधाधध्वे) विशेषकर निवृत्तकर (ततः) उस के पश्चात् (ओषधीः) औषधियों को (प्रमर्षय) प्राप्त होओ ॥ ८६ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार औषधियों का सेवन करें तो सम अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥ ८६ ॥

साकमित्यस्य भिषगृपिः । विराटनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
कैशेर रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश भगले मन्त्र में कहा है ॥

साकं यक्ष्म प्र पंत चापेण किकिदीविना ।

साकं वातस्य ध्राज्यां साकं नश्य निहाकया ॥८७॥

पदार्थः—हे वैद्य विद्वान् पुरुष (किकिदीविना) ज्ञान यद्गाने द्वारे (चापेण) आहार से (साकम्) औषधि युक्त पदार्थों के साथ (यक्ष्म) रानरोग (प्रपत) हट जाता है जैसे उस (वातस्य) वायु को (ध्राज्या) गति के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट हो और (निहाकया) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के (साकम्) साथ दूर हो वैसा प्रपत कर ॥ ८७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि औषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्ते ॥ ८७ ॥

अन्याथ इत्यस्य भिषगृपिः । वैशा देवताः । विराटनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से निहाई हुईं औषधियों रोगों को नष्ट करती हैं यह विषय भगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्याथौ अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविद्वाना इदं मे प्रावता वचः ॥८८॥

पदार्थः—हे स्त्रियो (संविदानाः) भाषण में संवाद करती हुई तुम लोग (मे) मेरे (इदम्) इस (यद्य) यद्यन को (प्रायत) पालन कारी (ताः) सन (सर्वाः) ओपधियों की (अन्याः) दूसरी (अन्यस्याः) दूसरी की रक्षा के समान (उपायत) समीप से रक्षा करो जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है जैसे (यः) तुम लोगों को पढ़ाने वाली स्त्री (मन्तु) तुम्हारी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में याचकलु०—जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैसे ही अनुकूलता से मिटाई हुई ओपधी सब रोगों से रक्षा करती हैं । हे स्त्रियो तुम लोग ओपधिविद्या के लिये परस्पर संवाद करो ॥ ८८ ॥

या इत्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
रोगों के निवृत्त होने के लिये ही ओपधी इंद्र ने रची हैं यह वि० ॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पु-
ष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वथ
हंसः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों से युक्त (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित (याः) जो (अपुष्पाः) फूलों से रहित (य) और जो (पुष्पिणीः) बहुत फूलों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) वेदवाणी के स्वामी इंद्र ने सत्य की हुई ओपधी (नः) इस को (अ-इसः) दुःखदायी रोग से जैसे (मुञ्चन्तु) छुड़ावें (ताः) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में याचकलु०—मनुष्यों को याज्ञिके कि जो इंद्र ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओपधी रची हैं उन से वैदिकशास्त्र में कही हुई रीतियों में सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से बचाने रक्ष कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मेत्यस्य विषगृपिः । वैद्या देवताः । भुरिगृष्णिक्
छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

बीज २ ओषधी किम २ से छुहाती है यह विषय मगले मंत्र में कहा है ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो-
यमस्य पट्टीशात्सर्वस्माद्देवकिलिपात् ॥९०॥

पदार्थः—ये विद्वान् लोगो आप जैसे वे नहीपधी रोगों से पृथक् करती
हैं (शपथ्यात्) शपथ मन्त्रन्धी कर्म (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में
हुए अपराध से (अथो) इन के पश्चात् (यमस्य) न्यायाधीश के (पट्टीशात्)
न्याय के विरुद्ध आचरण से (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिलि-
पात्) विद्वानो के विषय अपराध से (मा) मुझ को (मुञ्चन्तु) पृथक्
रखें जैसे तुम लोगो को भी पृथक् रखें ॥ ९० ॥

भावार्थः— इस मंत्र में घाघकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि प्रमादका-
रक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी बीजम्, श्रेष्ठों
का अपराध, न्याय से विरोध, और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अध्यायक लोग सब को उत्तम ओषधी जनावें यह वि० ॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं
जीवमश्नवामहे न स रिष्याति पूरुषः ॥९१॥

पदार्थः— इन लोग जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे को
भासी हुई (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन का विद्वान् लोग
(पश्यन्) सब ओर से उपदेश करते हैं । जिन (जीवमश्नवामहे)
प्राणधारण को (अश्नवामहे) प्राप्त
कभी न (रिष्याति)

भावार्थः—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिये दिव्य ओषधिविद्या को दें जिसे से सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त हों। इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे ॥ ९१ ॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ।

स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या का ग्रहण करें यह वि० ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्वह्नीः शतविचक्षणाः ।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शथ्वहृदे ॥९२॥

पदार्थः—हे खि जिन से (त्वम्) तू (याः) जो (शतविचक्षणाः) असंख्यता शतगुणों से युक्त (वह्नीः) बहुत (सोमराज्ञीः) सोम जिन में राजा अर्थात् सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (ताम्) उनके विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इस से (शम्) कल्याणकारिणी (हृदे) हृदय के लिये (अस्मै) समर्थ (कामाय) इच्छामिद्वि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उन का उपदेश कर ॥ ९२ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इस के बिना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ९२ ॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः । विराडाप्र्वनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्टिताः पृथिवीम-
नु । बृहस्पतिं प्रसूता अस्यै सन्दत्त वीर्यम् ॥९३॥

पदार्थः—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो (सोमराज्ञीः) सोम जिन में उत्तम है वे (बृहस्पतिप्रसूताः) बड़े कारण के रत्नक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई (ओषधी) ओषधियाँ (पृथ्वीम्) (अमु) भूमि के ऊपर (विष्टिताः) विशेष कर स्थित हैं उन से (अस्मै) इस स्त्री के लिये (वीर्यम्)

वीर का दान दे । हे विद्वानो आप इन ओषधियों का विज्ञान सद्यः मनुष्यों के लिये (संदत्त) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥ ८३ ॥

भाषार्थः—स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी २ ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भधारण करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें ॥ ८३ ॥

पाञ्चदमित्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजां देवताः । विराट्-

नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

बहु देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह वि० ॥

याश्चेद्गुणशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (याः) जो (च) विदित हुई और जिन को (शृण्वन्ति) सुनते हैं (याः) जो (च) समीप हैं और जो (दूरम्) दूर देश में (परागता) प्राप्त हो सकती है उन (मर्षाः) सद्य (वीरुधः) एत आदि ओषधियों को (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्) इस (वीर्यम्) शरीर के पराक्रम को दैत्य मनुष्य लोग जैसे निहट करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्यै) इस कन्या को (संदत्त) सम्पन्न प्रकार से दीजिये ॥ ८४ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग, जो ओषधियों दूर या समीप में रोगों को हरने और बल करने वाली सुनी जाती हैं उन को उपकार में छा के रोग रहित होओ ॥ ८४ ॥

माय इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैशा देवताः । विराट्नुष्टुप्-

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह वि० ॥

मा वीं रिषत्स्वनिता यस्मै चाहं स्वनामि वः।

द्विपाञ्चतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (यस्मै) जिन प्रयोजन के लिये ओषधी को (स्वनामि) उपाहृता या खेदता हूँ वह (स्वनिता) सोदी हुई (वः) तुम को (मा) न (रिषत्) दुःख देवे जिस से (वः) तुम्हारे और (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दो पगवाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पात्) गौ आदि (सर्वम्) सब प्रजा उस ओषधी से (अनातुरम्) रोगों के दुःखों से रहित (अस्तु) होवे ॥ ९५ ॥

भावार्थः--जो पुरुष जिन ओषधियों को खेदे वह उन की जड़ न नेंटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिस से सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥ ९५ ॥

ओषधय इत्यस्य वरुणक्राधिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यथा करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े यह शि० ॥

ओषधयः समवदन्त सोमैः सह राज्ञां । यस्मै कृणाति ब्राह्मण स्तश्च राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

पदार्थः--हे मनुष्य लोगो जो (सोमैः) (राज्ञां) सर्वोत्तम सोमलता के (सह) साथ वसंतमान (ओषधयः) ओषधी हैं उन के विज्ञान के लिये जाय लोग (समवदन्त) आपन में सवाद करो है वैद्य (राजन्) राजपुरुष इन लोग (ब्राह्मणः) धेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष (यस्मै) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण (कृणाति) करता है (तम्) उस रोगी के वेत्ता जाय से उन ओषधियों से (पारयामसि) पार पहुंचाते हैं ॥ ९६ ॥

भाषार्थः—वेद्य लोगों को योग्य है कि जायस में प्रतीप्तर पूर्वक निरन्तर ओषधियोंके लीक २ ज्ञानसे रोगों से रोगी पुन्यों को पारकर निरन्तर सुखी करें । और जो इन में उत्तम विद्वान् हो वह गद्य गनुष्यों को वैद्यक शास्त्र पढ़ावे ॥ ९६ ॥

नाशयित्रीत्यस्य चरुण ऋषिः । भिषग्वरा देवताः । अनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधी हैं उन का सेवग करे यह वि० ॥

नाशयित्री वलामस्यार्शंस उपचितामसि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारारंसि नाशनी
॥ ९७ ॥

पदार्थः—हे वेद्य लोगों ! जो (वलामस्य) प्रसिद्ध हुए कफही (अशंसः) गुदेन्द्रिय की दवाधि या (उपचिताम्) अन्य घड़े हुए रोगों की (नाशयित्री) नाश करने वाली (अग्नि) ओषधि हैं (अयो) और जो (शतस्य) असंख्यात (यक्ष्माणाम्) राजरोगों और अघात सगन्दादि फौर (पाकारो) मुख रोगों और मर्गों का खेदन करने वाले मूल की (नाशनी) निवारण करने वाली (अग्नि) है उस ओषधी को तुम लोग जानो ॥ ९७ ॥

भाषार्थः—गनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उतनी ही उन की नाश करने वाली ओषधी भी हैं इन ओषधियों को नहीं जानने वाले पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं । जो रोगों की ओषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होंगे ॥ ९७ ॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य चरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । त्रि-
दशुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन २ ओषधी का खनन करता है यह वि० ॥

त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्प-
तिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्माद-
मुच्यत ॥ ९८ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस ओपधी से रोगी (यक्ष्मात्)
 मरीज से (अभुक्ष्यत) छूट जाय और जिस ओपधी को उपयुक्त करो
 (त्वाम्) उस को (गन्धर्वाः) गानविद्या में कुशलपुरुष (अखनन्) ग्रहण
 करें (त्वाम्) उस को (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य (त्वाम्) उस
 को (बृहस्पतिः) वेदज्ञ जन और (त्वाम्) उस को (सोमः) सुन्दर गुणों
 से युक्त (विद्वान्) सद्य शास्त्रों का वेत्ता (राजा) प्रकाशमान राजा (त्वाम्)
 उस ओपधी को खोदे ॥ ८८ ॥

भावार्थः— जो कोई ओपधी जहाँ से, कोई शाखा आदि से, कोई पु-
 त्रों, कोई फलों और कोई सद्य अययवों फरके रोगों की घघाती हैं। उन
 ओपधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये ॥ ८८ ॥
 सहस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । ओपधिर्देवता । विराडनुष्टुब्धः ।
 गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये यह वि० ॥
सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः । सह-
स्व सर्वं पाप्मानं सहमानास्योपधे ॥ ९९ ॥

पदार्थः— (ओपधे) ओपधी के सदृश ओपधी विद्या की जानने हारी
 जो जैसे ओपधी (सहमाना) बल का निमित्त (अग्नि) है (मे) मेरे रोगों
 का निवारण करके बल बढ़ाती है धीमे (जरातीः) शत्रुओं को (सहस्व)
 सहन कर अपने (पृतनायतः) मेना युद्ध की दृष्टा करते पुत्रों को (सहस्व)
 सहन कर और (सर्वम्) सद्य (पाप्मानम्) रोगादि को (सहस्व) मा-
 कर ॥ ९९ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि ओपधियों के सेवन से बल
 और प्रज्ञा के सदा अपने शत्रुओं और पापी लोगों को दम में करके
 प्राप्ति हो सके ॥ ९९ ॥

दीर्घानुष्टुब्ध इत्यस्य वरुणऋषिः । वैशा देवताः ।
 विराडनुष्टुब्धः । मन्वसः स्वरः ॥
 मनुष्य के लिये इसके द्वारा जो कर्म करे वह वि० ॥

दीर्घायुस्त ओपधे खनिता यस्मै च त्वा ख-
नाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा
वि रोहतात् ॥ १०० ॥

पदार्थः—हे (ओपधे) ओपधि के तुल्य ओपधियों के गुण दीप जा-
नेहारे पुरुष जिस से (ते) तेरी जिस ओपधि का (खनिता) मेघन करने
द्वारा (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये (च) और जिस पुरुष
के लिये (खनामि) रोहूं उस से तू (दीर्घायुः) अधिक अवस्था वाला
हो (अथो) और (दीर्घायु) बड़ी अवस्था वाला (भूत्वा) होकर (त्यम्)
तू जो (शतवल्शा) बहुत अङ्कुरों से युक्त ओपधि है (तथा) उस को
मेघन करके सुखी हो और (वि, रोहतात्) प्रसिद्ध हो ॥ १०० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग ओपधियों के मेघन से अधिक अवस्था
वाले होओ और धर्म का आचरण करने द्वारे होकर सब मनुष्यों को ओ-
पधियों के मेघन से दीर्घ अवस्था वाले करो ॥ १०० ॥

त्वमुत्तमासीत्पस्य वरुण ऋषिः । भिपर्जा देवताः । निवृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर वह ओपधी किस प्रकार की है इन वि० ॥

त्वमुत्तमास्योपधे तवं वृक्षा उपस्तयः । उप-
स्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँः॥ अंभिदामं-
ति ॥ १०१ ॥

पदार्थः—हे वैद्यजन (यः) जो (अस्मान्) हम को (अंभिदामति)
जमीन छत देता है (सः) वह (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारा (उप-
स्तिः) संगी (अस्तु) हो जो (उत्तमा) उत्तम (ओपधे) ओपधी (अमि)
है (तव) जिस के (यः) घट आदि छत (उपस्तयः) जमीन इच्छते
होने वाले हैं उस ओपधी से हमारे लिये छत दे ॥ १०१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की ओरपि कभी न ग्रहण करें किन्तु जो वैद्यक शास्त्रज्ञ जिस का कोई शत्रु न हो धर्मात्मा सब का मित्र सर्वोपकारी है उस से ओषधिविद्या ग्रहण करें ॥ १०१ ॥

माभेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ किसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये यह वि० ॥

मा मां हि॒थ् सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा
दिव॑थ् सत्यधर्मा व्यान॑त् । यश्चापश्चन्द्राः प्र-
थमो ज्जान॑ कस्मै॑ देवाय॑ हविषा॑ विधेम ॥१०२॥

पदार्थः—(यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर (पृथि-
व्याः) पृथिवी का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (वा) अथवा (यः)
जो (दिवम्) सूर्य आदि जगत् को (च) और (पृथिवी) तथा (अपः)
जल और वायु को (व्यान॑त्) उत्पन्न कर के व्याप्त होता है (चन्द्राः)
और जो चन्द्रमा आदि लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है । जिस (क-
स्मै) सुखस्वरूप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुखों के दाता विद्वानस्व-
रूप ईश्वर का (हविषा) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग (वि-
धेम) सेवन करें । यह जगदीश्वर (मा) मुझ को (मा) नहीं (हिंसीत्)
फुसंग से ताड़ित न होने देवे ॥ १०२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि
आदि के विज्ञान के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें ॥ १०२ ॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृदुष्टिणक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये यह वि० ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन॑, परंसा॑ सह वः
पान्ते॑ । अग्निरि॑पितो अरोह॑त् ॥ १०३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू जो (पृथिवी) भूमि (पत्तन) मंगम के दो
 मय (पयमा) लल के (मह) साध वत्तंती है उग को (मभ्यायतंर) दूरे
 ओर से शीघ्र वेताव कीजिये जो (ते) आप के (ययाम्) घीने को (इ-
 पितः) प्रेरणा किया (अग्निः) अग्नि (अरोहत्) उरपदा करता है यह
 अग्नि गुण कर्म और स्वसाध के साध मय को जामना चाहिये ॥ १०३ ॥

भाषार्थः—जो पृथिवी मय का आधार उतम रजादि पदार्थों की दानः
 जीवन का हेतु विजुली से युक्त है उस का विज्ञान भूगर्भ विद्या में मय
 नुष्यो को करना चाहिये ॥ १०३ ॥

अग्नेयत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निदेवता ।

भुरिग्गायत्री छन्दः । पद्भजः स्वरः ॥

किं लिये अग्नि विद्या का रोज करना चाहिये यह वि० ३

अग्ने यत्तं शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञि-
 यम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुत्रप (यत्) जो अग्नि का (शुक्रं)
 शीघ्रकारी (यत्) जो (चन्द्रम्) सुपर्ण के गगन आगत (देव)
 त्) जो (पूतम्) पवित्र (य) और (यत्) जो (यज्ञिन्) अग्नि
 के योग्य स्वरूप है (सत्) यह (ते) आप के और (देवेभ्यः) देवों
 हीने के लिये (भरामसि) हम लोग धारण करें । १०४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ पुत्र पुत्र (शुक्रं)
 लिये विजुली आदि अग्नि विद्या को विचारें ॥ १०४ ॥

इपंमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । शिवायुः देवता ।

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब टीक २ आधार विद्या का वि० ६

तां को
 के कुछ
 र अच्छी

इषमूर्जमहमित आदेमृतस्य योनिं महिषस्य
धारांम् । आ मा गोषुं विशत्वा तनूपु जहामि
सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अहम्) मैं (इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत् स्वरूप से (आदम्) भोगने योग्य (इषम्)मन्न (ऊर्जम्) पराक्रम (महिषस्य) बड़े (ऋतस्य) सत्यके (योनिम्) कारण (धारांम्) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त होऊँ जैसे अन्न और पराक्रम (मा) मुझ को (आविशत्) प्राप्त है जिस से मेरे (गोषु) इन्द्रियों और (तनूपु) शरीर में प्रविष्ट हुईं (सेदिम्) दुःख का हेतु (अनिराम्) जिस में अन्न का भोजन भी न कर सकें ऐसी (अमीवाम्) रोगों से उत्पन्न हुईं पीड़ा को (आ, जहामि) छोड़ता हूँ जैसे तुम लोग भी करो ॥ १०५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो घोर्यं आदि से युक्त स्वरूप है उस को प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करे । इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोग रहित करके कार्य के कारण की जानने वाली विद्या-युक्त वाणी को प्राप्त होवे और युक्ति से आहार विहार भी करें ॥ १०५ ॥

अग्ने तवत्यस्य पायकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्ति-
श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महिं भ्राजन्ते अर्च-
यो विभावसो । वृहद्भानो शर्वसा वाजंमुक्थ्युं
दधांसि दाशुपे कवे ॥ १०६ ॥

पदार्थः—हे (वृहद्भानो) अग्नि के सगण अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (विभावसो) विविधप्रकार की कान्ति में बसने वाले (कवे) अत्यन्त

सुद्धिमान् (जग्ने) अग्नि के समान वसंतमान विद्वान् पुरुष तिस से आप (शत्रुता) बल के साथ (दाशुपे) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये (वक्ष्यन्) कहने योग्य (वाजम्) विज्ञान को (दधासि) धारण करते हैं इस में (तव) आप का अग्नि के समान (महि) अति पूजने योग्य (श्रवः) सुनने योग्य शब्द (यवः) यौवन और (अर्घ्यः) दीप्ति (भ्राजन्ते) प्रकाशित होती है ॥ १०६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आर्षों के तुल्य श्रेष्ठ कीर्तियों से प्रकाशित होते हैं वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें ॥ १०६ ॥

पावकवर्चस्त्वस्य पावकाग्निर्ऋषिः । विद्वान् देयता ।

भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

माता पिता सन्तानों के प्रति क्या २ करें यह विषय शगले मन्त्र में कहा है ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि
भानुना । पुत्रो मातरां विचरन्नुपावसि पूणक्षि
रोदसी उभे ॥ १०७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लीये (पुत्रः) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में (विचरन्) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और (भानुना) प्रकाश से (पावक-वर्चाः, शुक्रवर्चाः) मिलुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और (अनूनवर्चाः) पूर्ण विद्याऽध्याय करने द्वारा और लीये (उभे) दोनों (रो-दसी) आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं लीये (उदियर्षि) वि-द्या को प्राप्त होता राज्य का (पूणक्षि) सम्बन्ध कर्ता और (मातरां) माता पिता की (उपावसि) रक्षा कर्ता है इस से तू धर्मात्मा है ॥ १०७ ॥

भावार्थः—माता पिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर ब्राह्मणवस्था में आप शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य करवा आचार्य के कुल में भोज के विद्यायुक्त करें । सन्तानों को चाहिये कि विद्या और अच्छी

शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ा के अभिमान और महत्करता रहित प्रीति से माता पिता की मग घाणी और कर्म से यथावत् सेवा करें ॥ १०१ ॥

ऊर्जांनपादित्यस्य पावकाग्निर्धृतिः । आग्निर्देवता ।

निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

माता पिता और पुत्र कैसे हैं इस विषय का उप० ॥

ऊर्जां नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व
धीतिभिर्हितः । त्वे इषुः संदधुर्भूरिवर्षसश्चित्रो-
तयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) बुद्धि और धन से युक्त पुत्र जिस (स्वे) युक्त में (भूरिवर्षसः) बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त (चित्रोतयः) आश्चर्य के तुल्य रक्षा आदि कर्म करने वाली (वामजाताः) प्रशंसा के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापक माता आदि विद्वान् स्त्रियों (इषुः) अन्नों को (संदधुः) धरे भोजन कराये सो तू (सुशस्तिभिः) उत्तम प्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ (धीतिभिः) अङ्गुलियों से बुलाया हुआ (ऊर्जाः) (नपात्) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित को धारण सदा किये हुए (मन्दस्व) आनन्द में रह ॥ १०८ ॥

भावार्थः—जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान् हैं वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होती हैं और जिन माता पिताओं के सन्तान विद्या अच्छी शिक्षा और प्रशस्तचर्य सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले हैं वे ही सदा सुखी हैं ॥ १०८ ॥

हरज्यक्षित्यस्य पावकाग्निर्धृतिः । आग्निर्देवता । निचृत्पार्थी

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ननुष्य कैसा हो यह विषय भगडे मंत्र में कहा है ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर्गस्मे रायो अ-
मर्त्य । स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पूणक्षि सा-
नुसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

पदार्थ—इ (अमर्त्य) नाथ और सन्तारी मनुष्यों के स्यन्ताव से गृहि-
त (जाने) अग्नि के समान पुरुषार्थों जो (इरज्यन्) ऐश्वर्य का संचय
करते हुए भाव (दर्शतस्य) देने योग्य (वपुषः) रूप की (मानसिम्)
सनातन (क्रतुम्) बुद्धि का (पूणक्षि) संयम करते हैं। और सभी बुद्धि
में विशेष कर के (विराजसि) शोभित होते हैं। (स) जो भाव (अस्मे)
हम लोगों के लिये (जन्तुभिः) मनुष्यादि प्राणियों से (रायः) धनों का
(प्रथयस्व) विस्तार कीजिये ॥ १०९ ॥

भाषार्थः—जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या का देता और
सुन्दर आचार में विराजमान हो। वही ऐश्वर्य का प्राप्त होने के लिये
ये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । पिष्टान् देवता ।

आर्षा पङ्क्तिश्छन्दः । पथमः स्वरः ॥

ऐतन् पुरुष परोपकारी होता है हम विषय का नग्न ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तश्च राधसो
महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिपुं दधामि
सानुसिधरयिम् ॥ ११० ॥

पदार्थः—दे विष्टान् पुरुष जो भाव (मध्वरस्य) वृष्टाने योग्य वृष्ट के (इ-
ष्कर्त्तारम्) विष्ट करने वाले (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिमान् (राधस्य) प्रशंसित
(महः) बड़े (राधसः) पन के (रातिम्) देने और (सानुसिधम्) निशान
करने वाले पुरुष और (सुभगां) सुन्दर ऐश्वर्य की देने वाली (महीम्)

पृथिवी तथा (इषम्) जन्म जादि को और (मानसिम्) मानीन (रयिम्) धन को (दधानि) धारण करते हैं इस से इम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ ११० ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे ऐसे ही दूसरों के लिये भी करे वही आज सत्कार के योग्य होवे ॥ ११० ॥

ऋतायानमित्यस्य पापकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराद्वर्षी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस का अनुहार करना चाहिये यह विषय जगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निश्च सुम्नायं
दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णश्च सप्रथस्तमं त्वा
गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे (जनाः) विद्या और विज्ञान से अधिक मनुष्य (गिरा) वाणीसे (सुम्नाय) सुख के लिये (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (श्रुत्कर्णम्) बहुश्रुत (विश्वदर्शतम्) सब देखने वाले (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विद्या के विस्तार के साथ वर्तमान (ऋतायानम्) बहुत सत्याचारण से युक्त (महिषम्) बड़े (अग्निम्) विद्वान् को (मानुषा) मनुष्यों के (युगा) यर्ष्या सत्ययुग आदि (पुरः) प्रथम (दधिरे) धारण करते हुये जैसे विद्वान् को और इन वर्णों को तू भी धारण कर यह (र्वी) तुझे सिखाता हूँ ॥ १११ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप—जो सत्पुरुष हो तुझे हीं तर्हों का अनुकरण मनुष्य लोग करें अन्य अधर्मियों का नहीं ॥ १११ ॥

आप्पायस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः । पङ्क्तिः स्वरः ॥

राजपुरुष बना करके कौने हों यह वि० ॥

आ प्यायस्त्रु समेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) चन्द्रमा के समान कान्ति युक्त राजपुरुष जीसे सोम गुण युक्त विद्वान् के संग से (ते) तेरे लिये (वृष्ण्यम्) वीर्यपराक्रम वाले पुरुष के कर्म को (विश्वतः) सब ओर से (समेतु) संगत हो सम से आप) आप्यायस्त्रु) यदिये (वाजस्य) विद्यान और वेग से सग्राम के जानने वाले (संगथे) युद्ध में विजय करने वाले (भव) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओं से विजय प्राप्त होना चाहिये ॥ ११२ ॥

सन्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भूरिगार्गी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किस को प्राप्त होते हैं यह वि० ॥

सन्ते पर्यांशसि समुयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्य-
भिमातिपाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम-
दिवि श्रवांशस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) शान्तियुक्त पुरुष जिन (ते) तुम्हारे लिये (पर्यांशि) जल वा दुग्ध (समुयन्तु) प्राप्त होवें (अभिमातिपाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सहने वाले (वाजाः) धनुर्वेद के विद्यान (सम्) प्राप्त होवें (व) और (वृष्ण्यानि) पराक्रम (सम्) प्राप्त होवें सो (आप्यायमानः) भषड़े प्रकार घटते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्वरूप इंद्र में (अमृताय) मोक्ष के लिये (उत्तमानि, श्रवांशि) उत्तम यवणों को (धिष्व) धारण कीजिये ॥ ११३ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य शरीर आत्मा के घल को नित्य बढ़ाते हैं वे योगाभ्यास से परमेश्वर में मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ११३ ॥

आप्पायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवताः ।

आर्षुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है यह वि० ॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोमविश्वेभिरशु-
भिः । भवानः सप्रथंस्तमः सर्वा वृधे ॥ ११४ ॥

पदार्थः—हे (मदिन्तम) अत्यन्त आनन्दी (सोम) ऐश्वर्य वाले पुरुष आप (अशुभिः) किरणों से सूर्य के समान (विश्वेभिः) सब साधनों से (आप्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (सप्रथंस्तमः) अत्यन्त विस्तार-युक्त सुख करने हारे (सर्वा) मित्र हुए (वः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भव) तत्पर हूजिये ॥ ११४ ॥

भाषार्थः—इस संसार में सब का हित करने हारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है ईर्ष्या करने वाला नहीं ॥ ११४ ॥

आत इत्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्गायत्री

छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

मनुष्यछात्र किचको वय में करके आनन्द को प्राप्त होयें यह वि० ॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाचित्सुधस्थात् ।

अग्ने त्वांकामया गिरा ॥ ११५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष (त्वा-कामया) तुझ को कामना करने के हेतु (गिरा) घापी से जिस (ते) तेरा (मनः) चित्त लेके (परमात्) अच्छे (मधस्थात्) एक से स्थान से (चित्) भी (वत्सः) बछड़ा भी को प्राप्त होवे वैसे (आ, यमत्) स्थिर होता है सो तू मुझि को क्यों न प्राप्त होवे ॥ ११५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मन भीर धानी को सदैव अपने
 वश में रखें ॥ ११५ ॥

तुभ्यन्ता इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

गायत्री छन्दः । पद्मजः स्वरः ॥

अथ राजा क्या करे यह विषय भगले मंत्र में कहा है ॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।

अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरस्तम) अतिशय कर के मार के पादक (अग्ने)
 प्रकाशमान् राजन् जो (विश्वाः) भव (सुक्षितयः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली
 प्रजा (पृथक्) अलग (कामाय) इच्छा के मापक (तुभ्यम्) तुम्हारे
 लिये (येमिरे) प्राप्त होवे (ता.) उक्त प्रजाओं की जाय निरन्तर रखा
 कीजिये ॥ ११६ ॥

भाषार्थः—जहां प्रजा के लोग वर्तमान राजा को प्राप्त होके अपनी
 अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहां राजा की वृत्ति क्यों न होये ॥ ११६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापति ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री-

छन्दः । पद्मजः स्वरः ॥

किर मनुष्य लोग किये दोहर क्या २ करें हम वि० ॥

अग्निः प्रियेषु धामंसु कामां भूतस्य मन्व्यं-
 स्य । सम्राटेऽपि विराजति ॥ ११७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (इन्द्राद्) मन्व्यं प्रकाशक (पृथः) पृथ ही
 शमहाय परमेश्वर के कृत्य (धाम) स्वीकार के योग्य (अग्नि) अग्नि
 के समान वर्तमान प्रजापति भूतस्य) है। तुके भीर (सम्राट्) आनेवाले मनुष्य
 के (प्रियेषु) इष्ट (धामसु) उत्तम स्थान और नामों में (विराजति) प्र-
 काशित होवे वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है ॥ ११७ ॥

अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः ॥

श्रोत्रं विश्वानि देव स वितर्हुरितानि परा-
सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुवं ॥

तत्र सपि गृह्णामीत्याद्यस्य परस्वार ऋषिः । अग्निदेवता ।

आर्षी पद्भ्यांकाश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ तेरहवें अध्याय का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में अनुषों को पहली
अवस्था में क्या २ जाना चाहिये यह विषय कहा है ॥

मयिं गृह्णाभ्यर्गनें अग्निश्च रायस्पोपाय सु
प्रजास्त्वायं सुवीर्यीय । मामुं देवताः सचन्ताम्
॥ १ ॥

पदार्थः— हे कुमार वा कुमारियो क्षेमे में (अग्नि) पहिले (मयि)
सुख में (रायः) विजान भादि धन के (पोपाय) पुष्टि (सुप्रजास्त्वाय)
सुन्दर प्रजा देने के लिये भी (सुवीर्यीय) रोगाहित सुन्दर पराक्रम
होने के लिये (अग्निम्) उत्तम विद्वान् को (गृह्णामि) पहल जाना हूँ नि
म से (माम्) सुख को (च) ही (देवताः) उत्तम विद्वान् वा उत्तम सुख
, सचन्ताम्) मिले देने तुम लोग भी करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में सावकसुख —अनुषों को यह मन्त्र है कि प्र-
त्येकसुख कुमागवस्था में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से पदार्थविद्या उत्तम

कर्त्तव्य और ईश्वर की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें। जिससे श्रेष्ठ गुण और भास विद्वानों को प्राप्त होके उत्तम धन सन्तानों और पराक्रम को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । धिराद्
त्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

गद्य परमेश्वर की उपासना का वि० ॥

अपां पृष्ठमसि योनिर्गुणे समुद्रमभितः पित्व-
मानम् । वर्धमानो मूर्हा २॥ आ च पुष्करे दि-
वो मात्रया वरिष्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो तू (अभितः) सब ओर से (अपाम्) सर्वत्र उपासक परमेश्वर आकाश दिशा त्रिजुली और माथों या अलों के (पृष्ठम्) अधिकरण (समुद्रम्) आकाश के समान सागर (पित्वमानम्) सींचने हुए समुद्र को (अग्नेः) त्रिजुली आदि अग्नि के (योनिः) कारण (दिवः) प्रकाशित पदार्थों का (मात्रया) निर्माण करने वाली बुद्धि से (पुष्करे) हृद्ग्रह रूप अन्तरिक्ष में (वर्धमानः) उत्पत्ति को प्राप्त हुए (च) और (महान्) गद्य श्रेष्ठ वा गद्य के पूज्य (अग्नि) हो से आप हमारे लिये (वरिष्णा) उपासकशक्तिसे (आ, प्रथस्व) प्रसिद्ध हुआये ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस मत्, चित् और आनन्दस्वरूप, सब जगत् का रचने द्वारा, सर्वत्र उपासक, गद्य के उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से सम्पूर्ण विद्यादि अमन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका सेवन करें न करना चाहिये ॥ २ ॥

ब्रह्मज्ञानमित्यस्य वत्सार ऋषिः । आदित्यो देवताः ।

आर्षी त्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को किम स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है यह वि० ॥

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमितः सुरुचो
वेन आवः । सवुध्न्या उपमा अस्य विष्टाः सतश्च
योनिमसंतश्च वि वः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (पुरस्तात्) सृष्टि की आदि में (जज्ञानम्) सद्य का उ-
त्पादक और ज्ञाना (प्रथमम्) निस्तार युक्त और विस्तार कलां (ब्रह्म)
मद्य में बड़ा जो (सुरुचः) सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर स्वर का विषय
(वेनः) ग्रहण के योग्य जिन (अस्य) इन के (सुध्न्याः) जल सम्बन्धी
आकाश में यत्तमान सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि (विष्टाः)
विधिधरपलों में स्थित (उपमाः) ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन स
द्य के (सः) यह (आवः) अपनी उपमा में आच्छादन करता है यह
ईश्वर (विसीमितः) मर्यादा में (सतः) विद्यमान देखने योग्य (च)
और (अस्य) अटपक्त (स) और कारण के (योनिम्) आकाशरूप
स्थान के (विषः) ग्रहण करता है वही ब्रह्म की उपासना मद्य लेनी
को नित्य मग्न्य करनी चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिन ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध मद्य
लोक दृष्टान्त हैं जो सर्वत्र उपास्य हुआ मद्य का आधरण और सभा का प्र-
काश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी २ कला में मद्य लेकों
को रसता है वही मन्तर्यामी परमात्मा मद्य मनुष्यों के निरन्तर उपासना
के योग्य है इस में अन्य कोई पदार्थ देखने योग्य नहीं ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भइत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

आर्षी त्रिष्टुब्जन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर यह कैसा है इस विषय का उपदेश मगले मन्त्र में किया है ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रै भूतस्य जातः प-
तिरक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषां विधेम ॥ ४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो लीसे इम लोग जो इम (भूतस्य) उत्पन्न हुए सं-
सार का (जातः) रचने और (पत्निः) पालन करने द्वारा (एकः) महाय
की अपेक्षा ने रहित (द्वितीयगर्भः) मूल्यादितेजोमय पदार्थों का भाषा
(शब्दे) जगत् रचने के पहिले (मनवर्षतः) वर्षमान (आसीत्) था (म)
वह (इनाम्) इम संसार को रचके (उत) और (पृथिवीम्) प्रकाश-
हित और (द्याम्) प्रकाशमहित पूर्णादिलोकों को (दाधार) धारण क-
ता हुआ उन (कस्मै) सुखरूप प्रजापालने वाले (देवाय) प्रकाशमान पर-
मात्मा की (इणिया) भातमादि सामग्री से (विधेम) सेवा में तत्पर हों।
दिये तुम लोग भी इम परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः— हे मनुष्यो तुम को योग्य है कि इम प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से
मध्यम परमेश्वर ही विद्यमान था जीव गाढ़निद्रा सुषुप्ति में लीन और ज-
गत् का कारण अत्यन्त गूहमावस्था में आकाश के समान एकरम स्थिर था
जिससे सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त्यममय में प्रलय करता
है उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो ॥ ४ ॥

प्राप्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराड्वार्षी
सिष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
फिर वह कैसा है यह वि० ॥

द्रुप्तश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनि-
मनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनुं संचरन्तं
द्रुप्तं जुहोम्यनुं सप्त होत्रां ॥ ५ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो लीसे मैं जिन के (सप्त) पांच प्राण मन और
भातमा से सात (होत्राः) अनुग्रहकाने हारे (यः) जो (इनाम्) इस
(पृथिवीम्) पृथिवी (द्याम्) प्रकाश (च) और (योनिम्) कारण के अ-
नुकूल जो (पूर्वः) सम्पूर्ण स्वरूप (द्रुप्तः) आनन्द और उत्साह को (अ-
नु) अनुकूलता से (चस्कन्द) प्राप्त होता है उन (योनिम्) स्थान के
(अनु) अनुसार (संचरन्तम्) संचाली (समानम्) एक प्रकार के (द्र-

एवम्) सर्वत्र अभिठपास आनन्द को मैं (मनुजुहोमि) अनुकूल ग्रहण करता हूँ वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को चाहिये कि जिन जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का सर्वत्र लाभ होता है उन की प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करो ॥ ५ ॥

नमोऽस्तिवत्पस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च । सुरिमृगिणश्च
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को संस्कार में कैसे वर्तना चाहिये यह विषय ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनुं । ये
अन्तरिक्षे ये द्विवि तेभ्यः सर्पेभ्योनमः ॥ ६ ॥

पदार्थः— जो (के) कोई इस जगत् में लोक लोकान्तर और प्राणी हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) लोको के जाँचों के लिये (नमः) शत्रु (अस्तु) हो (ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (द्विवि) प्रकाश मान मृत्प आदि लोकों में (च) और (ये) जो (पृथिवीम्) भूमि के (अमु) ऊपर चलते हैं उन (सर्पेभ्यः) प्राणियों के लिये (नमः) शत्रु प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः - हे मनुष्यो जितने लोक दीख पड़ते हैं और जो नहीं दीख पड़ते हैं वे सब अपनी रक्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में चलते हैं उन सबों में जो प्राणी चलते हैं उन के लिये शत्रु भी ईश्वर ने रचा है कि जिन से इन सब का जीवन होता है इन बात को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

या इपय इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । स एव देवता च । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

किर मनुष्यों को बीसा होना चाहिये इन विषय का विषय ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजे-
वामवाँ २॥ इमेन । तृष्वमिनु प्रसितिं द्रूणानोऽ-
स्तांसि विध्यं रक्षमस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे सेनापते भाव (पाजः) बल को (कृणुष्व) कीजिये (प्रसितिम्) जाल के (न.) समान (पृथ्वीम्) भूमि को (याहि) प्राप्त कीजिये जिन से भाव (अस्ता) फैकने वाले (अमि) हैं इम से (इमेन) हाथी के भाव (अमयान्) बहुत दूतो वाले (राजेव) राजा के समान (तपिष्ठैः) अत्यन्तदुःसहायी शस्त्रों से (प्रसितिम्) कामी को मिट्ट कर (रक्षमः) शत्रुओं को (द्रूणानः) मारते हुए (तृष्वीम्) शीघ्र (अनु) सम्मुख होकर (विध्य) ताड़ना कीजिये ॥ ९ ॥

आचार्यः—इम मन्त्र में उपमात्वं—सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूर्ण बल से युक्त हो अनेक कामियों से शत्रुओं को बांध उतको घाण भादि शस्त्रों से ताड़ना दे और यदीश्वर में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों को पाले ॥ ९ ॥

तव भ्रमास इत्यस्य धामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भारुक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह सेनापति क्या करे यह वि० ॥

तवं भ्रमासं आशुया पतन्त्यनुं स्पृश धृप्-
ता शोशुचानः । तपूथप्यग्ने जुह्वा पतङ्गान-
सन्दिता विसृज विष्वंगुल्काः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र आचरण करने वाले भाव जो (तव) भाव के (भ्रमानः) धमण शील और पुरुष जीने (विष्वक्) सब ओर से (आशुया) शीघ्र स-

या इषंशो यातुधानानां ये वा वनस्पती ॥
रन्तु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (यातुधानानाम्) प-
राये पदार्थों को प्राप्त होके धारण करने वाले जनों की (इषयः) गति है
(वा) अथवा (ये) जो (वनस्पतीन्) घट आदि वनस्पतियों के (रन्तु)
आश्रित रहते हैं और (ये) जो (वा) अथवा (अवटेषु) गुह्यमार्गों में
(शेरते) सोते हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) चंचल दुष्ट प्राणियों के लिये
(नमः) यज्ञ चलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और वनों में उषकू
दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते हैं उन हाकुओं और सर्पों को
शस्त्र, औषधि आदि से निवारण करें । ७ ॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । सूर्यां देवता । निवृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे हटाना चाहिये यह वि० ॥

ये वामी रञ्चने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदकृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (वामी) वे परीक्ष में रहने वाले (दिवः)
त्रिजुली के (रञ्चने) प्रकाश में (वा) अथवा (ये) जो (सूर्यस्य) सूर्य
की (रश्मिषु) किरणों में (वा) अथवा (येषाम्) जिन का (अप्सु) जलों
में (मदः) स्थान (कृतम्) बना है (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) दुष्ट प्रा
णियों को (नमः) यज्ञ से मारो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में आकाश में दुष्ट प्राणी
या सर्प रहते हैं उन को शस्त्रों से निवृत्त करें ॥ ८ ॥

कृष्णदेवस्य धामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भारु पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुषों को शत्रु किये बांधने चाहिये यह वि० ॥

कीर भेद धं शीघ्र वश में लाके दया कीर व्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्ने इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भूरिगार्था
पञ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
किर यह दया करे हम वि० ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्युमित्राँ २॥ ओ-
पतात्तिग्महेते । यो नो अरांतिश्चममिधान चक्रे
नीचा तं धक्ष्यतु सं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (भामे) तेजधारी ममा के स्वामी णाप राज धर्म के धीन (वृत्तिष्ठ) उत्पत्ति को प्राप्त हूलिये चमांतमा पुत्रियों के (प्रति) लिये (शा-
तनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये । हे (तिग्महेते) तीव्रदण्ड देने वाले
राजपुरुष (ममिश्राम्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (स्वोपनात्) निरन्तर
जलाइये । हे (ममिधान) ममयक् तेजधारी जन (य) जो (म) हमारे
(अरांतिम्) शत्रु को उरहाही (चक्रे) करता है (तम्) हम को (मीचा)
नीची दया में कर के (शुष्कम्) सूखे (भतमम्) काट के (न) हमारा (पति)
जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थः—इम मंत्र में उपमाला—राजा आदि ममयत्रुणों को या-
दिये कि धर्म कीर विनय में समाहित हो के लल के ममान निर्रां की शी-
तल करें । अग्नि के ममान शत्रुओं को जलायें । जो उदासीन हो कर हमारे
शत्रुओं को बड़ासे हमको दृढबन्धनों से बांध के निरन्तरक राज्य करें ॥१२॥
ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदाद्यर्पणितजगभी
छन्दः । निपादः स्वरः ॥

किर यह राजा किम प्रकार दर हो हम वि० ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विद्याद्यस्मद्वाविष्णुष्व
देव्यांन्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातृजूनां जा-

लने हारी (वरुकाः) धिजुली की गतिपां धीमे (पनक्ति) श्येनपत्नी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गिाते हैं उन को (धूपना) वृद्ध सेना में (अनु) अनुकूल (स्पृश) प्राप्त हूजिये और (अमन्दिनः) मल गिहत हुए (जुह्व) पा के द्यम का माधम लपट अग्नि के (तपूयि) तेज के समान शत्रुओं के ऊपर मध और से धिजुली की (विस्तृत) छोड़िये और (पतङ्गन्) चाहे को सुन्दर शिला युक्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इम मंत्र में वाचकलुग— सेनापति और सेना के मृत्यों को चाहिये कि भावम में प्रीति के माध यल यटा वीर पुरुषों को हर्ष दे और मन्थक् युद्ध कराके अग्नि भादि अस्त्रों और भुमंडी भादि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर धिजुली की दृष्टि करें जिसे शीघ्र विजय हो ॥ १० ॥

प्रतिस्पश इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्त्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो इम वि० ॥

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवां पायुर्विशो
अस्या अदब्धः । यो नो दूरे अघशोऽसो यो
अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्पात् ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं के ललाने वाले पुरुष (ते) आप का और (नः) हमारा (यः) जो (उपधिः) उपधा देने द्वारा (अघशंभः) पाप करने में पद्यत्त चोर शत्रु जन (दूरे) दूर तथा (यः) जो (अग्नि) निकट है जैसे वह हम लोगों को (माकिः) नहीं (मा, दधर्पात्) दुःख देवे उन शत्रु के (प्रति) प्रति आप (तूर्णितमः) शीघ्र दण्ड दाता होके (स्पशः) धन्धनों को (विस्तृत) रचिये और (अस्याः) इम वरत मान (विशः) प्रजा के (पायुः) रक्षक (अदब्धः) हिंसा रहित (मध) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इम मंत्र में वाचकलुग—जो मनीष वा दूर रहने वाले प्रजा नो के दुःखदायी ह फू हैं उन को राजा आदि पुरुष मान, दाम, दण्ड

भीर भेद मं शीघ्र यथा में लाके द्या भीर व्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्म इत्यस्य यामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी

पञ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह क्या करे इस वि० ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्युमित्राँ २॥ ओ-
पतात्तिग्महेते । यो नो अरातिश्च समिधान चक्रे
नीचा तं धक्ष्यतु सं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजधारी सभा के स्वामी भाव राज धर्म के धीय (वत्तिष्ठ) उन्नति को प्राप्त हूँजिये धर्मात्मा पुरुषों के (प्रति) लिये (आ-सनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये । हे (तिग्महेते) तीव्रदृष्ट देने वाले राजपुरुष (अभिधान्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (न्योपतात्) निरन्तर जलाइये । हे (समिधान) सम्पक् तेजधारी जन (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु को उच्छाही (चक्रे) करता है (तम्) उस को (नीचा) नीची दशा में कर के (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काष्ठ के (न) घमान (धत्ति) जलाइये ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इत संघ में उपमाखं—राजा आदि सम्पन्नियों को चा-
हिये कि धर्म भीर विनय में समाहित हो के सब के समान मित्रों की शी-
तल करें । अग्नि के समान शत्रुओं को जलायें । जो उदासीन हो कर हमारे
शत्रुओं को घड़ावे उसको दूधयन्त्रियों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें ॥१२॥
ऊर्ध्वो भवेत्स्य यामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भिचूदाप्यतिजगती

छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर यह राजा किस प्रकार का है। इस वि० ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मद्वाविष्णुष्व
देव्यान्यग्ने । अवं स्थिरा तनुहि यातुजूनां जा-

मिमजांमिं प्रसृग्मीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्नेः) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष तिम लिये भाव (क
च्छ्रेः) शक्त (तप) हृजिये धर्म के (प्रति) अनुकूल होके (विषय) दुष्ट
शत्रुओं को साहजा दीजिये (अस्सु) हमारे (स्था) निघल (दै-
व्यामि विद्वानों के रचे पदार्थों को (भाषिः) प्रकट (कृणुष्य) कीजिये
हुंरीं को (तनुहि) विस्तारिये (यानुज्जनाम्) पर पदार्थों को प्राप्त होने
और वेग वाले शत्रुजनों के (जामिम्) साशन के और (अजामिम्) श-
न्य वयवहारों के स्थान को (अथ) अच्छे प्रकार विस्तार पूर्वक नष्ट कीजिये
और (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रसृग्मीहि) बल के साथ भाषिये इनलिये मैं
(एवा) भाष को (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश के (भाषि) स-
मुख (सादयामि) स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य को वाले उत्तम
गुण, कर्म, और स्वभावों से युक्त होयें मनाओं और दृष्टियों को निरन्तर मु-
ख दें। दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर भिन्ना करें। और सब से
उत्तम पुरुष को उभापति मानें ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धास्य धामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । सुरिगणुषु-

पृच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह राज पुरुष कैसा हो यह वि० ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः कृकुत्पतिः पृथिव्या अ- यम् । अपाथ रैताथसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वाजसा सादयामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे राजन् सीमे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य दिवः) प्र-
काशयुक्त प्रकाश के बीच और (पृथिव्याः) भूमि का (सुहृत्) सप्त प्राणियों

के गिर के समान उत्तम (ककुत्) मय से बड़ा (पतिः) सध पदार्थों का रसक (अपाम्) जलों के घोर्याणि मारों से प्राणियों को (जिग्यति) वृत्त करता है धीसे आप भी गृह्णिये । मैं (रथा) आप को (इन्द्रस्य) गुरुय के (ओजसा) पराक्रम के साथ राज्य के छिये (सादयामि) स्थापन करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वायुकुलु-जो समुच्च मूर्त्त के समान गुण कर्म और स्वभाव वाला न्याय से प्रजा के पाठन में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् हो उस को राज्याधिकारी मय लोग मारें ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्यग्निशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृ-
द्वार्वाग्निप्रपृच्छन्दः । धैयतः स्वरः ॥

किर वह केश हो इस विषय का उपदेश भगते मन्त्र में किया है ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रां नियुञ्चिः
सचंस शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दधिपे स्वर्पां
जिह्वामग्ने चकृपे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (आग्ने) विद्वान् पुरुष (यत्र) जिन राज्य में आप शिने (निद्रियुः) वेग आदि गुणों के साथ वायु (रजसः) लोकों या ऐश्वर्य का (नेता) चलाने द्वारा (दिवि) न्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) गिर को धारण करता है धीसे (यत्र) जहां (शिवाभिः) कल्पालकारक नीलियो के साथ (भुवः) अपनी पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म के पालन करने हेतु हो के (मयि) संयुक्त होता अचूते पुरुषों से राज्य को (दधिपे) पालन और (हव्यवा-
हम्) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु (स्वर्पां) दुर्गों का दहन कराने वाली (जिह्वाम्) अचूते विषयों की प्राप्ति के द्वारा (चकृपे) करते हो वहाँ मय तुम बड़ने हैं यह नियम जानिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जिन राज्य में राजा आदि मय राजपुरुष संन्यायात्मा का हो द्वारे धर्मात्मा होके धर्मानुसूल प्रजाओं का पालन करें जहां विद्या और वाणी शिवा से होने वाले तुल बरों न बड़ें । १५ ॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्व-
नुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह राजपत्नी कैनी होवे यह वि० ॥

ध्रुवासिं धरुणास्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वां
समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णाऽअव्यथमाना पृथि-
वीं दृष्ट्व ॥१६॥

पदार्थः—हे राजा की स्त्री जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मपुत्र
काम करने वाले अपने पति के साथ वृत्त होती हुई (भास्वता) यज्ञ आभू-
षण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई (धरुणा) विद्या और धर्म की धार-
णा करने वाली (ध्रुवा) निश्चल (अग्नि) है सो तू (अव्यथमाना) पीड़ा
से रहित हुई (पृथिवीम्) अपनी राज्यभूमि को (उद्वह) अच्छे प्रकार
दृष्ट (दृष्ट्वा) तुझ को (समुद्रः) नार लोगों का व्यवहार (मा) मत (द-
धीत्) सताये और (सुपर्णः) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तीस पति
(मा) नहीं मारे ॥ १६ ॥

भावार्थः—जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा ही दीनी ही उस की
राखी भी पढ़ी होनी चाहिये सदैव दोनों परस्पर पतिव्रता स्त्रीव्रत दो के
न्याय से चलन करें । उपनिषद् और काम की उपधा से रहित हो कर प-
मानुसूल पुत्रों को उत्पन्न कर के स्त्रियों का छोड़ो राणी और पुरुषों का पुरुष
राजा न्याय करे ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्टुत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे सताये यह वि० ॥

प्रजापतिष्ठा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ।
व्यचंस्वतीं प्रथंस्तीं प्रथंस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्री जीने (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (समुद्र-
रूप) समुद्र के (अपाम्) जलों के (एमन्) प्राप्त होने पर स्वाम के
(पृष्ठे) ऊपर नीला के समान (तपस्वतीम्) बहुत विद्या की प्राप्ति और
सत्कार से युक्त (प्रपस्वतीम्) प्रशंसित कीर्ति वाली (तवा) तुझ को (मा-
दयतु) स्थापन करे । जिस कारण तू (पृथिवी) भूमि के समान सुख देने
वाली (अग्नि) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (प्रपस्व) प्रसिद्ध हो
वेसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥ १७ ॥

भावार्थः—इन मंत्र में वाचकतु०-राजपुरुष आदि को चाहिये कि जाप
जिन २ राज काटर्प में प्रवृत्त हों उन २ कार्य में अपनी २ स्त्रियों को
भी स्थापन करें जो २ राजपुरुष जिन २ पुरुषों का न्याय करे उस २ की स्त्री
स्त्रियों का न्याय किया करें ॥ १७ ॥

धूरसीत्यस्य त्रिशरा ऋषिः । अग्निर्वेदता । प्रस्तार-

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर वह राणी कैनी हो यह वि० ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया वि-
श्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं
दृंह पृथिवीं माहिंसीः ॥१८॥

पदार्थः—हे राणी जिन से तू (भू) भूमि के समान (अग्नि) है इन
कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिन लिये
तू (विश्वधायाः) सब गृहाग्रम के और राजसम्बन्धी तपसुहारों और (वि-
श्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्त्री) धारण करने वाली (भूमि)
पृथिवी के समान अग्नि है इन लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृंह) बढ़ा
और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य वाले आकाश के समान
सोमरहित (अग्नि) है इस लिये (पृथिवीम्) भूमि की (मा) मत (हिंसीः)
बिगाड़ ॥ १८ ॥



काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परिं ।
एवा नो दूर्वं प्र तनु महस्रेणा शतेनं च ॥ २० ॥

पदार्थः—हे खि तू जीमे (महस्त्रेण) असंख्यगत (च) और (शतेन) बहुत प्रकार के माघ (काण्डात्काण्डात्) मय भवषो और (परुषः परुष) गाँठ २ मे (परि) मय और मे (प्ररोहन्ती) अत्यन्त बढ़ती हुई (दूर्वं) दूर्वा घास होनी हे धीमे (एण) ही (नः) हम को पुत्र पीत्र और ऐश्वर्य से (प्रतनु) त्रिस्तुन कर ॥ २० ॥

भावार्थः—हम मत्र में वाचकलु०—जीमे दूर्वा औषधी रोनें का माघ और सुतें को बढ़ाने द्वायी सुभद्र विस्तार युक्त होती हुई बढ़ती है । धीमे ही विद्वान् स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥२०॥

या शतेनं त्वस्याग्निर्द्रविः । पत्नी देवता । निचृदनुष्टप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किं यह कैवी ही यह धि० ॥

या शतेनं प्रतनोपि महस्रेणा विरोहंसि । त-
स्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (इष्टके) इंट के समान बृह भवषो से युक्त शुभ गुणों से शोभायमान (देवि) प्रकाश युक्त स्त्री जीसे इंट सैकड़े संख्या से मकान आदि का विस्तार और हजारह मे बहुत बढ़ा देती है धीसे (या) जो तू हम लोगों को (शतेन) सैकड़े पुत्र पीत्रादि सम्पत्ति से (प्रतनोपि) विस्तारयुक्त करती और (महस्त्रेण) हजार प्रकार के पदार्थों से (विरोहंसि) विविध प्रकार बढ़ाती है (तस्या) तम (ते) तेरो (हविषा) देने योग्य पदार्थों से (वयम्) हम लोग (विधेम) सेवा करें ॥ २१ ॥

भावार्थः—हम मत्र में वाचकलु०—जीमे सैकड़ों प्रकार से हजारह इंटें पर रूप धन के मय प्राणियों को सुख देती हैं धीसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पीत्र ऐश्वर्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें उन का पुरुष लोग

यावीं देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।
इन्द्राग्नी तामिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृह-
स्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—दे (देवाः) विद्वानो तुम सद्य लोग (याः) द्यो (यः)
तुम्हारी (सूर्ये) सूर्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गीओं
और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के ममान प्रीति हूँ (ता-
मिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (न) हमारे बीच (रुचन्) कामना
को (इन्द्राग्नी) विजुली और सूर्ययत्त भ्रष्टापक और उपदेशक जैसे धार-
ण करे वैसे (धत्त) धारण करो हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा
करने हारे पूर्णविद्यायुक्त आप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—जद्यतक मनुष्य लोगो की विद्वानों के सब ईश्वर उसकी
रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तद्यतक विद्यान कभी नहीं बढ़
सकता ॥ २३ ॥

विराड्ज्योतिरित्यस्पेन्द्राग्नी ऋषी । प्रजापतिर्देवता ।

निचृद्बृहतीछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

श्री पुरुष भाषण में कैसे वचन यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

विराड्ज्योतिरधारयत्स्वराड्ज्योतिरधारयत् ।
प्रजापतिश्चा सादयत्तु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्म-
तीं विश्वंस्मै प्राणायानाय व्यानाय विश्वं
ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गि-
रस्वद् ध्रुवासीद ॥ २४ ॥

निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के बिना शुभ-
गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते। और ऐसे सन्तानों के बिना
माता पिता को सुख कब मिल सकता है ॥ २१ ॥

यास्त इत्यस्पेन्द्राग्नी ऋषी । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह स्त्री किसी होवे यह वि० ॥

यास्तै अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति र-
श्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय
नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ाने वाली विद्वान्
स्त्री (याः) जो (ते) तेरी रुचि है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रु-
चियों से युक्त (नः) हम को जैसे (रुचः) दीप्ति (सूर्ये) सूर्य में
(रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) अच्छे प्रकार
घिसनार युक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विरक्त सुखयुक्त कर और
(अद्य) आज (रुचे) रुचि बनानेहारे (जनाय) प्रसिद्ध मनुष्य के लिये
(नः) हम लोगों को प्रीति युक्त (रुधि) कर ॥ २२ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलुप्त-जैसे ब्रह्मायज्ञ में सूर्य की दीप्ति
सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचि युक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ
पत्निव्रता स्त्रियाँ घर के सब कार्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुल में स्त्री
और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों वहाँ सब विषयों में कल्याण ही होता
है ॥ २२ ॥

या वो देवा इत्यस्पेन्द्राग्नी ऋषी । बृहस्पतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये यह विषय ॥

यावो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त वृह-
स्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (देवा.) विद्वानो तुम मद्य छोग (याः) जो (यः)
सुम्हारी (सूर्ये) सूर्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गीर्ण
और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के समान प्रीति हैं (ता-
भिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (न) हमारे बीच (रुचम्) कामना
को (इन्द्राग्नी) यिजुली और सूर्यवत् सध्यापक और उपदेशक लीये धार-
ण करे वीसे (धत्त) धारण करो हे (वृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा
करने हारे पूर्णविद्यायुक्त भाव (न) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भाषार्थः—जबतक मनुष्य लीये की विद्वानो के मङ्ग ईच्छा मगकी
रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तबतक विद्याम कभी नहीं बढ़
सकता ॥ २३ ॥

विराड्ज्योतिरिदमस्वेन्द्राग्नी क्षयी । प्रजापतिर्देवता ।

निचृद्पृहतीछन्दः । क्षयमः स्वरः ॥

सो पुरुष भावन में किये वसे यह विषय जगते मत्र में कहा है ॥

विराड्ज्योतिरधारयत्स्वराड्ज्योतिरधारयत् ।
प्रजापतिश्चा सादयतु पृष्टे पृथिव्या ज्योतिष्म-
तां विश्वंस्मं प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं
ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गि-
रस्वद् ध्रुवासादि ॥ २४ ॥

पदार्थः—जो (विराट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (ज्योतिः) विद्या की उन्नति को (अधारयत्) धारण करे करावे जो (स्वराट्) सब धर्मगुक्त व्यवहारों में शुद्धाचारी पुरुष (ज्योतिः) बिजुली आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे करावे वे दोनों स्त्री पुरुष मंजूषां सुखो को प्राप्त होयें । हे स्त्रि जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (अङ्गिरस्यत्) सूत्रात्मा वायु के समान (ध्रुवा) दृढता से (सीद) हो । हे पुरुष जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा के करने हारी स्त्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय कर्मके स्थित हो । हे स्त्रि (प्रजापतिः) प्रजाकारक तेरा पति (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाद्य) सुख की चेष्टा के हेतु (अवामाय) दुःख हटाने के साधन (उपामाय) सब सुन्दर गुण कर्म और स्वाभावों के प्रचार के हेतु प्राण विद्या के लिये जिम (ज्योतिष्मतीम्) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (तथा) तुम्ह को (सादयतु) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (विश्वम्) समस्त (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपनी पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

भाषार्थः—जो स्त्री पुरुष सत्संग और विद्या के अभ्यास से विद्युत् आदि पदार्थविद्या और प्रीति की नित्य यदाते हैं वे इन संसार में सुख भोगते हैं । पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे इस प्रकार भाष्य में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥ २४ ॥

मधुरपेत्वस्येन्द्राग्नी ऋषी । प्रातरो देवताः । पूर्णस्य

भूरिगतिजगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

ये स्रग्व इत्पुनरस्य भूरिगताग्नी पृथ्वी छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में वसन्तऋतु का वर्णन किया है ॥

मधुश्च माध्वश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्ले-
पोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओ-
पंधयः कल्पन्तामग्नेयः पृथङ् मम ज्येष्ठ्याय
सव्रताः । ये अग्नेयः समनसोऽन्तरा द्यावापृ-
थिवी इमे वासन्तिकावृतू अग्नि कल्पमान्ता
इन्द्रमिव देवा अग्निसंविशन्तु तया देवतया-
ङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

पदार्थः— षीमे (मम) मेरे (ज्येष्ठ्याय) ज्येष्ठ महीने में हुए उपवहार
वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (अग्नेः) गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न
होने वाले जिन के (अन्तःश्लेषः) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध
(असि) होता है वे (मधुः) मधुगंधयुक्त चैत्र (च) और (माध्वः)
मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (च) इत के सम्बन्धी पदार्थ युक्त
(वासन्तिका) वसन्त महीनों में हुए (ऋतू) ऋतु को सुख प्राप्ति के साधन
ऋतु सुख के लिये (कल्पेताम्) समर्थ होवे जिन चैत्र और वैशाख महीनों
के आश्रय से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (आपः) जल भी भोग में
(कल्पन्ताम्) आनन्ददायक हों (पूषक्) भिन्न २ (ओपधयः) शी आदि
वा सोमलता आदि ओपधि और (अग्नेयः) विजुली आदि अग्नि भी
(कल्पन्ताम्) कार्यसाधक हों हे (सव्रताः) निरन्तर वर्तमान सत्यताप-
णादि व्रतों से युक्त (समनसः) विज्ञान वाले (देवाः) निद्वान् (ये) जो
लोग (वासन्तिका) (ऋतू) वसन्तऋतु में हुए चैत्र वैशाख और पूषंक से
(अन्तरा) बीच में हुए (अग्नेयः) अग्नि हैं उनको (भक्तिकल्पमानाः)
समुख होकर कार्य में युक्त करते हुए भाव भोग (इन्द्रमिव) जैसे सत्तम

ऐश्वर्यं प्राप्तं ह्येते (अभिसंविशन्तु) स्व ज्ञोर से प्रवेश को लीके (इमे) से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (तया) तम (देयतया) परमपूज्य परमेश्वररूप देवता के सागर्य के साथ (अद्भिरस्वत्) प्राण के समान (ध्रुवे) दृढ़ता से चर्तते हैं वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष मदा संयुक्त (पीदतम्) स्थिर रहो ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को चाहिये कि जिन यमन्तस्तु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिन में तीव्रप्रकाश रूखी पृथिवी जल मध्यम ओषधियां फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला जिन २ होती हैं वस को युक्तपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ वैसे विद्वान् लंग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब शत्रुओं में सुख के लिये सशक्ति को बढ़ाते हैं वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥ २५ ॥

अपाढासीत्यस्य सविता ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता ।

निचूदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह कैसी हो यह वि० ॥

अपाढामि सहमाना सहस्वारांतीः सहस्व पृ-
तनायतः । सहस्रवीर्यांसिसा मांजिन्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे पत्नी को तू (अपाढा) शत्रु के असहने योग्य (अभि) है तू (सहमाना) पति आदि का सहन करती हुई अपने के उपदेश का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्रवीर्यां) असंख्यात प्रकार के पराक्रमों से युक्त (अ) है (सवि) सो तू (पृतनायतः) अपने भाप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए (आरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर और वैसे मैं तुम्ह को प्रयत्न रखता हूँ वैसे (सा) मुझ पति को (जिन्व) तृप्त किया कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो बहुत काल तक अत्यन्तपात्रत से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय यमन्त आदि शत्रुओं के पृथक् २ काम आगने, पति के

अपराध क्षमा और शत्रुओं का निवारण करने वाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को वृत्त करती है उसी को पति ही नित्य मान-गिदत धरता ही है ॥ २६ ॥

मधुवाता इत्यस्य गौतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृ-
द्गायत्रीछन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

जाने के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है ॥

मधुवातां ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोपधीः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे वसन्त ऋतु में (नः) इन लोगों के लिये (वा-
तः) वायु (मधु) मधुवाता के माय (ऋतायते) जल के समान चलते हैं
(सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (मधु) को मलता पूर्वक (क्षरन्ति) चरते
हैं और (ओपधीः) ओपधियां (माध्वीः) मधुर रस के गुणों से युक्त
(सन्तु) होवें वैसा प्रयत्न हम किया करें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वातवस्तु—जब वसन्त ऋतु आता है तब पुष्प
आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उस ऋतु में घूमना
होना प्रथम होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ २७ ॥

मधुनक्तमित्यस्य गौतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

गायत्रीछन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

किन्तु भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

मधुनक्तंमुतोपसो मधुं मत्पार्थिवश्च रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे वसन्त ऋतु में (मत्सु) रात्रि (मधु) को-
मलता से युक्त (उत) और (उपसः) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (वा-

धिंयम्) पृथिवी का (रजः) दृष्युक्त वा असरेणु आदि (मधुमत्) मधु
गुणों से युक्त और (द्यौः) प्रकाश भी (मधु) मधुरतायुक्त (पिता) र-
जा करने द्वारे के समान समय (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे वैसे पु-
क्ति से सम यमन्तऋतु का समय तुष भी किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में याचकलु०—जब यमन्तऋतु जाता है तब पत्नी
भी कोमल मधुर २ शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी भ्रान्तिदल होते हैं
॥ २८ ॥

मधुमानित्यस्य गीतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गापत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ यमन्तऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये इन वि० ॥

मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुमाँर ॥ अस्तुसूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे यमन्तऋतु में (नः) हमारे लिये (य-
मन्तऋतिः) वीचल आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशान्त कोमल गुणों वाले
और (सूर्यः) सूर्य भी (मधुमान्) प्रशान्त कोमल तपयुक्त (अस्तु)
होवे और (नः) हमारे लिये (गावः) गौओं के समान (माध्वीः)
कोमल गुणों वाली किरणें (भवन्तु) हैं। वैया ही उद्देश करे ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुष लोग यमन्तऋतु को प्राप्त होकर जिस
प्रकार के पदार्थों के होम से यमन्तऋति आदि कोमल गुणयुक्त हैं ऐसे यज्ञ
का अनुष्ठान करो और इस प्रकार यमन्तऋतु के सुख का सब जने तुष
लोग प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

अपामित्यस्य गीतमऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीगृष्टिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

किर भी वही वि० ॥

अपां गम्मन्सीदमा त्वा सूर्योऽभिताप्सी-

न्माग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनु-
 वीक्षस्वानुत्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य तू वनन्त ऋतु में (अयाम्) जलो के (गम्भन्)
 आधार कर्ता मेघ में (सीद) स्थिर हो जिस से (सूर्यः) सूर्य (एवा)
 तुम को (मा) न (अभिताप्सीत्) तपाये (दीव्याणाः) ऋष मनुष्यों में
 प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि त्रिजुली (एवा) तुम को (मा) न (अभि-
 ताप्सीत्) तप्त करे (अच्छिन्नपत्राः) सुन्दर पूर्ण अक्षयों वाली (प्रजाः)
 प्रजा (अनुत्वा) तरे अनुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुणों से युक्त (वृष्टिः)
 वर्षा (सचताम्) प्राप्त होवे वीने (अनुवीक्षस्य) अनुकूलता से विशेष
 करके विचार कर ॥ ३० ॥

भावार्थः— मनुष्य वनन्त और यौत्तमऋतु के बीच जलाशयस्य
 शीतल स्थान का सेवन करें जिस से गर्मी से दुःखित न हों और जिन यज्ञ
 से वर्षा भी ठीक २ हो और प्रजा कामन्दित हो उन का सेवन करो ॥३०॥

त्रिसमुद्रानित्यस्य गान्तम ऋषिः । वरुणो देवता ।

अष्टदुष्टन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को उस वनन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये
 यह विषय जगते मन्त्र में कहा है ॥

त्रैन्त्समुद्रान्त्सममृपत्स्वर्गान्त्पां पतिवृषमइ-
 ष्टकानाम् । पुरीषं वर्सानः सुकृतस्य लोके तत्र
 गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जिसे (अयाम्) प्राणों का (पतिः) रत्नक
 (वृषभः) वर्षा का हेतु (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारक जल को (वर्मानः) धा-
 रण करता हुआ भूष्य (इष्टकानाम्) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों
 के आधार रूप (त्रीन्) ऊपर नीचे और मध्य में रहने वाले तीन प्रकार

के (समुद्रान्) सब पदार्थों के स्थान भूत भविष्यत् और वर्तमान (स्वर्गान्) सुख प्राप्त कराने हारे लोकों को (ममस्रान्) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हूजिये (यत्र) जिन धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग में (सुहृन्स्य) सुन्दर धर्म करने हारे पुरुष के (लोके) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (पूर्वं) प्राचीन लोग (परेताः) सुख को प्राप्त हुए (तत्र) उसी वसन्त के सेवन रूप मार्ग में आप भी (गच्छ) चलिये ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मोत्तमाओं के मार्ग से चलते हुए शारीर वायिक और मानस तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त हों। और जिस में कामना पूरी है वैसे प्रयत्न करें। सेवा वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से चलते हुए अपने २ चिन्ह प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओं के अनुकूल उपवहार के आनन्द को प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

महीद्यौरित्यस्य गीतम ऋषिः । व्यावापृथिव्यौ देवते ।

निचृद् गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

माता विद्या अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें इस वि० ॥

**मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्ष-
ताम् । विपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥**

पदार्थः—हे मातापिता जैसे (मही) यज्ञ (द्यौः) सूर्यलोक (च) भी (पृथिवी) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करने हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सेवने योग्य विद्यापदार्थ उपवहार को (निमिक्षताम्) सेचन अपनाए पूर्ण होने की इच्छा करो और (भरीमभिः) धारण पोषण आदि कर्मों से (नः) हमारा (विपृताम्) पालन करो ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः—द्विजे वसन्तऋतु में पृथिवी और सूर्यों सब संसार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता विद्या को चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये वसन्तादि ऋतुओं में अन्न विद्या-दान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थों करें ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता ।

निचृद्गागर्त्रा छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य पञ्चवीं को आचरण करना चाहिये इसी वि० ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो ब्रतानि प-
स्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तू (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य की इच्छा करने हारे जीव का (युज्यः) उपासना करने योग्य (सखा) मित्र की समान वर्तमान है (यतः) जिस को प्रताप से यह जीव (विष्णोः) उपासक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की रचना पाठन प्रलय काने और न्याय आदि कर्मों और (ब्रतानि) सत्यज्ञापनादि नियमों को (पश्ये) स्वर्ण करता है इस लिये हम परमात्मा के इन कर्मों और ब्रतों को तुम लोग भी (पश्यत) देखो आचरण करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—श्रीसे परमेश्वर का मित्र उपासक परमात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों को अनुसार सृष्टि के कर्मों के अनुकूल आचरण करे और जाने धीरे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥ ३३ ॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता ।

धुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुषों के समान विद्वान् खिर्वा भी उपदेव करें पश्य वि० ॥

ध्रुवासिं ध्रुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो
अधिजातवेदाः । स गांयत्र्यात्रिष्टुभांऽनुष्टुभां
च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे खिर्वा तू (ध्रुवा) शुभगुणों का आचरण करने हारी (ध्रुवा) स्थिर (अग्नि) है शीघ्र (एभ्यः) इन (योनिभ्यः) कारणों से (सः) यह (जातवेदाः) महिष्ठ पदार्थों में विद्यमान वायु (मयमम्)

पदिष्ठे (अचिक्रमि) अचिक्रमता से प्रकट होता है यैवे (इतः) इन कर्म के अनुष्ठान से वर्षोपरि प्रसिद्ध हूजिये सैवे तैरा पति (गावः) गावो (भिक्षुमा) भिक्षुपु (य) भीर (अनुष्ठुमा) अनुष्ठुदु मय्य से विदु हुं विद्या से । प्रज्ञानम् । बुद्धिमान् होकर (देःभ्यः) अच्युतुन या वि दानो से (ह्य स् । देने लेने गे रा विद्यान (गदसु । प्राप्त होवे यैवे इन विद्या से बुद्धिमती हे के भाप या लोगो से अस्त्रपारिणी कथा विद्यान को प्राप्त हे यं ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कार्यों के निमित्तों को ज्ञान विद्वान् होकर भीमे पुरुषों को शस्त्रों का उद्देश करते हैं यैवे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिकर्म के निमित्तों को ज्ञान के विधों को यैदार्थमारोपदेशों को करें ॥ ३५ ॥

इपे रागद्वयस्य गोगम प्रापिः । जातयेदा द्यता ।

निचृद्बुद्धी छन्दः । मध्यमः हररः ॥

अथ स्री पुरुष विवाह काकं केने यत्तं इन वि० ॥

इपे रायं रंमस्व महंसे द्युम्न ऊर्जे अपंग्वा-
य । सम्राडंसि स्वराडंसि सारस्वता त्वात्सा
प्रावताम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे पुरुष तौ तू (मयाद्) विद्यादिशास्त्रगुणों से सर्व प्रजा-
शान्त (अग्नि) है । हे स्री को तू (मयाद्) अग्नि साय विद्यान ज्ञान
कार से गोप्रापमान (अग्नि) है गो तू देतो (यमे) विद्यान (गुणे)
यन (अहमे) अन् । द्युम्ने) यज्ञ और अन्न (अग्ने) यज्ञकर्म और (अ-
वसाय) अन्तर्गतों को प्राप्ति के निमित्त (मयाव) यज्ञ का मया (मन्त्री)
बुद्धिदक के अन्तर्गतों को प्राप्त होकर (मयावनी) यैद्वानों से
नवदेश में ज्ञान हे के तू देतो यं पुरुष इन कर्मगोत और अन्तर्गत
को को । मयावद् यज्ञ अन्ति करी यह (यथा) तू से मयादेस इन-
हुं ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—विवाह करके स्त्री पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् हो कर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठगुणों से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए चम्पानुफूलता से वसों के सर्तानों को उपास्य कर इन संसार में निरप क्रोधा करें ॥ ३५ ॥

अग्नेयुक्ष्वेत्यस्य अरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

अथ शत्रुओं को कीरे जीतना चाहिये यह धि० ॥

अग्नें युक्ष्वाहि ये तवाश्वांसो देव साधवः ।

अरं वहन्ति मन्यवै ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (देव) श्रेष्ठविद्या वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (ये) जो (तव) भाप के (साधवः) अभीष्ट साधने वाले (अश्वासः) शिक्षित घोड़े (मन्यवै) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (अरम्) मासखर्च के साथ (वहन्ति) रथ आदि यानों को पहुंचाते हैं उन को (हि) नियम कर के (युध्वा) संयुक्त कीजिये ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—राजादिमनुष्यों को चाहिये कि यस्मत् प्रातु में पहिले घोड़ों को शिक्षादे और रथियों को रथों पर नियुक्त करके शत्रुओं को जीतने के लिये यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ष्वाहीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

अथ राजपुरुषों को घषा करना चाहिये यह धि० ॥

युक्ष्वा हिदेवहूतं माँ२॥ अश्वोँ२॥ अग्ने र्-
थीरिव । निहोतां पूर्यः संदः ॥ ३७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (पूर्यः) पूर्य विद्वानों से पिता को प्राप्त (होता) दासशाल भाप (देवहूतमान्) विद्वानों से स्पृहां घा

पहिले (अधिज्ञप्ते) अधिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इतक अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध पूजिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) य (त्रिष्टुप्ता) त्रिष्टुप् (च) और (अनुष्टुप्ता) अनुष्टुप् मन्त्र से हुई विद्या से (प्रजानन्) बुद्धिमान् होकर (देभ्यः) अक्षयुग य दानों से (शकम्) देने लेने योग्य विज्ञान (बहत्तु) प्राप्त होवे वैसे विद्या से बुद्धिमती होके आप स्त्री लोगो से ब्रह्मचारिणी कन्या को प्राप्त होवें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निर्मित जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शस्त्रों का उपदेश करते हैं वे स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥ ३४ ॥

इषे रागइत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता ।

निचृद्वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ स्त्री पुरुष विवाह काके कैसे यज्ञे इम वि०

इषे राये रंमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे

य । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वते

प्रावताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे पुरुष जो तू (सम्राट्) विद्यादि श्रमान (असि) है । हे स्त्री जो तू (स्वराट्) अपचार से शोभायमान (असि) है सो तुम दोनों (यम (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (सप्त्याय) मन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) फूँदक के समान केसलता को प्राप्त होकर उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री पुरुष यों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह है ॥ ३५ ॥

ऋचे त्वेत्यस्यविरूपऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्मृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये इन वि० ॥

ऋचे त्वां रुचेत्वां भ्रासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूद्विदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वा-
नरस्य च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जिस तुम्हको (विद्यस्य) ममस्त (भुवनस्य)
संगार के सद्य पदार्थों (च) और (वैश्वानरस्य) संपूर्ण मनुष्यों में शी-
मायमान (अग्नेः) विजुली रूप (वाजिनम्) जानी लोगों का अवयव
रूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) प्रसिद्ध हुआ है उन (ऋचे) स्तुति
के लिये (त्वा) तुम्हको (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुम्हको (भ्रासे)
विज्ञान की प्राप्ति के मर्ष (त्वा) तुम्हको और (ज्योतिषे) न्याय के प्र-
काश के लिये भी (त्वा) तुम्हको हम लोग आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी
के सेवन से सद्य मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृद्विष्णुछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा
वर्चस्वान् । महस्रदा अंसि महसाय त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से
(अग्निः) अग्नि के तुल्य (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश युक्त (वर्चसा)
अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्म) जैसे सुवर्ण सुव
देवे जैसे असंख्य सुवर्ण के देने वाले (अग्नि) है उन (त्वा) आप का (म
हसाय) अमूल्य विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग सहकार करें ॥ ४० ॥

शिक्षा किये (अश्वान्) घोड़े को (रथीरिय) शत्रुओं के साथ बहुत रथा-
दि सेना अंगयुक्त घोड़ा के समान (युद्ध) युक्त कीजिये (हि) निश्चय
करके न्यायासन पर (नियतः) निरन्तर स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि बड़े सेना के
अंगयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अयुक्तों को कार्य में संयुक्त
करें । और सेनापति आदि को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त
न्याय क्रिया करें ॥ ३७ ॥

सम्यक्स्त्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिये यह त्रि० ॥

सम्यक् स्त्रवन्ति सरितो न धेनां अन्तर्हृदा
मनसा पूयमानाः । घृतस्य धारां अभिचाक-
शीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जीवे (अग्नेः) त्रिजुली के (मध्ये) बीच में बस-
मान (हिरण्ययः) तेजोभाग के समान तेजस्वी कीर्ति चाहने और विद्या
की इच्छा रखने वाला मैं जो (घृतस्य) जल की (वेतसः) वेगवाली (धा-
राः) प्रवाहरूप (सरितः) नदियों के (न) समान (अन्तः) भीतर (हृदा)
अन्तःकरण के (मनसा) विज्ञानरूप वाले चित्त मे (पूयमानाः) पवित्र
हुई (येताः) वाणी (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्त्रवन्ति) चलती हैं वन की
(अभिचाकशीमि) सम्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूँ ये
तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमाछन्दः—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक
या कम चलती शूद्र हुई नदियां समुद्र को प्राप्त हो कर स्थिर होती हैं वैसेही
विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर जनों
को प्राप्त करायें ॥ ३८ ॥

ऋचे त्वेत्यस्य विरूपश्रपिः । अग्निर्देवता । निचृद्चृदती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये इन वि० ॥

ऋचे त्वां रुचेत्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूद्विदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वान-
रस्य च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जिम तुम्हको (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार के सब पदार्थों (च) और (वैश्वानरस्य) संपूर्ण मनुष्यों में शी-
घ्रायमान (अग्नेः) विजुली रूप (वाजिनम्) ज्ञानी लोगों का अवयव
रूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) पविट्ट हुआ है तम (ऋचे) स्तुति
के लिये (त्वा) तुम्हको (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुम्हको (भासे)
विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (त्वा) तुम्हको और (ज्योतिषे) न्याय के प्र-
काश के लिये भी (त्वा) तुम्हको हम लोग आज्ञा करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होवे उसी
के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होयें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूपश्रपिः । अग्निर्देवता ।

निचृद्विद्विच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जित भी एक विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा
वर्चस्वान् । महस्रदा आसि महसाय त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से
(अग्निः) अग्नि के स्वरूप (ज्योतिष्मान्) प्रशान्त प्रकाश युक्त (वर्चसा)
अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्म) जैसे सुवर्ण हुए
देवे जैसे असंख्य हुए के देने वाले (अग्नि) हे तम (त्वा) आप का (न
इत्याय) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग उत्कार करें ॥ ४० ॥

भाषार्थः—इमं मन्त्रं मे वाचकलुः—ननुष्यो को योष्य है कि जो अग्नि और सूर्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पद के पूर्ण विद्या के प्रादुर्भाव होवे ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे विद्वान् जो पुरुष क्या करें इस वि० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्र-
तिमां विश्वरूपम् । परिवृद्धि हरसामा भिम-
स्थाः शतारुषं कृणुहि त्रियमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष आप जैसे बिजुली (पयसा) जल से (मह स्रस्य) असंख्य पदार्थों को (प्रतिमाम्) परिमाण करने हारे सूर्य के समान निश्चय करने हारी बुद्धि और (विश्वरूपम्) सब रूप विषय को दिखाने हारे (गर्भम्) स्तुति के योग्य (आदित्यम्) सूर्य को धारण करती है वैसे अन्तःकारण को (समङ्धि) अच्छे प्रकार शोधिये (हरसा) प्रकृतित तेज से रोगों को (परि) सब ओर से (वृद्धि) बढ़ाइये और (त्रियमा- नः) बुद्धि को प्राप्त होके (शतारुषम्) नी वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को (कृणुहि) कीजिये और कभी (मा) मत (अभिमस्थाः) अभिमान कीजिये ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित हो कर सौभाग्य जाने वाले सन्तानों को उत्पन्न करो जैसे विद्युत् अग्नि से बनाए हुए सूर्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखाने हारे होते हैं इनसे कभी अभिमानी होके बिषयाम्क्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करे ॥ ४१ ॥

वातस्यज्जन्तमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं विद्वान् पुरुष को वया काना चाहिये यह वि० ॥

वातस्यं जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानथ
संगिरस्य मध्यं । शिशुं नदीनाथ हरिमद्रिवुध्न-
मग्ने माहिंसीः परमे व्योमन् ॥ ४२ ॥

पदार्थः— हे (माने) तेज स्यन् विद्वान् भाव (परमेष्ठयोमन्) सर्व
व्याप्त उत्तम भाकाग मे (वातस्य) वायु के (मध्ये) मध्य मे (जूतिम्)
वेगरूप (अग्निम्) अग्नि के (मरि रू) जलमय (वरुणस्य) उत्तम समुद्र
के (नाभिम) बन्धन को भीर (नदीनाम्) नदियों के प्रभावमे (जज्ञानम्)
प्रकट हुए (शिशुम्) बालक के तुल्य वर्तमान (हरिम्) नीलवर्णयुक्त
(अद्रिवुध्नम्) मृहन मेघ को (मा) मत (हिंसीः) भट्ट कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः— हम मन्त्र में वायुकतुल्य-मनुष्यो को चाहिये कि प्रमाद को
छोड़ के आकाश में वर्तमान वायु के वेग भीर वर्णों के प्रबन्ध रूप मेघ का
विनाश न करके अपनी २ अवस्था को धर्यावे ॥ ४२ ॥

अजस्रमित्पस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैयताः स्वरः ॥

किं वह विद्वान् वया करे यह अग० ॥

अजस्रमिन्दुमरुपं भुरण्युमग्निर्माडे पूर्वचिं-
ति नमोभिः । सपर्वाभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां
माहिंसीरदिति विराजम् ॥ ४३ ॥

पदार्थः— हे विद्वान् पुरुष कीसे मे (पर्यन्तिः
मोभिः) अर्कों के साथ वर्तना
सहृण (भुरण्यु
मि

युक्त (न
) चाहे के
मिंत (अ-
खोजता हूं
करता हुआ

(अदितिम्) अखण्डित (धिराजम्) विविध प्रकार के पदार्थों से जोसा-
यमान (गाम्) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूँ वैसे ही (मः) जो आप इस
अग्नि और इस पृथिवी को (मा) मत (हिंसोः) नष्ट कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अ-
ग्नि जल और अन्न का सेवन कर के राज्य और पृथिवी को सदैव रक्षा करें
जिन से सब सुख प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

वरुत्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निष्पृष्टिषट्पु-
च्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उम विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिये वह वि० ॥

वरुत्रीं त्वष्टुर्वरुणास्य नाभिमविं जज्ञानाथ
रजंसः परस्मात् । महीथ साहस्रीमसुरस्य मा-
यामग्ने माहिथसी परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष भाव (त्वष्टुः) छेदन कर्ता मूषं
के (वरुत्रीम्) ग्रहण करने योग्य (वरुणस्य) जल की (नाभिम्) रोकने
हारी (परस्मात्) श्रेष्ठ (रजसः) लोक से (जज्ञानाम्) सत्त्व दुई (अ-
सुरस्य) मेघ की (मायाम्) जलाने वाली विजुली की और (माहसीम्)
असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने वाली (अथिम्) रक्षा आदि का निमित्त
(परमे) मघ से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान उपाप्त जगदीश्वर में
वर्तमान (महीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी का (मा) मत (हिंसीः) नष्ट
कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थः—मघ मनुष्यों को चाहिये कि जो वह पृथिवी उत्तम का-
रण से सत्त्व दुई मूर्च्छा जिन का आकर्षण कर्ता जल का आधार मेघका
निमित्त असंख्य सुख देने वाली परमेष्ठि से रची है उस को गुण कर्म और
स्वभाव से ज्ञान के द्वारा के लिये उपयुक्त करें ॥ ४४ ॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । षिष्टुष्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विद्युत् इव विद्युत् को वार करणा चाहिते मद् वि० ॥

यो अग्निग्ने ग्यजायतु शोकात्प्रथिव्या
 उत वा दिवस्पतिं । येन प्रजा विश्वकर्मा जजान
 तमग्ने हेतुः पतिं वृणक्तु ॥ ४५ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) विद्युत् जगत् (य) को प्रथिव्या () पृथिवी के
 (शोकान्) दुःखान् हारिं करितुं (जजान) जगता (दिव) मूर्ध्नि मे (अग्नेः)
 सिद्धिं कृप्य अग्नि मे (पतिं) प्रपन्नं पतिं (अद्यत्तावत्) अद्यत्त
 होता है (हेतुः) कृतं मे (विवृणक्तु) मद्य कर्त्तुं वा आभारं हेतुवर
 (वृणक्तु) वृणक्तुं को (पतिं) अद्य भोः मे (जजान) जगता है (तम्)
 जगत् अग्नि को (मे) मेमां (हेतुः) हेतुं (पतिं वृणक्तु) मद्य प्रकारं मे उद्यत्त
 करे ॥ ४५ ॥

भाषार्थः हे विद्युत् जो तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फोड़ के और जो
 मूर्ध्नि के प्रकाश मे सिद्धिं निकलती है तुम विद्युत्कारी अग्नि मे मद्य प्रा-
 णियों को रहित रखो और जिन अग्नि मे हेतुवर मद्य की रक्षा करता है
 उस अग्नि को विद्युत् को जानो ॥ ४५ ॥

पित्रं देवानामित्यस्य तिस्र्य ऋषिः । मूर्धा देवता । निवृत्तिप्रपु
 छन्दः । धैर्यतः स्वरः ॥

अद्य हेतुवर देता है मद् वि० ॥

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरु-
 गास्याग्नेः । आ प्रा द्यावां पृथिवी अन्तरिक्षं
 मूर्ध्नि आत्मा जगत्स्तस्युपश्च ॥ ४६ ॥

पदार्थः— हे मनुष्या आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथिवी
 आदि दिव्य पदार्थों के धीय (पित्रम्) आद्यत्तं कृप्य (अनीकम्) मेमां के

समान क्रियों ने युक्त (मित्रस्य) प्राण (यरुणस्य) उदान और (अग्नेः) प्रणिह्व अग्नि के (चतुः) दिशानेवाले (सूर्यः) सूर्य के समान (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (त स्थुपः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्दामी हो के (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाश रूप जगत् और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (अप्राः) उपाप्त हो रहा है उसी जगत् के रचने वालन करने और संहार-प्रलय करने हारे उपापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्त-यह जगत् ऐसा नहीं कि जिस का कर्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे जो ईश्वर मय का अन्तर्दामी सब जाँवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने द्वारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने द्वारा है उसी की उपासना से घर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होयें ॥ ४६ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को बया करना चाहिये यह वि० ॥

इमं माहिंसीर्हिपादं पशुं सहस्राक्षो मेधा-
य चीयमानः । मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन
चिन्वानस्तन्वो निपीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं
हिष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) बुद्ध की प्राप्ति के लिये (चीयमानः) बढ़ें हुए (सहस्राक्षः) हजारों प्रकारकी दृष्टि वाले राजन् तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पैर वाले मनुष्यादि और (मेधम्) पवित्रकारक फलमद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसीः) मारा कर उन (पशुम्) पशु की (जुष-

स्व) मेवा का (तेन) उम पशु से (चिन्वानः) घड़ना हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निपीद) निरन्तर स्पर्श हो यह (ते) तेरे से (शुक्) शोक (मयुम्) शस्पादिनाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरे (यम्) जिम शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उव को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४३ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य मद्य के उपकार करने वाले पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार ले के मद्य मनुष्यों की आभन्द देवे जिम जंगली पशुओं से घाम के पशु सेही और मनुष्यों की हानि हो उन को राजपुरुष मारें और बधन करें ॥ ४३ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी
पङ्क्तिरुच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह मनुष्य क्या करे यह वि० ॥

इमं मा हिंसीरिरेकशफं पशुं कनिक्रुदं वाजि-
नं वाजिनेषु । गौरमारुण्यमनुं ते दिशामि तेनं
चिन्वानस्तन्वो निपीद । गौरं ते शुगृच्छतु
यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू (वाजिनेषु) मघाम के कागों में (इमम्) इन (एकशफम्) एकसुरपुक्त (कनिक्रुदम्) शीघ्र विकल उपचा को प्राप्त हुए (वाजिभम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को (मा) (हिंसीः) मत मार मैं ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (भारुषवम्) जङ्गली (गौरम्) गौरपशु की (दिशामि) भिन्ना करता हूँ (तेन) उम-के रक्षण से (चिन्वानः) युद्धि को प्राप्त हुआ (तन्वः) शरीर में (निपीद) निरन्तर स्पर्श हो (ते) तेरे से (गौरम्) श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति

(शुक्) शोक (शृच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिन शत्रु को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तुम्हारे (शुक्) शोक (शृच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि एक सुख वाले चोड़े आदि पशुओं और उपकारक घन के पशुओं को भी कभी न मारें जिन के मारने से जगत् की हानि और न मारने से मद्य का उपकार होता है उन का उद्देश्य पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उन को मारें ॥ ४८ ॥

इमं साहस्रमित्यस्य विरूप श्रुतिः । अग्निर्देवता ।

कृतिश्छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहिये यः ॥

इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये । घृतं दुहानामदितिं जनायाग्नौ मा हिंसीः परमे व्योमन् । गव्यमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निपीद । गव्यन्ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजसूत (जनाय) मनुष्यादिप्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) अक्षय सुखों का साधन (शतधारम्) अक्षरूप दूध की धाराओं के निमित्त (उपच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालनके योग्य (उत्तमम्) कुए के समान रखा करने वाले वीर्यसंचक बैल और (घृतम्) घी को (दुहानाम्) पूर्ण करती हुई (अदितिम्) नहीं मारने योग्य गी को (माहिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जित (आरण्यम्) घन में रहने वाले (गव्यम्) गी के समान नीलगाय मे खेती की हानि होती है तो उन को (अनुदिशामि) उपदेश करता हूँ (तेन)

उम के मात्से से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (ठपोमन्) नयंत्र ठयापक परमात्मा और (मरिरस्य) विस्तृत ठयापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) सृष्टि को प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर मध्य में (निपीद्) निषाम कर (ते तेरा (शुक्) शोक (तम्) उम (गवयम्) रोम का (अच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिम (ते) तेरे शत्रु का (द्विषमः) हम लोग द्वेष करें उम को भी (शुक्) शोक (अच्छतु) प्राप्त होवे ॥४८॥

भावार्थः-इम मंत्र में दोषकलु-हे राजपुरुषो तुम लोगों को चाहिये कि जिम बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम जिम गी आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थे होते हैं कि जिम के दूध आदि से मय मजा की रक्षा होती है उन को कत्ती मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उन को राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड दें और जो जगल में रहने वाले नीलगाय आदि मजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥ ४८ ॥

इममूर्णायुर्मितपस्य विरूप श्रुपिः । अग्निर्दंशता । कृतिश्छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

किर किम पशुओं को न मारना और किम को मारना चाहिये यह ॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्वि-
पदां चतुष्पदाम् । त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्र-
मग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् । उष्ट्रमारण्य-
मनुं ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निपीद् ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु
॥ ५० ॥

पदार्थः- हे (मग्ने) पिता को प्राप्त हुए राजपू तू (वरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ शत्रु के (नाभिम्) संयोग करने हारे (इमम्) हम (द्विष

दाम्) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि (चतुष्पदाम्) चार पगवाले (पगुनाम्) गाय आदि पशुओं की (त्वचम्) चमड़े से ढांकने वाले और (त्वष्टुः) सुख प्रकाशक ईश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमम्) आदि (जनित्रम्) उत्पत्ति के निमित्त (परमे) उत्तम (ठ्योमन्) आकाश में वर्तमान (ऊर्णायुम्) भेड़ आदि को (माहिंमी.) मत मार (ते) तेरे लिये मैं ईश्वर (यम्) जिस (आरययम्) घनेले (उष्ट्रम्) हिंसक ऊंट को (अनुदिशामि) बतलाता हूँ (तेन) उस से सुरक्षित अन्नादि से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निपीद) निवास कर। (ते) तेरा (शुक्) शोक उस जंगली ऊंट को (ऋच्छतु) प्राप्त हो और जिस द्वेषी जन से हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तम्) उस को (ते) तेरा (गुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५० ॥

भाषार्थः—हे राजन् जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती है और जो ऊंट मार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उन को जो दुष्ट जन मारा चाहें उन को संसार के दुःखदायी, समझो और उन को अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्कृदन्तः ।
निपादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन से पशु न मारने और कौन से मारने चाहिये यह चि० ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ठ शोक्रात्सो अंपश्यज्जनि-
तारमग्रै । तेन देवादेवतामग्रमायुंस्तेन रोहमा-
यन्नुपमेध्यासः । शर्ममारुण्यमनु ते दिशामि
तेन चिन्वानस्तन्वो निपीद । शर्मं ते शुर्ग-
च्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुर्गच्छतु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू जो (हि) निश्चित (भजः) यकरा (भज-
निष्ठ) उपाय होता है (सः) वह (अग्ने) प्रथम (जनितारम्) उपायदक
को (अपश्यत्) देखता है (जित मे (मेध्यामः) पवित्र हुए (देवाः)
विद्वान् (अयम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्यगुणों के (उपायन्)
उपाय को प्राप्त होते हैं और जित मे (रोहम्) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को (प्रा-
यन्) प्राप्त होयें (तेन) उन मे उत्तम गुणों उत्तम सुख तथा (तेन) उन
से वृद्धि को प्राप्त हो जो (आगयन्) धनेली (शरभम्) शोही (ते) तेरी
प्रजा को हानि देने वाली है उन को (अनुदिशामि) घतलाता हूं (तेन)
उन मे यथाहं हुय पदार्थमे (चिन्वान) यदता हुना (तस्यः) शीर में
(निपीद) निदान का और (तम्) उन (शरभम्) शरभकी को (ते)
तेरा (शुक्) शोक (शक्यत्) प्राप्त हो और (ते) तेरे (यम्) जित
शत्रु मे हम लोग (द्विषन्) द्वेष करें उन को (शोकात्) शोकरूप (आने)
अग्नि मे (शुक्) शोक अर्थात् शोक मे बट कर शोक अत्यन्तशोक (श-
क्यत्) प्राप्त होयै ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उचित है कि यकरे और मार आदि घेष्ट
पशु पक्षियों को न मारें और हम की रक्षा काके उपकार के लिये मनुष्य करें
और जो अष्टे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हैं उन को शीघ्र मार-
हना देयें हा जो खेती को उजाहने हारे खयाहो आदि पशु हैं उन को प्रजा
की रक्षा के लिये मारें ॥ ५१ ॥

त्वं गविष्टेत्यस्योपाना ऋषिः । अग्निर्देयता ।

निष्कृत्वागत्री छन्दः । पङ्क्तः चरः ॥

किर किने पशुओं की रक्षा करना और हमका चाहिये यह वि० ॥

त्वं गविष्ट इणुषो नून पाहि शृणुधी गिरः।
रक्षां लोकमुत त्मनां ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (गविष्ट) अत्यन्त युवा (रवम्) नू रक्षा किये हुए इ-
न पशुओं से (दाशुषः) सुखदाता (नम्) अर्थात् मनुष्यों की (पाहि)

रक्षा कर दूज (गिरः) मत्स्य प्राणियों को (शृणुषि) सुन और (रक्षता)
 अपने आत्मा से मनुष्य (उत्) और पशुओं के (तोकम्) बधों को
 (रक्ष) रक्षा कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बधते
 हैं और कृपाय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख को प्राप्त हो-
 ते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी
 पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरेत्वेति मध्यस्य
 ब्राह्मी जगती छन्दः । निपादः स्वरः । गायत्रेणो-
 त्पुनरस्य निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ॥

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले कृपा उपदेश करें यह विषय ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्गन्त्सादयाम्य-
 पान्त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सा-
 दयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदेने साद-
 यामि समुद्रे त्वा सदेने सादयामि । सरिरे त्वा
 सदेने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा
 सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदेने सादयाम्यपां त्वा
 सुधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां
 त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पार्थसि सादयामि
 गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा

छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा साद-
 याम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तो-
 न त्वा छान्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः— हे मनुष्य जीमे शिक्षा करने वाला मैं (अवाप्) प्राणों की
 रक्षा के निमित्त (एमन्) गमनशील वायु में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि)
 स्थापित करता हूँ (अवाप्) जलों की (ओद्धान्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों
 में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) स्थापन करता हूँ (अवाप्) प्राप्त हुए का-
 ष्ठीं दो (अस्मन्) रास में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) संयुक्त करता हूँ
 (अवाप्) ठपास हुए बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतिषी) प्रकाश में
 (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अवाप्) अवकाश या-
 ले (अपने) स्थान में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) बैठाता हूँ (मदने)
 स्थिति के योग्य (अण्ये) प्राणविद्या में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि)
 संयुक्त करता हूँ (मदने) गमनशील (ममुद्रे) मन के विषय में (त्वा)
 तुम्ह को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूँ (मदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे)
 वाणी के विषय में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (अवाप्)
 प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) घर में (त्वा) तुम्ह को (साद-
 यामि) स्थापित करता हूँ (अवाप्) अनेक प्रकार के ठपास शब्दों के संघ-
 न्धी (सधिये) उस पदार्थ में कि जिस से अनेक शब्दों का समान यह जीव
 सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) स्थित
 करता हूँ (अवाप्) जलों के (मदने) अन्नरिक्तरूप स्थान में (त्वा) तुम्ह
 को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अवाप्) जलों के (सधिये) तुल्य
 स्थान में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अवाप्) जलों
 के (योनी) समुद्र में (त्वा) तुम्ह को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ ।
 (अवाप्) जलों की (पुरीषे) रैती में त्वा तुम्ह को (सादयामि) नियुक्त
 करता हूँ (अवाप्) जलों के (पायसि) भस्म में (त्वा) तुम्ह को (साद-

रक्षा कर वृक्ष (गिरः) गत्य प्राणियों को (ऋणुधि) सुप्त नीर (रमता)
 भवने आत्मा से मनुष्य (उरु) नीर पशुओं के (तोकम्) बर्षों की
 (रक्ष) रक्षा कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते
 हैं और रूपामय उपदेशों को सुगते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख का प्राप्त हे-
 ते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्नित्यस्पोशना ऋषिः । आपां देवताः । पूर्णस्य ब्राह्मी
 पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरंत्वेति मध्यस्य
 ब्राह्मी जगती छन्दः । निपादः स्वरः । गायत्रेणे-
 त्युत्तरस्य निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ॥
 पञ्चमः स्वरः ॥

अस्य पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले रूप उपदेश करें यह विषय ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्गन्त्सादयाम्य-
 पान्त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सा-
 दयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदनं साद-
 यामि समुद्रे त्वा सदनं सादयामि । सरिरे त्वा
 सदनं सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा
 सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदनं सादयाम्यपां त्वा
 सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां
 त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पार्थसि सादयामि
 गायत्रेणां त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा

छन्दसा सादयामि जागंतेन त्वा छन्दसा साद-
याम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तो-
न त्वा छान्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः— हे अनुष्य जैसे शिक्षा करने वाला मैं (अयाम्) प्रार्थना की
रक्षा के निमित्त (एमम्) गगनशील वायु में (त्वा) तुझ को (सादयामि)
स्थापित करता हूँ (अयाम्) जलों की (ओद्गन्) आर्द्रतायुक्त भोजधियों
में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापन करता हूँ (अयाम्) प्राप्त हुए का-
ष्टों के (मस्मन्) रास में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूँ
(अयाम्) प्राप्त हुए घिजुली आदि अग्नि के (उषोत्तिषी) प्रकाश में
(त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अयाम्) अवकाश वा-
ले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) घेँटाता हूँ (मदने)
स्विति के योग्य (अणवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझ को (सादयामि)
संयुक्त करता हूँ (मदने) गगनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा)
तुझ को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूँ (मदने) प्राप्त होने योग्य (भरिरे)
वाणी के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) समुक्त करता हूँ (अयाम्)
प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) पर मैं (त्वा) तुझ को (साद-
यामि) स्थापित करता हूँ (अयाम्) अनेक प्रकार के ब्रह्म शब्दों के संब-
न्धी (सधिवि) वसु पदार्थों में कि जिस में अनेक शब्दों का गगन यह नीच
गुणना है अर्थात् काम के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थित
करता हूँ (अयाम्) जलों के (मदने) अन्नगिहद्वय स्थान में (त्वा) तुझ
को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अयाम्) जलों के (सधये) सुन्दर
स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अयाम्) जलों
के (योनी) समुद्र में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ ।
(अयाम्) जलों की (पुरीये) रेली में त्वा तुझ को (सादयामि) नियुक्त
करता हूँ (अयाम्) जलों के (पायनि) अन्न में (त्वा) तुझ को (साद-

यानि) प्रेरणा करता हूँ (गायत्रेण) गायत्री छन्द से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (तथा) तुम्ह को (सादयानि) नियुक्त करता हूँ (त्रै-
 प्तुभेन) त्रिपितृप् मन्त्र से विहित (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (तथा) तुम्ह
 को (सादयानि) नियुक्त करता हूँ (जागतेत) जगती छन्द में कहे (छन्द-
 सा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (तथा) तुम्ह को (सादयानि) नियुक्त क-
 रता हूँ (आनुपितृभेन) अनुपितृप् मन्त्र में कहे (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ
 (तथा) तुम्ह को (सादयानि) प्रेरणा करता हूँ । और (पारुक्तेन) पङ्क्ति
 मन्त्र से प्रकाशित हुए (छन्दसा) निर्मल अर्थ के साथ (तथा) तुम्ह को
 (सादयानि) प्रेरित करता हूँ वैसे ही तू वर्तमान रह ॥ ५३ ॥

भावार्थः—छिद्धानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों
 को वेद षड् और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके
 उन को उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥ ५३ ॥

अथ पुर इत्यस्पोशना ऋषिः । प्राणा देवताः । स्वराद् ब्राह्मी
 जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अथ मनुष्यों को सृष्टि से कौन २ उपकार देने चाहिये यह वि० ॥

अयं पुरो भुवस्तस्यं प्राणो भौवायनो वस-
 न्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं
 गायत्राद्गुं प्राञ्चशुं प्राञ्चशं स्त्रिवृत् त्रिवृतां रथन्तरं
 वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं
 गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे छिद्दिने (अयम्) यह (पुरो भुवः) प्रथम होने वाला
 अग्नि है (तस्य) उस पर (भौवायनः) सिद्ध कारण से रचा हुआ (प्राणः)
 जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणों की रचना का हेतु (वसन्तः)
 शुद्धि आदि में उपाने द्वारा वसन्त ऋतु (वासन्ती) वसन्त ऋतु का

जिन में व्याख्या है वह (गायत्री) गाते हुए का रक्त गायत्रीमंत्रार्थ
 ईश्वर (गायत्री) गायत्री मन्त्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्)
 गायत्री ने (उपांशुः) समीप से ग्रहण किया जाय (उपांशोः) उभय लप
 से (त्रियुत्) कर्म उपासना और ज्ञान के महित वर्तमान फल (त्रियुगः)
 उभय तीन प्रकार के फल से (रघन्तरग) रमणीय पदार्थों से सारने द्वारा सु
 ख और (यमिष्ठः) अतिशय करके नियाम या हेतु (श्रयिः) सुख प्राप्त
 कराने द्वारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीतवा) अपने मन्तानों के रक्त पति
 को ग्रहण करने वाली (स्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) मन्तानोस्वत्ति के
 लिये (प्राणम्) धलपुष्क जीवन का ग्रहण करते हैं धीरे धीरे साथ में मन्ता-
 न होने के लिये धल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५४ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषोत्तुम्हें योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को
 उपदेश में छा के परस्पर प्रीति के साथ अग्नि विषयसेवा को छोड़ और
 सब संसार से धल का ग्रहण करके मन्तानों को उत्पन्न करो ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणं त्वग्गोशना ऋषिः । प्रजापतिर्दधता ।

निचृद्धरिगतिधृतिदछन्दः । पञ्जः स्वरः ॥

अथ मनुष्यों को योग्यस्तु में कैसे वर्तना चाहिये यह वि० ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्म-
 गां ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् अैष्मीं त्रिष्टुम्भः स्वार-
 म् । स्वारादन्तर्यामांऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्च-
 दशाहृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया
 त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री धीसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह
 (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलना है
 (तस्य) उस वायु के योग से (वैश्वकर्मणम्) जिन से सब कर्म मिट्टु है।

है यह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मनसः) मनकी गर्भी से उत्पन्न
के तुल्य (यौष्मः) रश्मी का नागक यौष्मकृत (यौष्मि) यौष्म कृत के
वदन्त्याम बाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् उन्द (त्रिष्टुजः) त्रिष्टुप् उन्द के
(स्वारम्) ताव से हुआ तेज (स्वारत्) और तेज से (अन्तर्धानः) न
ध्यान्व के प्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्धानात्) सध्यान्व के विशेष
दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह त्रिविधा की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी
(पञ्चदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (गरहाजः) जब वा वि-
ज्ञान् की पुष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शब्दज्ञान प्राप्त कराने
द्वारा कान (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राज ने ब्रह्म की विद्या
से न्याय का ब्रह्म करता है धीमे में (स्यण) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजा
ओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानपुक्त चित्त का ब्रह्म विज्ञान
का (ब्रह्मणामि) ब्रह्म का ना हूँ ॥ ५३ ॥

भावार्थः—श्री पुत्रियों को गादिये कि प्राणका मन और मन का प्राण
नियम करने वाला है ऐसा ज्ञान के प्राणधान से आत्मा को शुद्ध करते हुए
पुत्रियों ने संपूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥ ५३ ॥

अयं पश्चादित्यस्पोशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

निचृद् धृतिश्छन्दः । पञ्जः स्वरः ॥

जब स्त्रीपुत्र्य आपस में क्षेमा आपरण करें यह वि० ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यं चास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्य-

चसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वर्षा जगत्या ऋक्-

संमम् । ऋक्संमाच्छुक्ः शुक्रात्संप्तदशः संप्तद-

शाद्वरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया

त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे उत्तम मुन यात्री स्त्री जीने (- जगम्) यह सृष्टि के मगान विद्वान् (विश्वरूपपाः) मघ संसार को चारों ओर के प्रकाश में उपापक हेर-फर प्रफट परता (पद्यात्) पश्चिम दिशा में वत्तमान (तस्य) उम सूर्य का (दिश्वरूपमम्) प्रकाशक किरण रूप (जसुः) नेत्र (चाशुष्यः) नेत्र में देख-ने योग्य (यर्षाः) जिम समय मेघ बरसते हैं वह वर्षाकाल (वार्षाः) वर्षाकाल के उपाख्यान वाला (जगती) समार में प्रसिद्ध जगती उन्द (जगत्याः) जगती उन्द से (जगन्मगम्) श्रुतियों के सेवन का हेतु विज्ञान (श्रुतस्मात्) उम विज्ञान मे (शुक्रः) पराक्रम (शुक्रात्) पराक्रम मे (मत्प्रशः) मत्प्रश तर्कों का पूरक विज्ञान (मत्प्रशात्) उम विज्ञान मे (वैरूपम्) अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जीने (जगद्गिताः) प्रकाशस्वरूप (श्रुतिः) रूप का प्राप्त कराने हारा नेत्र (प्रजापतिगृहीतया) मन्तामस्तक पति मे ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के माघ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (जसुः) विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करना है जैसे मैं तेरे माघ समार से बल का (गृह्णामि) ग्रहण करना हूँ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि काम वेद के पढ़ने मे सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से जान के मघ सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से जासदा देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥ ५६ ॥

इदमुत्तरादित्यस्योदाना श्रुतिः प्रजापतिर्देवता । स्वराद्

ब्राह्मी त्रिष्टुप् उन्दः । धेनवः स्वरः ॥

जघ शब्द शतु में कैसे बतें यह वि० ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रं अर्धं वक्ष्ये शरद्व्या-
ज्यनुष्टुप् शारद्व्यनुष्टुभं ऐडमैडान् मन्थी मन्थि-
नं एकविंश एकविंशद् वैराजं विज्वा मित्र
ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि
प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

हैं यह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मनसः) मनकी गर्भी से प्रवृत्त
 के मुख्य (दीप्तः) रश्मी का नागक दीप्तप्रसू (दीप्तो) दीप्त शत्रु के
 दसःस्यन्त दाहा (विष्टुप्) विष्टुप् उद् (विष्टुप्तः) विष्टुप् उद् के
 (न्यारम्) नाय से तुभा तेज (स्यात्) भीर तेज से (अन्तर्वातः) न
 आन्त के प्रहर में प्रियेव दिन और (अन्तर्वातात्) मध्यमप्र के प्रीय
 दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के घोष पुरुषनाभी
 (पञ्चदशात्) सप्त पुरुषनाभी से (स्रष्ट) स्रष्ट (शरद्वातः) अथ वा वि
 श्वानु की पुष्टि और धारण का निमित्त (त्ववि) शरद्वात प्राप्त कराने
 द्वारा काम (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राम से प्रदत्त की विद्या
 से न्याय का प्रदत्त करता है शिमे में (त्वया) तेरे साथ (प्रजापत्ये) प्रजा
 ओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का प्रदत्त विज्ञान
 का (यद्वापि) यद्वात का वा ॥ १४ ॥

भावार्थः—श्री पुनरी को आदिष्ट कि प्राणका मन और मन का प्रण
 नियम करने लाया है ऐसा नाम के प्रणयान से आत्मा को मुक्त करते हुए
 पुनरी से न पुनं सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥ १४ ॥

अथ यथादिव्यस्योचना त्वयि । प्रजापतिर्देवता ।

निष्पृष्टुतिदलन्दः । पट्टजः स्वयः ॥

अथ श्रीगुरुव भागव में केना आचरण करें यह वि० ॥

अनं पश्चाद् विज्ञव्यं चास्तस्य चक्षुर्वेदव्यं
 क्षमं त्रिधाशुष्यो जगती त्रिधा जगत्या कृक
 नमम । कृकमंगान्कृकः शृकालमप्रदृशः मप्रदृ
 शःक्षुष्यं त्रिमदंतिर्कृषिः प्रजापतिगृहीतव
 त्वया चक्षुर्गुरुमि प्रजाभ्यः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे धैर्यावधती धीने (इदम्) यद् (उत्तरात्) गद्य से उत्तरा
 भाग में (स्वः) सुनों का साधन दिगा कर है (तस्य) उम के (धैर्यम्)
 सुत का साधन (श्रोत्रम्) काग (श्रोत्री) काग की सम्प्रप्ती (शरत्)
 शब्दतु (शारदी) शब्द शतु के उपासनाम खांला (अनुष्टुप्) प्रमदु अर्ध
 पांला अनुष्टुच्छन्द (अनुष्टुप्तः) उम मे (ऐडम्) याणी के उपासनाम से
 युक्त मन्त्र (ऐडत्) उम मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मचने का साधन
 (मन्थिनः) उम साधन मे (एकविंशः) इक्कीन विद्याओं का पूर्ण करने
 हारा निहान्त (एकविंशत्) उम निहान्त मे (वीराजम्) विविध पदार्थों
 के प्रकाशक (माग) सामयेद् के ज्ञान को प्राप्त हुआ (विद्यानित्रः) एय
 से मित्रता का हेतु (शपि) शब्द ज्ञान काने हारा कान और (प्रजाभ्यः)
 सत्पत्र हुई यिजुजी भादि के लिये (श्रोत्रम्) सुनने के साधन की ग्रहण
 करते हैं धीसे (प्रजापतिवृक्षीतया) प्रजापालक पनि ने ग्रहण की (न्यया)
 तेरे माघ में प्रमिदु हुई यिजुजी भादि से (श्रोत्रम् । सुनने के साधन कानको
 (गृह्णाणि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के माय विद्या पढ़
 और विवाह करके यहुश्रुत हों। और सत्यवका आप्त जनों से सुने विना
 पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इनलिये सदैव सज्जनों का
 उपदेश सुन के सत्य का धारण और निरपरा को छोड़ देयें ॥ ५१ ॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्दशता ।

धिराडाकृतिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अथ हेमन्त ऋतु में किस प्रकार पठें पद वि० ॥

इयमुपरि मृतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वा-
 च्यः पङ्क्तिर्हेमन्ती पङ्क्त्यै निधनं वन्निधनं-
 वत आग्रयणाः । आग्रयणात्त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ

त्रिणवत्रयस्त्रिंशशाभ्यांश्च शाक्करैवृते विश्व-
कर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णा-
मि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् स्त्री जो (इयम्) यह (उपरि) सय से ऊपर
विराजमान (सतिः) बुद्धि है (तस्यै) उम (इत्या) बुद्धि का होना या
कर्म (याक्) वाणी भी (वाचयः) उम का होना या कर्म (हेमन्तः)
गर्भों का नाशक हेमन्तऋतु (हेमन्ती) हेमन्त ऋतु के उपोत्पान याला
(पङ्क्तिः) पङ्क्ति छन्द (पङ्क्त्यै) उम पङ्क्ति छन्द का (निघनयत) सृत्यु
का प्रशंसित उपोत्पान याला सामवेद का भाग (निघनयतः) उम से
(आग्रयणः) प्राप्ति का माधन ज्ञान का फल (आग्रयणात्) उम से (त्रि-
णवत्रयस्त्रिंशो) बारह और तैतीम सामवेद के स्तोत्र (त्रिणवत्रयस्त्रिंशा-
भ्याम्) उन स्तोत्रों से (शाक्करैवृते) शक्ति और धन के माधक पदार्थों
को ज्ञान के (विश्वकर्मा) सय सुकर्माँ के सेवने याला (ऋषिः) वेदार्थ का
यक्ता पुरुष सत्ता है वैसे मैं (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने य-
हण की (त्वया) तेरे माथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वाचम्) विद्या
भीर अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५८ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी
को गुन के अपनी बुद्धि बढ़ावेँ उम बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्तव्य कर्म और
सामवेद के स्तोत्रों को ज्ञान महात्मा ऋषि लोगों के समान सत्ता कर
विद्या भीर अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार काफे अपने सन्तानों
के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें ॥ ५८ ॥

इम अध्याय में ईश्वर स्त्रीपुरुष और उपवहार का वर्णन करने से इस
अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ को साथ संगति जानो ॥

यह १३ तीरहयां अध्याय पूर्ण हुआ ॥

अथ चतुर्दशाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्
भद्रं तन्न आसुव ॥

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में छियों
के लिये उपदेश किया है ॥

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासिं ध्रुवं योनिमासीद
सा ध्रुया । उख्यंस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्वि-
नाध्वर्यु सादयतामिह त्वां ॥ १ ॥

पदार्थः—हे खि जा तू (माधुवा) श्रेष्ठ धर्म के माघ (उख्यस्य) य
टलीहं में पकाये भन्न की सम्बन्धी और (प्रथमम्) विस्तारयुक्त (केतुम्)
दुष्टि को (जुषाणा) प्रीति से सेवन करती हुई (ध्रुवक्षितिः) निश्चल धाम
फाने और (ध्रुवयोनिः) निश्चल घर में रहने वाली (ध्रुवा) दृढधर्म से
युक्त (अग्नि) है सो तू (ध्रुवम्) निश्चल (योनिम्) घर में (आसीद)
स्था हो (स्वा) तुम्ह को (इह) इस गृहाश्रम में (भध्वर्युम्) भवने लिये
रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के पावने द्वारे (अश्विना) सब विद्याओं में
ठगपक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित
करें ॥ १ ॥

यशुर्वेदनाम्ये-

भावार्थः—विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियों को यह है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्ममंत्रि देके इन को श्रेष्ठ करें ॥ १ ॥

कुलायिनीत्वस्पोशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी
पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
किर पूर्वोक्त विषय का जगहे मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्याने साँद
सर्दने पृथिव्याः । अभि त्वां रुद्रा वसन्तो गृण-
न्त्विमा ब्रह्म पीपिहि साँभगाय । अश्विनाँध्व-
र्यु साँदयतामिह त्वां ॥ २ ॥

पदार्थः—दे (क्योने) सुग करने वाली त्रिम (त्रया) तुम्ह को (यमत्रः)
प्रथम कोटि के विद्वान् और (रुद्राः) मध्य कक्षा के विद्वान् (इमा) इन
(ब्रह्म) विद्या धर्म को देने वाले गृहस्थों को (अभि) अभिमन्यु होकर
(गृणन्तु) प्रशंसा करें मेरा तू (बीमगाय) रुद्र उपनि होने के लिये इन
विद्या धर्म को (पीपिहि) भकटे प्रचार प्राप्त हो (अश्विनी) अश्विन नाम
और (पुरन्धिः) बहुत सुग धारण करने वाली (कुलायिनी) प्रशंसित कुल
की प्राप्ति में सुक दुई (पृथिव्याः) भगती भूमि के (मन्त्रे) घर में (साँद)
स्वयं हो (मध्यमः) अपने लिये स्वकीय गृहाश्रम आदि रक्ष करके वाटे
अश्विना) सब विद्याओं में उपायक और उपदेशक मुख्य (त्रया) तुम्ह को
इह) इस गृहाश्रम में । साँदयताम् । स्थापित करें । २ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को योग्य है कि कन्याओं को पूर्ण विद्या और धर्म
देशवर्ती का सुग धारण के लिये अपने गृहस्थ परिवार में विवाह कर के
विद्या और सुवर्ण आदि धर्म को वाके रूप अश्विनी में सुग देने काटे

में निवाम करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचूद्
ब्राह्मी पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जिसे श्री पुर्णक विषय की ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितृह साँद देवानां सुम्ने बृहते र-
णाय । पितृवैधि सूनव आ सुशेवां स्वावेशा तन्वा
संविशस्वाश्विनां ध्वर्यू साँदयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः— हे खि तू जैने (स्वैः) अपने (दक्षैः) बलों और भूत्यों के साथ यतता हुआ (देवानाम्) परमात्मा विद्वानों के मध्य में वर्तमान (इह) यज्ञे (रणाय) अग्राम के लिये (सुम्ने) सुख के विषय (दक्षपिता) बलों या चतुर भूत्यों का पालन करने द्वारा ही के विषय से बहुत है जैसे (इह) इस लोक के मध्य में (वैधि) बढ़ती रह (सुम्ने) सुख में (साँद) स्थिर हो और (पितृवैधि) जैसे पिता (सूनव) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देना है जैसे (सुशेवा) सुन्दर सुख से युक्त (स्वावेशा) अच्छी प्रीति से सुन्दर सुदु शरीर रख अलकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करने वाली हो के (तन्वा) शरीर के साथ प्रवेश कर और (अध्वर्यू) गृहामादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वाले जन (रवा) तुम्ह को (इह) इस गृहाम में (भादयताम्) स्थित करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इन मन्त्र में उपमालं-स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें अपने नीकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही बख और आभूषणोंसे अपने शरीरों को संयुक्त करके लें ॥ विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेशक करें और श्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्पोशना ऋषिः । अश्विनो देवते ।

स्वराइत्रास्त्री घृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यध्मो नाम तां त्वा विश्वं
अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्टा घृतवतीह
सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वरू
सादयतामिह त्वां ॥ ४ ॥

पदार्थः— हे खि जो (स्तोमपृष्टा) स्तुतियों को जानने की इच्छा
युक्त तू (इह) इन गृहाग्रम में (पृथिव्याः) पृथिवी की (पुरीषम्) रक्षा
(अध्मः) सुन्दररूप और (नाम) नाम और (घृतवती) बहुत घी आदि
प्रशंसित पदार्थों से युक्त (अभि) है (ताम्) उन (त्वा) तुम्ह को (वि-
श्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) मत्कार करें (इह) इन
गृहाग्रम में (सीद) वर्तमान रह और जिन (त्वा) तुम्ह को (अध्वरू)
अपने लिये रक्षणीय गृहाग्रमादि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) तथापक बुद्धि
पढ़ाने और उपदेश काने हारे (इह) इन गृहाग्रम में (सादयताम्) स्थि-
त करें सो तू (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) प्रशंसित सन्तान होने का
साधन (द्रविणा) घन (यजस्व) दे ॥ ४ ॥

भावार्थः— जो खी गृहाग्रम की विद्या और क्रिया कौशल में विद्वान्
हैं वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्पोशना ऋषिः । अश्विनो देवते । स्वराद्

त्रास्त्री घृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदित्यास्त्वा पृष्टे सादयाम्यन्तरिक्षस्यध्वनीं
विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मि-

द्रुप्सो अपामंसि विश्वकर्मा त ऋषिंश्चिना-
ध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों से युक्त (ऋषिः) विद्वान दाता पति मैं (अन्तर्गिरय) अन्तःकरण के नाशरहित विद्वान को (धर्मीम्) धारण करने (दिशाम्) पूर्वादि दिशाओं की (विष्टमनीम्) आधार और (भुषणानाम्) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त परों की (अधिपत्नीम्) अधिप्यता होने से पालन करने वाली (त्वा) तुझ को सूर्य की किरण के समान (अदित्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) पीठपर (सादयामि) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूँ जो तू (अयाम्) जलों की (कर्मिः) तरङ्ग के सदृश (द्रुप्तः) आनन्दयुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्युं) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले (अश्विना) विद्या में ठपास बुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष (सादयताम्) स्थापित करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो स्त्री अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्तिवाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनंदित हैं वेही गृहाश्रम का धर्म पालने और उस की उत्पत्ति के लिये समर्थ होती हैं तेरहवें अध्याय में जो (मधुसू०) कहा है वहां से यज्ञांतक वसंत ऋतु के गुणों की प्रधानता से ठपाख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

शुक्रश्चेत्यस्पाशना ऋषिः । त्रीप्सन्तुर्देवता । निचृदुत्कृति-
इच्छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

किर भी त्रीप्स ऋतु का ठपाख्यान अगले मंत्र में कहा है ॥

शुक्रश्च शुचिंश्च त्रीप्सांवृतू अग्नेरन्तः श्ले-
पोऽसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप
त्रोपंधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय

सव्रताः । ये अग्नेयः समनसोऽन्तरा द्यावापृ-
थिवी इमे ग्रन्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव
देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्भ्यु-
वैसीदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो वीरे । मम मेरे (उपेक्षयाप) प्रगना के योग्य होने के लिये जो (शुक्र) भीम भूमी की चर्वा और तीव्र ताप मे आकाश को गलीन करने द्वारा उद्वेष्ट (य) और (गुणिः) पवित्रता का हेतु आघाट (च) ये दोनों मिल के प्रत्येक (घ्रैदनी) घ्रौदन (शतु) शतु कहते हैं जिन (जग्नेः) अग्नि के (जगःउत्पेयः) मध्य में कण के रोग का निवारण (अग्नि) होता है जिन मे घ्रौदन शतु के गहीमों मे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (कल्पेनाम्) समर्थ होवें (आप) जल (कल्पेनाम्) समर्थ हों (ओपधयः) यत्र या मोनलता आदि ओपधियां और (अग्रयः) विजुषी आदि अग्नि (एगु) मलय २ (कल्पेनाम्) समर्थ होवें वीरे (समनसः) विचारशील (अग्रता) मत्परावरणरूप निषयो मे पुन (अग्रयः) अग्नि के तुन्य सेजस्वी को (अग्रता) (घ्रैमी) (शतु) (अभिकल्पमाना) मन्मथ होकर समर्थ करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) विजुषी के समान नम अग्निर्वा की विद्या में (अभिसंविशन्तु) मद्य और मे अचट्टे प्रकार प्रवेश करें वीरे (तया) नम (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों (इमे) इम (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (भुवे) निश्चल स्वरूप मे इम का भी (अगिष्यन्) भव यों के जाणरूप रम के समान (सीदतम्) विधिप करके ज्ञान का प्रवर्तमान रहे ॥ ६ ॥

भावार्थः—इम मध्य में उद्वेष्टः-वसन्तशतु के उद्वेष्टान के दोट्टे घ्रौदन शतु की द्यावत्या करते है . हे पुरुषो तुम लोग मे . पृथिवी आदि पंच भूता के शरीर अन्वेषी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के बिना घ्रौदन

ऋतु नहीं हो सकता उन को जान थीर उपयोग में ला के मध प्राण
को मुख दिया करो ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वस्थादयो मन्त्रांता
देवताः । सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिदकृतिश्छन्दः । धैवतः
स्वरः ॥ सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वरादपङ्क्ति-
यश्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदा-
कृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर यही धियव अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्व-
योनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु साद-
यतामिहत्वां । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्-
वैष्णुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरा-
याश्विनाऽध्वर्युसादयतामिह त्वां सजूर्ऋतुभिः
सजूर्विधाभिः सजूर्रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये
त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह
त्वां सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्रादित्यैः
सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विना-
ध्वर्यु सादयतामिह त्वां सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधा-
भिः सजूर्विश्वेदेवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा
वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु सादयतामिहत्वां ॥ ७ ॥

पदार्थः-हे स्त्रिय या पुरुष जिम (त्वा) तुभ को (इह) इम जगत् में (अध्वर्यूँ) रक्षा करने हारे (अश्विना) मध विद्याओं में उपापक पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुष और स्त्री (विश्वानराय) सपूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त (भग्नये) अश्विविद्या के लिये (मादयताम्) नियुक्त करें और हम लोग भी जिम (त्वा) तुभ को स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) यमन्त और यर्षा आदि ऋतुओं के साथ (मजूः) एकही तृप्ति या सेवा से युक्त (विधाभिः) जलों के साथ (मजूः) प्रितियुक्त (देयैः) अच्छे गुणों के साथ (मजूः) प्रीति वाली या प्रीति वाला और (यपोनाथे) जीवन आदि या गायत्री आदि छन्दों के साथ मध्यन्ध के हेतु (देयै) दिव्य हुए देने हारे प्राणों के साथ (मजूः) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थ युक्त स्त्री या पुरुष जिम (त्वा) तुभ को (इह) इम यज्ञाग्रम में (विश्वानराय मध जगत् के नायक (भग्नये) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये (अध्वर्यूँ) रक्षक (अश्विना) मध विद्याओं में उपास अध्यापक और उपदेशक (मादयताम्) स्थापित करें और जिम (त्वा) तुभ को हम लोग नियम करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (मजूः) पुरुषार्थों (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ (मजूः) समान सेवन वाले (यमुभिः) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ (मजूः) प्रीति युक्त और (यपोनाथे) विज्ञान का मध्यन्ध करने हारे (देयैः) सुन्दर विद्वानों के साथ (मजूः) समान प्रीति वाले हों । हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी या ब्रह्मचारी जिम (त्वा) तुभ को (इह) इम ब्रह्मचर्याग्रम में (विश्वानराय) मध मनुष्यों के सुम के साथ (भग्नये) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (अध्वर्यूँ) पालने हारे (अश्विना) पुरुष विद्या युक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (मादयताम्) नियुक्त करें और जिम (त्वा) तुभ को हम लोग स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः , ऋतुओं के साथ (मजूः) अनुकूल सेवन वाले (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से (मजूः) समान प्रीति वाले (रुद्रैः) प्राण, अपान, उदान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृदल, देवदत्त, घनजप और जीवा-

तथा इन उपारथों के (सजूः) अनुसार तथा करने हारे और (ययोनाथैः)
 वेदादि शास्त्रों के जनाने का मन्वन्ध करने हारे (देवैः) विद्वानों के साथ
 (सजू घराघर प्रीति वाले हैं हे पूर्ण विद्या वाले स्त्री या पुरुष जिन (तथा)
 तुम्ह को (इह) इस समार में (वैश्वानराय) मध्य मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख
 के साथ (अग्रये) पूर्ण विज्ञान के लिये (अश्वयूँ) रक्षक (अश्विना)
 शीघ्र ज्ञानदाना लोग (सादयताम्) नियत करें और जिन (तथा) तुम्हको
 हम नियुक्त करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल मा-
 चरण वाले (विधाभिः) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ (सजूः)
 समान प्रीति वाले (भादित्यैः) वर्ष के धारण महीनों के साथ (सजूः) अनुकूल
 आहार विहार युक्त और (ययोनाथैः) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार
 के मन्वन्ध करने हारे (देवैः) पूर्ण विद्या युक्त विद्वानों के (सजूः)
 अनुकूल प्रीति वाले हैं । हे सत्त्व अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री या पु-
 रुष जिन (तथा) तुम्ह को (इह) इस जगत् में (वैश्वानराय) मध्य मनु-
 ष्यों के हितकारी (अग्रये) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (अश्वयूँ)
 ब्रह्मविद्या के रक्षक (अश्विना) शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करने हारे लोग
 (सादयताम्) स्थित करें और जिन (तथा) तुम्ह को हम लोग नियत करें
 सो तू (ऋतुभिः) काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ (सजूः) अनुकूल
 सेवा (विधाभिः) सुखों में उपायक सब क्रियाओं के साथ (सजूः) अनुसार
 होकर (विश्वैः) सब (देवैः) मत्पोपदेशक पतियों के साथ (सजूः)
 समान प्रीति वाले और (ययोनाथैः) कामयमान जीवन का मन्वन्ध करने
 हारे (देवैः) परेपकार के लिये मत्त्व अमत्त्व के जनाने वाले जनों के साथ
 (सजूः) समान प्रीति वाले हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस समार में मनुष्य का जन्म पा के स्त्री तथा पुरुष विद्वान्
 होकर जिन ब्रह्मवर्ण सेवन विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ
 गुण कर्मों में आप प्रवृत्त हो कर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें वे वन में
 प्रवृत्त हो कर वामेष्टत में ले कर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के यथाथ विज्ञान से
 उपयोग ग्रहण काके मध्य ऋतुओं में आप सुखी रहें और अर्थों को सुखी
 करें ॥ ७ ॥

प्राणम्म इत्यस्य विद्मद्वय क्रपिः । दम्पती देवने ।

निचृदतिजगती छन्दः । निपाद् स्वरः ॥

फिर भी वही नियम अगले मन्त्र में क्या है ॥

प्राणम्मं पाह्यपानम्मं पाहि व्यानम्मं पाहि
चक्षुर्मं लुठ्या वि भाहि श्रात्रम्मं श्लोक्य । अ-
पः पिन्वापंधीर्जिन्व द्विपाद्वु चतुष्पात्पाहि द्वि-
वो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे पते वा खि तू (दम्पती) वस्तुतः प्रकार की तुलना किया मे मे) मेरे (प्राणम्) नाभि मे ऊपर की चलने वाले प्राणवायु की (पाहि) रहा कर (मे) मेरे (अपानम्) नाभि के नीचे मुल्लेन्द्रिय म मं मे निकलने वाले अपान वायु की (पाहि) रहा कर (मे) मेरे (व्यानम्) विविध प्रकार की शरीर की संघिदी में रहने वाले व्यान वायु की (पाहि) रहा कर (मे) मेरे (चक्षु) नेत्रों की (विभाहि) प्रकाशित कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (श्लोक्य) शब्दों के प्रयोग में समुक्त कर (अपः) प्राणों को (पिन्व) पुरट कर (अंधी) नीमलना वा पन भादि अंध-धिया को (जिन्व) प्राप्त हो । द्विपात्) मनुष्यादि दो पनवाले प्राणियों को (अप) रहा कर (चतुष्पात्) चार पन वाले गो भादि की (पाहि) रहा कर और छेले वृद्ध (द्विवः) अपने प्रकाश में (वृष्टिम्) वर्षा करना है शेष पर के कानों को (एरय) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ ८ ॥

भावार्थ — इन मन्त्र में वाचकसुः—स्त्री पुरुषों को बाहिये कि अंतर्गत विवाह करके अति प्रेम के साथ भावना में प्राप्त के समान विवाचन शा-का का तुलना कोर्षा भादि का देवन भी दष्ट के अनुष्ठान में वर्षा कर ॥ ८ ॥

मूर्धा वय इत्यस्य विद्मदेवा रूपय । प्रजादत्यादयो देवताः ।

पूर्वस्य निचृदमासी पाहिः । पुरुष इत्युक्तस्य प्राची पाहि

दृष्टन्दः । पथनः स्वरः ८

किर भी वही विषय आगे मन्त्र में कहा है ॥

सूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं
छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा
वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो
वृष्णिर्वयो विशाल छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छ-
न्दो व्याघ्रो वयो नाधृष्टं छन्दः सिध्दो वयश्छ-
दिश्छन्दः पष्ट्वाड्वयो बृहती छन्द उक्ता वयः कु-
कुप् छन्द ऋषभो वयः सतो बृहती छन्दः ॥९॥

पदार्थः-- हे. खि या पुरुष (सूर्धा) शिर के मुख्य उत्तम ब्राह्मण का
कुल (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू (वयः) कामना के
योग्य (मयन्दम्) सुखदायक (छन्दः) बलयुक्त (क्षत्रम्) सत्रिय कुल की
प्रेरणा कर (विष्टम्भः) वेश्यों की रक्षा का हेतु (अधिपतिः) अधिष्ठाता पु-
रुष रूप के समान तू (वयः) न्याय विषय को प्राप्त हुए (छन्दः) स्था-
पीन पुरुष को प्रेरणा कर (विश्वकर्मा) सद्य उत्तम कर्म करने वाले (पर-
मेष्ठी) सद्य के स्वामी राजा के समान तू (वयः) चाहने योग्य (छन्दः)
स्वतन्त्रता को (एरि) बड़ाईये (वस्तः) उपबहारों से युक्त पुरुष के
समान तू (वयः) अनेक प्रकार के उपबहारों में उपाधी (विबलम्)
विविध बल के हेतु (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (वृष्णिः) सुर के नेत्रों
वाले के मद्दम तू (विशालम्) विस्तार युक्त (वयः) सुखदायक (छन्दः)
स्वतन्त्रता को बढ़ा (पुरुषः) पुरुषार्थ युक्त जन के तुल्य तू (वयः) ना-
दने योग्य (तन्द्रम्) सुदुर्घ के धातु रूप कर्म और (छन्दः) बल
को बढ़ा (व्याघ्रः) जो विविध प्रकार के पदार्थों को गच्छे प्रकार भुंजना
हे सम जगत् के तुल्य राजा तू (वयः) चाहने योग्य (नाधृष्टम्) दृढ़
(छन्दः) बल को बढ़ा (सिद्धः) पशु आदि की शांति करे सिद्ध के समान

पराक्रमी राजा तू (वयः) पराक्रम के साथ (उदिः) निरोध और (छन्दः) प्रकाश को बढ़ा (पशुवाट्) पीठ से घोफ उठाने वाले ऊट आदि के मृदुय दीरय तू (वृहती) बढ़े (वयः) धलयुक्त (छन्दः) पराक्रम को प्रेरणा कर (उदा) मोंचने हारे धैल के तुल्य शूद्र तू (वयः) अति धल का हेतु (ककुप्) दिशाओं और (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (श्रपमः) शीघ्रगता पशु के तुल्य भूत्य तू (वयः) धल के साथ (मतीवृहती) उ-त्तम यही (छन्दः) स्वतन्त्रता की प्रेरणा का ॥ ८ ॥

भाषार्थ — इस मन्त्र में श्लेष और याचकतु०-और पूर्य मन्त्र से एरय पद की अनुवृत्ति आती है स्त्री पुरुषों की चाहिये कि ब्राह्मण आदि यहाँ की स्वतन्त्र वेदादि शास्त्रों का प्रचार भालस्वादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बढ़े धल को सदा बढ़ाया करे ॥ ८ ॥

अनङ्गानित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराङ्-

ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनङ्गान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती
छन्दस्त्रयविर्वयास्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाङ् वयो
विराट् छन्दः पंचाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिव-
त्सो वयं उष्णिक्छन्दस्तुर्यवाङ् वयोऽनुष्टुप्
छन्दः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे स्त्रिय वा पुरुष (अनष्टुपान्) गी और धैल के समान ध-
लवान् हो के तू (पङ्क्तिः) मकट (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) धल की प्रेरणा
कर (धेनुः) दूध देने हारी गी के समान तू (जगती) जगत् के उपकारक
(छन्दः) आनन्द की वयः कामना को बढ़ा (त्रिविः) तीन भेद यकती
और गी के अष्टय के तुल्य वृद्धि युक्त हो के तू (त्रिष्टुप्) कर्म उपासना

और ज्ञान की स्तुति के हेतु (उन्दः) स्वतंत्र (वयः) उत्पत्ति को बढ़ा (दित्यवाह) पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जीवादि को प्राप्त कराने द्वारा क्रिया के तुल्य तू (विराट्) विविध प्रकाश सुख (उन्दः) आनन्द कारक (वयः) प्राप्ति को बढ़ा (पंचायिः) पंच इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू (गायत्री) गायत्री (उन्दः) मंत्र के (वयः) विज्ञान को बढ़ा (त्रिवर्त्मः) कर्म उपामना और ज्ञान को चाहने हारे के तुल्य तू (उष्णिक्) दुःखों के नाशक (उन्दः) स्वतंत्र (वयः) पराक्रम को बढ़ा और (तुर्धवाट्) चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू (अनुष्टुप्) अनुकूल स्तुति का निमित्त (उन्दः) सुखसाधक (वयः) ब्रह्मा को प्रतिदिन बढ़ाया कर ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुः—जैसे खेती करने हारे लोग बीज आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके मद्य को सुख देते हैं वैसे ही ब्रह्मान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी इत्पस्पं विश्वदेवा ऋषयः । इन्द्राग्नी देवते ।

भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर गी० वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी अव्यंथमानायिष्टंकां दृक्षहतं यु-
वम् । पृष्टेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च वि-
वांधसे ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य के समान व्यंथमान स्त्री पुरुषों (युवम्) तुम दोनों (अव्यंथमानाम्) जनों हुई युद्धि को प्राप्त हो के (दृष्टकाम्) दृष्ट के समान महाश्रम का (दृक्षहतम्) दृढ़ करा जैसे (द्या-
वापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्टेन) पीठ से आकाश को बाधते हैं जैसे तुम दुःख और शत्रुओं की बाधा को हे पुरुष जैसे तू इन अपनी स्त्री की पीड़ा को (विवांधसे) विशेष करके हटाता है जैसे यह स्त्री जी तेरी एकल पीड़ा को हटा करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—इमं मन्त्रं मे श्लेषं भीरुं तावत्कलुः-श्लेषे विजुली भीरु-
 चर्षं जल यथां के भोवधि भादि पदासौं को यदासौं हैं श्लेषे ही स्त्री पुन्य कु-
 दुस्त्र को यदासौं श्लेषे प्रकाश भीरु पृथिवी ताकाश का भाषाण करते हैं श्लेषे
 ही गृहाग्रम के उपयुक्तियों को पूर्ण करें ॥ ११ ॥

विद्यकर्मन्त्यस्य विद्यकर्मर्षिः । वायुर्देवता । विष्कृति-
 दहन्द्ः । मध्यमः स्वरः ॥

किं वही विषय भगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्य-
 चंस्वतीं प्रथंस्वतीमन्तरिक्षं यच्छ्रान्तरिक्षं दृष्टं
 ह्रान्तरिक्षं मा हिंक्ष्मीः । विश्वस्मै प्राणायस्या-
 नायं व्यानायोद्धानायं प्रतिष्ठायै चरित्राय वा-
 युष्ठाऽभिष्पातु मद्वा स्वस्त्या हृदिषा शन्तमेन
 तयां देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा मीद ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे शिव (विश्वकर्मा) मनुष्यं शुभ कर्म कामे में कुशल पति
 शिव (उपस्वतीम्) प्रशमित विद्याम वा मरुदाग मे युक्त (पदस्वतीम्)
 उत्तम विरक्त विद्या वाली (अन्तर्लक्ष्य) प्रकाश के (पृष्ठे) एक भाग
 में (त्वा) तुम्ह को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वस्मै) मम (प्रा-
 णाय) प्राण (व्यानाय) अपान (उदानाय) उदान भीरु (उदानाय)
 उदानरूप शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा (वाऽनाय) भीरु शुभ
 कर्मों के भाषाण के लिये (अन्तर्लक्ष्य) जलादि को (यच्छ्र) दिया जा
 (अन्तर्लक्ष्य) प्रशमित शुद्ध विषे जल मे युक्त मद्य भीरु यथादि को (दृष्टं)
 बड़ा भीरु (अन्तर्लक्ष्य) कथुला भादि शुभ युक्त रोग नाशक आकाशरूप
 मम पदासौं को (माहिंक्ष्मीः) नष्ट मत कर शिव (त्वा) तुम्ह को (वायुः)
 प्राण के तुल्य विषे पनि (मद्वा) बड़ी (स्वस्त्या) तुल्य दः किया (हृ-
 दिषा) प्रकाश भीरु (शन्तमेन) अति तुल्यदायक विद्याम मे तुम्ह को (अ

निपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिग्ध सुख देने वाली क्रिया के साथ वर्तमान पति रूप देवता के साथ (अंगिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥११॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में प्रलेप और वाचकलु— जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े ॥ १२ ॥

राश्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दिशो देवताः ।

विराट् पङ्क्तश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

राश्यसि प्राची दिग्विराट्सि दक्षिणा दिक्
सम्राट्सि प्रतीची दिक् स्वराट्स्युदीची दिग्-
धिपत्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राष्ट्री) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सम्राट् (सम्राट्) चक्रवर्ती राजा के सम्राट् अच्छे सुख युक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) (बृहती) बड़ा (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपती) पर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है जो तू सब पति आदि को वृत्त कर ॥ १३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु— जैसे दिशा सब ओर से अस्ति-व्याप्त बोध करने वाली चंचलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभगुण कर्म और स्वभावों से युक्त होती ॥ १३ ॥

विश्वकर्मैत्यस्य विश्वेदेवा प्रापयः पामुंद्यता । स्वराट्
ब्राह्मी पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी उक्तविषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मात्वा सादयत्वन्तरिक्षस्यपृष्ठे ज्यो-
तिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायामानाय व्याना-
यु विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपत्तिस्तया
देवतयाङ्गिरस्वदध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

पदार्थः-हे त्रि जिम (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (तया)
तुम्हें जो (विश्वस्मै) मध्य (प्राणायाम) प्राण (अवाताय) भवान् जीव
(ठपानाय) ठपान की पुष्टि के लिये (अन्तर्गतस्य) जल के (पृष्ठे)
ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) मध्य शुभ कर्मों का चाहने द्वारा पति (सा-
दयतु स्थापित करे नो तू (विश्वम्) मपूर्ण (ज्योति-) विज्ञान की (प-
च्छ) पहण कर जो (वायु) प्राण के समान विष (ते) तेरा (अधिप-
तिः) स्वामी है (तया) ठप (देवतया) देवस्थान पति के साथ (ध्रुवा)
दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) मूर्खों के समान (सीद) स्थिर हो ॥ १४ ॥

भावार्थः-स्त्री को उचित है कि प्रकृत्यवर्षाक्रम के साथ भाव विद्वान् हो
के शरीर सात्वत का बल बढ़ाने के लिये अपने मन्त्रानों को निरन्तर वि-
ज्ञान देवे । यहाँक प्रीटन शत्रु का व्याख्यात पूरा हुआ ॥ १४ ॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेश ऋषिः । ज्ञानयो देवताः । स्वरा-

दृष्टृतिश्छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

जल वर्षा शत्रु का ठपारखान भगले मध्य में कहा है ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृत् अग्नेरन्तः
श्नेपोसि कल्पतां द्यावांपृथिवी कल्पन्तामाऽप्य
सोपंधयः कल्पन्तामग्नेयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय
सत्रंताः । ये अग्नेयः समंनसोऽन्तरा द्यावांपृथि-
वी इमे वार्षिकावृत् आंभिकल्पमानाऽन्द्रमिवृदे-

भिपातु) सद्य ओर से रक्षा करे सो तू (तया) सप्त (देवतया) दिश्य मुक्त
देने वाली क्रिया के साथ वर्तमान पति रूप देवता के माथ (अंगिरस्वत्)
व्यापक वायु के समान (ध्रुवः) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रलेप और वाचकलुः— जैसे पुरुष स्त्री को
अच्छे कर्मों में निपुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में मे-
रणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े ॥ १२ ॥

राश्यसीत्यस्य विद्भवदेव ऋषिः । दिशो देवताः ।

विराट् पङ्क्तश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर यही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

राश्यासि प्राची दिग्बिराडसि दक्षिणा दिक्
सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिग्-
धिपत्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः— हे स्त्रि जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राष्ट्री)
प्रकाशमान (आम्) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्)
अनेक प्रकार का विमर्ष और विद्या के प्रकाश से युक्त (अग्नि) है (प्रतीची)
पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवर्ती राजा के सदृश
जैसे इस युक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (अग्नि) है (उदीची) उत्तर (दि-
क्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (अग्नि) (बृहती) ब-
ड़ा (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपती) पर में अधिकार
को प्राप्त हुई (अग्नि) है सो तू मद्य पति आदि को वृत्त कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुः— जैसे दिशा मद्य ओर से अग्नि
व्याप्त बोध कामे वाली चंचलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभगुण कर्म और
स्वभावों से युक्त होती ॥ १३ ॥

विद्भवदेवस्य विद्भवदेवा ऋषयः यावुदेवता । स्वराट्

प्राची पृथ्वी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर जो उक्तविषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मात्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्यो-
तिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायामानाय व्याना-
य विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया
देवतयाङ्गिरस्वदध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

पदार्थः-हे खि तिम (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (तथा)
तुम्हें को (विश्वस्मै) मय (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और
(ठपामाय) ठपान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे)
ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) मय शुभ कर्मों का चाहने द्वारा पति (सा-
दयतु स्थापित करे भी तू (विश्वम्) मपूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (य-
च्छ) ग्रहण कर जो (वायु) प्राण के समान मिथ (ते) तेरा (अधिप-
तिः) स्वामी है (तथा) उन (देवतया) देवस्थरूप पति के साथ (ध्रुवा)
दृढ़ (आङ्गिरस्वत्) मूढों के समान (सीद) स्थित हो ॥ १४ ॥

भावार्थः-स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्यव्रतम के साथ आप विद्वान् हो
के शरीर कात्मनः का बल बढ़ाने के लिये अपने मन्तानों को निरन्तर वि-
ज्ञान देवे । यहाँतक घोटन श्रुत का व्याख्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

नमश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवा देवताः । स्वरा-
दृत्कृतिश्छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

शय वर्षा श्रुत का ठपारस्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमश्च नमस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः
श्चेपोसि कल्पतां द्यावापृथिवीं कल्पन्तामाऽपु
सोपंधयः कल्पन्तामग्नेयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय
सव्रताः । ये अग्नेयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथि-
वी इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिवद्वे-

वा अभिसंविशन्तु तथा देवतयाऽङ्गिरस्वद्भ्रु- वे सीदतम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों जो (नभः) प्रदंषित सेपोंवाला
 आठण (घ) और (नभस्यः) वर्षों का मध्य भागी भाद्रपद (च) ये दो
 नों (वार्षिकी) वर्षों ऋतू के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित
 होने के लिये हैं जिन में (भ्रनेः) उष्ण तथा (अन्तश्छेपः) जिन के
 मध्य में शीत का स्पर्श (अभि) होता है जिन के माघ (व्याशापृथिवी)
 आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उन के मेष में तुम दोनों (कल्पेनाम्)
 समर्थ हो जैसे ऋतु वेग से (आपः) जल और (ओषधयः) औषधी या
 (अन्नयः) भग्नि (पृथक्) जल से अलग समर्थ होते हैं वैसे (पत्रताः)
 एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (समनमः) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे (म
 नयः) तेजस्वी लोग (कल्पेनाम्) समर्थ होवें (ये) जो (इमे) (व्या
 यापृथिवी) आकाश और भूमि वर्षों ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को
 (वार्षिकी) (ऋतू) वर्षों ऋतुरूप (अभिकल्पमानाः) मध्य और से मुख
 के लिये समर्थ करते हुए विद्वान् लोग (इन्द्रनिय) विजुली के समान प्रकाश
 और यज्ञ को (तथा) उस (देवतया) दिव्य तथा ऋतु के माघ (अभिसं-
 विशन्तु) सम्मुख हो कर अच्छे प्रकार स्थित होवें (अन्नरा) उम दोनों
 महीनों में प्रवेश फाके (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान परस्पर प्रेम युक्त
 (भ्रुवे) निश्चल (सीदतम्) रहें ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उवना और वाचकलुग—मध्य मनुष्यों को
 जाद्विषे कि विद्वानों के समान वर्षों ऋतु में यह मामची प्रण करें जिन में
 मध्य मुख होवें ॥ १५ ॥

इषधेत्यस्य विश्वेदेवा आपयः । ऋतयो देवताः ।

भुरिगुत्कृतिदृष्टन्दः । पद्भजः स्वरः ॥

अथ शब्द ऋतु का उपास्यान मगले मन्त्र में किया है ॥

इपश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽ-
 सि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापु ओषधयः
 कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम उर्वेष्ट्याय सत्रंताः ।
 ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे
 शारदावृतू अम्बिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा
 अम्बिसंविशन्तु तयां देवतयाङ्गिरस्वद्भ्रुवे सी-
 दतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! धीमे (इपः) चाहने योग्य द्वार महीना (च)
 नीर (ऊर्जः) मम पदार्थों के यल्लयान् देने का हेतु कारिंक (अ) ये देवों
 (शास्त्री) शब्द (वृतू) शत्रु के महीने (मम) मेरे (उर्वेष्ट्याय) प्रगणित
 सुख होने के लिये होते हैं जिन के (अन्तःश्लेषः) मध्य में किञ्चित् शी-
 तस्पर्श (अम्बि) होता है ये (द्यावापृथिवी) अवकाश नीर पृथिवी को
 (कल्पेताम्) समर्थ करें (आपः) जल नीर (ओषधयः) औषधियों
 (कल्पन्ताम्) समर्थ होयें (अग्नयः) मम कार्यों के नियम करने होरे (अ-
 ग्नयः) शरीर के अग्नि (पृथङ्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो
 (अन्तरा) बीच में (समनसः) मन के मध्यस्थी (अन्तः) बाहर के जो
 अग्नि (इमे) हम (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ
 करें (शास्त्री) शब्द (वृतू) शत्रु के दोनों महीनों में (इन्द्रमिव) पानी-
 चरणों के तुल्य (अम्बिकल्पमानाः) मम नीर से आनन्द की दृष्टा करत
 हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अम्बिसंविशन्तु) प्रवेग करें (तथा) तब
 (देवतया) दिव्य शब्दशत्रु रूप देवता के नियम के साथ (भ्रुवे) निरपेक्ष
 सुख वाले (सीदतम्) प्राप्त होते हैं धीमे तुम लोगों को (उर्वेष्ट्याय) प्रगणित
 सुख होने के लिये भी होने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपनालं०—हे मनुष्यो जो शब्द ऋतु में उप-
योगी पदार्थ हैं उन का यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६ ॥

आयुर्मृत्यस्य विद्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिग-
ति जगती छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर श्री पूर्वीक विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि
व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे
पिन्वमनां मे जिन्वात्मानम् मे पाहि ज्योतिर्मे
यच्छ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे स्त्री वा पुरुष तू शब्द ऋतु में (मे) मेरी (आयुः) अ-
वस्था की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि)
रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे)
मेरे (ठयानम्) ठयान की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों
की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा
कर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी की (पिन्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर
(मे) मेरे (मनः) मन की (जिन्व) सुप्त कर (मे) मेरे (जातमानम्)
चेतन आत्मा की (पाहि) रक्षा कर और (मे) मेरे लिये (ज्योतिः)
विज्ञान पर (यच्छ) दान कर ॥ १७ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की
वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥ १७ ॥

माच्छ इत्यस्य विद्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगति
जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये हम वि० ॥

माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दो अ-

स्त्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दो बृ-
हती छन्दोऽनुष्टुप्छन्दो विराट् छन्दो गायत्री
छन्दस्त्रिष्टुप्छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (मा) परिमाण का हेतु (छन्दः)
आमन्द कारक (ममा) ममाण का हेतु बुद्धि (छन्दः) बल (प्रतिमा)
जिस से प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु (छन्दः) स्वतन्त्रता (अस्त्रोवयः)
बल और काम्ति कारक अस्त्रादि पदार्थ (छन्दः) बलकारी विज्ञान (प-
ङ्क्तिः) पांच अक्षरों से युक्त योग (छन्दः) प्रकाश (उष्णिक्) स्नेह
(छन्दः) प्रकाश (बृहती) बड़ी प्रकृति (छन्दः) आश्रय (अनुष्टुप्) सु-
खों का आलम्बन (छन्दः) भोग (विराट्) विविध प्रकार की विद्याओं का
प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (गायत्री) गाने वाले का रक्षक ईश्वर (छन्दः)
सब का बोध (त्रिष्टुप्) तीन सुखों का आश्रय (छन्दः) आमन्द और
(जगती) जिस में सब जगत् चलता है सब (छन्दः) पराक्रम को पहचान
कर और ज्ञान के सब को सुर युक्त करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आमन्द आदि से साध्य धर्मयुक्त
कर्मों को निह्न करते हैं वे सुखों से शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवपिः । पृथिव्यादयो देवताः ।

आर्षो जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर यही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो दीश्छन्दः स-
माच्छन्दो नक्षत्राणिच्छन्दो वाक्छन्दो मनश्छ-
न्दः कृपिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गोश्छन्दोऽजा-
छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग जैसे (पृथिवी) भूमि (उन्दः) स्वतन्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (उन्दः) आनन्द (द्यौः) प्रकाश (द्यम्) विज्ञान (एताः) धर्म (उन्दः) बुद्धि (नक्षत्राणि) सारे लोक (उन्दः) स्वतन्त्र (वाक्) घाणी (उन्दः) मत्प (मतः) मन (उन्दः) निष्कण्ठ (कृपिः) जोलना (उन्दः) नष्टपति (हिरण्यम्) सुवर्ण (उन्दः) सुवर्णदायी (गौः) गौ (उन्दः) आनन्द हेतु (अजा) बकरी (उन्दः) सुवर्ण हेतु और (अश्वः) घोड़े आदि (उन्दः) स्वाधीन हैं ऐसे विद्या विनय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से बर्ती ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि यह विद्या क्रिया और स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान लेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ १९ ॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । अग्निपादयो देवताः ।

भुरिगू ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अग्निर्देवता वातां देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा
देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता
भुरुतां देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवते-
न्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो तुम लोगों को योग्य है कि (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (देवता) दिग्गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्धगुणयुक्त (सूर्यः) सूर्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (देवता) शुद्ध गुणयुक्त (वसवः) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि या प्रथम कला के विद्वान् (देवता) दिग्गुण वाले (रुद्राः) प्राण जदि ? ? ग्यारह वा मध्यम कला विद्वान् (देवता) शुद्ध गुणों वाले (आदित्याः) ग्यारह महीने वा उत्तम

के विद्वान् लोग (देवता) शुद्ध (महत्तमः) गतन कर्ता विद्वान् श्रावितः
 (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे) मय (देवता) अकळे गुणों वाले
 मनुष्यवा दिव्य पदार्थ (देवता) देव मंशा वाले हैं (वृहस्पतिः)
 धन वा भस्त्राण्ड का रत्नक परमारण (देवता) (इन्द्रः) विजुली
 तम धन (देवताः) दिव्य गुण युक्त और (वरुणः) जल वा श्रेष्ठ
 वाला पदार्थ (देवता) अकळे गुणों वाला है इन को तुम निघण
 ॥ २० ॥

भावार्थः—इस संसार में जो अकळे गुणों वाले पदार्थ हैं वे दिव्य गुण
 और स्वभाव वाले हैं। जो देवता कहते हैं भी जो देवता का देव
 जो देव महादेव मय का धाक रत्नक रत्नक मय की वयनकपा भीर प्र-
 रने द्वारा मयंशक्तिमान् दयालु न्यायकारी वृहस्पति धर्म में रहित है
 यह के अधिष्ठाता परमात्मा को मय मनुष्य जानें ॥ २० ॥

मूर्धासीत्यस्य विद्वदं देवताः । विदुषी देवता । निवृ-

दनुपृच्छन्तः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् श्री कीर्ती हो इस वि० ॥

मूर्धामि राद् ध्रुवामि ध्रुवणां ध्रुव्यमिध्रुवर्णां ।

रायुं पे त्वा वचसे त्वा कृप्ये त्वा क्षेमाय त्वा

। २१ ॥

पदार्थः—हे श्री जो तू मूर्ध के मुख्य (मूर्धा) उत्तम (जनि) है
 तू प्रकाशमान निघण के मयाम (ध्रुवा) निघण गुण (जनि) है
 (त्वा) पुष्टि कामे हारी (धानी) आधार कृप्ये त्वा के मुख्य । ध-
 धारण कामे हारी (जनि) है तम (त्वा) तुम्हे (आयुषे) जीवन
 ये तम (त्वा) तुम्हे (वचसे) मय के लिए तम (त्वा) तुम्हे (कृ-
 प्ये) होने के लिए और तम (त्वा) तुम्ह को (क्षेमाय) रत्न होने
 से मैं मय और से यह कहता हूँ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जीसे स्थित वृक्षमांग गिर से मद्य का जीवन राज्य में एतरे सेती ने मद्य भादि पदार्थ और नियम ने रक्षा होंगी है सो यह मद्य का धार भूम माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है धीरेही विद्वान्त्र को होना चाहिये ॥ २१ ॥

यन्त्रीत्वस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदुष्यिम्
छन्दः । ऋषमः स्वरः ॥
फिर स्त्री कैपी होये इन दि० ॥

यन्त्री राट् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरि-
त्री । इपे त्वोर्जे त्वां रय्ये त्वा पोपाय त्वा ॥२२॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो तू (यन्त्री) यन्त्र के तुल्य स्थित (राट्) प्रकाश युक्त (यन्त्री) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (ऋषि) है (यमनी आकर्षण शक्ति से नियम करने हारी (ध्रुवा) आकाश मद्रुय दृढ़ निश्च (धर्त्री) मद्य शुभगुणों का धारण करने वाली (अनि) है (तथा) तुम्ह को (इये) इच्छा मिट्टि के लिये (तथा) तुम्ह को (ऊर्जे) पराक्रम की प्राप्ति के लिये (तथा) तुम्ह को (रय्ये) लक्ष्मी के लिये और (तथा) तुम्ह को (पोपाय) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पृथिवी के समान समान युक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्र कला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करने वाली है ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरि-
ग्राह्मी पञ्चिरछन्दः । ऋषमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य
भुरिगतिजगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥
अद्य संवत्सर किता है यह विषय अगले मन्त्र० ॥

आशुस्त्रिवृद्भ्रान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्त-

दशो ध्रुणं एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो न-
 वदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भ-
 रणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः । गर्भां पञ्च-
 विंश ओजंस्त्रिणवक्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठात्रय-
 स्त्रिंशो वृध्नस्यं विष्ट्रपं चतुस्त्रिंशो नाकः
 पट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो ध्रुवं चतु-
 ष्टोमः ॥ २३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम लोग इस वर्त्तमान संयत् में (माशुः) शीघ्र
 (त्रियुत्) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान (प्राप्तः) प्रकाश (पद्मवद-
 शः) पद्मवद प्रकार का (ठरोमा) आकाश के समान विस्तार गुण (मरु-
 दशः) मरुद्व प्रकार का (ध्रुण) धारण गुण । एकविंशः) इक्ष्मीय प्रकार
 का (प्रतूर्तिः) शीघ्र गति वाला (अष्टादशः) अष्टाद्व प्रकार का (तपः)
 सत्तापी गण (नवदशः) नवदश प्रकार का (अभीवर्त्तः) मन्सुरा वर्त्तने
 वाला गुण (मविंशः) इक्ष्मीय प्रकार का (वर्चः) दीप्ति (द्वाविंशः) या-
 र्हेन प्रकार का (सम्भरणः) अच्छे प्रकार धारण कारक गुण (त्रयोविंशः)
 तेहेन प्रकार का (योनि) मयोग विनोमकारी गुण (चतुर्विंशः) चौबीस
 प्रकार की (गर्भाः) गर्भ धारण की शक्ति (पञ्चविंशः) पञ्चम प्रकार
 का (ओजः) पराक्रम (त्रिणवः) सत्ताहेन प्रकार का (क्रतुः) कर्म वा
 बुद्धि (एकविंशः) एकबीस प्रकार की (प्रतिष्ठा) पक्की स्थाित का निरूपित
 क्रिया (त्रयस्त्रिंशः) तैतीम प्रकार की (वृध्नस्य) बड़े वृध्नर की (वि-
 ष्ट्रम्) ठपाप्ति (चतुस्त्रिंशः) चौतीस प्रकार का (नाकः) नाकवद (पट्त्रिंशः)
 छत्तीस प्रकार का (विवर्त्तः) विविध प्रकार से वर्त्तने का आधार (अष्टा-
 चत्वारिंशः) अष्टनालीम प्रकार का (ध्रुवंम्) धारण और (चतुष्टोमः) चार
 स्तुतियों का आधार है उन को समझकर जानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—जिन सबस्तर के मध्यन्धी भूत अविष्यत् और सर्वतः काल आदि मध्यन्ध हैं उन के मध्यन्ध से ही ये सब संसार के प्रया होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ २३ ॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । मेधाविनो देवताः ।

भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ अनुष्कित प्रकार विद्या षट् के कैना आचरण करें यह वि० ॥

अग्नेर्भागोसि द्वीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म
स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः । इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णो-
णधिपत्यं क्षत्रस्य स्पृतं पञ्चदश स्तोमः । नृचक्षसां
भागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रस्य स्पृतस्य सप्त-
दश स्तोमः । मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधि-
पत्यं दिवो वृष्टिर्वातं स्पृत एकविंश स्तोमः
॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुन्य जो तू (अग्ने) मुख्य का (भागः) विभाग के योग्य सबस्तर के मुख्य (अग्नि) हे मे। तू (दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य भाग की दीक्षा का (स्पृतम्) मीति में मेवम क्रिये हुए (आधिपत्यम्) । प्रजा प्रजापति के अधिकार की प्राप्त हो जो (त्रिवृत्) शरीर तानी और मानव आधर्मों में शत्रु सर्वनाम (स्तोमः) स्तुति के योग्य (इन्द्रस्य) त्रिवृत्ता ना ज्ञान ऐश्वर्य के (भागः) विभाग के मुख्य (अग्नि) हे मे। तू (विष्णोः) व्यापक देवता के (स्पृतम्) मीति में मेवम योग्य (सप्त) सप्तियों के धर्म के अनुष्कृत वास्तु के (आधिपत्यम्) अधिकार का प्राप्त हो जो तू (पञ्चदशः) पाट्ट का पूरक (नृचक्षसां) स्तुतिकर्ता (मृतानाम्) मनुष्या में कहने योग्य पदार्थों के (भागः) विभाग के मुख्य (अग्नि) हे

सो तू (घातुः) धारण कर्ता के (स्पृतम्) इष्टिगत (जगित्रम्) जन्म और (नाधिपत्यम्) नाधिकार को प्राप्त हो जो तू (मसदगः) सत्तरह संख्या का पूरक (स्तोत्रः) स्तुति के योग्य (मित्रस्य) प्राण का (वागः) विभाग के समान (भसि) है सो तू (यरुणस्य) श्रेष्ठ जलों के (नाधिपत्यम्) स्वामीपन को प्राप्त हो जो तू (यागः स्पृणः) भेदित पवन और (एकविशः) इष्टीम संख्या का पूरक (स्तोत्रः) स्तुति के तापन के समान (नागि) है सो तू (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य से (वृष्टिः) वर्षा होने का दहन आदि उपाय कर ॥ २४ ॥

भाषार्थः—इन मन्त्र में घातकलुः—जो पुरुष आहवायस्था से लेकर न-जनों ने उपदेश को हुई विद्याओं के प्रदण के लिये प्रयत्न कर के नाधिकारी होते हैं वे स्तुति के योग्य कर्ता हो कर और उत्तम हो के विद्या के सहित काल को जान के दूरियों को जनावें ॥ २४ ॥

घसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । वस्याद्यगो लिंगोक्ता
 देवताः । स्वरान् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
 फिर जो पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पा-
 त्स्पृतं चतुर्विंशस्तोमः । आदित्यानां भागो-
 ऽसि स्रुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृतः पञ्चविंश-
 स्तोमः । अदित्ये भागोऽसि पूष्णा आधिपत्यमो-
 जंस्पृतं त्रिणवस्तोमः देवस्य सवितुर्भागोऽसि
 बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीदिशं स्पृताश्चतु-
 ष्टोमः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जी तू (वयूनाम्) गरिग आदि आठ वा सप्त
 पता के विद्वानों का (ज्ञातः) सेवने योग्य (जमि) हे जो (ज्ञानाम्)
 दश प्राण आदि श्वारहवां चीव या सप्त कला के विद्वानों के (आधिपत्यम्)
 अधिकार को प्राप्त हो जो (चतुर्विंशः) चौथीय प्रकार का (स्तोमः) स्तु-
 तिकर्ता (जादित्वाणाम्) चारह महीनों या सप्तम कला के विद्वानों के
 (ज्ञातः) सेवने योग्य (जमि) हे जो तू (चतुर्विंशः) जी आदि पशुओं
 का (वयूनाम्) सेवक कर (गन्ताम्) मनुष्य या पशुओं के (आधिपत्यम्)
 अधिपता हो जो तू (पञ्चदशः) पक्षीय प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के
 योग्य (जदित्यै) आदिष्टल वाक्या का (ज्ञातः) विज्ञान के मुख्य (मवि)
 हे जो तू (पुण्यः) पुष्टि कारक पृथिवी के (वयूनाम्) सेवने योग्य (भोगः)
 घण्ट को प्राप्त होके (आधिपत्यम्) अधिकार को (प्राप्नुहि) प्राप्त हो जो
 तू (प्रियत) सप्ताहों प्रकार का (स्तोम) स्तुति के योग्य (देवप)
 पुण्यदाता (मवि) पिता का (ज्ञातः) विज्ञान (जमि) हे जो तू (व
 स्तो) वही देवकी वाणी के पाठक शंकर के दिग्गुण (आधिपत्यम्) अधि-
 कार को प्राप्त हो जो तू (चतुर्विंशः) चार वेदों में कहने योग्य स्तुति कर्ता
 हे जो तू (मर्षः) मर्ष के मुख्य विद्या और गुण गुणों में आचर्यादि
 (वयूनाम्) मर्षिणाम् अचर्यादि विद्वानों को जानने हैं मर्ष (मर्षीः) म
 र्षक) प्राणि के माधव (वयूनाम्) मर्षि का विषय (दिग्गु) पूर्ण दिग्गुणों
 को जान ॥ २१ ॥

यवानां भ्रागोस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृ-
ताश्चत्वारिंशः स्तोमः । ऋभूणां भ्रागोऽसि
विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतश्चस्पृतं त्रयस्त्रिंश-
श्च स्तोमः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जो तू (यवानाम्) मिळे तुम्हें पदार्थों का सेवक
करने द्वारा शास्त्र ज्ञान के समान (जगि) है जो (ययवानाम्) पृथक्-
धर्म वाले पदार्थों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर (स्पृताः)
मीति से (प्रजाः) पालने योग्य प्रजाओं को नियन्त्रण करता है जो (यत्
प्रवृत्तयारिंशः) अषोडश सदस्य का पूर्ण करने वाला (स्तोमः) स्तुति
के योग्य (ऋभूणाम्) युद्धियों के (भागः) भेदने योग्य (जगि) है
(विश्वेषाम्) मध्य (देवानाम्) विद्वानों के (भूतम्) हो तुम्हें (स्पृतम्)
सेवक किये तुम्हें (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर जो (त्रयस्त्रिं-
शः) तीनों संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के विषय के समान (जगि)
है सो तू इन लोगों से सरकार के योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मात्र में सावकसु-मनुष्यों को आदिपति जो ये पीछे
के मंत्रों में शास्त्र ज्ञान के गुण बड़े हैं उन का यथावत् देखन करें यह शास्त्र
ज्ञान का अपाख्यान पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सहस्रपेतस्य विश्वदेव ऋषिः । जगती देवताः । पूर्वस्य भुरिगति-
जगती छन्दः । निपादः स्वरः । ये अग्न इत्युत्तरस्यः
रिग्वेद्यां पृथ्वी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
जय हेमन्त ज्ञान के विषय को जगते जग्य में बड़ा है ।

सहस्रं च सहस्रं च हेमन्तिकावृत्तं अग्नेरन्तः-
इत्येषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप

ओषधयः कल्पन्तामग्नेयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय
 सन्नताः । ये अग्नेयः समनसोऽन्तराद्यावापृ-
 थिवी इमे हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमान्ना इन्द्र-
 मिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिस्वद्
 ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

पदार्थः— हे मित्रजन जो (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) बृहद् श्रेष्ठ जनों के
 होने के लिये (सन्नताः) बलकारी शगइन (च) और (सहस्यः) बल में प्र
 सन्न हुआ पीप (च) ये दोनों महीने (हैमन्तिकी) (ऋतू) मेइस्त ऋतु
 में हुए अपने विन्दु जानने वाले (अभिसंविशन्तु) सब ऋतु के प्राय के समा-
 न (सीदतम्) स्थित हैं जिन ऋतु के (अन्तःश्लेषः) मध्य में स्वयं होता है
 सब के समान तू (असि) है सो तू उन ऋतु में (द्यावापृथिवी) आकाश
 और भूमि (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (आयः) लाल और (ओषधयः) ओषधियां
 और (अग्नेयः) सफेदाड़े में युक्त अग्नि (पृथक्) पृथक् २ (कल्पन्ताम्)
 समर्थ हों ऐसा जान (ये) जो (अग्नेयः) अग्निमें के तुल्य (अन्तरा)
 भीतर प्रविष्ट होने वाले (सन्नताः) नियमकारी (समनसः) अधिकृत वि-
 चार वाले लोग (इमे) इन (ध्रुवे) बृहद् (द्यावापृथिवी) आकाश और
 भूमि को (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के तुल्य (हैमन्ति-
 की) (ऋतू) मेइस्त ऋतु के दोनों महीनें को (अभिकल्पमानाः) समुप
 हो कर समर्थ करने वाले (देवाः) दिव्य गुण विशुली के समान (अभिसं-
 विशन्तु) आदेश करें ये राजान लोग (तथा) तथा (देवतया) प्रकाशस्वरूप
 परमात्मा देव के प्राय तेम बृहद् हो के नियम से आहार और विहार काके
 सुखी हों ॥ २७ ॥

भाषार्थः—इन मंत्र में वाचकहृत्—विद्वानो को योग्य है कि यथायोग्य
 गुण के लिये ऐश्वर्य ऋतु में पदार्थों का भोग करें और धीमे धी दूरियों को
 भी भोग करायें ॥ २७ ॥

एकमेवैतद्ग विद्मदेव ऋषि । ईश्वरो देवता ।

निचृष्टिकृतिरछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मय यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है इन वि० ॥

एकयास्तुवत प्रजा अर्धयन्त प्रजापतिरधि-
पतिरासीत् । तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मा सृज्यत ब्र-
ह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् । पञ्चभिरस्तुवत भू-
तान्यंसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् ।
सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधि-
पतिरासीत् ॥ २८ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (मजापतिः) प्रजा का चालक (अधिपतिः)
मय का अध्यक्ष परमेश्वर (जामीत्) है उसकी (एकया) एक घाणी से
(अस्तुवत) स्तुति करो और जिस ने मय (प्रजाः) प्रजा के लोगों को घे-
दद्वारा (अधोपन्त) विद्यायुक्त किये हैं जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का रक्षक
(अधिपतिः) मय का स्वामी परमात्मा (जामीत्) है जिस ने यह (प्रह्म)
मूलक विद्यायुक्त वेद को (असृज्यत) रचा है उस की (तिसृभिः) प्राण
सदान और उपान वायु की गति से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (भू-
तानि) पृथिवी आदि भूतों को (असृज्यन्त) रचा है जो (भूतानाम्)
मय भूतों का (पतिः) रक्षक (अधिपतिः) रक्षकों का भी रक्षक (जा-
सीत्) है उस की मय मनुष्य (पञ्चभिः) समान वायु चित्त बुद्धि अहंकार
और मन से (अस्तुवत) स्तुति करे जिस ने (सप्तऋषयः) पांच मुख्य
प्राण, महत्तत्त्व-मनसि और अहंकार मात्र पदार्थ (असृज्यन्त) रचे हैं जो
(धाता) धारण या पोषण करने (अधिपतिः) मय का स्वामी (जामीत्)

है उसकी (सप्तभिः) नाग, क्रूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और वृक्षा तथा
प्रदत्तो से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ २८ ॥

भाषार्थः—सद्य मनुष्यों को योग्य है कि सद्य जगत् के सत्पादक ग्वा-
यकर्ता परमात्मा की स्तुति करें सुनें विभारे' और अनुष्ठान करें । जैसे
हेमन्त ऋतु में सद्य पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की सदासना
करके शान्ति शील होवे ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता । पूर्वस्वर्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । त्रयोदशभिरित्युत्तस्य ब्राह्मी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

किर यह जगत् का रचने वाला कैसा है इस धि० ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादिति रधि-
पत्यासीत् । एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्य-
न्तार्त्तवा अधिपतय आसन् । त्रयोदशभिरस्तु-
वत मासां असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् ।
पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरा
सीत् । सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः एशवोऽसृ-
ज्यन्त वृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

पदार्थः—ये मनुष्यो मुनयोऽन लिग मे (पितरः) रक्षक मनुष्य (नाग
उपगत) सत्पन्न क्रिमे हैं जहां (अदितिः) रक्षा के योग्य (अधिपती)
आत्यन्त रक्षक माता (आसीत्) जैसे जगत् परमात्मा की (गवतिः) गन्त
मात्रों मे (अस्तुवत) मुन प्रकृता करे लिग मे (आनयः) वगन्त आदि
ज्ञानु (अस्तुवत) रहे हैं जहां (आश्रया) जगत् मनुष्यों के मुन (अधि-

पदस्यः) अटने २ द्विपद में अधिकारी (नामन्) होते हैं उन की (एका-
 दशतिः) दश प्राणि और पदाब्दों आगमा में (अस्तुयत) स्तुति करो जिम
 में (नाम्नाः) शेषादि आरह महीने (अस्तुयन्त) रने हैं (पंचदशतिः)
 पन्द्रह तिथियों के मद्दिन (मयतमरः) मयतमर (अधिपतिः) मय काल
 का अधिकारी रथा (नामीत्) है उन की (त्रयोदशतिः) दश प्राण पदा-
 रणमां लीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं में (अस्तुयत) स्तुति करो जिम में
 (इन्द्रः) परम संवत्ति का हेतु मुख्य (अधिपतिः) अधिष्ठाता उत्पन्न किया
 (नामीत्) है जिमने (रात्रम्) रात्रय या रात्रिय कुल को (प्रष्टुयत)
 रथा है उनमें (मत्तदशतिः) दश प्राण की गंगुली दो अघा, दो जागु, दो प्र-
 तिष्ठा और एक भाग में ऋवर का अग द्वाग मत्रहैं ये (अस्तुयत) स्तुति
 करो जिम में (सृष्टरपतिः) सृष्टे २ पदार्थों का रक्षक यत्रय (अधिपतिः)
 अधिकारी रथा (नामीत्) है और (पश्यवाः) पश्य के (पश्यतः) गौ
 आदि पशु (अस्तुयन्त) रथे हैं उन परमेश्वर की पूर्वोक्त सम पदार्थों से
 युक्त होके (अस्तुयत) स्तुति करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जाय लोग जिमने काल के विभाग करने वाले
 मुख्य आदि पदार्थ रथे हैं उन परमेश्वर की उपासना करो ॥ २८ ॥

नगदशाभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । जगदीश्वरो देवता ।
 पूर्वस्य द्वाप्ती जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पञ्चविंशत्येत्वस्य द्वाप्ती पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

किर यह किमा है यह वि० ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरा-
त्रे अधिपत्नी आस्ताम् । एकंविंशत्यास्तुव-
तकशपाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासी-
त् । त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्य-

न्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवता-
ऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् ।
सप्तविंशत्यास्तुवत द्वात्रिंशद्व्यैतां वसवो
रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आ-
सन् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जिनमे उत्पन्न किये (अक्षरात्रे) दिन और रात्रि (अधिपती) मय काम कराने के अधिकारी (आत्साम्) हैं जिसने (शूद्राभ्यो) शूद्र और आर्य द्विज ये दोनों (असृज्यन्ताम्) रचे हैं उस की (नवदशभिः) दश प्राण पर्यन्त महाभूत मन, बुद्धि, चित्त और महंकारों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने उत्पन्न किया (वरुणः) जल (अधिपतिः) प्राण के समान म्रिय अधिष्ठाता (आसीत्) है जिसने (एकशकाः) जुड़े एक सुरों वाले घोड़े आदि (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (एकविंशत्या) मनुष्यों के इन्द्रोप अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने बनाया (पूषा) पुष्टिदाता भूमौल (अधिपतिः) रक्षा करने वाला (आसीत्) है जिसने (रुद्राः) अति मूढन लीयों से ले कर मकुल पर्यन्त (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (त्रयोविंशत्या) पशुओं के तैर्धन अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिन ने बनाया हुआ (वायुः) वायु (अधिपतिः) पालने द्वारा (आसीत्) है जिस ने (आर्याः) धन के (पशवः) सिंह आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं (पञ्चविंशत्या) अनेकों प्रकार के छोटे २ वर्ष्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् मन अवयवों की कारीगरी के साथ (अस्तुवत) प्रशंसा करो जिनने बनाये (द्वात्रिंशद्व्यै) आकाश और भूमि (ऐताम्) प्राप्त हैं जिन के बनाने से (वसवः) अग्नि आदि आठ पदार्थ या प्रथम कक्षा के विद्वान् (रुद्राः) प्राण आदि या सध्यम विद्वान् (आदित्याः) द्यारह महीने वा सप्तम विद्वान् (अनुव्यायन्)

अनुकूलता से उत्पन्न हैं (ते) (एव) वे अग्नि आदि ही या विद्वान् लोग (अधिपतयः) अधिष्ठाता (आसन्) होते हैं उन की- (ममविंशत्या) सत्ताईस वन के पशुओं के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिसने ब्राह्मण सत्रिय वीश्य और शूद्र हाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियोंके शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥३०॥

नयविंशत्येत्यस्य विश्वदेश ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

स्वराद् ब्राह्मी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त वि० ॥

नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतंयोऽसृज्यन्त
सोमोऽधिपतिरामीत् । एकत्रिंशतास्तुवत प्र-
जा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आस-
न् । त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यंशाम्यन्प्रजा-
पतिः परमेष्ठ्यधिपतिरामीत् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जिनके बनाने से (सोमः) अधिपतियों में उत्तम अधिपि (अधिपतिः) स्वामी (आमीत्) है जिस ने वन (वन-स्पतयः) पीपल आदि वनस्पतियों को (असृज्यन्त) रचा है उन परमात्मा की (नवविंशत्या) सनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो । और जिस ने उत्पन्न किये (यवाः) ममष्टिरूप वने पर्वत आदि (च) और तमरेसु आदि (अयवाः) मिथ २ प्रकृति के अय-यव मश्व रजम् और तमोगुण (च) तथा परमासु आदि (अधिपतयः) मुख्य कारणरूप अधिपक्ष (आसन्) हैं उन (प्रजाः) प्रसिद्ध अधिपतियों को जिसने (असृज्यन्त) रचा है उन ईश्वर की (एकत्रिंशता) इकतीस

प्रजा के अवयवों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो । जिस के प्रभाव से (भूतानि) प्रकृति के परिणाम सहस्ररथ के उपद्रव (अशास्त्र्यन्) शान्त हों जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (परमेष्ठी) परमेश्वर के समान आकाश में ठपापक हों के स्थित परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है उस की (उपस्थिता) महाभूतों के तैत्तिथ गुणों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ॥३१॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये धनस्पति आदि जीपधियों को रच के धारण और व्यवस्थित किया है उसीकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

सह चैदहवां अध्याय पूरा हुआ ॥



अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः ॥

शौं विद्वांसि देव सविगर्दुरितानि परां सुख । यद् भद्रं तद्
भासुं ॥ १ ॥

भद्रं जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । भद्रिर्देवता । त्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथ पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस कं प्रथम मन्त्र में राजा और
राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अग्नें ज्ञातान् प्र णुंदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधिना ब्रूहि सुमना अहेङ्गस्तथं स्याम शर्मैस्त्रिवरुथ उद्गौ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापते भाप (नः) हमारे (जातान्) प्रसिद्ध
(सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र, नुद) दूर कीजिये । हे (जातवेदः) प्रसिद्ध यलयान्
राजन् भाप (भद्रातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) प्रेरणा कीजिये और हमारा
(अहेङ्ग) अनादर न करते हुए (सुमनाः) प्रसन्न चित्त भाप (नः) (प्रति) ह-
मारे प्रांत (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश कीजिये जिसमें हम लोग (तव) भाप के
(उद्गौ) उत्तम पदार्थों से युक्त (त्रिवरुथे) प्राध्यात्मिक प्राधिभौतिक और आ-
धिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (शर्मैन्) घर में (स्याम) सुखी हों ॥ १ ॥

भाषार्थः—राजा आदि न्यायाधीश समासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध
और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके बश में करें और किसी भर्मात्मा का तिर-
स्कार और अपर्मा का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विद्वान्
पूर्वक राज्य में रहें ॥ १ ॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । भद्रिर्देवता । भूरिक् त्रिष्टुच्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहसा ज्ञातान् प्रणुंदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो

नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयधस्वाम् प्रणुदा नः सप-
त्नान् ॥ २ ॥

पदार्थः—दे (जातवेदः) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन् आप (नः) हमारे (स-
हसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुए (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्रणुद) जी-
तिथे और उन (प्रति) (अजातान्) युद्ध में लिये हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से
प्रसिद्धों को (नुदस्व) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार विचारते
हुए आप (नः) हमारे लिये (अधिब्रूहि) अधिकता से विजय के विधान का उप-
देश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) हों जिन (नः) ह-
मारे (सपत्नान्) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (प्रणुद) मारें उन को हम
लोग भी मारें ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने
में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड दें और जो अपने सहायक
हों उन का सत्कार करें ॥ २ ॥

पौडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । दम्पती देवते । प्राप्ती

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ स्त्री पुरुष का धर्म भगले मंत्र में कहा है ॥

पौडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंशं स्तोमो वर्चो
द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तान् त्वा विश्वं अभि गृण-
न्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥३॥

पदार्थः—जो (पौडशी) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के
योग्य (ओजः) पराक्रम (द्रविणम्) धन जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवाबीस संख्या
को पूरण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (स्तोमः) स्तुति का साधन (नाम)
प्रसिद्ध (वर्चः) पढ़ना और (द्रविणम्) बल को देती है जो (अग्नेः) अग्नि की
(पुरीषम्) पूर्ण को प्राप्त (अप्सः) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित
(असि) हो उस (त्वा) पुरुष तथा (ताम्) स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) वि-
द्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तुतियों को जनाने
वाली (घृतवती) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (इह) इस गृहाधर्म में (सी-
द) स्थित हो और (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों के हेतु (द्र-
विणा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥ ३ ॥

भाषार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सोलह फलारूप जगत् में विद्यारूप षड् को पैला और शूदाश्रम करके विद्यादान कर्मों को निरन्तर किया करें ॥ ३ ॥

एवरुद्र इत्यस्य परमेष्ठी श्रुतिः । विद्यां सो देयता । निचूदा-
कृतिरुद्रः । पञ्चमः हरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुग बढ़ायें यह षि० ॥

एवुरुद्रन्तो परिचरुद्रन्दः शुम्भुरुद्रन्दः परिभुद्रन्द आच-
रुद्रन्तो मनुरुद्रन्तो वपचरुद्रन्दः सिन्धुद्रन्दः समुद्ररुद्रन्दः स-
रिरुद्रन्दः क्रुक्पु रुद्रन्दस्त्रिक्रुक्पुद्रन्दः क्रावपु रुद्रन्दो अङ्कुपु रुद्रन्तो-
ऽक्षरपङ्क्तिरुद्रन्दः पदपङ्क्तिरुद्रन्दो विष्टारपङ्क्तिरुद्रन्दः क्षु-
रुद्रन्तो अजुद्रुद्रन्दः ॥ ४ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (एव.) (रुद्रः) आनन्ददायक
दान (परिचः) सत्य सेवनरूप (रुद्रः) सुखदायक (शुम्भुः) सुख का अनुभव
(रुद्रः) आनन्दकारी (परिभुः) सधुम्भोर से पुत्रार्थो (रुद्रः) सत्य का प्रकाशक
(आचरुद्र) दोषों का हटाना (रुद्रः) जीवन (मनः) संकल्प विकल्पारम्भ (रु-
द्रः) प्रकाशकारी (व्यचः) शुभ गुणा को व्याप्ति (रुद्र) आनन्दकारक (सिन्धुः)
नदी के तुल्य चलना (रुद्रः) स्वतन्त्रता (समुद्रः) समुद्र के समान गर्भारता (रु-
द्रः) प्रयोजनसिद्धिकारी (सरिरुद्र) जल के तुल्य काम तथा (रुद्रः) जगत् के स-
मान ज्ञानि (क्रुक्पु) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल शक्ति (रुद्रः) प्राप्ति देने वाला
(त्रिक्रुक्पु) अश्वामादि तीन सुधों का प्राप्त करने वाला कर्म (रुद्रः) आनन्दका-
रक (काश्यप) दार्पदर्शी कवि लोगों ने बनाया (रुद्रः) प्रकाशविज्ञानदायक (म-
ङ्कुपु) देनी गति वाला जल (रुद्रः) उपकारी (अक्षरपङ्क्तिः) परलोक (रु-
द्रः) आनन्दकारी (पदपङ्क्तिः) यह लोक (रुद्रः) सुगमायक (विष्टारपङ्क्तिः)
सब दिशा (रुद्रः) सुख का साधक (छुरः) छुरा के समान पदार्थों का दंडक मूर्त्य
(रुद्र) विज्ञानस्वरूप (अजः) प्रकाशमय (रुद्रः) स्पष्ट आनन्दकारी पदार्थ
सुख के लिये सिद्ध करो ॥ ४ ॥

भाषार्थः- जो मनुष्य धर्मपुत्र कर्म में पुत्रप्राप्य करने में सब के लिए होगा स
पुत्र समझने हैं ये सब शक्ति के पदार्थों से सुग लेने को समझें होने हैं ॥ ४ ॥

आचरुद्र इत्यस्य परमेष्ठी श्रुतिः । विद्यां सो देयता ।

श्रुतिगामिहानिरुद्रः । पञ्चमः हरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावे यह वि० ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दःसंयच्छन्दो विषच्छन्दो बृहच्छन्दो
रथन्तरच्छन्दो निकायच्छन्दो विषयच्छन्दो गिरच्छन्दो भ्रजच्छ-
न्दः संस्तुप् छन्दोऽस्तुष्टुप् छन्द एवच्छन्दो वरिच्छन्दो वय-
च्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाच्छन्दो विशालं छन्दश्छदिच्छ-
न्दो दूरोदणं छन्दस्तन्द्रच्छन्दो अङ्गुलं छन्दः ॥ ५ ॥

पदार्थः—मनुष्योंको चाहिये कि (आच्छत्) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति कर-
ने द्वारा कर्म (छन्दः) प्रकाश (प्रच्छत्) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला
कर्म (छन्दः) उत्साह (संयत्) संयम (छन्दः) बल (वियत्) विविध बल का
साधक (छन्दः) धैर्य (बृहत्) बहुत बृद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता (रथन्तरम्) स-
मुद्ररूप संसार से पार करने वाला पदार्थ (छन्दः) स्त्रीकार (निकायः) संयोग
का हेतु वायु (छन्दः) स्त्रीकार (विषयः) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान
अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाशरूप (गिरः) भोगने योग्य धन (छन्दः) ग्रहण (भ्रजः)
प्रकाशरूप अग्नि (छन्दः) छे लेना (संस्तुप्) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्यग्भों को
जनाने वाली वाणी (छन्दः) आनन्द कारक (अस्तुष्टुप्) सुनने के पीछे शास्त्रों को
जनाने वाली मन की क्रिया (छन्दः) उपदेश (एवः) प्राप्ति (छन्दः) प्रयत्न (वरिवः)
विद्वानों की सेवा (छन्दः) स्त्रीकार (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता (वय-
स्कृत्) अवस्था वर्द्धक जीवन के साधन (छन्दः) ग्रहण (विष्पर्द्धाः) विशेष करके
जिससे ईर्ष्या करे वह (छन्दः) प्रकाश (विशालम्) विस्तीर्ण कर्म (छन्दः) प्र-
हण करना (छदिः) विघनों का हटाना (छन्दः) सुषों को पट्टुचाने वाला (दूरोद-
णम्) दुःख से चढ़ने योग्य (छन्दः) बल (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता करना (छन्दः) प्र-
काश और (अङ्गुलम्) माणित विद्या का (छन्दः) सम्पत् स्थापन करना स्त्री-
कार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधी-
नता का निरन्तर स्त्रीकार करें ॥ ५ ॥

रदिमनेत्वस्य परमेष्ठीः। विद्वांसो देयताः। विराडभिहतिद्वन्द्वः। श्रुगमःस्वरः ॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह वि० ॥

रुदिमनां सत्यापं सत्यद्विजन्व मेतिना धर्मेणा धर्मेद्विजन्वा-
द्वित्या द्विषा द्विषद्विजन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व मन्नि-

धिनां पृथिव्या पृथिवीं जिन्य विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्य प्रव-
याऽह्वाहंजिन्यानुया रात्र्या रात्रींजिन्योशिजा वसुभ्यां वसु-
जिन्य प्रकेनेनादित्येभ्य आदित्याजिन्य ॥ ६ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष त् (रात्रिणा) किरणों से (सत्याय) वर्तमान में हुए
मृत्यु के तुल्य नित्य सुप्त और स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम्) अव्यभिचारी कर्म
को (जिन्य) प्राप्त हो (भेतिना) उत्तम ज्ञान युक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से
(धर्मम्) धर्म को (जिन्य) जान (अन्वित्या) खोज के हेतु (दियौ) धर्म के प्रका-
श से (विद्यम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्य) प्राप्त हो (सन्धिना) सन्धि रूप (अ-
न्तरिक्षेण) आकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्य) जान (पृथिव्या) भू-
गर्भविद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्य) जान (वि-
ष्टम्भेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्ट्या) वर्षा की विद्या से
(वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्य) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (सद्वा) प्रकाश की वि-
द्या से (महः) दिन को (जिन्य) जान (अनुया) प्रकाश के पीछे चलने वाली
(रात्र्या) रात्री की विद्या से (रात्रीम्) रात्रि को (जिन्य) जान (उदिजा) का-
मनाओं से (वसुभ्यः) अग्नि आदि भाठ वसुओं की विद्या से (वसुन्) उन अग्नि
आदि वसुओं को (जिन्य) जान और (प्रकेनेन) उत्तम विज्ञान से (आदित्येभ्यः)
वारह महीनों की विद्या से (आदित्याद्) वारह महीनों को (जिन्य) तत्त्वस्वरूप से
जान ॥ ६ ॥

भाषार्थः-विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदा-
र्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥ ६ ॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । भेषतः स्वरः ॥
गृहाधर्मो पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह वि० ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्य स्रष्टु स्रष्टुं श्रुताय श्रुतं
जिन्यैहेनौपधीभिरोपधीजिन्योत्तमेन तन्भिस्तनूजिन्य ययोधसा
धीतिनाधीताजिन्याभिजिता तेजसा तेजो जिन्य ॥ ७ ॥

पदार्थः-हे मनुष्य त् (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि
से (रायः) धनकी (पोषम्) पुष्टि को (जिन्य) प्राप्त हो (संसर्षेण) सम्पर्क प्राप्ति
से (धुताय) धवण के लिये (धुतम्) शास्त्र के स्तुन ने को (जिन्य) प्राप्त हो (ऐ-
डेन) अन्न के संस्कार और (ओपधीभिः) यव तथा सोमलता आदि ओषधियों की

पदार्थः—हे मनुष्य जो तू (त्रिवृत्) सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने द्वारा (भसि) है उस (त्रिवृते) तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (प्रवृत्) जिस कार्य रूप में प्रवृत्त संसार का ज्ञान (भसि) है उस (प्रवृते) कार्यरूप संसार का जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (विवृत्) जिस विविध प्रकार में प्रवृत्त जगत् का उपकार कर्ता (भसि) है उस (विवृते) जगदुपकार के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (सवृत्) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने द्वारा (भसि) है उस (सवृते) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (आक्रमः) अर्द्ध प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला (भसि) है उस (आक्रमाय) अन्तरिक्ष का जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रम) सम्पत् पदार्थों को जानता (भसि) है उस (संक्रमाय) पदार्थ ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (उत्क्रम) ऊपर मेघमंडल की गति का ज्ञान (भसि) है उस (उत्क्रमाय) मेघ मंडल की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को तथा हे स्त्रि जो तू (उत्क्रान्ति) सम विपम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या का जानने हारी (भसि) है उस (उत्क्रान्त्यै) गमन विद्या के जानने के लिये (त्वा) तुझ को सब प्रकार ग्रहण करते हैं (भधिपतिना) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त हों ॥ ९ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों के जाने बिना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के मन्त्र मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये ॥ ९ ॥

राश्वसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । यस्यो देवताः । पूर्णस्य विराहं ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः ।
 धैवतः स्वरः ॥ प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
 अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं यह वि० ॥

राश्वसि माची दिग्बसं वस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हीतीनां प्रतिधृत्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याध्रयुत्वाऽयं सूक्तमव्यं धापै-
 स्तभ्नातु रधन्तरं साम् प्रतिष्ठित्वा अन्तरिक्षं शर्पयस्त्वा । प्रथ-
 मजा देवेषु द्विवो मार्षपा यार्षणा प्रथन्तु विधृत्ता चापमधिप-
 तिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गं लोके यजमानं च
 सादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे शिव (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी जैसे जिस के (यस्यः) भग्या-
दिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हे जैसे नू (प्राची) पूर्व (दिक्)
दिशा के समान (राशी) राशी (भूमि) हे जैसे (हेतूनाम्) वज्रादि शस्त्रास्त्रों का
(प्रतिधत्तां) प्रत्यक्ष धारण करता (श्रितुम्) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्य रूप सं तीन
प्रकार वर्तमान (स्तोमः) स्तुतिपुक्त गुणों से सहित (भग्निः) महाविद्युत् धारण
करने वाली हे धैने (त्या) तुझ को तेरा पति में धारण करता हूँ तू (पृथिव्याम्) भूमि
पर (मध्यधायै) पीड़ा न होने के लिये (उदयम्) प्रशंसनीय (भाज्यम्) घृत आदि
पदार्थों को (श्रयतु) धारणा कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (रचन्तरम्) रथादि
से तारने वाले (साम) सिद्धान्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारणा कर जैसे (अन्तरिक्षे)
आकाश में (दिवः) विजुली का (मात्रया) श्रेष्ठ सम्पन्ध और (वरिष्णाः) महा पुरु-
पार्थ से (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थविद् विद्वान् (त्या)
तुझ को शुभ गुणों से विशाल बुद्धि करे (च) और जैसे (भयम्) यह (विधत्तां)
विविध रीति से धारणा कर्त्ता तेरा पति तुझ से घर्षे जैसे उस के साथ तू घर्त्ता कर
(च) और जैसे (सयं) सय (संविदानाः) अच्छे विद्वान् लोग (नाफस्य) अधिष्-
मान् दु ख के (पृष्ठे) मध्य में (स्वर्गे) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति (लोके) द-
र्शनीय है उस में (त्या) तुझ को (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु)
स्थापन करे जैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुल्य—पूर्व दिशा इस लिये उत्तम कहाती है कि जिस
से सूर्य प्रथम वहाँ उदय को प्राप्त होता है। जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह
किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि सय पदार्थों का
धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को य-
थार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

विराडसीत्यस्या परमेष्ठी ऋषिः। रुद्रा देवताः। पूर्वस्या भुक्तिब्राह्मी विष्णुः छन्दः। धैवतः
स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी वृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

किर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्बुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां
प्रतिधत्ता पञ्चदशस्त्या स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु प्रजंगमुकथमव्य-
थायै स्तभ्नातु वृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षेऽऋषयस्त्वाऽप्रथम-
जा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधत्ता चापमधिपनिश्च

ते त्वा सर्वे संधिदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोकं यजमानं च साद-
यन्तु ॥ ११ ॥

पदार्थः- हे स्त्रि जां नू (विराट्) विविध पदार्थों में प्रकाशमान (दक्षिणा) (रि-
क्) दक्षिण दिशा के तुल्य (मासि) हे जिग (ने) तेरा पनि (रुद्रा) वायु (देवा) दि-
व्य गुण युक्त वायु (अधिपतय .) अधिष्ठानाओं के समान (हर्तनाम) धर्मों का (प्रति-
धर्ता) निधय के साथ धारण करने वाला (पञ्चदश) पन्द्रह सख्या का पुरक (स्तो-
म) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (रुद्र) सूर्य (त्वा) तुभ
को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (धयन्) सेवन करे (अव्यथायै) मानस भय से रहित
तेरे लिये (प्रउगम्) कथनीय (उक्थम्) उपदेश के योग्य वचन को (स्तभ्नातु)
स्थिर करे तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वृद्ध) बहुत अर्थ से युक्त (साम)
सामंयद् को स्थिर करे और जैसे (अन्तरिक्ष) आकाशस्थ (देवेषु) कमनीय प-
दार्थों में (प्रथमजा) पहिल हुए (ऋरयः) दान के हेतु प्राणु (दिवः) प्रकाश का-
रक अग्नि के लेश और (वरिष्णा) बहुल्य के साथ यजमान दे वैसे विद्वान् लोग
(त्वा) तुभ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें जैसे (विधर्ता) विविध प्रकार के भाकर्य-
ण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (च) तथा पोषण करने वाला (अधिपति .)
मय प्रकाशक पदार्थों में उत्तम सूर्य (त्वा) तुभ को पुष्ट करे जैसे (संधिदानाः)
सम्पत् विचार शील विद्वान् लोग हैं (ने) वे (सर्वे) सब (नाकस्य) दु. परहित
भाकाय के (पृष्ठे) सेचक भाग में (स्वर्गे) सुरा कारक (लोक) जानने योग्य देश
में (त्वा) तुभ को (च) और (यजमानम्) यजविद्या के जानने हारे पुरुष को
(सादयन्तु) स्थापित करें ॥ ११ ॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में पाचकतुल्य-जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ यजमान सूर्य
को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का साधय करके इस विद्या
को जगते वैसे ही पुरुष प्रलययं के साथ विद्वान् हो के दूसरों को पढ़ायें ॥ ११ ॥
सम्राट्मीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । आदित्या देवताः । पूर्वस्य निवृद् प्राप्ती जगती
रुद्रः । निषादः खरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य प्राप्ती वृद्धी रुद्रः । मध्यमः खरः ॥

फिर वे ही पुरुष कैसे हों यह वि० ॥

सुम्राडंसि प्रतीचीदिगादित्यास्ने देवा अधिपतयां वरुणो हृत्तीनां
प्रतिघर्त्ता संसृष्टास्त्या स्तोमः पृथिव्यां अंयन्तु मरुत्वतीर्षमुवय-
मवर्थायै स्तभ्नातु बैरुपं माम् प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षं ऋणं

प्रथमजा द्वेषु द्विवो माघ्रया परिस्था प्रथन्तु विधुर्त्ता प्रायमधि-
पतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोकं यजमा-
नं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विं जं तु (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (मन्नाद्)
मध्यम प्रकारका (भाग) है उस (नं) नगर पति (भाद्रियाः) विजुली से युक्त
भाग वायु (देश) दिश्य सुतदाना (अधिपत्यः) स्थानियों के तुल्य (भयम्)
यह (मत्तदशः) मत्तद भय का पुष्क (च) और (स्त्रीमः) स्तुति के योग्य
(यग्गाः) जलममुदाय के समान (इतीनाम्) विजुलियों का (प्रतिधर्त्ता) धारण
करने वाला (अधिपतिः) स्थान (त्वा) तुम्हें का (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (भयन्तु)
भयन करे (मध्ययार्थं) मध्यम सं अचल वेरे लिये (मन्मथनीयम्) बहुत मनुष्यों
के व्याप्यान से युक्त (उपथम्) कथन योग्य चंद्रचक्र तथा (प्रतिष्ठित्ये) प्रतिष्ठा
के लिये (वैकथम्) विविध रूपों के व्याप्यान से युक्त (नाम) सामवेद को (स्तज्जानतु)
ग्रहण करे । और जं (दिव) प्रकाश के (माघ्रया) भाग से (चरिग्णा) यदुत्थ
के साथ (बन्तारिचं) भाकाश में (प्रथमजाः) विस्तार युक्त कारण से उत्पन्न हुए
(ऋषयः) गतियुक्त वायु (द्वेषु) दान के हेतु मध्यमों में यजमान हैं जैसे (त्वा)
तुम्हें का विद्वान् लोग (प्रथन्तु) प्रसिद्ध उपदेश करें । जैसे (विधुर्त्ता) जो वि-
विध रत्नों का धारण क्षम है (च) यह भी (अधिपतिः) मध्यम स्वामी राजा प्र-
जाओं को सुख में रखता है जैसे (ते) वेरे मध्य में (सर्वे) सब (संविदानाः) अ-
च्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (त्वा) तुम्हें को (च) और (यजमानम्) विद्वानों के
सेवक पुरुष को (नाकस्य) दुःखरहित देश के (पृष्ठे) एक भाग में (स्वर्गे) सुख
प्रापक (लोकं) दर्शनीय स्थान में (सादयन्तु) स्वायित करें ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुं—जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहां
के पदार्थों को दूसरों के लिये जानते हैं जैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानों मादि को
विद्यादि सुखों से सुशोभित करें ॥ १२ ॥

स्वराडसीत्वरथ परमेष्ठी ऋषिः । मरुतो देवताः । पूर्वस्य भुरिग्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ग्राह्मी गृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह वि० ॥

स्वराडसीत्वीं दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपत्यः सोमो हेतीनां
प्रतिधुर्त्तं काचिधेशस्तवा स्तोमः पृथिव्याथे श्रयन्तु निदकैवस्यसुक्थ-

मन्वथायै स्तभनात् । वैराजत्ते साम् प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षं ऋषय-
स्त्वा प्रथमजा देवेषु द्विषो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधुर्त्ता चाय-
सधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गं लोकं यज-
मानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थ - हे त्वि जैसे (स्तभत्) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्)
दिशा (अस्मि) है वैसा (ते) तेरा पति हो जिम दिशा के (मरुतः) वायु (देवाः)
दृश्यरूप (अधिपतयः) अधिष्ठाता है उन के सदृश जो (एकविंशः) इन्द्रास सं-
ख्या का पुरक (स्तोम) रतुति का मात्रक (सोम) चन्द्रमा (हेतनाम) यज्ञके
समान वत्तमान किरणों का (प्रतिधुर्त्ता) धारने द्वारा पुरुष (त्वा) तुझ को (पृ-
थिव्याम्) भूमि में (अधत्तु) संवन करे (मन्वथायै) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे
लिये (निष्केवल्यम्) जिम में केवल एक स्वरूप का वरण हो वह (उन्धम्) कहने
वाग्य वेदभाग तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैराजम्) वैराट् रूप का प्र-
तिपादक (साम) सामवेद का भाग (स्तभनात्) ग्रहण करे (च) और जैसे तेरे
मध्य में (अन्तरिक्षे) आकाश में स्थित (देवेषु) इन्द्रियों में (प्रथमजाः) सुषय
प्रसिद्ध (दिव) ज्ञान के (मात्रया) मागों से (वरिष्णा) अतिक्रान्त के साथ व-
त्तमान (ऋषयः) बलवान् प्राण्य है जैसे (अयम्) यही इन प्राणों का (विधुर्त्ता)
विधिज्ञ ज्ञान को धारण करता (च) और (अधिपति) अधिष्ठाता है (ते) वे
(सर्वे) सब इस विषय में (संविदानाः) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा
से (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसन्न करें और (नाकस्य) उत्तम स्वरूप लोक
के (पृष्ठे) ऊपर (स्वर्गं) सुखदायक (लोकं) लोक में (त्वा) तुझ को (च) और
(यजमानम्) यजमान पुरुष को (सादयन्तु) स्थित करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ - इस मन्त्र में वाचकलुप-जैसे विद्वान् लोग आभार के सहित चन्द्रमा
आदि पदार्थों और आभार के सहित प्राणा को यथावत् ज्ञान के संभारी कार्यों में
उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं । जैसे मध्यापकर्त्ता पुरुष कन्या पुरुषों को विद्या
ग्रहण के लिये उपयुक्त करके मानन्दित करें ॥ १३ ॥

अधिपत्यर्थात्तस्य परमेष्ठी ऋषि । विश्वे देवा देवताः । पूर्वस्य प्राज्ञो
जगता उद्ः । निषाद्ः सारः ॥ प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य प्राज्ञो प्रिष्टुप्

उद्ः । धैवतः सारः ॥

शिर चर्ही वि० ॥

अधिपत्यसि वृष्टी दिग्बिम्बे ते देवा अधिपतयो वृहस्पति-
 हृतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशदौ त्वा स्तामौ पृथिव्याथ अं-
 यतां पैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अर्ध्यागै स्तभ्नीताथ शाक्वरै-
 वतं सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो
 मार्शया परिष्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे
 संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानश्च सादयन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (वृहती) बड़ा (अधिपती) सब दिशामों के ऊपर वर्त-
 मान (दिक्) दिशा के समान (असि) है उस (ते) तेरा पति (विद्भे) सब
 (देवा) प्रकाशक सूर्यादि पदार्थ (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं। वैसे जो (वृहस्पतिः)
 विश्व का रक्षक (हृतीनाम्) बड़े लोकों का (प्रतिधर्ता) प्रतीति के साथ धारण
 करने वाले सूर्य के तुल्य यह तेरा पति (त्वा) तुम्हको (च) और (त्रिणवत्रयस्त्रिंशदौ)
 त्रिणव और तैतीस (स्तामौ) स्तुतिके साधन (पृथिव्याम्) पृथिवीमें (अर्ध्यागै)
 पाँचा रहितता के लिये (पैश्वदेवाग्निमारुते) सब विद्वान् और अग्नि वायुओं
 के व्याख्यान करने वाले (उक्थे) कहने योग्य वेद के दो भागों का (अर्ध्याग)
 आश्रय करे और जैसे (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा होने के लिये (शाक्वरैवतं) शक्-
 री और रेवती छन्द से कहे अर्थों से (सामनी) सामवेद के दो भागों को (स्त-
 भ्नीताम्) संगत करो। जैसे वे (अन्तरिक्षे) अन्तर्काश में (प्रथमजाः) आदि में हुए
 (ऋषयः) ऋषय आदि सूक्ष्म स्थूल वायु रूप प्राण (देवेषु) दिव्य गुण वाले
 पदार्थों में (दिवः) प्रकाश की (मार्शया) मार्श और (परिष्णा) अधिकता से (त्वा)
 तुम्ह को प्रविष्ट करते हैं उन को मनुष्य लोग (प्रथन्तु) प्रख्यात करें जैसे (अयम्)
 यह (अधिपति) स्वामी (विधर्ता) विविध प्रकार से सब को धारण करने हारा
 सूर्य है जैसे (संविदानाः) सम्यक् सत्यप्रतिष्ठा युक्त ज्ञानवान् विद्वान् ज्ञान (तथा)
 तुम्ह को (नाकस्य) (पृष्ठे) सुखदायक देश के उपरि (स्वर्गे) सुखरूप (लोके)
 स्थान में स्थापित करते हैं (ते) वे (सर्वे) सब (यजमानम्) तेरे पुरुष और तुम्ह
 को (सादयन्तु) स्थिर करें वैसे तुम ही पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब के बीच की दिशा सबसे अधिक है
 वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का सब अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहि-
 ये ॥ १४ ॥

अयंपुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिश्छन्दः । मध्यमःस्वरः ॥
 अयं किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उ० ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृन्मश्च रथीजाश्च से-
नानीन्द्राश्चपौ । पृच्छिज्जहस्त्यदा च क्रतुस्थला चाप्सरसौ । दृङ्
क्षगर्भः पृथगो हेतिः परीक्ष्यतां वृषः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽ-
वन्तु ते नो मृदवन्तु ते यं द्विषतां यश्च नो द्वेष्टि तभेपां जम्भे
दधमः ॥ १५ ॥

पदार्थ-ज्ञा (अथवा) मह (पुर) पूर्वाञ्चल में वर्तमान । हरिकेश (हरितगर्भ)
के नाम के समान हरणशक्ति और बलदाकारी ताप से युक्त (सूर्यरश्मिः) सूर्य की
किरणों के (नमः) उजरा (रथगृन्म) युद्धिमान् सारथि (च) और (रथीजाः)
रथ के बैठ खड्ग के धारण (च) इन दोनों के तथा (सेनागीभ्रामरयो) सेनापति
और ग्राम के अथवा के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की
(पृच्छिज्जहस्त्यदा) आमान्य प्रधान दिशा (च) और (क्रतुस्थला) प्रशा कर्म को
जाननेवाली उपादिशा । च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में चलने वाली अप्सरा
कदाती हैं आं (दृङ्क्ष्यवः) मान और घाम आदि पदार्थों को गाने वाले व्याघ्र
आदि (पशवः) दानिकारक पशु हैं उनके ऊपर (हेतिः) विजुली गिर । जो (पौरु-
षेयः) पुरुषों के समूह (वृषः) माननेवाले और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के तुल्य
ताप करने वाले हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्र का प्रहार (अन्तु) हो और
जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) ये उन पशुओं से (नः) हम लोगों
की (अयन्तु) रक्षा करें (ते) ये (नः) हम को (मृदवन्तु) मुरती करें (ते) ये रक्षक
हम लोग (यम) जिम्मेदार हैं (द्विषमः) विरोध करें (च) और (यः) जाहिसक
(नः) हम से (द्वेष्टि) विरोध करे (तश्च) उसको हम लोग (एषाम्) इन व्याघ्रादि
पशुओं के (जम्भे) मुख में (दधमः) स्थापन करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ-इस मन्त्र में याचकलु-जैसे सूर्य के किरण हरे वर्ण वाले हैं उस के सा-
थ खाल पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं जैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष व-
र्च के रक्षक होयें । जैसे राजाआदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिद्ध आदि पशुओं को रोक के
गो आदि पशुओं की रक्षा करते हैं जैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण
से बृषक रत्न धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण
करें । यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥ १५ ॥

अयं दक्षिणोत्तर परमेष्ठी ऋषिः । प्रीणतुर्देवता । प्रकृतिदृष्टन्दः । धैवतः स्वरः ॥
किर भी वैसाही वि० ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानी-
 ब्राम्हणौ । मेनुका च सहजन्था चाप्सरसौ यातुधाना ह्येती र-
 चाङ्गिभि प्रहेतिसंभ्यो नमो अस्तु तं नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते
 च द्विष्मो गश्च नो द्वेष्टि तमेपां जम्भे दधमः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (भयम्) यह (विश्वकर्मा) सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में चलता है (तस्य) उन वायु के (रथस्वनः) रथ के शब्द के समान शब्द वाला (च) और (रथेचित्रः) रमणीय रथ में चित्र युक्त आश्चर्य कार्यों का करने वाला (च) ये दोनों । सेनानीब्राम्हणौ) सेनापति और ब्राम्हाध्वश के समान वर्त्तमान (मेनुका) जिस से मनन किया जाय वह (च) और (सहजन्था) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं प्रकृत ऊपर (हेतिः) वज्र जो (रचांसि) दुष्ट कर्म करने वाले हैं उन के ऊपर (प्रहे- प्रकृत वज्र के तुल्य (तेष्य) उन प्रजापीडक आदि के लिये (नमः) वज्र का प्र- (अस्तु) ही ऐसा करके जो न्यायाधीश शिखर हैं (ते) वे (नः) हमारी (भयम् रक्षा करें (ते) (वे) (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (य) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि, द्वेष करें (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के समान मुख में (दधमः) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते है वे शत्रुओं का निवारण करके सब को आनन्दित करते हैं । यह भी प्रीप्म ब्रतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥ १६ ॥

अयं पृश्चाद्विश्वकर्मास्तस्य रथेचित्रश्च सेना-
 ब्राम्हणौ । मेनुका च सहजन्था चाप्सरसौ । व्याघ्रा
 ह्येतिः सर्वाः प्रहेतिसंभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु
 तं च द्विष्मो यथा नो द्वेष्टि तमेपां जम्भे दधमः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (भयम्) यह (पश्चात्) पीछे से (विश्व-
 विश्वकर्मा) विश्वकर्मा का (तस्य) उसके (रथेचित्रश्च) रथ में चित्र (सेना-
 ब्राम्हणौ) ब्राम्हणों के (मेनुका) मेनुका (च) और (सहजन्था) सहजन्था (चाप्सरसौ) अप्सरा (व्याघ्रा) व्याघ्र (ह्येतिः सर्वाः) सब (प्रहेतिसंभ्यो) प्रहेतियों के (नमो अस्तु) नमस्कार (ते नोऽवन्तु) उनसे न डरें (ते नो मृडयन्तु) उनसे न डरें (तं च द्विष्मो) उसे (यथा) वैसे (नो द्वेष्टि) न डरें (तमेपां) उनसे (जम्भे) पीछे से (दधमः) दधम (॥ १७ ॥

में व्याप्त विजुलीरूप अग्नि है उभ के (सेनानीप्रागपयी) सेनापति और प्रागपति के समान (रथगोमः) रथगीय तेजस्वरूप में व्याप्त (च) और (अस्मरथः) जिसके समान दूसरा रथ न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचगता) अग्निप्रकार मय जोयधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्बोचन्ती) पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (अस्तरसौ) क्रियाकारक प्राजापत्य किरण हैं जैसे (हन्तिः) साधारण यज्ञ के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम यज्ञ के समान (व्याघ्रा) सिंहों के तथा (सर्पाः) सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नम) यज्ञप्रकार (अम्बु) ही और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करे (ते) ये (नः) हमारे (अम्बु) रक्षक हैं (ते) ये (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) ये हमलोग (यम) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करे (न) और (यः) जो दुष्ट (न) हम से (द्राष्टि) द्वेष करे जिस को हम (एवाम्) इन सिद्धादि के (जन्म) मरण में (दध्म) धरे (तम्) उस को ये रक्षक लोग भी सिद्धादि के मरण में धरे ॥ १७ ॥

भावार्थ - हम मन्त्र में वाचकलुनेपमाल्लार है-यह यथा श्रुत का दोष व्याख्यात है । इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करने चाहिये ॥ १७ ॥

अथमुत्ततदित्यस्य परमर्षीश्रुति । शरत्तुर्वेदता । भूरिगतिर्धनिश्चन्दः । यदजा मरः ॥
 फिर भी येना है वि० ॥

अथमुत्तरास्तुगदं सुस्तस्य तादृशुश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीप्रागपयी । विश्वार्ची यद्युतार्ची चाप्सरस्तापयोः हन्तिर्वातः प्रहेतिरतेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते ये द्विष्मा यदृचं नो द्रेष्टि तमेवा जन्मं दध्मः ॥ १८ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यों जैसे (अयम्) यद (उत्तरात्) उत्तर दिशा में (यंयदम्) यद को संगत करने द्वारे के तुल्य शरद् श्रुत है (तस्य) उसके (सेनानीप्रागपयी) सेनापति और प्राजापत्य के समान (तारयः) नीदरु तेज को प्राण कराने योग्य प्राद्वयन (च) और (अरिष्टेनामः) दुःखों को दूर करने वाला कारिभक (च) ये दोनों (विश्वार्ची) मय जगत् में व्यापक (च) और (युतार्ची) धी या जन्म को प्राण कराने वाली शक्ति (च) ये दोनों (अस्तरसौ) प्राणों की गति हैं जहां (भाग) अथ (हेनिः) वृद्धि के तुल्य यज्ञों और (वातः) प्रिय वयन (प्रहेतिः) अग्निप्रकार बढ़ाने द्वारे के समान आनन्द दायक होता है उभ यः को जो लोग युक्ति के

साथ सेवन करते हैं (तेष्यः) उनके लिये (नमः) नमस्कार (भस्तु) हो (ते) वे (नः) हमारी (भवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम कां (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्विष्टि) द्वेष करें (तम्) उसको (पयाम्) इन जल वायुओं के (जम्भे) दुःखदायी गुणरूप मुख में (दध्मः) धरें जैसे तुम लोग भी वर्त्तों ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यह शब्द ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ १८ ॥
अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठीः ऋषिः । हेमन्तर्तुर्देवता । निचूर्त्कृतिश्चन्द्रः । निषादः स्वरः ॥
फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमुपर्वर्वाग्भ्यस्तुस्तस्य सेनजिघं सुपेणश्च सेनानीग्रामुपयो ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसां भवस्फूर्जन् हेति विद्युत्प्रहेतिस्त्रेभ्यो
नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मा यश्च नो द्विष्टि
तमेपां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (अर्वावसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है (तस्य) उस को (सेनजिघं) सेना से जीतने वाला (च) और (सुपेणः) सुन्दर सेनापति (च) ये दोनों (सेनानीग्रामयौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पीप महीने (उर्वशी) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दसि (च) और (पूर्वचित्तिः) मादि धान का हेतु (च) ये दोनों (अप्सरसां) प्राणों में रहने वाली (भवस्फूर्जन्) भयंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तुल्य (विद्युत्) विजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेष्यः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (भस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों कां (भवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्विष्टि) द्वेष करें (तम्) उस को हम लोग (पयाम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरे । जैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यह भी हेमन्त ऋतु का शेष व्याख्या है। मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके यत्नवान् हों ॥ १९ ॥
अग्निर्मुञ्जैत्यस्य परमेष्ठीः ऋषिः । अग्निर्देवता । निचूर्त्कृतिश्चन्द्रः । पङ्कजः स्वरः ॥
मनुष्यों को किस प्रकार यत्न यत्नाना चाहिये यह वि० ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपम् । अपाधरेतांसि
जिन्वति ॥ २० ॥

पदार्थः-जैसे हेमन्त ऋतु में (अपम्) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्धा) शिर के तुल्य सूर्यरूप से वर्त्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का रक्षक हो के (अपाम्) प्राणों के (रतांसि) पराक्रमों को (जिन्वति) पूर्णता से वृत्त करता है जैसे ही मनुष्यों को पलवान् होना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुं-मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जादरअग्नि को घटा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥
फिर मनुष्य क्या करे यह वि० ॥

अयमग्निः संहस्त्रिणो वाजस्य श्रुतिमस्पतिः । मूर्धा कधी
रयीणाम् ॥ २१ ॥

पदार्थः- हे मनुष्यो (अयम्) यह (अग्निः) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान (संहस्त्रिणः) प्रशस्त धर्मव्य पदार्थों से युक्त (श्रुतिः) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान (वाजस्य) अन्न तथा (रयीणाम्) भनों का (पतिः) रक्षक (मूर्धा) उत्तम अङ्ग के तुल्य (कधी) समर्थ है जैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुं-जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नि-युक्त अन्न धन प्राप्त कराता है जैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को वेदययंघान् कर देता है ॥ २१ ॥

श्वामग्ने इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥
फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

श्वामग्ने पुष्कराद्धपथर्वी निरंमन्थत । मूर्ध्ना विश्वस्य वाघतः
॥ २२ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्वन् जैसे (अपर्था) रक्षक (वाघतः) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने द्वारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष (पुष्करान्) अन्तरिक्ष के (भधि) बीच तथा (मूर्ध्नाः) शिर के तुल्य वर्त्तमान (विश्वस्य) संपूर्ण जगत् के बीच अग्नि को (निरंमन्थत) निरन्तर मन्थन करके प्रदृष्ट करे जैसे ही (श्वाम्) मुझ को मैं बोध करता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान
 प्राफास तथा पृथिवी के सकाश से विजुली का प्रदण कर ब्राह्मचर्यरूप फर्मों को
 सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । निचृदार्षी
 त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
 फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

भुवो यज्ञस्य रजश्च नेता यत्रां नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
 दिवि भूर्धानं दधिपे स्वर्पा जिहामग्ने चकृपे हृद्युयाहम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (नियुद्भिः) संयोग विभाप
 कराने दारी क्रिया तथा (शिवाभिः) मंगलकारिणीदीप्तियों के साथ वर्तमान (भुवः)
 प्रगट हुए (यज्ञस्य) कार्यो के साधक संगत व्यवहार (च) भार (रजसः) लोका-
 समूह को (नेता) भाकरणा कर्ता हुआ सम्यन्ध करता है और (यत्र) जिस (दिवि)
 प्रकाशमान अपने स्वरूप में (भूर्धानम्) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्तमान सूर्य को धारण
 करता तथा (हृद्युयाहम्) प्रदण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली
 (स्वर्पाम्) सुखदायक (जिहाम्) वाणी को चकृपे प्रशुच करता है जैसे तू भुम-
 युषों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (दधिपे) धारण
 कराता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ अग्नि सय
 जगत को सुखकारी होता है जैसे ही पिचा के प्राहक अध्यापक लोग सय, मनुष्यों
 को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥ २३ ॥
 अयोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
 फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अयोधुग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुमिवायुतीमुपासम् ।
 गृहाइव प्र वृषामुज्जिहानाः प्र भानथः सिस्त्रते नाकमच्छं ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (समिधा) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (अग्निः)
 अग्नि (अयोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुए (उपासम्) प्रभा-
 तसमय के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ
 के समान है । जिस अग्नि के (यद्वाहव) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उ-
 रूहट (वयाम्) व्यापक रूप की नीति की (उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते

हुप (म) उत्तम (भानयः) किरण (नाकम्) मुख को (मरुत्) अच्छे प्रकार (निघ्नते) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुग्राह्य संयुक्त करो ॥ २४ ॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुभोपमालंकार हैं—जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुग्री करती है और जैसे भास विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों को उप्रति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अथोचामेत्यस्य परमेष्ठी श्रुतिः । मग्निर्देयता । निचृत् प्रियुष् उन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर यह कैसा है यह वि० ॥

अथोचाम कृयुषे मेघपाशु यज्ञो यन्दाकं वृषभायं वृष्णे । मग्नि-
ष्ठिरो नमस्ता स्तोममग्नौ द्वितीय रुक्ममंरुक्मचंमथेत् ॥ २५ ॥

पदार्थः-हम लोग जैसे (मग्निष्ठिरः) किरणों में रहने वाली विद्युत् (द्वितीय) सूर्य प्रकाश के समान (रुक्मचंम) विशेष करके वृष्टियों में गमन शील (रुक्मम) सूर्य का (मथेत्) आश्रय करती है जैसे (मेघपाशु) मय जून लक्षणां से युक्त पवित्र (वृषभाय) यज्ञो (वृष्णे) यज्ञों के हेतु (कथये) युद्धिमान् के द्वियं (मग्नाय) प्रशस्ता के योग्य (पचः) पचन को और (अग्नौ) जाटाग्नित में (नमस्ता) अन्न आदि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों को (अथोचाम) कहे ॥ २५ ॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में उपमालं०-विद्वानों को चाहिये कि सुशील नृद्वयुद्धि-
पार्थी के लिये परम प्रवृत्त से विद्या देवे जिस से यह विद्या पद के सूर्य के प्रकाश में घट पटादि को देखते हुए के समान मय को पचावत् ज्ञान करें ॥ २५ ॥

अथमिहेत्यस्य परमेष्ठी श्रुतिः । मग्निर्देयता । मृत्पाशो प्रियुष् उन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

अथमिह प्रथमो पाशु प्रातृभिर्होता यजितो अत्युत्कर्षात्तः ।
पममंवाज्ञो भृगोश्चो विरुक्नुयुर्नेदु चित्तं चिन्तुं चिन्तयित्वा ॥ २६ ॥

पदार्थः-जो (इह) इष्ट जगत् में (अत्युत्कर्षात्) कर्ता के योग्य अत्युत्कर्षों में (इ-
त्यः) सोचने योग्य (यजितः) भक्तिभाव करने वाले यज्ञ का माचक (होता) पृथदि
का प्रत्यक्षता (पमम्) सर्वत्र विरुद्ध (अत्युत्) यह अत्युत्कर्ष मग्नि (पातृभिः)
प्रातृशील दुग्धों से (पादि) प्रातृत्त विद्या है (नेदु) जिन को (चिन्तुं) चिन्तनों
में (चिन्तुं) आश्रयकर से (चिन्तुं) अत्युत्कर्ष मग्नि को (चिन्तयित्वा) समस्त

प्रजा के लिये (अग्रवानः) रूपवान (भृगवः) पूर्णज्ञानी (विद्वदनुः) विशेष करके प्रकाशित करने हैं उस अग्नि को मघ मनुष्य स्वीकार करें ॥ २६ ॥

भाषार्थः—विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धारके दूसरों को सिखायें ॥ २६ ॥

जनस्पेत्यस्य परमंष्टी ऋषिः । अग्निर्देयता ।

निचूदार्षी जगती छन्दः । निपाद्. स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर्ग्निसः सुदक्षः सुविताद्यनव्यसे ।

घृतप्रतीको घृहता दिविस्पृशां सुमद्विभोति भरुनेभ्यः शुचिः ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जा-
शुचिः) जागने रूप स्वभाव वाला (सुदक्षः) सुन्दर बल का हेतु (घृतप्रतीकः) घृत
से बढ़ने द्वारा (शुचि) पवित्र (अग्निः) विजुली (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सु-
विताय) उत्पन्न करने योग्य पेशवर्ग के लिये (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है और (घृ-
हता) बड़े (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श से (भरुनेभ्यः) सूर्यो से (सुमत्) प्रका-
श युक्त हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम लोग जानो ॥ २७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो पेशवर्ग्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के
सूर्यो का निर्मात विजुली रूप तेज है उस को जान के उपकार लिया करें ॥ २७ ॥

त्वामग्नइत्यस्य परमंष्टी ऋषिः । अग्निर्देयता विराडार्षी

जगती छन्दः । निपाद्. स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वंधिन्दङ्गिष्ठिअप्राणं वनेवने ।

स जापसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः सहसस्पुत्रमद्भिरः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणवतिप्रय (अग्ने) विद्वन् जैसे (सः) वह (मथ्य-
मानः) मथन किया हुआ अग्नि प्रमिद्ध होता है वैसे तू विद्या से (जापसे) प्रकट
होता है जिस को (महत्) बड़े (सहः) बलयुक्त (सहसः) बलवान् वायु से (पु-
त्रम्) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य (वनेवने) किरण २ वा पदार्थ २ में (शिश्रिवाणम्)
साधित (गुहा) युद्ध में (हितम्) स्थित हितकारी (त्वाम्) उस अग्नि को (आहुः)
कहने हैं (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (अन्वधिन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध
(त्वाम्) तुम्हें कराता हूँ ॥ २८ ॥

भाषार्थः—अग्नि दो प्रकार का होता है । एक मानस और दूसरा वायु इस में

भाङ्ग्यन्तर को युक्त आहार विहारों से और घाह को मन्थनादि से सब विद्वान् संवन करे वैसे इनर जन भी संवन किया करे ॥ २८ ॥

सखा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे होके प्राणि को जानें यह वि० ॥

सखायः सं वः सम्यञ्चामपथे स्तोमं चाग्नेये । वर्षिष्ठाय क्षि-
तीनामूर्जा नष्ट्रे सहस्वते ॥ २९ ॥

पदार्थ -ह (सखायः) मित्रों (क्षितीनाम्) मननशील मनुष्य (वः) तुम्हारे (ऊर्जा) बल के (नष्ट्रे) पौत्र के तुल्य वर्तमान (सहस्वते) धहुन बल वाले (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त बड़े (अग्नेये) अग्नि के लिये जिस (सम्यञ्चम्) सुन्दर सत्कार के हेतु (इयम्) मंत्र को (च) और (स्तोमम्) स्तुतियों को (समाहुः) अच्छे प्रकार कहने हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भाषार्थ -यहां पूरे मन्त्र स (आहुः) इस पद को अनुवृत्ति जाती है । कारीगरों को चाहिये कि सब के मित्र हो कर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थ विद्या का अनुष्ठान करे जो विजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होती है यह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्यादि के सकाशसे उत्पन्न होनी है सो पौत्रके समान है ऐसा जानना चाहिये ॥२९॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

वैश्य को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

सथेसुमिद्युवसे वृषन्नग्ने त्रिह्वान्युर्थ आ । इडस्पदे समिध्यसे
सन्नो वसून्या भर ॥ ३० ॥

पदार्थः-ह (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशमान (अथः) वैश्य जो तू (सस-
मायुवसे) सम्यक् अच्छे प्रकार सम्यन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे)
प्राप्ति के योग्य अधिकार में (समिध्यसे) सुशोभित होने ही (सः) सो तू (इत्)
ही अग्नि के योग से (नः) हमारे लिये (विदधानि) सब (वसूनि) धनों को (आ-
भर) अच्छे प्रकार धारण कर ॥ ३० ॥

भाषार्थः-राजाओं से रत्ना प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषों के लिये संपूर्ण धन धारण करे ॥ ३० ॥

स्यामित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह वि० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विश्व जन्तवः । शोचिष्केशं पुंसि-
याग्ने हव्याय घोढवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (पुरुप्रिय) चहुतों के प्रसन्न करने हारे वा चहुतों के प्रिय (चित्रश्र-
वस्तम) आश्चर्यरूप अग्नादि पदार्थों से युक्त (जग्ने) तेजस्वी विद्वान् (विश्व) प्र-
जाओं में (हव्याय) स्त्रीकार के योग्य अग्नादि उत्तम पदार्थों को (घोढवे) प्राप्ति के
लिये जिस (शोचिष्केशम्) मुखाने वाली सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (स्वाम)
आप को (जन्तवः) मनुष्य लोग (हवन्ते) स्त्रीकार करते हैं उसी की हम लोग
भी स्त्रीकार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से
भार पहुंचाना आदि कार्य भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

एनाव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्वृद्धी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

एना वो अग्नि नममोजां नपातमा ह्वे । प्रियं चेतिष्ठमरतिष्ठं
स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (यः) तुम्हारे लिये एना उस पूर्वोक्त (नमसा) प्र-
दण के योग्य अन्न से (नपातम) दृढ स्वभाव (प्रियम्) प्रीति कारक (चेतिष्ठम्)
अत्यन्त चेतनता कराने हारे (अरतिम्) चेतनता रहित (स्वध्वरम्) मन्त्रे रक्षणीय
व्यवहारों से युक्त (अमृतम्) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) संपूर्ण जगत् के
(दूतम्) सब ओर चलनेहारे (अग्निम्) विजुली की और (ऊर्जः) पराक्रमों को
(आहुवे) स्त्रीकार करूँ जैसे तुम लोग भी मेरेलिये प्रदण करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध
करें उनको तुम लोग भी स्त्रीकार करो ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचूद्वृद्धी
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अनूपा
विश्वमोजसा स दृद्रवत्स्याहुतः ॥ ३३ ॥

पदार्थ-हे मनुष्यों जैसे मैं (विद्वत्स्य) सब भूगोलों के (दृत्तम्) तपाने वाले मुख्यरूप - अमृतम्) बारम्बार रूप से आविर्भावि बनकर (विद्वत्स्य) मनुष्यों पदार्थों को (दृत्तम्) तप से जलाने वाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारणात्मक अग्नि को आविर्कार करने जैसे (विद्वत्स्योत्तमा) जगत् के रक्षक (अमृतम्) रूपवान् सब पदार्थों के साथ मिलेमान है (मः) वह (योजने) युक्त करता है जो (अमृतम्) अ-च्छे प्रकार प्रदण किया हुआ (दुद्रवन्) शरीरार्थि में चलाता है (मः) वह सुम लो-गों को जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भाषार्थ-इस मंत्र में पूर्व मंत्र में (भा:दो) इस पर की अनुवृत्ति मानी है । तथा (विद्वत्स्य दृत्तममृतम्) इन तीन पदों की दो बार आवृत्ति में अमृत है अर्थात् अमृत दो प्रकार के अग्नि का प्रदण होता है । यह सब अग्नि कारणात्मक में लिया है परमा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

य दुद्रव दिवस्य परमेष्ठी अग्नि । अग्निर्द्विधा ।

भाष्येऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः । मः ॥

निर वह वेमा दे पर वि ॥

म दुद्रवस्यद्विधाः म दुद्रवस्य अमृतम् । अमृतम् अमृतम् । अमृतम् अमृतम् । अमृतम् अमृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ-हे मनुष्यों ! (मः) वह अग्नि (अमृतम्) अच्छे प्रकार तपाने हुए मित्र के समान (दुद्रवन्) चलाता है तथा (मः) वह (अमृतम्) अच्छे प्रकार निर्वाण किये विद्वत् के रूप (दुद्रवन्) जगत् है (अमृतम्) अच्छे प्रकार लोगों के देव के साथ (पर) समानता के योग्य (अमृतम्) अच्छे प्रकार अग्नि तपाने के समान जो (अमृतम्) पृथिवी का हि वस्तुओं और (अमृतम्) मनुष्यों का (देवम्) भवित्त्विज (राधः) धन कर है इस अग्नि को तुम ही मनुष्यों में जानना ॥ ३४ ॥

भाषार्थ-इस मंत्र में अमृतम्-अग्नि-देवता का अर्थ है अमृतम् अग्नि के समान जो पृथिवी वस्तुओं का प्रदण कर अग्नि है इस का विचार करने का करना चाहिये ॥ ३४ ॥

यमे अमृतम् अमृतम् अमृतम् । अमृतम् अमृतम् ।

भाष्येऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः । मः ॥

निर वह वेमा दे पर वि ॥

अग्निं अमृतम् अमृतम् अमृतम् । अमृतम् अमृतम् । अमृतम् अमृतम् । अमृतम् अमृतम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (गदसः) मममातुं युक्त्य के (गदो) मममान (ज्ञाननेष्टः) विद्वान्
को प्राप्त ह्य (मद्रं) मेतन्नां विद्वान् भाग भद्रि के युक्त्य (गोमगः) प्रदान्त गो
भौर वृथिथी सं युक्त (गान्त्य) मद्र के (रंज्ञान) द्यामां समर्थ ह्य (ममे) ह-
गारे जिये (मद्रि) यदु (भव) धन को (धंदि) धारणा कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इम मन्त्रमें पाचकलु-मन्त्रों रीति से उपयुक्त किया भद्रि बहुत धन
देना हे ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

स इवान इयस्य परमेष्ठी ऋषिः । भद्रिदेवता ।

निचूदुषिणक् उन्ः । ऋषभः स्वरः ॥

किर यह कैसा हो यह दि० ॥

स इवानो यमुदुषियिरुग्निर्दीयेन्यो गिरा । रेयदस्मभ्यं पुर्णणीक
दीदिदि ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (पुर्णणीक) बहुत मेना वाले राजपुत्र्य विद्वान् (गिरा) पार्थी से
(इदुष्यः) लोअने योग्य (यन्) गिराम का हेतु (कपिः) ममर्थ (इवानः) प्र-
दीप (सः) उम पूर्णक (भाद्रि) भद्रि के समान (मस्मभ्यम्) हमारे जिये (र-
यन्) प्रशंसित धन युक्त पदार्थो को (दीदिदि) प्रकाशित कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इम मन्त्रमें पाचकलु-विद्वान् को चाहिये कि भद्रि के गुण फल और
स्वभाव के प्रकाश के लिये उपयुक्त करे ॥ ३६ ॥

द्यपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । भद्रिदेवता ।

निचूदुषिणक् उन्ः । ऋषभः स्वरः ॥

किर यह कैसा हो यह दि० ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने यस्तोरुनापसः । स तिग्मजम्भ रूच-
सो दह मतिं ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण भयवर्षो को चलाने वाले (राजन्) प्रकाशमान
(अग्ने) विद्वान् जन (सः) सो पूर्णक गुणयुक्त भाग जैसे तीक्ष्ण तेज युक्त अग्नि
(क्षपः) रात्रियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (अपसः) प्रभात
और सायंकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है धेने (त्मना) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त
भयने आत्मा से (रक्षसः) दृष्ट जनों को रात्रि के समान (प्रतिदह) निश्चय करके
भस्म कीजिये ॥ ३७ ॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में घाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें ॥ ३७ ॥

अद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

भद्रा नो अग्निरार्हुती भद्रा रातिः सुभग भद्रो अंध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

पदार्थः-हे (सुभग) सुन्दर पेश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष जैसे (माहुतः) धर्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (अग्नि) अग्नि (भद्रः) सेवन योग्य (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्याणकारी (अंध्वरः) रक्षणीय व्यवहार (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होयें वैसे भाष (नः) हमारे लिये हाजिये ॥ ३८ ॥

भाषार्थ-इस मन्त्र में घाचकलु०-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे भात विद्वान् लोगों को भी तानें ॥ ३८ ॥

भद्रा उनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर यह विद्वान् कैसा हो यह वि० ॥

भद्रा उत प्रशस्तयः भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्यं । येनां समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

पदार्थः-हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष भाप (येन) जिस से हमारे (वृत्रतूर्यं) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्ति युक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) न . . . योग्य प्रजा और जिस से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त स . . . हों वैसे कर्म (कृणुष्व) कीजिये ॥ ३९ ॥

भाषार्थः-यहां (

विद्वान्

उत्तम

धनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्याण्ड छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

येनां समत्सु ससहोऽर्ष स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमां
ते अभिष्टिभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मी युक्त पुरुष आप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) ब-
हुत प्रकार (शर्धताम्) बल करते हुए हमारे (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को
(भवतनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के म-
नुसार वर्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४० ॥

भाषार्थः—यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है विद्वानों
को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ाये जिस से ये लोग
उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥ ४० ॥

अग्निमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह क्या करे यह वि० ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्धन्त आ-
शयोऽस्तं नित्पासो वाजिन इपथे स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (वसु.) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम्)
जिस (अग्निम्) धाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम्) घर को
(यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्पासः) कारण रूप से विनाश रहित (वाजिनः)
वेग धाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्धन्तः) चोड़े (अस्तम्) घर को प्राप्त हांते हैं
वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूँ और (स्तोतृभ्यः) स्तुति
कारक विद्वानों के लिये (इपथे) अच्छे मन्त्रादि पदार्थों को धारण करता हूँ वैसे
ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें
कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसे तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में
उपर उपर भ्रमण कर सायंकाळ अपने घर आ के प्रसन्न होते हैं । वैसे विद्या के
स्थान को प्राप्त हो के तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥ ४१ ॥

सो अग्निमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्यो पङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

सो अग्निर्वा वसुर्मृणे सं प्रमायन्ति धेनवः । समर्धन्तो रघुद्रुव
सधेमुजातासः सूरयः इपथे स्तोतृभ्य आभर ॥ ४२ ॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष जन्मे में (यः) जो (वसुः) निर्वास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उस की (रघु) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूँ (यमः) जिस का (धेनवः) घाँसी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले (अर्धन्तः) प्रदीप्तित शानी (मुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये (इयम्) ज्ञान को (समः) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पदाने द्वारा इन्द्रादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान में धारण कर ॥ ४२ ॥

भाषार्थः-अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करे और जैसे घोड़े शीघ्र चला के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुंचाये ॥ ४२ ॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर यह क्या करे यह वि० ॥

उभे सुदचन्द्र सर्पिर्वा दर्वी श्रीणीप आसनि । उतो न उतपुपूर्वा
उक्थेपु शवसस्पत इपथे स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४३ ॥

पदार्थः-हे (सुदचन्द्र) सुन्दर मानन्ददाता अध्यापकपुरुष भाप (सर्पिः) धी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कर्तों से (श्रीणीपे) पकानेकेसमान (आसनि) मुझ में (उभे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये । हे (शवसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेद विभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इयम्) अन्नादि पदार्थों को (उतपुपूर्वाः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥ ४३ ॥

भाषार्थः-जैसे ऋत्विज् लोग घृत को शोध कर्तों से अग्नि में होमकर और वायु तथा वर्षाजलको रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोभ कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करे ॥ ४३ ॥

अग्नेतमिरपस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । अर्वा गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

येनां समस्तुं ससहोऽथ स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमां
ते अभिष्टिभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मी युक्त पुत्र्य माप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समस्तु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) बहु-
हुत प्रकार (शर्धताम्) बल करते हुए हमारे (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को
(तनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाये (ते) माप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अ-
नुसार वर्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४० ॥

भाषार्थः—यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है विद्वानों
को उचित है कि बहुत बलयुक्त धीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ाये जिस से ये लोग
उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह क्या करे यह वि० ॥

अग्निं तं मन्ये घो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्धन्त आ-
श्रयोऽस्तं नित्यासो वाजिन इपथे स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (वसुः) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम्)
जिस (अग्निम्) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम्) घर को
(यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारण रूप से विनाश रहित (वाजिनः)
वेग वाले (आश्रवः) शीघ्रगामी (अर्धन्तः) घोंड़े (अस्तम्) घर को प्राप्त होते हैं
वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूँ और (स्तोतृभ्यः) स्तुति
कारक विद्वानों के लिये (इपथे) अच्छे अश्रादि पदार्थों को धारण करता हूँ वैसे
ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें
कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसे तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में
इधर उधर भ्रमण कर साथेसाथ अपने घर आ के प्रसन्न होते हैं । वैसे विद्या के
स्थान को प्राप्त हो के तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥ ४१ ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

सो अग्निर्षी वसुगृणे सं पमायन्ति धेनवः । समर्षन्तो रघुद्रुव
सधेमुज्जातासः सूरयः इपथे स्तोतृभ्य आभर ॥ ४२ ॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष जन्मे में (यः) जो (वसुः) निर्वास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उस की (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करना हूँ (यम) जिस का (धेनवः) वाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले (अर्षन्तः) प्रदीप्त ज्ञानी (मुज्जातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्यार्थियों के लिये (इपथे) शान को (सम) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) यह पदाने द्वारा इन्द्रयादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥ ४२ ॥

भाषार्थः-अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चला के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुंचाये ॥ ४२ ॥

वमे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिदण्डः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर यह क्या करे यह वि० ॥

उमे सुश्चन्द्र सर्षिषां दधी श्रीणीष आसनि । उतो न उरुपूर्वा
उक्थेषु शवसस्पत इपथे स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४३ ॥

पदार्थः-हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष भाव (सर्षिषः) धी के (दधी) चलाने पकड़ने की दो कर्छी से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुझ में (उमे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये । हे (शवसः) बछ के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) पकड़ने सुनने योग्य वेद विभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इपथे) अथादि पदार्थों को (उरुपूर्वाः)-उरुपृथता से पूरणा कर ॥ ४३ ॥

भाषार्थः-जैसे ऋत्विज् छोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वा-
यु तथा वर्षाजलको रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लो-
गों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यारान
देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥ ४३ ॥

अग्नेतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री ऋन्दः । पङ्क्तः सर ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशाम् । ऋध्यामा
त ओहैः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक जन हम लोग (ते) आप से (ओहैः) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुति रूप वेद के भागों से (अद्य) आज (भ-द्रम्) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्याण कारक (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान तम उस (हृदिस्पृशाम्) आत्मा के साथ गन्ध करने वाले विद्या घोध को प्राप्त हो के निरन्तर (ऋध्याम्) वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं । अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में झींघ पहुंच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सय शास्त्रों के घोध से युक्त कल्याण करने वाली बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफलों को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पद प्रशंसित बुद्धि को पा के आप उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सय मनुष्यों की भी उन्नति करें ॥ ४४ ॥

अधाहीत्वस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्पा गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
फिर यह कैसा हो यह वि० ॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य वृहतो व-
भूर्थ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन जैसे तू (भद्रस्य) आनन्द कारक (दक्षस्य) शरीर और आत्मा के वज से युक्त (साधोः) अच्छे मार्ग में प्रवर्तमान (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त हुए पुत्र्य की (वृहतः) बड़े विषय या ज्ञानरूप (क्रतोः) बुद्धि से (रथीः) प्रशंसित रमण साधनयानों से युक्त (वभूर्थ) हृजिये वैसे (अद्य) मंगला-चरण पूर्वक (हि) निश्चय करके हम भी होयें ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुं—जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि को प्राप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता लोगों को भी पढ़ाना चाहिये ॥ ४५ ॥

पभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्पा गायत्री
छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

पभिर्नो अर्कभर्षा नो अर्षाद् स्वर्ण ज्पोतिः । अग्ने विरयेभिः
सुमना अर्नकिः ॥ ४६ ॥

पदार्थः--हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष भाप (नः) हमारे लिये (श्वेभिः) सय (मनीकैः) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (सुमनाः) मन से दाता (भव) हूजिये (ऋषिभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूजा के योग्य विद्वानों के हित (नः) हमारे लिये (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाशक (भर्वाङ्) नीचों को उतारने को जानने वाले (स्व) सुख के (न) समान हूजिये ॥ ४६ ॥

भाषार्थः--इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुः--जैसे राजा अच्छी शिक्षा युक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से विद्या से हुए क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होंगे ॥ ४६ ॥

अग्निं होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् प्राणी त्रिष्टुप् छन्द । धैयतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्यन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसम् । विप्रं न जातवेदसम् । ध ऊर्ध्वर्षां स्वध्वरो देवो देवाच्यां कृपा घृतस्य विभ्रांष्टिमनुं षष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऊर्ध्वर्षा) ऊर्ध्वगति के साथ (स्वध्वरः) दुःकर्म करने से अहिंसनीय (देवाच्या) विद्वानों के सत्कार के हेतु (कृपा) सम्प्रक्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला पुरुष (शोचिषा) क्षीति के साथ (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार हवन किये (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल के सहायते (विप्रं) विविध प्रकार के ज्योतिषों को (अनुषष्टि) प्रकाशित करता है (होतारम्) सुख के दाता (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए सय पदार्थों में विद्यमान (सहसः) पलवान पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान (वसुम्) धनदाता । दास्यन्तम्) दानशील (जातवेदसम्) बुद्धिमानों में प्रामिद्ध (अग्निम्) तत्त्वर्षी अग्नि (न) समान (विप्रम्) भात ज्ञानी का मैं (मन्ये) सम्कार करता हूँ वैसे तुम लोग भी उस को मानो ॥ ४७ ॥

भाषार्थः--इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुः--जैसे अच्छे प्रकार सेवन की विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सय को भाप करते हैं वैसे युक्ति सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावों से सय के सुख को उत्पन्न करता है ॥ ४७ ॥

अग्नेत्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराद्ब्राह्मी बृहती ऊन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तम उम प्राता शिवो भवा वसुध्वः । वसुरग्नि-
वसुश्रवा अच्छा नक्षि शुमत्समथ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दी-
दिवः सुज्ञाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे अग्ने विद्वान् (त्वम्) आप जैसे यह (वसुः) धनदाता (वसुश्रवाः)
अथ और धन का हेतु (अग्निः) अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) देता है वैसे (नः)
हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (प्राता) रत्नक (विरूध्यः) धेष्ट (उत) और
(शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये है । (शोचिष्ठ) भतितेजस्वी (दीदिवः) बहुत
प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान् जैसे हम लोग (त्वा) तुम्हको (सखिभ्यः)
मित्रों से (सुज्ञाय) सुख के लिये (नूनम्) निश्चय (इमहे) मांगते हैं वैसे (तम्)
उस तुम्हको सब मनुष्य चाहें जैसे मैं (शुमत्समम्) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तु-
म्हको (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूँ वैसे तू हम को प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भाषार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु—जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उ-
की उन्नति करते हैं वैसे विद्वान् सब का मित्र सब को सुख देवे ॥ ४८ ॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् ऊन्दः ।

धैयतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायज्ञिन्धीना अग्निं स्वराभरन्तः । त-
स्मिन्नहं निदधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णवर्हिपम् ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(येन) जिस (तपसा) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (इन्धीनाः) प्रकाशमान
(स्वः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (ऋषयः) वेद का
अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विज्ञान से युक्त (अग्निम्) विद्युत्
आदि अग्नि को (आयन्) प्राप्त हों (तस्मिन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःख
रहित-प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्)
जिस (स्तीर्णवर्हिपम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम्) अग्नि को
(आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) मैं (नि, दधे) धारण करता हूँ ॥ ४९ ॥

भाषार्थः-जिम प्रकार भे वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर विजुर्षी
वादि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त
होना चाहिये ॥ ४२ ॥

तं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्थी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को फलसा होना चाहिये यह वि० ॥

तं पत्नीभिरनुं गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकं
गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीयं पृष्ठे अधिरोचने द्विवः ॥ ५० ॥

पदार्थः-हे (देवाः) विद्वान् लोगो जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त ऋषि के
(गृभ्णानाः) प्रदण करते हुए (द्विवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर वेदोक्त
कर्म (ऋषि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) जानने
को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्तमान (पत्नीभिः) अपनी
स्त्रियों (पुत्रैः) श्रयापस्या में हुए दु.ग से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत
वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णोंदि के साथ (नाकम्) मानन्द
को प्राप्त होनेवाँधैसं इन सबके सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥५०॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री पुत्र, भाई,
कन्या, माता, पिता, सेवक और परोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा
पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । खराडार्थी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युर्यमग्निः सत्पतिश्चेकितानः । पृष्ठे
पृथिव्या निहितो दधिद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यधः ॥ ५१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरय (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक
आप (वाचः) वाणी के (मध्यम) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (मयम्)
यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (नि-
हितः) निरन्तर स्थिर किया (दधिद्युतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता ।
और धर्म पर (आ, रुहत्) आरूढ़ होता है उस के साथ (ये) जो लोग (पृतन्यधः)

भाषार्थः-जिस प्रकार से वेदपारंग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर
शादि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धि
होना चाहिये ॥ ४९ ॥

तं परनीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । सुरिगार्थी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

तं परनीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नार्क
गृह्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधिरोचने द्वियः ॥ ५० ॥

पदार्थः-हे (देवाः) विद्वान् लोगो जैसे तुम लोग (तम्) उस पृथोक अग्नि
(गृह्णानाः) ग्रहण करते हुए (द्वियः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर
कर्म (अग्नि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे)
को हुए (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वसमान (परनीभिः) अपनी
स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धापस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुमों (उत,
वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णोंदि फेसाथ (नार्कम्) आनन्द
को प्राप्त होतेहोयैसे इन सबके सहित हम लोग भी (मनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥५०॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुं—जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री पुत्र, माई,
कन्या, माता, पिता, सेवक और परोसियों को विद्या और अच्छी दिशा से धर्मात्मा
पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । सराडार्थी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इंदवर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आ वाचो मध्वमरुहद्भुरणपुरुषमग्निः सत्पतिश्चेकितानः । पृष्ठे
पृथिव्या निर्हितो दधिद्युतदधस्पदं कृणुतां पे पृतन्यधः ॥ ५१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) धेष्ठों के रक्षक
आप (वाचः) वाणी के (मध्वम्) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (मध्वम्)
यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (नि-
दितः) निरन्तर स्थिर किया (दधिद्युतम्) उपदेश से सब को
और धर्म पर (आ, रहत्) आरुढ़ होता है उस के साथ

युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उनको (अधस्पदम्) अपने अधिकार से च्युत जैसे ही वैसा (कृणुताम्) कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सब को सुख पहुंचाता है। वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें ॥ ५१ ॥

अथमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृदार्षीं त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

धर्मोत्तमाशो के तुल्य अन्य लोगों को वर्त्तना चाहिये ॥

अथमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योतनामप्रयुच्छन् ।

विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्रवाहि दिव्यानि धाम् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—जो (अथम्) यह (वीरतमः) अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा (वयोधाः) सब के जीवन को धारण करने वाला (सहस्रियः) असंख्य योद्धाजनों के समान योद्धा (सरिरस्य) आकाश के (मध्ये) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होते हुए (अग्निः) अग्नि के तुल्य सेनापति भाप (द्योतनाम्) प्रकाशित हुईये और (दिव्यानि) अच्छे (धाम) जन्म कर्म और स्थानों को (उप, प्र, याहि) प्राप्त हुईये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मोत्तमा जनों के साथ निचास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अथवा यद्वा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी हों ॥ ५२ ॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगर्षीं पंक्तिद्वन्द्वः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह वि० ॥

सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्नें पथो देवयानान् कृणुष्यम् । पुनः

कृष्याना पितरा युवानान्वातांसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग विद्याओं को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (देवयानान्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (संप्रच्यवध्वम्) सम्पन्न चलो, धर्म को (कृणुष्यम्) करो। हे (अग्ने) विद्वान् पितामह (त्वयि) तुम्हारे घने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि प्रदायक्यों को (कृष्याना) करते हुए (युवाना) पूर्ण स्थापस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर (पुनः)

यथात् (पतम) गर्भाधानादि रीति से यथाक (तन्नुम) सन्तान को (अन्याना-
सीव) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

भाष्यार्थः—कुमार स्त्री पुरुष भर्मे युक्त सेवन किये प्रद्वयचर्य से पूर्ण विद्या पद
साथ धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की क-
न्या परीक्षा कर अत्यन्तप्रीति के साथ चित्त से परस्पर आत्मीयता से प्रेम से प्रवृत्त हो
से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से भवने से प्रवृत्त होना का
संनोय कर के प्राप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चतुर और जैसे भर्मे के मार्गों को
संरक्ष करे वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों का भी रक्षा करें ॥ ५३ ॥

उद्वृष्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । अर्थः

विष्णु छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त वि० ॥

उद्वृष्यस्वयाग्ने प्रतिं जागृहि त्वमिष्टापुत्रं सऽमृजेषाम्भयम् ॥

अग्निन् स्रग्स्थे अध्युत्तरस्मिन् विद्मं देवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

पदार्थः—इ (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष नृ । उद्वृष्यस्व । अ-
च्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सयके प्रति (प्रति, जागृहि) अधिवारुप जिज्ञा का उद्देश
के विद्या से चेतन हो (स्रग्) नृ स्त्री (च) और (अभयम्) यह पुरुष दाना । अ-
स्मिन्) इस पक्षमान (स्रग्स्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगमि स्रग्स्थ
से सदा (इष्टापूर्ते) इष्ट सुख विद्वानों का संस्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा
सद्गुण करना और सत्य विद्या आदि का दान देना, यह इष्ट और पूर्णवत्, प्रसन्नवत्,
विद्या की शोभा, पूर्णयुवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्ण इष्ट दानों
हो (सं, अग्नेयाम्) सिद्ध, किया करो (विद्मं) मन्त्र (देवा) विद्मन् ५४ (च)
और (यजमानः) यह करने वाले पुरुष नृ इस एक स्थान में । अग्नि देवता) इष्ट
निपूर्वक स्थित होओ ॥ ५४ ॥

भाष्यार्थः—जैसे अग्नि सुगन्धादि के होम से इष्ट सुख देता और अग्निदेवता से दान
की सामग्री पूर्ण करता है वैसे उत्तम विद्या किये स्त्री पुरुष इस जगत् में अ-
च्छा विद्या करें । जब विद्या के किये इष्ट प्रति पाते स्त्री पुरुष हो तब विद्वानों को पूरा
के इष्टके समीप वेदोक्त प्रतिष्ठा करते पति और पत्नी बने ॥ ५४ ॥

देव उद्वृष्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । अर्थः

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त वि० ॥

येन वहंसि महस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तं नमं यज्ञं नो नय
स्पृष्टेषु गन्तवे ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष विदुषी स्त्री या तू (देवेषु) विद्वानों में (सः)
सुरा को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (येन) जिस प्रतिष्ठा किये कर्म से (सहस्र-
म्) गृहाधम के असंख्य व्यवहारों को, (वहसि) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस
विद्वान् से (सर्ववेदसम्) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उस
से (इमम्) इस गृहाधमरूप (यज्ञम्) संगति के योग्य यज्ञ को (नः) हम को
(नय) प्राप्त कीजिये ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—विवाह की प्रतिष्ठानों में यह भी प्रतिष्ठा करानी चाहिये कि हे स्त्री पु-
रुषो! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो धैरे हम माता पिता आचा-
र्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताय करो ॥ ५७ ॥

अयन्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचूदनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही यि० ॥

अथ ते योनिर्ऋत्विग्यो यतो जातो अरोचथाः । तज्जानन्नम्
आ रोहाथानो वर्धयारयिम् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् वा विदुषि (अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्विग्यः)
ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस विद्या के पठन
पाठन से (जातः) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उस
को (जानन्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आरुढ़ हो (अथ) इस
के पश्चात् (नः) हमारी (रयिम्) संपत्ति को (वर्धय) बढ़ाया कर ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—स्त्री पुरुषों से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिष्ठा करानी चाहिये कि
जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस २
को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उस को
अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशिरस्तुर्देवता । स्वराङ्गकृतिश्छन्दः ।

पङ्कजः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है ॥

तपश्च तपस्पृष्टश्च शैशिरायतू अग्नेरन्तः इलेषोऽसि कल्पेतां
 वाषांपृथिवी कल्पन्तामाप अंपथयः कल्पन्तामग्नेयः पृथङ् मम
 ज्यैष्ठ्याग् सव्रताः । मे अग्नेयः समनसोऽन्तरा वाषांपृथिवी इमे
 शैशिरायतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तपां
 देवतपाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

पदार्थ—हे ईश्वर (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) ज्यैष्ठ्यता के लिये (तप) तापदाने का हेतु माघ महिना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुण मास (च ये दोनों (शैशिरौ) शिशिर ऋतु में प्रख्यात (ऋत्) अपने चिह्नों को प्राप्त कर घाले सुखदायी होते हैं आप जिन के (अग्नेः) अग्नि के भी (अन्तःइलेयः) मध में प्रविष्ट (असि) हैं उन दोनों से (वाषांपृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) मर्यं हों (आपः) जल (ओपथयः) ओपथियां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (सव्रता एक प्रकार के नियमों में वर्तमान (अग्नेयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथङ्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो (समनसः) एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हैं वे (अग्नेयः) विद्युत् आदि अग्नि (इमे) इन (वाषांपृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तरा) बीच में होने वाले (शैशिरौ) शिशिर ऋतु के साधक (ऋत्) मा फाल्गुन महिनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को (इन्द्रमिव) पेश्वर्य के तुल्य (देवा) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) शानपूर्वक प्रवेश करें । हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (तथा) उस (देवतया) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साध (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान वर्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य (ध्रुवे) दृढ़ (सीदतम्) स्थिर होओ ॥ ५७ ॥

भावायं—इस मन्त्र में उपमालं ०-मनुष्यों को चाहिये कि सद्य ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त है इस कारण सब पदार्थ अपने २ नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सद्य ऋतुओं में व्याप्त विजुली रूप अग्नियों के गुण होय जाने स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥ ५७ ॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्युपी देवता ।

भुरिग्राह्मी वृद्धी लन्दः । मध्यमः स्वरः

स्त्री को पया

प्रोथदश्वो न यवसेऽचिप्यन्प्रदा महः संघरणाद्वयस्थात् । आ
दस्पवानो अनुं वाति शोचिचरधं स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

पदार्थः-हे राजन् आप यवसे) भूसा आदि के लिये (अर्यः) घोड़े के (न) समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (संघरणात्) आच्छादन से (अचिप्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित होवें (आत्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्) आकर्षण करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अथ) इस के पश्चात् (स्म) ही आपका (वातः) चलने वाला भूत्व (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भाषार्थः-इस मंत्र में उपमालं-जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट हो कर राज्य को बढ़ाती हैं ॥ ६२ ॥

आयोष्टेयस्य वसिष्ठ ऋषिः । विदुषी देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आयोष्ट्वा सदेने साद्याम्पथतश्छायायां षंसमुद्रस्य हृदये । रु-
दमीधतीं भास्वतीमा या व्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि (या) जो तू (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उस (रुदमीवतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्वतीम्) शोभा को प्राप्त-हुए (त्वा) तुझ को (आयोः) न्यायानुफल चलने वाले चिरंजीवि पुत्र के (सदने) स्थान में और (अथतः) रक्षा आदि करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, साद्यामि) अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (हृदये) बीच (आ) शुद्ध प्रकार से मैं स्थित करता हूँ ॥ ६३ ॥

भाषार्थः-हे स्त्रि अच्छे प्रकार चलने वाले पति के आश्रयरूप स्थान में आप के लक्ष्य संबद्धता रहित गर्भीरतायुक्त प्यारी तुझ को स्थित करता हूँ

करने को सुखी रख और तुझ को भी

पुत्रमेष्टी त्वा सादयन्तु दिवस्पृष्टं ज्येष्ठस्यतीं प्रथस्यतीं दि-
 पच्छुद्विषं दधेत् दिव्यमाहिँसीः । विद्वंस्यं प्राणायानाना-
 व्यानानाङ्गनायं प्रतिष्ठायै प्रविशाय । सूर्येभ्युदभिषानु मृगा
 स्वस्या हृदिषा जन्मेन तया देवतयासांस्तुस्यद भुवे सीद
 तम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः-दे मि (परमेष्ठी) परमात्मा (गिरवर्षी) वसव (प्राणाय) शीघ्रत
 सुव (अथानाय) दु सतिवृषि (व्यानाय) जना विद्याओं की व्यापित (उदाना
 दक्षम पल (प्रतिष्ठायै) अथेप्र सन्तार भीर (वरिप्राय) अष्ट कर्मों के अन्तर्गत
 लिये (दिव) वसवोंय गृहस्थ व्यपहार के (वृष्ट) साजान मे (अथस्यतीं) वा
 प्रविष्ट प्रथमा य.तीं (व्यवेच्यवर्त म) प्रथमित विद्या में व्यापित द्विष (या) तुम्हा
 (सादयन्तु) स्थापित करते सो त (दिवस) व्याप के प्रकाश को (वपुः) दिवा य
 (दिवस) विद्या अथ सूर्य को (६४) दद वर (दिवस) धर्म के प्रकाश को (इ
 हिमी) जन नष्ट कर (सूर्य) अथान्तर जगत् का स्वामी ईश्वर (मृगा) पदों भा
 (स्वस्या) साकार (जन्मेन) अनिष्टय तुम्ह भी (हृदिषा) साधारण के :
 आत्माने (तया) तुम्ह को (अभिषानु) सब धर्म में एका करते वरु देना प्रति भी
 होनी (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (मृगास्यत्) जगत्
 तुम्ह (धरे) निरवत (मे दत्त) शिष्य रहे ॥ ६४ ॥

भाषार्थ -परमेश्वर आका करता है कि जैसे निरिक्त अन्तु सुगतापी होता है दे
 मे जो पुत्र परमेश्वर भर्त भी हो सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर भी पुत्र कर्मों के
 छोड़ के परमेश्वर की उत्तममे से निरन्तर आनन्द किया करें ॥ ६४ ॥

सहस्रं देवस्य बहुसुतना सुर्वे । विद्वान् देवता । विद्वान्दुपुत्र

एतः । एतन्नाः एतः ।

सिंह सुतयो को बना बना कर देवे दद दिव ।

सुहस्रं प्रमाभि सुहस्रं प्रतिमाभि सुहस्रं मृगिनाभि सुह-
 नोऽभि सुहनाय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थः-दे विद्वान् पुत्र सिर्वे मि वा उिम कायत् इ (सहस्रं) समस्तान्
 पदार्थों से बृहत् उत्पत्ति के (मृगा) जगत् परमेश्वर के पुत्र (मृगि) है (सह-
 स्रं) समस्त विद्वान् पदार्थों के (मृगिना) देवताकाय के पुत्र (मृगि) है

प्रोधदश्वो न वर्षसेऽत्रिण्यन्वदा मृदः संवरेणाद्वयस्थात् । आ
दस्ववातो अनु वाति शोचिरधं स्म ते व्रजनं कृष्यमस्ति ॥ ६०

पदार्थः-हे राजव्र आप यवसे) भूमा आदि के लिये (अरंयः) छोड़े में
समान प्रजाओं को (प्रोधत) समर्थ कीजिये (यदा) जय (मृदः) घड़े (अ
त्) आच्छादन से (अत्रिण्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यवस्थात्) स्थितः
त्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्याम्
करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अध) इस के पश्चात् (स्म
(घातः) चलने वाला भूत्व (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०-जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट हो
करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा स
को बढ़ाती है ॥ ६२ ॥

आयोष्टेस्य वसिष्ठ ऋषिः । विदुषी देवता । विराट् ि
धैवतः सारः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह
आयोष्ट्या सदेने साद्यस्वर्धतश्छायायां

श्मीवती भास्वतीमा या व्यां भास्या पृथिवी

पदार्थः-हे स्त्रि (या) जो तू (व्याम्) प्रकाश (रिक्षम्)
आकाश को (उरु) बहुत (भा, भासि) वतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्व
तुफ को (आयोः) न्यायानुसूल चलने वाले ि और (भवतः) रक्षा
आदि करते हुए के (अ भच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य)
प्रकार से मैं स्थित कराता हूँ ॥ ६३ ॥

भावार्थः-हे स्त्रि अच्छे प्रकार

तुम्हें चंचलता रहित गम्भीर

धर्म का प्रकाश कर पति

रखे ॥ ६३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसि

(सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तोलने की तुला के समान (...) है (साहस्रः) असंख्य पदार्थ और विधाओं से युक्त (मसि) है इस कारण (...) स्त्राय) असंख्यात प्रयोजनों के लिये (तथा) तुम्ह को परमात्मा व्यवहार में ...) करे ॥ ६५ ॥

भाषार्थ.—इस मन्त्र में पाचकलुः—यहां पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो की अनुवृत्ति आती है । तीन साधनों के मनुष्यों के व्यवहार मिश्र होते हैं । यथार्थविज्ञान दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन घाट और तीसरा ... भाषादि । यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

इस अध्याय में ऋतुविधा का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह पन्द्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

